ISSN-0974-0118

मेकल मीमांसा

अंतर-अनुशासनात्मक डबल ब्लाइंड पीयर रिव्यूड यूजीसी केयर सूचीबद्ध अर्धवार्षिक शोध पत्रिका

वर्ष-13, अंक-02 जुलाई-दिसम्बर -2021

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय
अमरकंटक (म.प्र.)

कुलगीत

तपोभूमि यह ऋषि मुनियों की अति पावन अभिराम।
विद्या के आलोक पुंज को शत शत बार प्रणाम।।

यहाँ नर्मदा की लहरों में संस्कृति का अनुप्रास।
यह भारत की अमर संपदा का पूरा इतिहास।।
यह स्कंदपुराण निरूपित अद्भुत रेवाखण्ड।
युग युग से महिमामंडित यह वंदित और अखंड।।
जनजातीय समाज यहाँ पर कर्मशील निष्काम।
विद्या के आलोक पुंज को शत शत बार प्रणाम....।।

यहाँ नर्मदा, सोन, जोहिला और अरण्डि प्रवाहित।
विद्या की देवी की पावन वीणा यहाँ स्वरासित।।
आदि शंकराचार्य, कपिल ने यहीं किया था ध्यान।
साधक, संत, कबीर पा रहे प्रज्ञा का वरदान।।
यहीं विश्व की मानवता को मिल पाता विश्राम।
विद्या के आलोक पुंज को शत शत बार प्रणाम....।।

यहाँ सुलभ है जनजीवन की परिपाटी का ज्ञान।
भारत की भाषा परिभाषा का अद्भुत अनुमान।।
यहाँ सूक्ष्म स्थूल दीखता, कण-कण ऊर्जावान।
मेघदूत सर्वदा निहारे साल, चीड़, वट, आम।।
सदा अमरकण्टक में गुंजित दिव्य सदाशिव नाम।
विद्या के आलोक पुंज को शत शत बार प्रणाम....।।

इस अंचल से जुड़ी हुई हैं जन-जीवन की आशा।
पूर्ण करेगा विद्यासागर जन-जन की अभिलाषा।।
वन औषधि की प्रचुर संपदा का यह सुंदर कोष।
संस्कृति और जीवन मूल्यों का यह करता उद्घोष।।
यहाँ सिद्धि की सतत् चेतना बहती है अविराम।
विद्या के आलोक पुंज को शत शत बार प्रणाम....।।

यह धर्म भूमि, यह कर्म भूमि, जीवन दर्शन की मर्म भूमि।
यह ज्ञान भूमि, यह ध्यान भूमि, यह सतत् लक्ष्य संधान भूमि।।
यह बोध भूमि, यह शोध भूमि, यह ''चरैवेति'' अनुरोध भूमि।
यह तत्व भूमि, यह सत्व भूमि, यह मेधा की अमरत्व भूमि।।
गुप्त नर्मदा से अभिसिंचित विश्व विदित गुरुधाम.......

तपोभूमि यह ऋषि मुनियों की अति पावन अभिराम।
विद्या के आलोक पुंज को शत शत बार प्रणाम....।।

वैशाख शुक्ल पक्ष पूर्णिमा (बुद्ध पूर्णिमा)

प्रोफेसर श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी
कुलपति
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय
अमरकंटक (म.प्र.)

ISSN-0974-0118

मेकल मीमांसा

अंतर-अनुशासनात्मक डबल ब्लाइंड पीयर रिव्यूड यूजीसी केयर सूचीबद्ध अर्धवार्षिक शोध पत्रिका
वर्ष-13, अंक-02 जुलाई-दिसम्बर -2021

संरक्षक
प्रोफेसर श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी, कुलपति
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय
अमरकंटक, मध्य प्रदेश

प्रधान सम्पादक
प्रो. राघवेंद्र मिश्रा, प्रोफ़ेसर, पत्रकारिता एवं जन संचार विभाग

कार्यकारी सम्पादक
प्रो. ज्ञानेंद्र कुमार राउत, प्रोफ़ेसर, शिक्षा शास्त्र विभाग
डॉ. टी. श्रीनिवासन, प्रोफ़ेसर, वनस्पति विज्ञान विभाग

सम्पादक मण्डल
डॉ. गौरी शंकर महापात्र, सह-प्राध्यापक, जनजातीय अध्ययन विभाग
डॉ. ललित कुमार मिश्र, सह-प्राध्यापक, मनोविज्ञान विभाग
डॉ. नीरज कुमार राठौर, सह-प्राध्यापक, संगणक विज्ञान विभाग
डॉ. एन सुरजीत कुमार, सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान और मानवाधिकार विभाग
डॉ. राहिल यूसुफ ज़ई, सहायक प्राध्यापक, व्यवसाय प्रबंध विभाग
डा. बिमलेश सिंह, सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग
डॉ. हरजीत सिंह, सहायक प्राध्यापक, भाषाविज्ञान विभाग
डॉ. ऋषि पालीवाल, सहायक प्राध्यापक, भैषजिक विज्ञान विभाग
डॉ. पूनम पांडेय, सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
डॉ. आशुतोष कुमार, सहायक प्राध्यापक, भूविज्ञान विभाग

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय
अमरकंटक, मध्य प्रदेश

© इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक, मध्य प्रदेश- 484887

सहयोग राशि: 300.00

प्रकाशक :
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय,
अमरकंटक, मध्य प्रदेश- 484887
http://www.igntu.ac.in/mekalmimansa.aspx

मुद्रक:
वाइकिंग बुक्स
G-13, एस०एस० टावर
धम्मानी स्ट्रीट, चौरा रास्ता
जयपुर, राजस्थान- 302003

डिज़ाईन:
न्यू विजन एंटरप्राइजेज

ध्यानार्थ:
मेकल मीमांसा राष्ट्रभाषा हिंदी में गुणवत्तापरक एवं मौलिक शोधपत्रों के प्रकाशन के माध्यम से ज्ञान के प्रदीपन और विस्तार हेतु संकल्पित है। मेकल मीमांसा डबल ब्लाइंड पीयर रिव्यू पद्धति का अनुसरण करती है। पत्रिका लेखकीय गरिमा का सम्मान करती है। पत्रिका में प्रकाशित विचार और विश्लेषण लेखकों द्वारा प्रस्तुत हैं जो विषयवस्तु की मौलिकता एवं प्रमाणिकता हेतु उत्तरदायी हैं।

कुलपति जी का सन्देश

यह अत्यंत हर्ष का विषय है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा निर्धारित और संकल्पित मानकों के अनुरूप इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय की शोध पत्रिका 'मेकल मीमांसा' का नियमित प्रकाशन हो रहा है। पत्रिका अपने उद्देश्यों के अनुरूप बहुविषयक एवं अंतर-अनुशासनात्मक स्वरूप लिए हुए है। ज्ञान-विज्ञान की विविध विधाओं के शोधपत्रों का प्रकाशन कर यह ज्ञान के क्षेत्र को समृद्ध कर रही है। शोध पत्रिकाओं का ध्येय ज्ञान का प्रसार एवं संवर्धन होता है। इनके माध्यम से अद्यतन शोध कार्यों को प्रकाश में आने का अवसर मिलता है। मेकल मीमांसा द्वारा यह कार्य सुचारू एवं व्यवस्थित रूप से किया जा रहा है। विश्वसनीयता, प्रामाणिकता एवं सृजनशीलता शोध पत्रिकाओं हेतु आवश्यक मानदंड है। इनसे शोध और शिक्षा की गुणवत्ता सुनिश्चित होती है। इससे सत्य की खोज और ज्ञान के सृजन में सहयोग मिलता है तथा सामाजिक-आर्थिक कल्याण एवं सांस्कृतिक विकास की दिशा निर्मित होती है। शोधपत्र के प्रकाशन से अध्येताओं के लिए शोध कार्य और विमर्श के नए रास्ते भी खुलते हैं और उनमें शोध के प्रति उत्साह एवं समर्पण का भाव जागृत होता है।

शोध पत्रिकाएं मौलिक कार्यों को प्रस्तुत करने, तत्संबन्धी विमर्श करने एवं उनके परीक्षण तथा पुनर्परीक्षण का मंच होती हैं तथा ज्ञान के आदान-प्रदान का अवसर उपलब्ध कराती हैं। राष्ट्रभाषा हिंदी में शोध पत्रिकाएं तुलनात्मक रूप से कम संख्या में प्रकाशित होती हैं। अतः मानक शोध पत्रिकाओं की संख्या वृद्धि की आवश्यकता है। मेकल मीमांसा शोध पत्रिका इस प्रकार के अभाव की पूर्ति का सार्थक प्रयास है। यह निरंतरता, शुचिता एवं निरपेक्षता के भाव से परिपूर्ण है। राष्ट्रभाषा में शोध कार्यों की प्रस्तुति और उन पर विमर्श का अवसर उपलब्ध करा रही है।

पत्रिका में विशेष आग्रह जनजातीय विमर्श को स्थान देने के प्रति है। यह इसकी विशिष्टता भी है और उत्कृष्टता का आधार भी है। पत्रिका के जून-दिसम्बर, 2021 अंक में ज्ञान-विज्ञान की विविध शाखाओं से चयनित लेख प्रकाशित किये जा रहे हैं। इनका क्षेत्र परंपरागत विषयों से लेकर अधुनातन विज्ञान तक विस्तीर्ण है। पत्रिका में चयनित शोधपत्रों की संख्या और उनके क्षेत्र के आधार पर कहा जा सकता है कि मेकल मीमांसा सही अर्थों में बहुविषयक होने के दायित्व का सम्यक निर्वहन कर रही है एवं नए विचारों को सामने लाने का कार्य कर रही है।

मेकल मीमांसा के इस अंक के प्रकाशन के लिए मैं संपादक मंडल को बधाई देता हूँ। यह विश्वास है कि पत्रिका निरंतर अपने उद्देश्यों के अनुरूप गुणवत्तायुक्त विमर्श का विधान कर ज्ञान समाज के निर्माण में अपना सार्थक योगदान देती रहेगी।

प्रोफेसर श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी
कुलपति
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय
अमरकंटक, मध्य प्रदेश

सम्पादकीय

मेकल मीमांसा का जून-दिसम्बर 2021 अंक आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे संपादक मंडल की ओर से अत्यंत प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है। यह पत्रिका के लिए सुखद है कि इसे देश भर से शोधपत्र प्राप्त हो रहे हैं एवं इसमें पर्याप्त संख्या अहिन्दी भाषी क्षेत्रों से प्राप्त होने वाले शोधपत्रों की है। हमारे लिए यह भी उत्साहजनक है कि हम देश की उन जनजातियों से जुड़े शोधपत्र भी प्राप्त कर रहे हैं जिनके बारे में कम सामग्री उपलब्ध है, जो जनजातियाँ संख्या एवं प्रभाव में अत्यंत क्षीण हैं। प्रस्तुत अंक में प्रकाशित लेख ज्ञान-विज्ञान की विविध धाराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनमें राजनीति शास्त्र, साहित्य, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, दर्शन, संचार अध्ययन, सिनेमा, इतिहास, योग, पुरातत्व, जनजातीय अध्ययन, वनस्पति विज्ञान, सांख्यिकी आदि विषयों के लेख शामिल हैं। यह सभी लेख नया शोध, नया विमर्श, नया चिंतन और चीजों को देखने का नया नजरिया हमारे सामने रखने का प्रयास करते हैं।

पत्रिका में चयनित लेखों के माध्यम से हम महिला सशक्तिकरण, जनजातीय समाज में बदलाव, उनकी समस्याएं, उनके इतिहास से जुड़े सन्दर्भ, वनस्पति विज्ञान एवं प्रकृति, सांख्यिकीय अनुप्रयोग, कोविड एवं तत्संबंधित आर्थिक प्रभाव, योग, दर्शन, प्राचीन एवं अर्वाचीन इतिहास, उपन्यास एवं आदिवासी विमर्श, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, सिनेमा, सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी, विकास एवं गांधीवादी प्रारूप, शिक्षा एवं मूल्य, राष्ट्र निर्माण आदि जैसे विविध समसामयिक एवं आवश्यक विषयों को सामने रख रहे हैं।

मेकल मीमांसा का प्रकाशन समयबद्ध, सुचारू, सम्यक रूप से चलता रहे इसके लिए माननीय कुलपति प्रो. श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी जी के प्रोत्साहन एवं समर्थन हेतु मेकल मीमांसा परिवार कृतज्ञ है। साथ ही हम उन लेखकों और शोधकर्ताओं के प्रति भी आभार प्रकट करते हैं जिन्होंने अपने मौलिक चिंतन और शोधपरक दृष्टिकोण को अपने लेखों के माध्यम से सामने रखा है और इस तरह पत्रिका की समृद्धि में अपना अवदान दिया है।

इसके साथ ही हम उन शोधकर्ताओं के प्रति भी अपना सम्मान प्रकट करते हैं जिनके शोधपत्रों को इस अंक में स्थान नहीं दिया जा सका है। हम प्रकाशन हेतु बहुत सारे शोधपत्र प्राप्त करते हैं। अनेक बार संख्या, विषयगत लेखों की प्रचुरता एवं स्थान की कमी हमारी सीमितता बनते हैं जिससे अनेक स्तरीय शोधपत्र भी प्रकाशन हेतु चयनित नहीं हो पाते। आशा है कि विद्वत समाज, शोधार्थियों एवं मनीषियों का निरंतर सहयोग एवं समर्थन मेकल मीमांसा को इसी प्रकार मिलता रहेगा।

प्रो. राघवेन्द्र मिश्रा
मुख्य संपादक - मेकल मीमांसा
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय
अमरकंटक, मध्य प्रदेश

मेकल मीमांसा

अंतर-अनुशासनात्मक डबल ब्लाइंड पीयर रिव्यूड यूजीसी केयर सूचीबद्ध अर्धवार्षिक शोध पत्रिका

वर्ष-13, अंक-02 जुलाई-दिसम्बर -2021

इस अंक में

क्रम संख्या	लेख का शीर्षक	योगदानकर्ता	पृष्ठ संख्या
1.	विवेकी राय के उपन्यास साहित्य में व्यक्त आँचलिकता	प्रो. खेम सिंह डहेरिया	01-06
2.	भारत में महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण की समीक्षा	प्रो. राजबीर सिंह दलाल संदीप ढिल्लों	07-19
3.	गांधी और गांधीवादः एक विहंगम दृष्टिकोण	डॉ. अमित कुमार उपाध्याय	20-26
4.	ग्रामीण विकास के गांधीय प्रारूप की प्रासंगिकता: एक मूल्यांकन	देवेन्द्र प्रताप तिवारी, आलोक कुमार पाण्डेय	27-35
5.	डॉ. चंद्रप्रकाश द्विवेदी का साहित्यिक सिनेमा : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	मनोज कुमार भट्ट (मनोज लीला भट्ट), डॉ. दिग्विजय सिंह राठौर	36-43
6.	मूल्य शिक्षा संवर्धन में संस्कृति और परम्परा की भूमिका (भारत के विशेष संदर्भ में)	डॉ. परमात्मा कुमार मिश्र	44-50
7.	लोक वनस्पति विज्ञान में उपयोगी पेड़-पौधे (बिलासपुर, हिमाचल प्रदेश के विशेष सन्दर्भ में)	डॉ. रोमिता देवी	51-57
8.	लांजिया सौरा जनजाति में सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन: एक सारगर्भित विश्लेषण	विक्रम कुमार जेना & देवी प्रसाद	58-67
9.	शोध एवं सांख्यिकी में आरओसी वक्र का अनुप्रयोग	एस. बालस्वामी	68-75
10.	प्राचीन श्रमण साहित्य में सामाजिक विमर्श	डॉ. जिनेन्द्र कुमार जैन	76-85
11.	कोविड-19 का भारतीय कृषि पर प्रभाव	डॉ. अंजनी श्रीवास्तव, डॉ. अविनाश कुमार श्रीवास्तव, डॉ. शालिनी श्रीवास्तव	86-96
12.	उपन्यास: संवेदना और सौन्दर्यशास्त्र	डॉ. प्रवीण कुमार	97-107
13.	समत्व योग: समकालिक विमर्श	प्रो. जितेन्द्र कुमार शर्मा	109-117
14.	प्राचीन भारतीय समाज एवं संस्कृति में आसन पीठिका के महत्व का अनुशीलन	डॉ . हरेराम पाण्डेय, प्रियंका कुमारी, प्रो. जे. एस. त्रिपाठी	118-123
15.	जे. कृष्णमूर्ति के दर्शन में सत्य और इसकी अभिव्यक्ति की पद्धति	डॉ. राकेश सोनी	124-136
16.	1834 से 1917 ई. के मध्य गिरमिटिया मजदूरों का समुद्रपारीय प्रवासन: एक अध्ययन	राजू कुमार, डॉ. आर. के. बिजेता	137-144

17.	तुरतुरिया, बलौदाबाजार (छत्तीसगढ़) से प्राप्त प्राचीन मूर्तिशिल्प एवं वास्तुखण्ड का विवेचन	हेमन्त कुमार वैष्णव	145-153
18.	सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन एवं राष्ट्र निर्माण	डॉ. सुशील कुमार राय	154-161
19.	आदिवासी समाज में धर्मांतरण की समस्या और हिन्दी उपन्यास	डॉ. उमेश कुमार पाण्डेय	162-168
20.	अण्डमान द्वीप समूह के मूल निवासियों का एक परिचय	प्रमोद कुमार	169-178
21.	भारत और दक्षिणी अफ्रीकी देशों के मध्य व्यापारिक सम्बन्ध का विश्लेषणात्मक अध्ययन	जय प्रकाश यादव, डॉ. बिमलेश सिंह	179-193
22.	21वीं सदी और आदिवासी महिला शिक्षा	डॉ. संजय यादव	194-203
23.	गोंड़ जनजाति में मोबाइल फोन के प्रयोग का अध्ययन	सन्नी कुमार गोंड़, प्रो. मनीषा शर्मा	204-211
24.	शासकीय एवं अशासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत बालिकाओं की अध्ययन आदतों का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. बीना सिंह	212-219
25	स्वामी विवेकानन्द का समाजवादी दर्शन	डॉ. अम्बुजेश कुमार मिश्र	220-226
26	पं. दीनदयाल उपाध्याय और अटल बिहारी वाजपेयी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. महेश कुमार सिंह	227-236
27	राष्ट्रीय शिक्षा एवं नीति व विधि शिक्षा	डॉ. प्रियरंजन कुमार	237-245

विवेकी राय के उपन्यास साहित्य में व्यक्त आँचलिकता

प्रो. खेम सिंह डहेरिया*

सारांश

ग्रामीण लोगों का सरल स्वभाव, सरस जीवन होता है। खेतों में खेती करते किसान और औरतें अपनी दिनचर्या में व्यस्त दिखाई देती हैं। पशुपालन गाँव का मुख्य व्यवसाय होता है। अपने घरों के बड़े आँगन में पशुओं का रहने का स्थान होता है। मुर्गी, बकरी, भैंस-गाय का पालन-पोषण वह अपनत्व के साथ करते हैं। खेतों पर अपनी फसल के साथ मेहनत करके अपना पालन-पोषण करते हैं। वहाँ पर सभी किसान नज़र आते हैं। गाँव में सभी के बड़े निर्णय, पंचायत पर निर्भर होते हैं। गाँव के सभी मसले पंचायत के द्वारा निपटाए जाते हैं। लोगों का विश्वास अब भी अपनी पंचायत पर बना हुआ है। उसी के फैसले को आखिरी फैसला मानते हैं। ग्रामीण परिवेश में भाषा का सरल, सहज और स्पष्ट उपयोग होता है। हर गाँव की भाषा क्षेत्रीय भाषा से प्रभावित होती है और ग्रामीण, आँचलिकता की बोली से ढली होती है। क्षेत्रीय परिवेश के अनुसार रीति-रिवाजों और खान-पान, वेशभूषा की भी विभिन्नता देखने को मिलती है।

बीज शब्द : आँचलिकता, उपन्यास, सोनमाटी, लोकऋण, मान्यताएं

ग्रामीण जीवन और आंचलिकता

ग्रामीण जीवन 'ग्रामीण परिवेश' से तात्पर्य है-सादा जीवन। बिना बनावट के जीवन। आज हम इक्कीसवीं सदी में आ चुके हैं, शहरों के बनावटी जीवन से जब थक जाते हैं तो शांतिमय वातावरण की आवश्यकता होती है। उस समय हमें गाँवों की ही याद आती है। गाँव का जीवन शांत वातावरण से भरा होता है। हरियाली चारों तरफ, हवा में सोंधी-सोंधी खुशबू और पक्षियों की चहचहाहट। उस वातावरण में जैसे जीवन के सभी सुख विद्यमान हों।

कथाकार शिवप्रसाद सिंह ने लिखा है- "क्षेत्र या अंचल उन भौगोलिक खण्ड को कहते हैं जो सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से सुगठित और विशिष्ट एक ऐसी इकाई हो, जिसके निवासियों के रहन-सहन, प्रथाएं, उत्सव, आदर्श और आस्थाएं, मौलिक मान्यताएं तथा मनोवैज्ञानिक विशेषताएं परस्पर समान और दूसरे क्षेत्र के निवासियों से इतना भिन्न हो कि इनके आधार पर यह क्षेत्र या अंचल विशेष इसी प्रकार के दूसरे क्षेत्रों से एकदम अलग प्रतीत हो" (सिंह, 1994, पृ. 8)।

हर गाँव के परिवेश के अनुसार, उनकी वेशभूषा उनकी पारम्परिकता पर निर्भर होती है। ग्रामीण जीवन में लोग अपने मन की बातें आपस में करते हैं और अभाव में भी खुश रहते हैं। उनको नगरों की चकाचैंध से दूर शान्त वातावरण में ही आनन्द आता है। आज के दौर में ग्रामीण परिवेश में भी आधुनिकता ने पैर तो पसार लिए हैं, इसके बावजूद ग्रामीण परिवेश का अपना अस्तित्व है, जिसको बनाने में किसान वर्ग का बहुत महत्व है। ग्रामीण परिवेश में आज के दौर में अनेक अभाव होने पर भी उनको भौतिक सुखों की कोई ज्यादा परवाह नहीं होती। उनका स्वभाव उनकी संस्कृति और उनके समाज में समाया हुआ है। आज

*कुलपति, अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय, भोपाल।

के समय में ग्रामीण परिवेश का अस्तित्व बचाने में किसानों और सरकारी सुविधाओं का बहुत योगदान है। ग्रामीण परिवेश में सभी के सुख-दुख साझा होते हैं।

'सोनामाटी' उपन्यास में व्यक्त आंचलिकता

"ग्राम जीवन के समर्पित कथाकार डॉ. विवेकी राय की उपन्यास यात्रा का प्रारंभ 1967 ई. में प्रकाशित 'बबूल' से हुआ"। उनके छह उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें 'सोनामाटी' जो 1983 ई. में प्रकाशित हुआ (राजीमोल, 2011, पृ. 47), अपने विशाल फलक और व्यापक जीवन दृष्टिकोण की व्याप्ति के कारण महाकाव्यात्मक गरिमा को प्राप्त हुआ है। "इसे उस वर्ष की श्रेष्ठ औपन्यासिक कृति मानकर उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान ने डॉ. विवेकी राय को 'प्रेमचन्द पुरस्कार' से सम्मानित किया। 'सोनामाटी' में समकालीन जीवन संघर्ष का व्यापक और गंभीर चित्रण है। ऐसा नहीं कि इसका आकार विशाल है, वास्तव में विशाल इसकी कथा भूमि है" (जैन, पृ. 6)। 'सोनामाटी' विवेकी राय की एक प्रौढ़ रचना है। 65 अध्याय और 464 पृष्ठों में इस बृहद उपन्यास में वर्तमान ग्राम-जीवन के विभिन्न संदर्भों को उजागर किया गया है। 'सोनामाटी' में 'करइल' अंचल इसके केन्द्र में है। गाजीपुर-बलिया के संधिस्थल पर स्थित 'करइल' लगभग चालीस-पचास किलोमीटर के वृत्त में फैला अंचल है। लेखक ने भूमिका में लिखा है कि इसका भूगोल, अर्थात् करइल-अंचल सत्य है तथा इतिहास, अर्थात् इसमें आए पात्रों के नाम-गाँव कल्पित हैं। स्पष्ट है कि कृषिभूमि करइल को लेखक ने पृष्ठभूमि बनाया है तो कृषक-जीवन ही इसमें केन्द्रीय जीवन है जिसके चारों ओर संघर्षों और द्वन्द्वों का जाल बिछा हुआ है। इस दृष्टि से इसे 'आंचलिक बृहत्कथा' कहा जाना अनुचित न होगा। कृति में वर्णित प्रमुख संघर्ष किसान (उत्पादक-वर्ग) और अध्यापक (मध्यबुद्धिजीवी) वर्ग का है। इसी के इर्द-गिर्द दो विचारधाराओं का संघर्ष, दो भूतपूर्व जमींदारों और दो गाँवों का संघर्ष, पुराने-नए मूल्यों तथा सड़क-निर्माण से सम्बद्ध रचनात्मक और विध्वंसक दृष्टियों का संघर्ष, पिता और पुत्र, ससुर-दामाद जैसे सम्बन्धों का संघर्ष, गाँव की राजनीति से प्रभावित वैयक्तिक टकरावों के ऐसे विविधवर्णी ग्रामभित्तिक चित्रों से उपन्यास समृद्ध है। इस प्रकार 'गोदान' और 'मैला आँचल' की कड़ी को पूरा करनेवाली कृति 'सोनामाटी' इस युग की एक महान औपन्यासिक उपलब्धि के रूप में उभर आई है।

इस उपन्यास को आंचलिकता प्रदान करने में प्राकृतिक परिवेश का चित्रण महत्वपूर्ण स्थान रखता है। चालीस-पचास किलोमीटर के वृत्त में फैले बाढ़ग्रस्त करइल के मैदान के चप्पे-चप्पे से लेखक परिचय कराता है। इस क्षेत्र की माटी, कृषि, अनाज, हरियाली, कीचड़, अगहनी सुंदरता, खेत-खलिहान आदि को लेखक ने बारीकी से अंकित किया है। उपजाऊ करइल के मैदान का मूर्त रूप लेखक खड़ा करता है। "यह करइल तो स्वर्ण-भूमि है, भूमियों का राजा। 'सुजलां सुफलां सश्यश्यामला वाली' अन्न ब्रह्म की साकार धरती" (पाण्डेय, 2016, पृ. 40)। अलंकार रूप में ही नहीं, यहाँ की माटी सचमुच सोना है। बिना खाद-पानी के, कम-से-कम श्रम में उत्तमोत्तम फसल उमड़ती है तो माघ-फागुन में इस रास्ते से निकलने वाले दूर-दराज के यात्री सिहर उठते हैं। बाद में, बरसात के दिनों में यह पूरा क्षेत्र समुद्र बन जाता है। सोनामाटी कीचड़ के रूप में नारकीयता प्रदान करती है। रास्ते से चलना तक दूभर हो जाता है। यातायात का साधन नौका बनती है। कृषि तो दूर, जीवन ही एक समस्या बन जाता है। परिणामस्वरूप "करइल जैसा विशाल क्षेत्र बाढ़-बरसात में सभ्य संसार से पृथक होकर ईश्वर और भाग्य के नाम पर जीता-मरता रहता है" (राय, 1993, पृ. 60)। प्राकृतिक परिवेश के परिप्रेक्ष्य में कृषि दशा, बाढ़, यातायात की असुविधा, अभाव, संघर्षमय जीवन, दुर्दम्य जिजीविषा, पृथक जीवन शैली आदि का अंकन हुआ है। इसी विशाल क्षेत्र का

जीवन पूर्णतः प्रकृति पर निर्भर है। वह उसे बनाती भी है और बिगाड़ भी देती है।

'समर शेष है' उपन्यास में व्यक्त आंचलिकता

विवेकी राय का नवीनतम उपन्यास 'समर शेष है' पढ़कर फैज काफका की यह उक्ति बरबस याद आती है: ''यदि हम कोई पुस्तक पढ़ते हैं और वह हमारे मस्तिष्क पर हथौड़ियों की चोट से हमें जागृत नहीं कर देती तो हम उसे क्यों पढ़ें ?...पुस्तक तो बर्फ तोड़ने की कुल्हाड़ी की भाँति होनी चाहिए जो हमारे अन्तर्मन के हिम सागर को टुकड़े-टुकड़े कर दे।" यह मापदण्ड सभी पुस्तकों के मूल्यांकन के लिए नहीं अपनाया जा सकता। परन्तु विवेकी राय का प्रासंगिक उपन्यास इस मापदण्ड पर भी उत्कृष्ट प्रमाणित होता है। यह उपन्यास सत्तर के दशक में हुई असफल 'सम्पूर्ण क्रान्ति' की पृष्ठभूमि में लिखा गया है। विवेकी राय की गणना आधुनिक हिन्दी साहित्य के शिखर पुरुषों में होती है। हिन्दी कथा साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई है। आधा दर्जन उपन्यासों और लगभग उतने ही कहानी-संग्रहों के रचनाकार विवेकी राय का लगभग चार दशकों से हिन्दी साहित्य में अन्यतम स्थान रहा है। परम्परा की दृष्टि से डॉ. राय, प्रेमचंद युगीन उपन्यासकार हैं, परन्तु राय के पास श्रेष्ठतर बौद्धिक सम्पदा तथा युगीन सामाजिक, आर्थिक समस्याओं के विश्लेषण के लिए समझ अधिक विकसित है।

'लोकऋण' उपन्यास में व्यक्त आंचलिकता

'लोकऋण' उपन्यास विवेकी राय द्वारा लिखित तीसरा उपन्यास है जिसका प्रकाशन 1977 में हुआ। उत्तर प्रदेश के गाँव रामपुर की व्यथा-कथा और ग्रामचेतना का आंचलिक उपन्यास में गाँव के अनुभव, यात्रा के प्रति एक नया रुझान, एक नयी मानसिकता उत्पन्न करने की कोशिश कर गाँव की पढ़ी-लिखी पीढ़ी को लोकऋण और ग्रामचेतना से परिचित कराने की महत्वपूर्ण बात है। इस उपन्यास में गाँव की विकृतियों और बिगड़ते माहौल को देखकर डॉ. विवेकी राय ने गांव से निराश होकर उसे विकास की ओर ले जाने का पूरा प्रयत्न किया है। उन्होंने ग्राम-जीवन की एक विडंबना गाँव की बदली जिंदगी, पढ़ी-लिखी पीढ़ी के दायित्व और सरकारी राजनीति के दाव-पेंच, आम आदमी की परेशानियों और समृद्ध वर्ग में पनपती व्यावसायिक वृत्ति, बदलते समय के सामने उनका सामना एवं विरोध करके जागृति का पैगाम देकर ग्रामचेतना को उत्प्रेरित करने का प्रयत्न किया है।

'लोकऋण' उपन्यास में पात्रों की बहुलता है जिसमें त्रिभुवन के पूरे परिवार का वर्चस्व चित्रित है। त्रिभुवन और उनके भाई धरमू को गांधीवादी नेता के रूप में बताया गया है। उसने गांधी के समय आजादी की जंग में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। गिरीश त्रिभुवन का छोटा भाई है। वह अपने स्वार्थों के लिए ग्राम चेतना को दबोचता है और त्रिभुवन गाँव का सभापति बनकर गाँव का निर्माण नहीं होने देता। वह राजनीतिक अव्यवस्था, बेईमानी और व्यावसायिक वृत्ति, शैक्षणिक चेतना को समाप्त करने को बावरा होता है। पुस्तकों की चोरी, नाटक आयोजन, सीताराम से जुड़कर थाणा केवल्टी प्रसंग, सभापति का चुनाव आदि के माध्यम से ग्रामचेतना को टटोलने और गाँव की बनती-बिगड़ती जिन्दगी को जागृत करने का प्रयत्न 'लोकऋण' में किया गया है। पीछे ग्रामीणों की धार्मिक भावना या अज्ञान का गहरा प्रभाव लक्षित होता है।

ग्रामीण जीवन की विभिन्न मान्यताएँ

ग्रामीण जीवन में विभिन्न मान्यताएँ देखने को मिलती हैं। आज का युग तकनीक का युग है। आज ग्रामीण लोग शहरों की ओर मुड़े हैं। फिर भी आज ऐसे कई गाँव हैं जहाँ अंधविश्वास, भूत-प्रेत का मानना, जातिभेद रखना, ऐसी कई मान्यताएँ ग्रामीण जन-जीवन में देखने को हमें मिलती हैं। विवेकी राय के उपन्यासों में भी ऐसी कई मान्यताएँ हमारे सामने उभर कर आती हैं। यह मान्यताएँ निम्नांकित हैं-

अंधविश्वास

भारतीय समाज और धर्म व्यवस्था में कुछ विश्वासों, श्रद्धा और मान्यताओं को स्वीकार किया गया है। ग्रामांचलिक जन-जीवन में शकुन-अपशकुन की धारणा को मानना, देवता का शरीर में संचार होना, वर्षा होने के लिए और अच्छी फसल पाने के लिए कुछ विधि करना एवं महादेव को पानी में डुबोना, गधे के कान में तेल डालना, मनौतियाँ माँगना, भविष्य देखना, मंत्र-तंत्र, दान-पुण्य, पूजा-पाठ में विश्वास करना, पिंडदान के लिए पुत्र को अनिवार्य मानना आदि अंधविश्वासों को विवेकी राय के उपन्यास, कहानी और निबंध कृतियों में देखा जा सकता है। 'लोकऋण' (1977) में ग्रामांचलिक जीवन में स्थित किसी पीरबाबा या देवता के नाम से ताबीज बाँधने से सुख-शांति मिलती है, इस धारणा को स्पष्ट किया गया है। गांधीवादी धरमू बितनी की आसक्ति से बेचैन हो जाने पर पीर बाबा का ताबीज दाहिनी भुजा पर बाँधकर पाँच बार मंत्र जपता है और मनःशांति प्राप्त करना चाहता है परंतु कुछ असर न होने पर उसे महात्मा गांधी जी की सलाह याद आती है और वह ताबीज को अंधविश्वास मानकर फेंक देता है। संतति संबंधी ग्रामांचलों में अनेक धारणाएँ रही हैं। दंपत्ति को संतान होने पर ही उसे मुक्ति मिलती है, पुत्र वंश का दीपक है, मरणासन्न के मुँह में गंगाजल डालने के लिए पुत्र की आवश्यकता है, पुत्र के बिना पिंडदान हो नहीं सकता, मृतक के अग्निसंस्कार के लिए पुत्र की आवश्यकता है, आदि अंधविश्वासजन्य धारणाओं के कारण पुत्र प्राप्ति के लिए व्रत-उपवास किए जाते हैं, मनौतियाँ माँगी जाती हैं। प्रस्तुत उपन्यास का धरम और उसकी पत्नी बड़की संतति प्राप्त होने के लिए व्रत-उपवास करते हैं। 'सोनामाटी' (1983) में करइल क्षेत्र में सरोहि के बाजार से खाली हाथ आना अशुभ समझा जाता है। इस संबंध में रामरूप का कहना है-''सरोहि से खाली हाथ नहीं लौटना चाहिए। बाजार से बिना सौदा और जलाशय से खाली बर्तन लिए लौटना जैसे अशुभ है।" 'समरशेष है'- (1988) में ग्रामांचलिक जन-जीवन में स्थित छोटे-छोटे प्रसंगों में भविष्य देखना, ज्योतिषियों की सलाह लेना, साधू महाराज की शरण जाना आदि प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं। इस उपन्यास के असवलिया गाँव के सभापति सुखदेव सिंह का उदंड पुत्र दीपक उसी गाँव की एक विधवा मजदूरिन सगुनबो का बकरा चुराता है। इससे निराश होकर सगुनबो बीच माझा गाँव के रसगुल्ला बाबा की शरण लेती है, सिर पटक कर बकरे की चोरी की घटना वर्णित करती है। इस पर रसगुल्ला बाबा कहते हैं-''जा तेरा बकरा वह बाँ-बाँ बोलकर दे देगा। यह अक्षत उसके घर पर छिड़क देना" (राय, 2010, पृ. 113)। इसी के परिणामस्वरूप दीपक को तेज बुखार आता है, उसके सपने में बकरा उसे मार देता है और वह भयभीत होकर सगुनबो का बकरा वापस कर देता है और माफी माँगता है। ग्रामांचलिक जीवन में ऐसी अनेक अंधश्विासजन्य मान्यताएँ रही हैं जिन्हें ग्राम जीवन में अशुभ माना जाता है।

ज्योतिष-भविष्य में विश्वास

ग्रामांचलिक जन-जीवन में आमतौर से भविष्य और ज्योतिष पर विश्वास रहता है। किसी भी शुभ कार्य के लिए मुहूर्त निकालना या किसी ज्योतिषी के पास जाकर शुभ कार्य के लिए प्रस्थान आदि के लिए शुभ समय देखने की प्रवृत्ति रही है। इस प्रवृत्ति का चित्रण विवेकी राय ने विवेच्य साहित्य में किया है। 'सोनामाटी' में ग्रामांचलिक जन-जीवन में छोटे-बड़े काम के पूर्व ज्योतिष देखने की प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला है। हनुमान प्रसाद के घर से कोइली नामक स्त्री भाग जाती है जिससे हनुमान प्रसाद विवाह करना चाहते थे। उसे खोजने के लिए वह बेचैन हो जाते हैं। इस स्थिति पर बतीसा नामक नौकर छातापुर के सोखा नामक ज्योतिषी से कोइली किसके साथ भाग गई है, किस दिशा में गई है, यह देखने की सूचना करते हुए कहता है- "चलकर छातापुर के सोखा से नाम निकलवाया जाय। कौन भगाया है ? कहाँ है ? वह पैसा ठांठ लेता है, तब एक नाम देता है। लेकिन अव्वल दर्जे का नाम कढ़वा है" (पाण्डेय, पृ. 44)। उनकी धारणा है कि ज्योतिष के आधार पर ही काम की सफलता निर्भर होती है।

मनौतियाँ

इच्छित कार्य पूरा होने के हेतु, आपत्तियों से छुटकारा पाने के हेतु, फल प्राप्ति हेतु, देवी-देवता, पीर बाबा या किसी संत-महात्मा से मनौती माँगने की भावना ग्रामवासियों में रहती है। 'सोनामाटी' में हनुमान प्रसाद को चोरी के संदर्भ में जेल जाना पड़ता है, जेल के कष्टमय जीवन से छुटकारा पाने हेतु वह करहिया गाँव की कमच्छा जी देवी से मनौती माँगते हैं कि जेल से छूटने के बाद होम-हवन करेंगे। संकट मोचन के बाद मनौती का कार्य पूरा करने की प्रवृत्ति भी इसलिए रहती है कि यदि इसकी पूर्ति नहीं होगी तो गंभीर परिणामों को भोगना पड़ेगा। इसलिए हनुमान प्रसाद जेल से छूटने के बाद देवी के चबूतरे पर स्थित यज्ञशाला में पंडित की मदद से होम तथा अनुष्ठान करते हैं- "उन्हें एक रुपया थमाया और उन्होंने स्वयं घी देकर होम और संकल्पादि कार्य चटपट संपन्न कर दिया। भस्म का तिलक लगा के बाबू साहब ने देवी का दर्शन किया" (राय, 1993, पृ. 144)। 'समरशेष है' में पंडित संतोषी मास्टर को परीक्षा-नकल विरोधी भाषण देते समय उद्दंड विद्यार्थियों द्वारा पीटा जाता है। इस घटना में उनका पैर टूट जाता है, प्लास्टर किया जाता है। यह पीड़ा शीघ्र दूर होने हेतु पंडिताइन को गाँव के लोग किसी देवी-देवता से मनौती माँगने की सलाह देते हैं- "किसी अपने देवता की मनौती कर दीजिए कि तीन महीने बाद जब प्लास्टर कटे तो हड्डी जुड़ी हुई मिले और पंडिताइन ने आँचर पसारकर रसगुल्ला को गहराया था (राय, पृ.210)। संकट निवारण के बाद पंडिताइन, पंडित को लेकर मनौती पूर्ति के लिए रसगुल्ला महाराज के आश्रम में जाती हैं। इस तरह मनौतियों से संकट दूर करने में देवता की सहायता मिलती है ऐसी भावना ग्रामांचलिक जीवन में रही है, इसलिए श्रद्धा के साथ इनकी पूर्ति करना अपना कर्तव्य मानते हैं। मनौती माँगने से कार्य सफल हो जाता है यह अंधविश्वासी विचार है। आज ग्रामांचल में यह अंधविश्वासी रूप केवल अज्ञानी और अशिक्षितों में ही है, ऐसा नहीं है, शिक्षितों में भी यह विचार प्रबल हो रहा है (राय,2010, पृ. 49)। इसका अच्छा उदाहरण पंडित संतोषी का परिवार रहा है। विवेकी राय के विवेच्य साहित्य में इस अंधविश्वासी रूप का यथार्थ चित्रण मिलता है।

सामाजिक पृष्ठभूमि

सामाजिक पृष्ठभूमि के अंतर्गत ग्रामांचलिक जन-जीवन में अंधविश्वास, ज्योतिष और भविष्य

में विश्वास, मनौतियाँ, भूत-प्रेत, चुड़ैल, झाड़-फूंक, देवी-देवता के बारे में धारणा, जातिभेद आदि ग्रामीण मान्यताएँ देखने को मिलती हैं (राय, 2010, पृ. 278)।

निष्कर्ष

ग्रामांचलिक जन-जीवन में स्थित ताबीज बाँधना, संतान प्राप्ति के लिए व्रत मनौती माँगना, ज्योतिष विद्या में विश्वास करना, साइत देखना, भूत-प्रेत की छाया में विश्वास रखना, गुप्त धन संबंधी अनेक गलत मान्यताएँ प्रस्तुत करना, प्रसव के स्थल संबंधी धारणा को मन में बाँधना, ओझा पर विश्वास करना आदि का चित्रण 'बबूल', लोकऋण', 'सोनामाटी', 'मंगलभवन' में चित्रित है। भूत-प्रेत-चुड़ैल, देवी-देवताओं में ग्रामीणों का गहरा विश्वास रहता है। मृतक के क्रियाकर्म के अवसर पर बिरादरी के लोगों को शराब न पिलाने पर भूत-प्रेत की छाया तथा 'ऊपर-झापर' के प्रभाव की संभावना को मानना, भूत-पिशाच की बाधा पर विश्वास रखना, तंत्र विद्या के प्रयोग से शिव की बारात तथा पड़ोसी देश की स्थिति के दर्शन कराना, साँप तथा बिच्छू के काटने पर झाड़-फूंक का प्रयोग करना आदि संबंधी धारणाएँ विवेकी राय के उपन्यासों में देखने को मिलती हैं।

सन्दर्भ सूची

सिंह, शिवप्रसाद, (1994). *दस प्रतिनिधि कहानियां*. नई दिल्ली: किताब घर।
राजीमोल, सीआर, (2011). *विवेकी राय के उपन्यासों में आंचलिकता*. अप्रकाशित शोध प्रबंध।
जैन, नगीना. *आँचलिक और हिन्दी उपन्यास*।
पाण्डेय, लक्ष्मीकांत, (2016). *नव संचेतना और नव भावबोध*।
राय, विवेकी, (1993). *सोनामाटी*. दिल्ली: प्रभात प्रकाशन।
राय, विवेकी, (2008). *समर शेष है*. दिल्ली: प्रभात प्रकाशन।
पाण्डेय, लक्ष्मीकान्त, *नव निकष पत्रिका*, पृष्ठ सं.- 44.
राय, विवेकी,(2010). *सोनमाटी*,दिल्ली: प्रभात प्रकाशन।

भारत में महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण की समीक्षा

प्रो. राजबीर सिंह दलाल*

संदीप ढिल्लों**

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी और उनकी भूमिका का विश्लेषण किया गया है। यह जानने का प्रयास किया गया है कि आजादी के बाद से महिलाएं राजनीतिक रूप से कितनी सशक्त हो पाई हैं। भारत जो दुनिया का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश कहा जाता है, वहां पर महिलाओं की सार्थक भागीदारी सुनिश्चित किए बिना लोकतंत्र के लक्ष्य को हासिल करना असंभव है। भारतीय सविंधान महिलाओं को पुरूषों के समान राजनीतिक अधिकारों की गारंटी देता है ताकि महिलाओं को भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में भागीदारी के समान अवसर मिल सकें। लेकिन इन सब के बावजूद भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी अपेक्षा के अनुरूप नहीं बढ़ पाई है। वर्तमान 17वीं लोकसभा में मात्र 78 महिलाएं सांसद बन पाईं जो कुल सदस्यों का 14.39 प्रतिशत है। महिलाओं की यह भागीदारी अब तक गठित लोकसभाओं में से सर्वाधिक है। कार्यपालिका की बात करें तो महिलाओं को केन्द्रीय एवं राज्य कार्यपालिका के स्तर पर सार्थक भागीदारी नहीं मिल पा रही है। डब्ल्यू.ई.एफ. की ग्लोबल जेंडर गैप रिपोर्ट - 2021 के अनुसार संसद में महिलाओं की भागीदारी के मामले में भारत का रैंक विश्व में 128वां है, वहीं महिला मंत्रियों की स्थिति में विश्व में भारत का रैंक 132वां है। परन्तु समय-समय पर भारतीय महिलाएं राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री, मुख्यमन्त्री, राज्यपाल व अन्य महत्वपूर्ण प्रतिष्ठित पदों पर सुशोभित हो चुकी हैं। वर्तमान में भी महिलाएं भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को प्रभावित कर रही हैं। लेकिन उनकी गिनती उंगलियों पर की जा सकती है। प्रस्तुत शोध पत्र में भारत में महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिरण की समीक्षा के लिए विधायिका में महिलाओं के प्रतिनिधित्व का स्तर, मंत्री परिषद में महिलाओं का स्थान और राजनीतिक व्यवस्था के शीर्ष पदों पर महिलाओं की पहुंच का आंकडों सहित विश्लेषण किया गया है।

बीज शब्द : राजनीतिक व्यवस्था, राजनीतिक सशक्तिकरण, भागीदारी, सशक्त, राजनीतिक अधिकार

प्रस्तावना

लोकतन्त्र एक ऐसी शासन व्यवस्था के रूप में जाना जाता है जो जनता द्वारा जनता के लिए और जनता का शासन है जिसमें समाज के सभी वर्गों, जातियों एवं हाशिए पर पड़े प्रत्येक व्यक्ति की भागीदारी होती है। 'डा. भीमराव अम्बेडकर' ने कहा था कि लोकतन्त्र एक ऐसी जीवन पद्धति है जिसमें स्वतन्त्रता, समता और बंधुता जैसे जीवन के मूल सिद्वान्त होते हैं। इस प्रकार सच्चे लोकतन्त्र में सभी वर्गों की शासन और प्रशासन में भागीदारी निश्चित होती है। इस संदर्भ में खास तौर से महिलाओं की शासन-प्रशासन में भागीदारी की समस्या लोकतंत्र की सार्थकता पर प्रश्न चिह्न लगाती है। भारत जो दुनिया का सबसे बड़ा

*विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़, हरियाणा।

*शोद्यार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़, हरियाणा।

लोकतांत्रिक देश होने का दम भरता है, वहां पर महिलाओं की सार्थक भागीदारी सुनिश्चित किए बिना लोकतंत्र के लक्ष्य को हासिल करना असंभव है (सरोहा एवं अन्य, 2020) क्योंकि महिला और पुरूष मानव समाज के दो आधारभूत स्तम्भ हैं। समाज का अस्तित्व दोनों के सहयोग पर टिका हुआ है। महिलाओं को चाहे कमजोर कहा जाए या अबला, किंतु सही अर्थों में वह पुरूषों की शक्ति है। महिलाओं के योगदान को समय-समय पर पुरूषों की सत्ता ने दबाया है। समय, शासन और सत्ता बदलते चले गए, लेकिन महिलाओं के अस्तित्व के संघर्ष की कहानी नहीं बदली (कुमार, 2020)।

अवधारणा

महिलाओं को सशक्त करने के लिए महिला सशक्तिकरण का नारा बुलंद किया जा रहा है। महिला सशक्तिकरण की अवधारणा समाज और राष्ट्र में लैंगिक समानता और सामाजिक न्याय स्थापित करने की वकालत करती है। इसके अन्तर्गत महिलाओं से जुड़े सामाजिक, आर्थिक, कानूनी और राजनैतिक मुद्दों पर गम्भीरता से विचार-विमर्श किया जाता है (वर्मा, 2019)।

प्रोमिला कपूर के अनुसार "सशक्तिकरण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें महिलाओं को संसाधन सामग्री, बौद्धिकता जैसे ज्ञान और सूचना, विचार और वित्तीय संसाधनों और घरेलू समुदाय, समाज और राष्ट्र निर्माण प्रक्रिया में, अधिक से अधिक हिस्सा और नियन्त्रण की शक्ति प्राप्त होती है" (गौतम एवं अन्य, 2019, पृ.50)।

इस प्रकार महिला सशक्तिकरण एक बहुआयामी सामाजिक प्रक्रिया है जिसके कई आयाम हैं जैसेः- सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, स्वास्थ्य, भावानात्मक और राजनैतिक (महिला विकास एवं सशक्तिकरण, 2016)। प्रस्तुत शोध पत्र में हमारा ध्यान महिला राजनीतिक सशक्तिकरण पर रहा है। हम जानते हैं कि राजनीति सामाजिक निर्णयों का क्षेत्र है जो व्यक्ति, समूह या वर्ग सरकार में औपचारिक और आधिकारिक पदों पर रहते हैं, वह तमाम संसाधनों का वितरण करते हैं। स्वाभाविक है कि वह संसाधनों का वितरण अपने हित के अनुरूप करेगें, बाकी वर्ग या समूह इस वितरण की प्रक्रिया से बाहर ही रहेगें। इस प्रकार सत्ता से बाहर के वर्ग या समूह समाज और राष्ट्र में हाशिए पर चले जाते हैं, क्योंकि वह राजनीतिक रूप से सशक्त नहीं हो पाते (सुंडस्ट्राम एवं अन्य, 2015)।

राजनीतिक सशक्तिकरण से तात्पर्य शक्ति और सत्ता के विभिन्न तत्वों (संसाधनों, क्षमता और पदों) को हाशिए पर पड़े वर्गों या समूहों तक पहुँचाने की प्रक्रिया से है। इसके अन्तर्गत समाज या राष्ट्र में विशेष तौर से महिलाओं, अल्पसख्यकों या अन्य हाशिए पर पड़े लोगों को लोकतान्त्रिक राजनीतिक संस्थाओं के विभिन्न पदों पर और राजनीतिक कार्यकलापों तक पहुंच प्रदान करने की क्षमता निर्मित होती है (राम, 2017)। राजनीतिक सशक्तिकरण का सीधा सम्बन्ध राजनीतिक शक्ति से है जो शासन, नीति नियोजन व निर्णय निर्माण प्रक्रिया में निहित रहती है। वैध राजनैतिक सत्ता ही अन्य तमाम व्यवस्थाओं एवं सरंचनाओं को निर्देशित, संचालित व नियन्त्रित करती है। इसलिए महिलाओं को सशक्त बनाने के लिऐ महिलाओं का उचित प्रतिनिधित्व राजनीतिक व्यवस्था में होना आवश्यक है ताकि वह राजनीतिक सत्ता के द्वारा महिला सशक्तिकरण के मार्ग में बाधक तत्वों को हटा सके (बुड्रीटे, 2014)। महिलाओं का राजनीतिक सशक्तिकरण उनको मजबूत बनाने की प्रक्रिया में अहम भूमिका निभाता है। इस पत्र में हमने भारत में महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण की स्थिति का अध्ययन किया है।

महिलाओं से सम्बन्धित संवैधानिक प्रावधान

भारत के संविधान में महिलाओं के उत्थान एवं लैंगिक समानता स्थापित करने के लिए कई प्रावधानों को शामिल किया गया ताकि सदियों से उपेक्षित आधी आबादी को भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में पुरूषों के समान भागीदारी के अवसर मिल सकें। संविधान द्वारा एक ऐसा वातावरण बनाने का प्रयास किया गया है जहां पर महिलाओं का सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक रूप से सशक्तिकरण किया जा सके।

- अनुच्छेद-14 भारत में सभी व्यक्तियों को कानून के समक्ष समानता और कानून के संरक्षण की गांरटी देता है। समानता से अभिप्राय है कि महिला व पुरूष दोनों एक समान हैं।
- अनुच्छेद-15 धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान के आधार पर भेदभाव पर रोक लगाता है। स्पष्ट है कि पुरूष एवं महिलाओं को समान अधिकार दिए गए हैं।
- अनुच्छेद-15.3 के अनुसार राज्य महिलाओं और बच्चों के उत्थान के लिऐ विशेष प्रबन्ध कर सकता है।
- अनुच्छेद-16 रोजगार के मामले में सभी नागरिकों के लिए समान अवसर की बात करता है।
- अनुच्छेद-19 महिलाओं को पुरूषों के समान स्वतन्त्रता का अधिकार प्रदान करता है।
- अनुच्छेद-39 (द) समान काम के लिऐ समान वेतन की बात करता है अर्थात महिलाओं को आर्थिक न्याय देता है।
- अनुच्छेद-42 महिलाओं को प्रसूति अवकाश प्रदान करता है।
- अनुच्छेद-46 राज्य कमजोर वर्गों के लिए शिक्षा तथा आर्थिक हितों में अभिवृद्धि करेगा तथा सामाजिक अन्याय एवं सभी प्रकार के शोषणों से संरक्षण करेगा यह कहता है।
- अनुच्छेद-325-326 महिलाओं को राजनैतिक समानता और राजनैतिक गतिविधियों में शामिल होने के समान अधिकार और वोट देने के अधिकार की गारन्टी देता है।
- अनुच्छेद-243 (द) के तीन के अनुसार महिलाओं के लिए पंचायती राज संस्थाओं में 33 प्रतिशत स्थान आरक्षित होंगे (कुमार, 2019, पृ.68-70)।

उपर्युक्त प्रावधान महिलाओं को कानूनी रूप से पुरूषों के समान अवसर प्रदान करते हैं ताकि महिलाएं भी भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में अपनी पर्याप्त भागीदारी दर्ज करवा सकें।

प्रस्तुत शोध पत्र के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य भारत की राजनीतिक व्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी का विश्लेषण करना है। इस विश्लेषण के आधार पर पता लगाना कि भारत में महिलाएं राजनीतिक रूप से कितनी सशक्त हो पाई हैं।

अध्ययन पद्धति

प्रस्तुत शोध पत्र में द्वितीय आंकड़ों का प्रयोग किया गया है एवं गुणात्मक विश्लेषण के माध्यम से निष्कर्षों पर पहुंचा गया है।

किसी भी देश में महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण की समीक्षा राजनीतिक व्यवस्था के तीन चरों का विश्लेषण करके की जा सकती है -विधायिका में महिलाओं के प्रतिनिधित्व का स्तर, मन्त्रिमण्डल में महिलाओं का स्थान और राजनीतिक व्यवस्थाओं के शीर्ष पदों पर महिलाओं की पहुंच। महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण की समीक्षा के लिए हमें भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में महिलाओं की भूमिका का विश्लेषण करना होगा (निशा एवं वेंझावेथन, 2018)।

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में महिलाओं की भूमिका

महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण के लिए आवश्यक है कि उन्हें देश की नीति-निर्धारक संस्थाओं में प्रतिनिधित्व दिया जाए। संसद भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण नीति निर्धारक संस्था है। यहां पर हर वर्ग के उत्थान और प्रगति की आधारशिला रखी जाती है। इसलिए आवश्यक है कि इसमें देश के तमाम वर्गों, समूहों और खासतौर पर महिलाओं का उचित प्रतिनिधित्व हो ताकि वह अपने लिए प्रासांगिक मुद्दों को सही ढंग से सम्बोधित कर सकें और अपने हितों को नीतियों में शामिल करवा सकें। भारतीय संसद में दो सदन हैं-1. लोकसभा 2. राज्यसभा। लोकसभा जिसे जनता का सदन कहा जाता है, इसके सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष रूप से अलग-अलग निर्वाचन क्षेत्रों में से जनता द्वारा किया जाता है (लक्ष्मीकांत, 2016)।

प्रथम लोकसभा 1952 से वर्तमान 17वीं लोकसभा तक महिला प्रतिनिधित्व को तालिका 1.1 में दर्शाया गया हैः

सारणी 1.1 -1952 से 17वीं लोकसभा तक महिला प्रतिनिधित्व

लोकसभा चुनाव	कुल निर्वाचित सदस्य संख्या	महिला निर्वाचित सदस्य संख्या	महिला सदस्य प्रतिशत
1952	489	24	4.91
1957	494	27	5.47
1962	494	35	7.09
1967	520	30	5.77
1971	520	21	4.04
1977	542	19	3.51
1980	542	28	5.17
1984	542	42	7.75
1989	529	27	5.10
1991	521	37	7.10

1996	543	40	7.37
1998	543	43	7.92
1999	543	52	9.58
2004	543	45	8.29
2009	543	59	10.87
2014	543	62	11.42
2019	542	78	14.39

स्रोतः Members: Lok Sabha. (n.d.). Retrieved from Nic.in website: http://loksabhaph.nic.in/Members/lokprev.aspx

उपरोक्त तालिका के आधार पर कहा जा सकता है कि लोकसभा में महिलाओं का प्रतिनिधित्व कभी भी 14.39% से ऊपर नहीं रहा। पहली लोकसभा में महिलाओं की संख्या 24 थी जो 17वीं लोकसभा में बढ़कर 78 हो गई। महिलाओं की 17वीं लोकसभा में भागीदारी अब तक गठित लोकसभाओं में से सर्वाधिक रही है। 21वीं सदी में सम्पन्न हुए 4 लोकसभा चुनाव, लोकसभा में लगातार बढ़ती महिलाओं की संख्या की ओर संकेत कर रहे हैं परन्तु यह वृद्धि दर धीमी दिखाई पड़ रही है। औसतन चुनाव- दर चुनाव लगभग 2-3 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी देखी जा रही है। दूसरी तरफ यदि हम लोकसभा में महिला उम्मीदवारों की संख्या को देखें तो उसमें चुनाव दर चुनाव वृद्धि देखी जा रही है जैसा कि तालिका 1.2 में दर्शाया गया है।

सारणी 1.2 - विभिन्न आम चुनावों में महिला उम्मीदवारों और आम चुनावों में भाग लेने वाले निर्वाचकों का प्रतिशत

लोकसभा चुनाव	कुल उम्मीदवार	महिला उम्मीदवार	महिला उम्मीदवार प्रतिशत	कुल निर्वाचक प्रतिशत	महिला निर्वाचक प्रतिशत	पुरूष निर्वाचक प्रतिशत
1952	--------	--------	--------	……	--------	--------
1957	1518	45	2.96	…..	--------	--------
1962	1985	70	3.53	55.4	46.6	62.0
1967	2369	67	2.83	61.3	55.5	66.7
1971	2784	86	3.09	55.3	--------	--------
1977	2439	70	2.87	60.5	54.9	65.6
1980	4620	142	3.07	56.9	51.2	62.2
1984	5574	164	2.94	63.6	59.2	68.4
1989	6160	198	3.21	62.0	57.3	66.1
1991	8699	325	3.74	56.7	51.4	61.6

1999	5155	296	5.74	59.9	55.6	63.9
2004	5435	355	6.53	58.1	53.6	62.2
2009	8070	556	6.89	58.1	55.8	60.3
2014	8251	668	8.10	66.4	65.6	67.1
2019	8026	724	9.02	67.1	67.2	67.0
स्रोत्रः भारतीय चुनाव आयोग, नई दिल्ली						

2004 लोकसभा चुनाव के मुकाबले 2019 में महिला उम्मीदवारों की संख्या लगभग दुगनी हो गई है लेकिन यदि हम चुनाव लड़ने वाले कुल उम्मीदवारों में से महिला उम्मीदवारों के प्रतिशत की बात करें तो अधिक अन्तर दिखाई नहीं पड़ता। जहां 2004 में लगभग 7 प्रतिशत महिला उम्मीदवार थीं, वहीं 2019 में लगभग 9 प्रतिशत महिलाएं उम्मीदवार रहीं। भारतीय राजनीति में महिलाओं की मतदान में भागीदारी एक सकारात्मक संदेश नजर आता है। बतौर महिला मतदाता के रूप में महिलाओं की भागीदारी में चुनाव दर चुनाव अच्छी-खासी वृद्धि हो रही है। 2019 के लोकसभा चुनावों में तो महिला वोटिंग टर्नआऊट पुरूषों से अधिक रहा। महिला मतदान प्रक्रिया में तो जोरदार भागीदारी दिखा रही हैं लेकिन इसका असर लोकसभा में महिलाओं की भागीदारी पर बेहद कम दिखाई दे रहा है।

संसद के ऊपरी सदन राज्यसभा जिसके सदस्यों का चुनाव देश की तमाम राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्यों द्वारा किया जाता है, में भी महिलाओं के प्रतिनिधित्व की स्थिति निराशाजनक दिखाई पड़ती है।

सारणी 1.3 राज्यसभा में महिलाओं की भागीदारी

वर्ष	महिलाएं	प्रतिशत	वर्ष	महिलाएं	प्रतिशत
1952	15	6.9	1988	25	10.6
1954	17	7.8	1990	24	10.3
1956	20	8.6	1992	17	7.2
1958	22	9.5	1994	20	8.3
1960	24	10.2	1996	19	7.8
1962	18	7.2	1998	19	7.7
1964	21	8.9	2000	22	9
1966	23	9.8	2002	25	10.2
1968	22	9.6	2004	28	11.4
1970	14	5.8	2006	25	10.2
1972	18	7.4	2008	24	9.8
1974	18	7.5	2010	27	11

1976	24	10.1	2012	26	10.6
1978	25	10.2	2014	31	12.7
1980	29	12	2016	27	11
1982	24	10.1	2018	28	11.4
1984	24	10.3	2020	25	10.2
1986	28	11.5			

स्रोत: Retrieved from Nic.in website:
https://rajyasabha.nic.in/rsnew/publication_electronic/Journey_1952.pdf

1952 से लेकर 2020 तक कभी भी महिलाओं की भागीदारी राज्यसभा में 12.7 प्रतिशत से अधिक नहीं हुई। यह आंकड़ा महिलाओं की राज्यसभा में नाममात्र भागीदारी को दर्शाता है। वर्तमान में 27 महिलाऐं राज्यसभा की सदस्य हैं। (https://rajyasabha.nic.in/)

लोकतांत्रिक स्थापना से लेकर अब तक भारत में केवल इंदिरा गांधी और प्रतिभा देवी सिंह पाटिल क्रमश: एकमात्र महिला प्रधानमन्त्री और महिला राष्ट्रपति के पद पर रही हैं (राठौड़, 2014)। केन्द्रीय मन्त्री परिषद जो भारत में वास्तविक कार्यपालिका के रूप में कार्य करती है, इसमें महिलाओं का प्रतिनिधित्व प्रथम मंत्री परिषद से रहा है। हांलाकि उनकी इसमें भूमिका सीमित रही है। 1952 से लेकर 2019 तक मात्र 72 महिलाएं ही केन्द्रीय मंत्री परिषद में रही हैं। इनमें से अधिकतर महिलाओं को कम महत्वपूर्ण विभाग दिए गए। मात्र 23 महिलाओं को ही केन्द्रीय मंत्रीमण्डल में जगह दी गई है। 13वीं लोकसभा में ममता बनर्जी को महत्वपूर्ण विभाग (रेल मंत्रालय) दिया गया। इसी तरह 16वीं लोकसभा में सुषमा स्वराज और निर्मला सीतारमण को क्रमशः विदेश मंत्रालय और रक्षा मंत्रालय दिया गया है। इसके अलावा 16वीं लोकसभा के दौरान अल्पसमय के लिए स्मृति ईरानी मानव संसाधन मंत्री रही हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि केवल इंदिरा गांधी को छोड़कर, क्योंकि वह स्वयं प्रधानमत्री रहीं, इसलिए उनके पास महत्वपूर्ण विभाग थे, अन्य सभी महिलाओं के पास कुछ अपवादों को छोड़कर महत्वपूर्ण विभाग नहीं रहे (कंचारला, 2020)। वर्तमान केन्द्रीय मंत्री परिषद के 78 सदस्यों में से 11 महिलाएं हैं। इनमें से मात्र 2 महिलाएं निर्मला सीतारमण एवं स्मृति ईरानी केन्द्रीय मंत्रीमण्डल में हैं (https://cabsec.gov.in/)। हालाँकि वर्तमान में और भी महिलाएं मंत्रिमंडल का हिस्सा बनीं हैं और अब यह संख्या 11 है।

केन्द्र में संसद और राज्य में विधानसभा सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण नीति निर्धारक संस्था हैं। देश में 28 राज्यों की विधानसभाओं में कुल स्वीकृत सदस्य संख्या 3929 में से मात्र 329 महिलाएं हैं (तालिका 1.4 के अनुसार)।

सारणी 1.4 वर्तमान राज्य विधानसभाओं में महिलाओं की राज्यवार भागीदारी

राज्य	विधानसभा चुनावों का वर्ष	कुल सदस्य संख्या	महिलाएं	महिला प्रतिशत
आन्ध्र प्रदेश	2019	175	14	8
अरूणाचल प्रदेश	2019	60	3	5

असम	2021	126	6	5
बिहार	2020	243	26	11
छत्तीसगढ़	2018	90	13	14
गोवा	2017	40	2	5
गुजरात	2017	182	22	12
हरियाणा	2019	90	9	10
हिमाचल प्रदेश	2017	68	3	4
झारखण्ड	2019	81	10	12
कर्नाटक	2018	223	7	3
केरल	2021	140	11	8
मध्य प्रदेश	2018	230	21	9
महाराष्ट्र	2019	288	24	8
मणिपुर	2017	60	2	3
मेघालय	2018	59	3	5
मिजोरम	2018	40	0	0
नागालैण्ड	2018	59	0	0
उड़ीसा	2019	146	13	9
पंजाब	2017	117	6	5
राजस्थान	2018	200	24	12
सिक्किम	2019	32	3	9
तमिलनाडु	2021	234	12	5
तेलंगाना	2018	119	6	5
त्रिपुरा	2018	60	3	5
उत्तर प्रदेश	2017	403	42	10
उत्तराखण्ड	2017	70	4	6
पश्चिम बंगाल	2021	294	40	14
कुल	3929	329	8	

स्रोतः भारतीय चुनाव आयोग , नई दिल्ली

तालिका 1.4 के अनुसार देश के 21 राज्यों की विधानसभाओं में महिलाओं की भागीदारी 10 प्रतिशत से भी कम है। देश के दो राज्यों मिजोरम और नागालैण्ड की विधानसभाओं में एक भी महिला सदस्य नहीं है। 2011 की जनगणना के अनुसार देश का सबसे शिक्षित राज्य केरल भी अपनी विधानसभा में महिलाओं की भागीदारी को 8 प्रतिशत से ऊपर बढ़ा नहीं पाया। वर्तमान राज्य विधानसभाओं में महिलाओं की औसतन भागीदारी लगभग 8 प्रतिशत है।

राज्यों की कार्यपालिका के उच्च पदों पर महिलाओं की पहुंच का विश्लेषण करें तो हम पाते हैं कि देश में अब तक 16 महिलाएं मुख्यमंत्री पद पर आसीन हो चुकी हैं (तारिक, 2018)। वर्तमान समय में 28 राज्यों में से पश्चिम बंगाल में ममता बनर्जी एकमात्र महिला मुख्यमंत्री हैं (सिंह, 2021)। देश के 17 राज्य ऐसे हैं जहाँ पर एक भी महिला मुख्यमंत्री नहीं बन पाई हैं (https://m.jagran.com/blogs/-)। राज्य के मंत्री परिषद में महिलाओं की भागीदारी केन्द्रीय मंत्री परिषद से भी खराब दिखाई पड़ती है। (तालिका 1.5 के अनुसार)

सारणी 1.5 राज्य सरकारों के मंत्री परिषद में महिला मंत्रियों की भागीदारी

राज्य	कुल मंत्री	महिलाएं	प्रतिशत	राज्य	कुल मंत्री	महिलाएं	प्रतिशत
आन्ध्र प्रदेश	26	3	11.53	**मणिपुर**	12	1	8.33
अरूणाचल प्रदेश	12	0	0.00	**मेघालय**	12	0	0.00
असम	14	1	7.14	**मिजोरम**	12	0	0.00
बिहार	31	3	9.68	**नागालैण्ड**	12	0	0.00
छत्तीसगढ़	13	1	7.69	**उड़ीसा**	22	2	9.09
गोवा	12	1	8.33	**पंजाब**	17	2	11.76
गुजरात	23	1	4.35	**राजस्थान**	21	1	4.76
हरियाणा	12	1	8.33	**सिक्किम**	12	0	0.00
हिमाचल प्रदेश	12	1	8.33	**तमिलनाडु**	34	2	5.88
झारखण्ड	11	1	9.09	**तेलंगाना**	17	2	11.76
कर्नाटक	32	1	3.13	**त्रिपुरा**	8	1	12.50
केरल	21	3	14.29	**उत्तर प्रदेश**	53	3	5.66
मध्य प्रदेश	31	2	6.45	**उत्तराखण्ड**	12	1	8.33
महाराष्ट्र	42	3	7.14	**पश्चिम बंगाल**	44	9	20.45

स्रोत: Retrieved August 16, 2021, from google.co.in website: https://knowindia.gov.in/states- uts/ # Data collected by from various state government websites

देश के सभी राज्यों के मंत्री परिषद के कुल मंत्रियों में से महिलाओं की लगभग 8 प्रतिशत भागीदारी दिखाई देती है। देश के पांच राज्यों अरूणाचल प्रदेश, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड और सिक्किम में एक भी महिला मंत्री नहीं है। इसके अलावा देश के 12 राज्य ऐसे हैं जिनके मंत्री परिषद में मात्र एक महिला मंत्री को स्थान दिया गया है। सब से अधिक पश्चिम बंगाल के मंत्री परिषद में 9 महिलाओं की भागीदारी है।

निष्कर्ष एवं सुझाव

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर हम कह सकते हैं कि आजादी के 75 वर्ष बाद भी महिलाओं का प्रतिनिधित्व भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में बेहद कम है। आज भी महिलाओं की भूमिका राजनीतिक निर्णय निर्माण प्रक्रिया और नीति निर्धारक संस्थाओं में नाममात्र है। महिला मतदाता मतदान प्रक्रिया में पुरूषों के समान भागीदारी कर रही हैं। फिर भी नीति निर्धारक संस्थाओं में अपनी भागीदारी निश्चित नहीं कर पा रही हैं। ऐसा नहीं है कि महिलाएं भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को प्रभावित नहीं कर सकतीं। यदि हम विगत दशकों के राजनीतिक परिदृश्य को देखें तो हम पाते हैं कि भारत में महिलाएं राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री, राज्यपाल व अन्य प्रतिष्ठित और भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के शक्तिशाली पदों पर सुशोभित हो चुकी हैं। भारतीय राजनीति में महिला वर्चस्व में पहला बड़ा नाम इंदिरा गांधी का है जिन्होनें एक मात्र महिला प्रधानमंत्री के रूप में देश के लोगों पर गहरी छाप छोड़ी। इनके बाद तो महिलाओं की एक बड़ी संख्या राजनीति में सक्रिय हो गई। आज देश के पास महिला मुख्यमंत्रियों की लम्बी सूची है जिनमें भारतीय राजनीति के बड़े-बड़े नाम, जिन्होने प्रदेश और देश की राजनीति को प्रभावित किया जिनमें मायावती, जयललिता, ममता बनर्जी, शीला दीक्षित, वसुंधरा राजे, सुषमा स्वराज आदि हैं। वर्तमान में देश के प्रमुख राजनीतिक दल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, तृणमूल कांग्रेस और बसपा की कमान महिला नेत्रियों क्रमशः सोनिया गांधी, ममता बनर्जी और मायावती के पास है (सिंह, 2017)। वर्तमान में राजनीतिक परिदृश्य में सक्रिय महिलाओं की गिनती उंगलियों पर की जा सकती है। भारत की आधी आबादी भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के किसी भी स्तर पर भागीदारी का एक चौथाई पद भी प्राप्त नहीं कर पाई है। डब्ल्यू. ई. एफ. की ग्लोबल जेंडर गैप रिपोर्ट - 2021 के अनुसार संसद में महिलाओं की भागीदारी के मामले में भारत का रैंक विश्व में 128वां है, वहीं महिला मंत्रियों की स्थिति में विश्व में भारत का रैंक 132वां है। महिलाओं की यह स्थिति भारतीय लोकतंत्र की सार्थकता पर प्रश्न चिह्न लगाती है। 'सी.एस.डी.एस. और कोनराड एडेनायर स्टिफटंग' ने अपनी सर्वेक्षण रिपोर्ट में भारतीय राजनीति में महिलाओं की कम भागीदारी के कई कारण बताए हैं। इनमें से एक पितृसत्तात्मक समाज है। इस रिपोर्ट में लगभग 1/3 महिलाओं ने पितृसत्तात्मक समाज को उनकी राजनैतिक भागीदारी में बाधा के रूप में देखा है। इसके अलावा घरेलू जिम्मेदारियां, व्यक्तिगत कारण, सांस्कृतिक प्रतिबंध एवं रूढ़िवाद, सामाजिक-आर्थिक कारण और महिलाओं के प्रति राजनीतिक दलों की उदासीनता अन्य कारण हैं (https://www.drishtiias.com/hindi/)। राजनीतिक दलों की उदासीनता का पता इसी से लगाया जा सकता है कि 2019 के लोकसभा चुनावों में देश के प्रमुख राजनीतिक दल कांग्रेस और बीजेपी ने महिलाओं को क्रमशः 54 और 53 सीटें दीं, जबकि निर्दलीय महिला उम्मीदवारों की संख्या 222 थी। जो कुल महिला उम्मीवारों की लगभग 31 प्रतिशत थी (https://navbharattimes.indiatimes.com/)।

भारतीय राजनीति व्यवस्था में महिलाओं के प्रतिनिधित्व को बढ़ाने के लिए आरक्षण सबसे

महत्वपूर्ण और बड़ा कदम हो सकता है। भारत में संसद और राज्यों की विधान सभाओं में महिलाओं के लिए कम से कम 33 प्रतिशत सीटें आरक्षित करने की मांग लगातार की जा रही है। पहली बार तत्कालीन प्रधानमंत्री एच.डी. देवगौड़ा की सरकार ने महिला आरक्षण बिल 12 सितंबर 1996 को लोकसभा में पेश किया लेकिन इसको पास नहीं करवा सके। इसके बाद यह बिल लगातार 1998, 1999, 2002, 2003, 2008 और 2010 में पेश कियह गए थे। लेकिन राजनीतिक इच्छा शक्ति के अभाव के कारण यह बिल अब तक पास ना हो सका (https://www.aajtak.in/)। दूसरा महत्वपूर्ण कदम, जिसमें महिलाएं स्वयं अपने आपको एक वोट बैंक के रूप में संगठित करें और अपने प्रतिनिधित्वों को राजनीतिक शक्ति तक पहुंचाएं। अब तक के सभी विश्लेषण बताते हैं कि अभी तक महिलाओं को वोट बैंक के रूप में स्वीकार नहीं किया गया है जबकि वोट बैंक के रूप में जाति और धर्म महत्वपूर्ण पहलू बने हुए हैं। प्रत्येक राजनीतिक दल वोट बैंक के आधार पर अपने चुनाव गणित के हिसाब से उम्मीदवारों का चयन करते हैं। जाति और धर्म के आधार पर उम्मीदवार चुनाव जीतते आ रहे हैं और मंत्रीपरिषद के महत्वपूर्ण पदों को प्राप्त कर रहें हैं, जबकि चुनाव गणित के हिसाब से महिलाओं का वोट बैंक लगभग 50 प्रतिशत के करीब है। उसके बावजूद महिलाओं को वोट बैंक के हिसाब से उम्मीदवारी नहीं मिलती क्योंकि महिला होने के नाते महिलाएं ही उन्हें वोट नहीं देतीं। इसलिए महिलाओं की राजनीति के क्षेत्र में भागीदारी को बढ़ाने के लिए आवश्यक है कि महिलाओं को जागरूक किया जाए ताकि वह वोट की शक्ति को पहचानकर अपने आपको संगठित कर सकें। 'डा. भीमराव अंबेडकर' ने कहा था कि 'शिक्षित और आत्म निर्भर होकर नारी क्षमता समान तो पा सकती है, लेकिन उसे अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना पड़ेगा, क्योंकि अधिकार भीख में नहीं मिलते, छीनकर लिए जाते हैं। इस प्रकार भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को मजबूत करने के लिए और लोकतांत्रिक लक्ष्य को हासिल करने के लिए आवश्यक है कि राजनीतिक व्यवस्था के हर स्तर पर महिलाओं की भागीदारी को सार्थक बनाया जाए। 'महात्मा गांधी' ने कहा था कि 'महिलाओं की समान भागीदारी के बिना राजनीति आंशिक तौर पर पंगु हो जाएगी' (कुमार, 2020)।

संदर्भ सूची

सरोहा, पी., सागर, क., मेहज़ाबीन, एम. (2020, मई 6). *लोकतंत्र-नारी योगदान बिना अधूरा.* Retrieved from Voiceofmargin.com website: https://voiceofmargin.com/constitution-incomplete-without-women-contribution-in-hindi/ ।

कुमार, म. (2020). *महिला सशक्तिकरण दशा और दिशा*. ईस्ट अजादनगर दिल्ली: पांडुलिपि प्रकाशन.

वर्मा, स. (2019). *महिला सशक्तिकरणः विविध आयाम.* इंटरनेशनल जर्नल आफ एप्लाइड रिसर्च, 5(2), 61-71।

गौतम, अ., कुमार, प., ओझा, ज., वर्धना, अ., एवं सिंह, स. (2019). *महिला सशक्तिकरण: सतत् विकास की कुँजी*. इंटरनेशनल जर्नल आफ रिसर्च एंड एनालिटिकल रिव्यूज, 6(3), 50।

महिला विकास एवं सशक्तिकरण. (2016). चित्रकूटः मध्यप्रदेश: महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय

विश्वविद्यालय।
सुंडस्ट्राम, ए., पैक्सटन, पी., वैंग, टी., एवं लिंडबर्ग, एस. आई. (2015). वुमेन पॉलिटिकल एम्पावरमेंट : ए न्यू ग्लोबल इंडैक्स, 1900-2012. एसएसआरएन इलेक्ट्रॉनिक जर्नल. doi:10.2139/ssrn.2704785

राम, पी. (2017). भारतीय राजनीति में महिला सहभागीता एवं राजनीतिक चेतना (राजस्थान की राजनीति के संदर्भ में: एक विश्लेषण). इन्टरनेश्नल जर्नल आफ एडवांस्ड रिसर्च एंड डेवलपमेंट, 2(5), 883-886.

बुड्रीटे, डी. (2014). पॉलिटिकल एम्पावरमेंट. In A. C. Michalos (Ed.), Encyclopedia of Quality of Life and Well-Being Research (pp. 4876–4879). Dordrecht: Springer Netherlands.

कुमार, ह. (2019). भारतीय संविधान और महिलाओं के अधिकार: विवेचनात्मक अध्ययन. इंटरनेशनल जर्नल आफ हयूमैनिटीज एंड सोशल साइंस रिसर्च, 5(1), 68-70.

निशा, अ., एवं वेंझावेथन, ड. (2018). पॉलिटिकल एम्पावरमेंट एंड पार्टिसिपेशन आफ वुमेन इन इंडिया. इंटरनेशनल जर्नल आफ प्योर एंड एप्लाइड मैथमेटिक्स, 120(5), 4721-4736.

लक्ष्मीकांत, ए . (2016). भारत की राज व्यवस्था. नोएडाः मैकग्रा हिल एजुकेशन.

Members: Lok Sabha. (n.d.). Retrieved from Nic.in website: http://loksabhaph.nic.in/Members/lokprev.aspx

भारतीय चुनाव आयोग, नई दिल्ली |

राज्य सभा -एक परिचय. (n.d.). Retrieved from Nic.in website: https://rajyasabhahindi.nic.in/rshindi/council_state/council_state.asp

Retrieved from Nic.in website: https://rajyasabha.nic.in/rsnew/publication_electronic/Journey1952.pdf

राज्य सभा. (2021, 08 18) Retrieved from https://rajyasabha.nic.in/member/lom_output.aspx

राठौड़, आर. (2014, नवंबर 14). List of all Presidents & Prime Ministers of India - general awareness study material & notes. Retrieved from Exampariksha.com website: https://exampariksha.com/list-presidents-prime-ministers-india-general-awareness-study-

कंचारला, बी. (2020, अप्रैल 14). Data: Women in the union council of ministers (1952 to 2019). Retrieved from Factly.in website: https://factly.in/data-women-in-the-union-council-of-ministers-1952-to-2019/amp

Council of ministers: Council of ministers. (n.d.). Retrieved August 16, 2021, from Gov.in website: https://cabsec.gov.in/councilofministers/councilofministers/

भारतीय चुनाव आयोग, नई दिल्ली।

तारिक, म. (2018, मई 13). *यूथ की आवाज*. Retrieved from https://www.youthkiawaaz.com/2018/03/women-chief-ministers-in-india/

सिंह, ह. (2021, जुलाई 26). *जागरण जोश*. Retrieved from https://m.jagranjosh.com/general-knowledge/amp/list-of-current-chief-ministers-in-india-1492596487-1

Retrieved from Google.co.in website: https://www.google.co.in/amp/s/m.jagran.com/blogs/12tp/female-representation-on-

Retrieved August 16, 2021, from Google.co.in website: https://knowindia.gov.in/states-uts/ #Data collected by from various state government websites

सिंह, न. (2017). *भारत में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता*. आर.जे.पी.टी., 5(2), 75-84।

2021, डब्ल्यू.ई.एफ. की ग्लोबल जेंडर गैप रिपोर्ट।

भारतीय महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता - Drishti IAS. (n.d.). Retrieved from Drishtiias.com website: https://www.drishtiias.com/hindi/to-the-points/paper2/political-activeness-of-indian-women

Retrieved from Google.co.in website: https://www.google.co.in/amp/s/navbharattimes.indiatimes.com/elections/lok-sabha-elections/news/record-78-women-mps-in-new-lok-sabha/amp_articleshow/69485445.cms

Retrieved from Google.co.in website: https://www.google.co.in/amp/s/www.aajtak.in/amp/india/story/women-reservation-bill-history-sonia-gandhi-letter-pm-modi-parliament-463751-2017-09-227

कुमार, म. (2020). *महिला सशक्तिकरण दशा और दिशा*. ईस्ट अजादनगर दिल्ली: पांडूलिपि प्रकाशन।

गांधी और गांधीवादः एक विहंगम दृष्टिकोण

डॉ. अमित कुमार उपाध्याय*

सारांश

किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्व उसकी प्रवृत्ति तथा समकालीन परिवेश एवं परिस्थितियों द्वारा प्रभावित होता है। समय-समय पर भारत के मनीषियों ने अपनी-अपनी दृष्टि से युग की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर सिद्धांत और व्यवहार प्रस्तुत किया और वही हमारी सभ्यता और संस्कृति का आधार बना। गांधी और गांधीवाद के संदर्भ में भी यही बात परिलक्षित होती है। गांधी कोई व्यवस्थित दार्शनिक नहीं हैं और ना ही उनके दर्शन का कोई प्रयोग मौलिक है। किंतु उनकी विचारधारा उनके समय भी गांधीवाद के रूप में लोकप्रिय हो चुकी थी। उनके चिंतन की विशेषता इस बात में है कि वह व्यवस्थित दार्शनिक न होकर भी समग्र व्यवस्था पर अधिकतम पूर्णता के साथ विचार करते हैं, मौलिक दार्शनिक न होकर भी दर्शन की अवधारणाओं का सर्वथा मौलिक प्रयोग करते हैं। गांधी का दर्शन सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, सर्वोदय, न्यासिता, स्वदेशी, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह, श्रम, सर्वधर्म समभाव, आत्म परिवर्तन, निस्वार्थ सेवा और सहयोग पर आधारित था। गांधीवाद सिद्धांतों, मतों, नियमों, विनियमों एवं आदेशों का समूह नहीं है अपितु वह एक जीवन शैली है, वह एक नवीन दिशा की ओर इंगित करता है अथवा मानव जीवन की समस्याओं के संबंध में पुरातन दशा की पुनर्स्थापना करता है और वर्तमान समस्याओं के लिए प्राचीन साधनों को प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत आलेख में गांधी और गांधीवाद का विश्लेषण किया गया है।

बीज शब्द : गांधी, गांधीवाद, सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह

प्रस्तावना

शांत, काली आँखें, छोटा कद, दुबला शरीर, लंबोतरा चेहरा, सूप जैसा कान। पहनावे में साफ धुली धोती, गमछा (शाल), ऐनक और हाथों में लाठी। भोजन में शुद्ध शाकाहारी (भात और फल), पानी और जूस के सिवा कुछ नहीं पीते। लेटते हैं जमीन पर, सोते हैं कम, काम करते हैं लगातार। शरीर की तो जैसे खोज-खबर ही नहीं रखते। उन्हें (गांधी) देखने पर सबसे पहली चीज जो नजर आती है वह है कुदरत के नियमों के अनुकूल सम्यक जीवन शैली, स्वच्छता और सदाचार।

गांधी जी के अनुसार श्रम के बगैर संपदा, आत्मा के बगैर आनंद, मानवता के बगैर ज्ञान, सिद्धांतों के बगैर राजनीति, नैतिकता के बगैर व्यापार और त्याग-बलिदान के बगैर पूजा-अर्चना यह सात सबसे जघन्य पाप हैं। भारत एक आध्यात्मिक देश होने के कारण उसका उत्थान आध्यात्मिकता के द्वारा ही संभव है। इसी बात को आधार बनाकर गांधी जी ने भारतीय राजनीति को आध्यात्मिक नींव पर खड़ा करने का प्रयोग किया। गांधी जी ने विवेकपूर्ण और सुनियोजित तरीके से तत्कालीन परिस्थितियों को अहिंसक सविनय अवज्ञा आन्दोलन और अनशन के जरिए चुनौती दी और इन्ही माध्यमों से वह भारत में वह परिवर्तन लेकर आए जिनकी देश को सख्त जरूरत थी। गांधी जी की विचारधारा विशुद्ध भारतीय होने के

*सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर।

कारण भारतीय समाज और वर्तमान परिस्थितियों को समझने के लिए एक प्रकाश स्तंभ का कार्य करती है। अतः वर्तमान भारतीय समाज की समस्याओं की निष्पक्ष समझ के लिए गाँधी दर्शन का अध्ययन अपरिहार्य है। समकालिक नैतिक दार्शनिकों के अग्रणी प्रतिनिधि के रूप में आज सारा विश्व गाँधी जी की श्रेष्ठता को नतमस्तक होकर स्वीकार करता है। श्रेष्ठ आचरण के नाते ही आज गाँधी जी को विश्व में महात्मा के नाम से जाना जाता है। गाँधी जी युग पुरूष हैं, युगदृष्टा हैं, युग प्रवर्तक हैं। वह महात्मा, संत और तपस्वी हैं। वह ज्ञानी, भक्त और कर्मयोगी हैं। वह नीतिज्ञ, धर्मविद् और मनीषी हैं। वह विनम्र योद्धा और शिष्ट विद्रोही हैं। वह राजनीति के मर्मज्ञ और दूरदर्शी राष्ट्रनायक हैं। वह जितना अधिक आदर्शवादी हैं, उससे कहीं अधिक यथार्थवादी हैं। वह युगीन अर्थशास्त्र के प्रणेता, सर्वोदयी, समाज-दर्शन के महानायक हैं, और भी न जाने कितने पहलू हैं, गाँधी जी के व्यक्तित्व के। फिर भी इन सबसे बढ़कर वह महामानव हैं, जो विपथ समाज के सम्मुख शुभ संदेश और दिव्य प्रकाश स्तंभ के रूप में सदैव जगमगाते रहेंगे (कान्तगड़े, 1971)। गांधी जी के व्यक्तित्व के इसी पक्ष को सार रूप में प्रस्तुत करते हुए मानचेस्टर गार्जियन ने 31 जनवरी 1948 को कहा था, "सबसे बढ़कर, वह ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने धर्म के अर्थ और उनके मूल्य के विषय में हमारी धारणा को पुनर्जीवित किया और स्फूर्ति प्रदान की। यद्यपि वह एक ऐसी सर्व समावेशी प्रजा अथवा भावात्मक सम्पत्ति के धनी नहीं थे कि किसी नए दर्शन या नए धर्म को जन्म दे पाते, लेकिन उनकी नैतिक प्रवृत्ति की शक्ति और शुद्धता स्पष्ट रूप से उनकी गहरी धार्मिक भावनाओं से उत्पन्न हुई थी" (मानचेस्टर गार्जियन, 1948)।

गांधी और गांधीवाद

19वीं शताब्दी के सातवें दशक में भारत के इतिहास में गाँधीजी का अभ्युदय एक ऐसी घटना है जिसके बिना भारत की अस्मिता की पहचान संभव नहीं है। आधुनिक भारत की संरचना में यदि गाँधीजी की भूमिका न होती तो आज का भारत कैसा होता, इसकी कल्पना करना भी मुश्किल है। गाँधी जी ने न केवल हिन्दुस्तान वरन विश्व में अपनी कर्मठता एवं आचरण से एक ऐसा आदर्श प्रस्तुत किया जिसकी मशाल युगों-युगों तक जलती रहेंगी। उन्होंने सैद्धान्तिक पहलुओं को जीवन निर्माण में शामिल करते हुए उसका व्यावहारिक पक्ष प्रस्तुत किया। गांधीजी न केवल भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के अपितु नैतिक निर्माण के भी नायक थे (पाठक, 2010)। उन्होंने किसी नवीन सिद्धान्त या वाद का प्रतिपादन नहीं किया अपितु अपने समय में प्रचलित सिद्धांतों का युगानुरूप आचमन करके सम्पूर्ण विश्व में सत्य, अहिंसा व सर्वोदय का जो पाठ पढ़ाया वह अप्रतिम है। वह स्वयं कहते हैं कि "मैं यह नहीं कहता कि मैंने कोई नया सिद्धान्त निकाला है। मैंने तो अपने ढंग से शाश्वत सत्य को दैनिक जीवन और समस्याओं पर लागू करने का सरल प्रयास किया है। खैर, मेरा सारा दर्शन, यदि इसे इस झूठे नाम से पुकारा जा सके, तो वह मेरे कथन में निहित है। आप इसे गाँधीवाद नहीं कहेंगे, क्योंकि इसमें कोई वाद नहीं है। इसके प्रसार के लिए किसी विकसित साहित्य और प्रचार की आवश्यकता भी नहीं है (हरिजन, 1936)।

इस प्रकार गांधीजी का पूरा जीवन व्यक्तित्व एवं कृतित्व ही उनके अपने वाद हैं। अपने सम्पूर्ण जीवन में उन्होंने मानव से महामानव तक का जो सफर तय किया, जिन सिद्धांतों एवं मान्यताओं का वह आजीवन पालन करते रहे, वह ही जीवन आदर्श अथवा वाद को गांधीवाद के नाम से अभिहित किया जा सकता है। विभिन्न बिन्दुओं पर उनका व्यवहार कैसा था ? इसकी व्याख्या गांधीवाद कही जा सकती है।

20वीं शताब्दी से अंतरराष्ट्रीय व्यवस्थाओं में सुधारों की बात चल रही है एवं कई संगठन भी

इस दिशा में कार्यरत हैं किंतु कोई भी उपाय वैश्विक स्तर पर चिरस्थाई शांति स्थापित करने में सफल नहीं हो पाया है। परिणामस्वरूप इस वर्तमान शताब्दी में जिसमें समस्याएँ और जटिल हो गई हैं तथा मानव समुदाय के समक्ष नित्य नई चुनौतियां उभर रही हैं, गांधीवाद की प्रासंगिकता दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। गांधीवाद का केंद्र मूल्य अहिंसा है जिसका एकमात्र उद्देश्य विश्व में शांति की स्थापना करना है। मानव समाज की आधारभूत समस्याओं के लिए गांधीजी आधारभूत समाधान प्रस्तुत करते हैं। गांधीवाद, मानवीय समस्याओं का हल करने के क्रम में एक शाश्वत सत्य है। कुछ लोग इस बात का भी तर्क देते हैं कि आधुनिक समस्याओं को आधुनिक उपायों से भी हल किया जा सकता है, फिर गांधीवादी तरीके में अलग क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि इन समस्याओं का आधुनिक हल भले ही मानव केंद्रित हो किन्तु यह समस्त उपाय मनुष्यों के बाहरी नियंत्रण पर केंद्रित हैं जबकि गांधीवादी उपाय मनुष्य के आंतरिक परिवर्तन पर केंद्रित है। इसीलिए गांधीवादी तरीके से समस्या का दीर्घकालिक तथा स्थाई उपाय खोजा जा सकता है। गांधीवाद का सार तत्त्व ही है मानवीय आचरण तथा प्रकृति के सभी आयामों के बारे में गहरी समझ (दामोदरन, 2011)। उचित नैतिक विकास का अभाव मनुष्य में कई कमियों को जन्म दे सकता है, लेकिन साथ-ही-साथ यह भविष्य में सुधार की संभावनाओं को भी प्रबल बना देता है। यदि मनुष्य अच्छे से बुरे की ओर फिसल सकता है तो उसके बुरे से अच्छी दिशा की ओर बढ़ने की संभावना भी उतनी ही सशक्त हो जाती है। मनुष्यों के नैतिक सुधार की संभावना ही गांधीजी का मुख्य विश्वास है। उनके लिए सामाजिक पुनर्रचना का प्रारंभिक बिंदु ही सदैव व्यक्ति रहा है। गांधीवादी व्यवहार तथा दर्शन में विश्व की समस्याओं का समाधान निहित है (राधाकृष्ण, 2001)। आवश्यकता सिर्फ इस बात की है कि गांधी जी द्वारा सुझाए गए मूल्यों तथा मार्गों का सत्यनिष्ठा से अनुसरण किया जाए।

काफी सरल और स्पष्ट शब्दों में, गांधीवाद में विचार शामिल हैं, जो महात्मा गांधी ने दुनिया के सामने रखा था। इसके साथ ही, अधिकतम संभव सीमा तक, महात्मा गांधी ने इन विचारों के अनुसार अपने व्यक्तिगत जीवन का निर्वाह किया। स्पष्ट रूप से, गांधीवाद गांधी की अवधारणाओं और परम्पराओं का मिश्रण है। गांधीवाद का मूल जमीनी जहाज अहिंसा है। अहिंसा सबसे प्राचीन शाश्वत मूल्य है। यह अहिंसा भारत की प्राचीनतम सभ्यता और संस्कृति का आधार है। जैसा कि हम जानते हैं, अहिंसा और सत्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। गांधीवाद को जानने के बाद, अहिंसा की अवधारणा को स्पष्ट रूप से जानना हमारे लिए अनिवार्य है क्योंकि यह गांधीवाद के लिए आधार है (दैनिक भास्कर, 2019)। राजनीतिक दुनिया के परिदृश्य में गांधी का महत्व दो गुना है। पहला, उन्होंने अहिंसा को एक शक्तिशाली राजनीतिक उपकरण के रूप में और दूसरा एक उच्च आध्यात्मिक लक्ष्य, विश्व शांति में परिणति के रूप में प्राप्त किया। गांधी के लिए, साधन अंत के रूप में महत्वपूर्ण थे और केवल एक साधन हो सकता है- अहिंसा का।

महात्मा गांधी ने यंग इंडिया में स्पष्ट किया; "किसी को चोट पहुंचाना, किसी के प्रति कुछ बुराई सोचना या क्रोध या स्वार्थ के तहत किसी का जीवन छीनना हिंसा है। इसके विपरीत, शुद्ध अहिंसा में एक प्रवृत्ति शामिल होती है, जो बिना स्वार्थ के हर एक के साथ आध्यात्मिक या शारीरिक लाभ की ओर रहती है और शांत और स्पष्ट विचार-विमर्श के बाद शुद्ध विचार के साथ हिंसा या अहिंसा का अंतिम संकेत कार्रवाई के पीछे की भावना है" (यंग इंडिया, 1931)। उनके उपयोग के कई उदाहरण हैं जैसे प्रतिरोध, अहिंसक प्रतिरोध और नागरिक क्रांति। महात्मा गांधी को अपने पूरे जीवन में संघर्ष करना पड़ा, लेकिन उन्होंने कभी निराश नहीं किया, उन्होंने अहिंसा में अपना सहज विश्वास और सत्याग्रह के तरीकों में अपने विश्वास को जारी रखा। सत्याग्रह का महत्व जल्द ही दुनिया भर में स्वीकार किया गया था। मार्टिन लूथर

किंग ने 1950 में अमेरिकी अधिकारियों के नस्लीय भेदभाव के खिलाफ अपनी लड़ाई में सत्याग्रह के तरीके को अपनाया। इस आधार पर गांधीवाद आज भी बहुत प्रासंगिक है। यह महत्वपूर्ण है। हमें इसका विश्लेषण करते हुए गांधीवाद के महत्व को समझना चाहिए।

गांधी ने युद्ध से थके और विनाश से त्रस्त लोगों को बताया कि सत्य और अहिंसा का पालन अकेले व्यक्तियों के लिए नहीं है, बल्कि वैश्विक मामलों में भी लागू किया जा सकता है। देश के लिए गांधी का दृष्टिकोण और एक पूरे समुदाय के लिए उनके सपने भारत के लिए अभी भी अच्छे हैं। उन्होंने समुदाय को मानवता के सच्चे मूल्यों को ग्रहण करने और प्रतिबिंबित करने और उन कार्यों में भाग लेने के लिए प्रेरित किया। यह मुद्दे अभी भी प्रासंगिक हैं। चिंता का मुख्य कारण आज असहिष्णुता और अहिंसा के प्रति घृणा है और यहां गांधी के मूल्यों को अधिक जुनून के साथ पालन करने की आवश्यकता है (यंग इंडिया, 1992)। गांधी जी सदैव से अपने जीवन का लक्ष्य सत्य, अहिंसा, सर्वोदय, न्यासिता और सत्याग्रह को मानते थे तथा वह इसी को सभी से अपने जीवन में मानने को भी कहा करते थे जिससे सभी देशवासियों में सदैव भाईचारा रहे, कोई किसी के भी प्रति हिंसक रूप में न खड़ा हो। गांधी के यह नियम सभी को प्रेरित करने वाले हैं जिसके लिए वह सदैव अपना जीवन त्याग देना चाहते थे (गांधी, एन.डी., पृ. 7)।

गांधीजी ने सत्य का प्रयोग व्यापक अर्थों में किया है। सत्य का प्रयोग कभी वह सत्य वाणी के लिए, कभी ज्ञान मीमांसीय अर्थ में परम सत्य के लिए, कभी नैतिक नियम के लिए, कभी नैतिक अधिकारों और न्याय के अर्थ में तो कभी अन्तरात्मा की आवाज के लिए करते थे। उनका मानना था कि सत्य के बिना किसी चीज की हस्ती ही नहीं है। 31 दिसम्बर 1931में उनका सत्य सम्बन्धी विचार दृष्टव्य है - "ईश्वर सत्य है और सत्य ही ईश्वर है।" गांधीजी कहते हैं "मैं उनसे, जो कहते हैं कि ईश्वर ही प्रेम है, कहूँगा कि प्रेम ही ईश्वर है। परन्तु जब मैं स्वयं में गहराई में उतरता हूँ तो कहा करता हूँ कि ईश्वर, ईश्वर हो सकता है, पर वह सर्वोपरि सत्य है" (हरिजन, 1931)।

अपने जीवन में सत्यान्वेषण करते समय गांधीजी सावधान एवं सचेष्ट होकर निरीक्षण, साक्ष्य ग्रहण और तर्क का निष्पक्ष प्रयोग करते रहे। उनका मानना था कि "स्वभाव से ही सत्य स्वयं प्रकाशमान है और जैसे ही अविद्यारूपी आवरण हट जाएगा वैसे ही सत्यरूपी सूर्य पुनः प्रकाशित हो उठेगा (यंग इंडिया, 1936)। सत्य के प्रति आग्रह करते हुए महात्मा गांधी मानते थे कि हमारी सभी क्रियाएं मन, वाणी और कर्म से सत्य के चारों तरफ केन्द्रित रहनी चाहिए। अपनी ऑटोबायोग्राफी में महात्माजी ने लिखा है कि "यह शाब्दिक सत्यता से सम्बन्धित नहीं है बल्कि विचारों की भी सत्यता से सम्बन्धित है, यह केवल हमारी अवधारणाओं का सापेक्षित सत्य ही नहीं अपितु निरपेक्ष सत्य, सनातन सिद्धांत है, जो कि ईश्वर है (गांधी, एन.डी., पृ. 6)।

सत्याग्रह (सत्य के प्रति आग्रह) अहिंसा के द्वारा असत्य पर आधारित बुराई का विरोध करना है। वह मानते थे कि सत्याग्रही को आग्रह मुक्त होकर अपनी न्यायपूर्ण मांगों के विषय में संकल्पबद्ध होना चाहिए। सत्याग्रह का उद्देश्य सत्य और प्रेम के द्वारा अन्यायी के हृदय का संस्पर्श कर स्वयं उसको ही अन्याय के विरोध में खड़ा करना है। सत्याग्रह के दो मूल आधार हैं- अहिंसा और सत्य। सत्याग्रही का लक्ष्य होता है आत्म शक्ति एवं सत्य शक्ति का विकास। खुद को कष्ट देकर विरोधी अथवा बुरे व्यक्ति को कष्ट पहुंचाए बिना उसके दिल को जीतना, साथ ही क्रोध को प्रेम से, असत्य को सत्य से, हिंसा को अहिंसा से पराजित करना। गांधीजी की दृष्टि में सत्याग्रही वही व्यक्ति हो सकता है जो सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, स्वाद-निग्रह, निर्भय, अस्तेय और असंचय के गुण रखता है (धर, 2011)। श्रीमती सोफिया वाडिया के

शब्दों को डॉ. राधाकृष्णन ने इस प्रकार सम्पादित किया है- प्रत्येक सच्चे सत्याग्रही के आचरण का सिद्धांत जो उसका केन्द्रीय गुण माना जा सकता है, साहस है। वह साहस केवल निजी निम्नतर स्वभाव की बातों का सामना करने के लिए ही काम में नहीं आता, वरन उस मोह का विरोध करने में, जिसे लोग विलास के स्थान पर प्रेम समझ लेते हैं, और उस लालच का विरोध करने में जिसे मनुष्य जीवन पूर्ति के लिए आवश्यक समझ लेते हैं, भी काम आता है, यह वहां भी काम आता है जहां वह योग्यतम व्यक्ति अन्यों की अपेक्षा जीवित रहने में सफल सिद्ध होते हैं, जो हिंसा के बल का उपयोग करते हैं, भले ही वह अपने विरोधियों के प्रति गुप्त रूप से इस बल का प्रयोग करते हों। उनमें प्रत्येक बार आत्मा के इस साहस की आवश्यकता अनुभव होती है जिसका विकास अपनी आत्मा को ब्रह्माण्ड की आत्मा के साथ मिला लेने से होता रहता है (वाडिया, 1939)। वास्तव में गांधीजी को सत्याग्रह की प्रेरणा हेनरी डेविड थोरो के निबन्ध "सिविल डिसओविडिएंस" से मिली। सत्याग्रह की अभूतपूर्व सफलता गांधीजी के स्वाधीनता आंदोलनों में देखी जा सकती है। उन्होने असहयोग, सविनय अवज्ञा और व्यक्तिगत सत्याग्रह नामक हथियार का प्रयोग कर, राष्ट्रव्यापी राजनीतिक संघर्ष में अंग्रेजों को लोहा मनवा दिया।

गांधीजी के आर्थिक सिद्वांतो में उनका ट्रस्टीशिप का सिद्वांत सर्वोपरि है। गांधी जी ने दक्षिण अफ्रीका में 1930 में ट्रस्टीशिप के सिद्वांत का प्रतिपादन किया था। गांधीजी ने इसकी अवधारणा गीता और रनेल की पुस्तक प्रिंसिपल ऑफ इक्वलिटी से लिया था। गांधी जी न्यासिता के लिए स्वयं विरोध में खड़े रहते थे। वह न्यासी के रूप में काम करने के लिए व्यक्तियों और समुदाय को एकत्रित करते थे। गांधी जी कहते थे कि मैं अपने न्यासिता के सिद्धान्त पर दृढ़ हूँ, भले ही लोग मेरी खिल्ली उड़ाएं। यह सही है कि इसे प्राप्त करना कठिन है (हरिजन, 1945)। अहिंसा की प्राप्ति भी उसी प्रकार कठिन है पर 1920 में हमने फैसला किया कि हम इस कठिन चढ़ाई पर चढ़ेंगे। आज हमें अपनी मेहनत सफल होती दिखाई दे रही है। न्यासिता में उन्होंने ऊँच-नीच का समतलीकरण, अहिंसक तरीका, सामुदायिक कल्याण, व्यवहार में कामचलाऊ में नहीं, धन-सम्पत्ति का अर्जन, विकल्प, जमींदार, किसान आदि पर विचारों को प्रकट कर सभी में न्यासिता को स्पष्ट किया है (कुमार, 2006)।

गांधी जी ने मनुष्य के पारस्परिक संबंधो का आधार धन नहीं वरन प्रेम को बनाना चाहा। उन्होंने अपनी यह मान्यता प्रकट की कि मालिक अपने नौकर से जितना कार्य प्रेमपूर्वक और उदार व्यवहार द्वारा ले सकता है उतना आर्थिक प्रलोभन अथना दबाव से नहीं ले सकता। अतः हमारा उद्देश्य एक ऐसी न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था की स्थापना होना चाहिए जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वार्थ के विषय में ही न सोचे वरन् दूसरों के प्रति अपने कर्तव्य के विषय में भी सोचे। गांधी जी ने बताया कि जब इस प्रकार के न्यायपूर्ण विचार उत्तरोत्तर बलवान हो जाएँगें तो सम्पूर्ण समाज सुखी और समृद्ध हो जाएगा (हरिजन, 1935)।

सर्वोदय शब्द गांधीजी द्वारा प्रतिपादित एक ऐसा विचार है जिसमें सर्वभूत हितेशताः की भारतीय कल्पना, सुकरात की सत्य-भावना और स्किन की अंत्योदय की अवधारणा सब कुछ सम्मिलित है। प्रकृति के आधार पर सर्वोदय एक सामासिक शब्द है जो सर्व और उदय के योग से बना है। सर्वोदय का दो मुख्य अर्थ लिया जा सकता है- सब का उदय तथा सब प्रकार से उदय। दरअसल सर्वोदय का सिद्धांत गांधीजी ने वेंथम, मिल के उपयोगितावाद के विरोध में प्रतिस्थापित किया । सर्वोदय एक ऐसे वर्गविहीन,जातिविहीन और शोषणमुक्त समाज की स्थापना करना चाहता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति और समूह को अपने सर्वांगीण विकास का साधन और अवसर मिले।

गांधीजी तत्वशास्त्रीय अर्थ में प्रत्ययवाद को स्वीकार करते थे इसलिए नैतिक मूल्यों की

सर्वोच्चता तथा सर्वोदय में उनका विश्वास था। सर्वोदय दर्शन का आधार सत्ता की एकता का सिद्धांत है। इसका निष्कर्ष है कि मानव प्राणियों तथा पशुओं के प्रति निर्दयता के विरुद्ध निरन्तर संघर्ष चलाया जाय। इस सिद्धांत का मूल यजुर्वेद के इस मंत्र में है: ईशावास्यमिदं सर्वं- सम्पूर्ण विश्व में ईश्वर व्याप्त है (ईषावास्योपनिषद्)। गांधीजी का कथन है कि मंत्र में समाजवाद और यहाँ तक कि साम्यवाद भी निहित है। प्रत्ययवादी दर्शन अनिवार्यतः शाश्वत सत्य तथा न्याय के मूल्यों का उपदेश देता है। वह सिखाता है कि सार्वभौम प्रेम जीवन का एकमात्र नियम है। वह किसी एक वर्ग अथवा राष्ट्र के कल्याण से सन्तुष्ट नहीं हो जाता, बल्कि वह सभी प्राणियों की मुक्ति तथा कल्याण का समर्थन करता है।

इस प्रकार गांधीजी ने सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह द्वारा परतंत्र देश को आजाद कराने के साथ-साथ न्यासिता तथा सर्वोदय द्वारा एक वर्ग विहीन तथा स्वस्थ समाज की स्थापना का अप्रतिम योगदान दिया। उनके द्वारा दिया गया यह अमोघ अस्त्र युगों-युगों तक भारतीय संस्कृति को उदातत्ता प्रदान करेगा।

निष्कर्ष

महात्मा गांधी के उपरोक्त विचारों से यह स्पष्ट होता है कि वह एक महान राजनीतिक, संगठनकर्ता, लोकनेता और नैतिक सुधारक थे। उनकी महानता इस बात में है कि उन्होंने पुराने सिद्धांत के आधार पर नई समस्याओं को सुलझाने का भागीरथ प्रयत्न किया। भौतिकता सदैव नवीनता में ही नहीं होती, यदि पुरानी बातों को नवीन ढंग से कहा जाए तो वह मौलिक है। अतः गांधी जी और उनके विचारों की उपयोगिता एक देशीय है और एक कालिक ना होकर सर्वदेशीय है और सर्वकालीन है। गांधी जी ने सत्य, अहिंसा और शांति से अगरेजों को हिला कर रख दिया और उन्हे भारत छोड़ने पर मजबूर कर दिया, इसका कोई दूसरा उदाहरण विश्व इतिहास में देखने को नहीं मिलता है। इसी कारण संयुक्त राष्ट्र संघ ने 2007 में 2 अक्टूबर गांधी जयन्ती को विश्व अहिंसा दिवस के रूप में मनाने की घोषणा की। अतः हम कह सकते हैं कि गांधीवाद एक भावना है, कोई अंधविश्वास नहीं; यह एक मनोवृति है, कोई मतमतांतर नहीं, यह सोचने तथा जीने की प्रक्रिया है, ना कि कसकर बंधा हुआ संगठन। गांधी जी स्वयं गांधीवाद के त्रुटिपूर्ण अनुयायी हैं, चिरंतन रूप में धर्म के श्रद्धालु पुजारी हैं और फिर भी वह ईश्वर, प्रेम तथा प्रेम की निरंतर मृगतृष्णा जैसे आदर्श हैं। अतः गांधीवाद कोई सूत्र नहीं है, यह गांधी का उनके विशिष्ट उपायों द्वारा मानव में जाति तथा भारत की उसकी सेवा में ब्रह्म प्राप्ति के लिए दिशा-निर्देश प्रदान करने वाला ईश्वर के प्रति जीवन भर का लगाव है।

संदर्भ सूची

कातगड़े, पुण्डलीक. जी. (1971). *गांधी दर्शन अर्थात् गांधी आध्यात्म जीवन योग*, दिल्ली: नव जीवन संघ, पृ. 64।

मानचेस्टर गार्जियन, 31 जनवरी 1948।

पाठक, कृष्णा कांत (2010). *गांधीवाद और मार्क्सवाद,* जयपुर : राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, पृ. 4।

हरिजन, 18 मार्च, 1936।

दामोदरन, के. (2011). *भारतीय चिन्तन परंपरा*, नई दिल्ली: पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि., पृ.

437।
राधाकृष्ण, एन. (2001). *महात्मा गांधी और सामाजिक न्याय*, नई दिल्ली: गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति , पृ. 78।
दैनिक भास्कर, नई दिल्ली, 02 अक्टूबर 2019।
यंग इंडिया, 10 सितम्बर 1931।
यंग इण्डिया, 23 मार्च 1922।
गांधी, मो. क., *सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा (प्रस्तावना)*, पृ. 7. https://www.mkgandhi.org/ebks/hindi/gandhi-autobiography-hindi.pdf से उद्धृत (एन.डी.)।
हरिजन, 31 दिसम्बर 1931।
यंग इंडिया, 27 मई 1936।
धर, अनिल (2011). *गांधी दर्शन, शांति एवं मानवाधिकार*, राजस्थान: जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय, लाडनूं, पृ. 25।
वाडिया, सोफिया (1939). द *पाथ ऑफ सत्याग्रह*, रोटलेज, पृ. 27।
हरिजन, 28 अप्रैल 1945।
कुमार, रविन्द्र (2006). *महात्मा गांधी इन द बिगिनिंग ऑफ द ट्वेंटी फर्स्ट सेंचुरी (सं.)*, ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, पृ. 10।
हरिजन, 2 नवंबर 1935।
ईषावास्योपनिषद्, मंत्र 1, पृ. 2।

ग्रामीण विकास के गांधीय प्रारूप की प्रासंगिकता: एक मूल्यांकन

देवेन्द्र प्रताप तिवारी*
आलोक कुमार पाण्डेय**

सारांश

जब हम गाँवों के बारे में विमर्श करते हैं और विशेषकर ग्राम उत्थान के विषय पर, तब हमारे समक्ष यह प्रश्न उठता है कि ग्राम उत्थान या ग्रामीण विकास कैसे हो? स्वतंत्रता के पश्चात भारत में ग्रामीण विकास हेतु जो प्रयास किए गए उसमें ज्यादातर गाँवों पर थोपे गए। इसका परिणाम यह रहा कि इन प्रयासों में से अधिकांश असफल रहे। गांधीजी की दृष्टि में ग्राम उत्थान का सीधा सम्बन्ध ग्राम स्वराज्य से है। महात्मा गांधी राष्ट्र विकास में ग्रामीण या स्थानीय विकास को अधिक महत्व देते थे। उनका मानना था कि ग्रामीण विकास के बिना देश का विकास असंभव है। वास्तव में गांधीजी का विकास मॉडल ग्रामीण विकास की गांधीवादी अवधारणा का आधार है। इस शोध पत्र में ग्रामीण विकास के सम्बन्ध में महात्मा गांधी के विचारों का विश्लेषणात्मक अध्ययन के साथ-साथ उसकी सामयिक प्रासंगिकता का परीक्षण किया गया है।

बीज शब्द : ग्रामीण विकास, सशक्तिकरण, ग्राम स्वराज्य, आत्मनिर्भरता, पंचायती राज

प्रस्तावना

भारत को स्वाधीन हुए 7 दशक हो चुके हैं। इस लम्बी अवधि में देश विकास की राह में काफी आगे निकल चुका है। महानगरों से लेकर गाँवों तक में स्थितियाँ काफी बदल चुकी हैं। कई मानकों में गाँव नगरोन्मुख हुए हैं। इन बदली परिस्थितियों में गाँव पहले से ज्यादा समृद्ध और ग्रामीण ज्यादा सशक्त हुए हैं। भारत जैसे देश में यह और भी महत्वपूर्ण है कि ग्रामीण क्षेत्रों में विकास का प्रवाह तीव्र हो। भारत की जननांकिकीय बसावट और विकास के क्षेत्रीय असंतुलन को दृष्टिगत रखते हुए गाँवों को महत्व देना आवश्यक है। गाँव, ग्राम विकास, ग्राम विकास की धारा का समग्र विचार हमें गांधीवादी दर्शन में मिलता है। महात्मा गांधी राष्ट्र विकास में ग्रामीण या स्थानीय विकास को अधिक महत्व देते थे। उनका मानना था कि ग्रामीण विकास के बिना देश का विकास असंभव है। विकासवादी विचारक एवं अर्थशास्त्री उनके इस विचार को उर्ध्वाधर विकास मॉडल कहते हैं। वास्तव में गांधीजी का विकास मॉडल ग्रामीण विकास की गांधीवादी अवधारणा का आधार है।

जब हम गाँवों के बारे में विमर्श करते हैं और विशेषकर ग्राम उत्थान के विषय पर तब हमारे समक्ष यह प्रश्न उठता है कि ग्राम उत्थान या ग्रामीण विकास कैसे हो ? स्वतंत्रता के पश्चात भारत में ग्रामीण विकास हेतु जो प्रयास किए गए उसमें ज्यादातर गाँवों पर थोपे गए। इसका परिणाम यह रहा कि इन प्रयासों में से अधिकांश असफल रहे। गांधीजी की दृष्टि में ग्राम उत्थान का सीधा सम्बन्ध ग्राम स्वराज्य से है। महात्मा गांधी की दृष्टि में सच्चा लोकतंत्र या स्वराज्य व्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता और विकास के लिए कार्य

* सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान, एस.एल.के.कालेज, सीतामढ़ी (बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय)।
* सहायक प्राध्यापक, समन्वित ग्रामीण विकास अध्ययन केंद्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

करता है। स्वराज्य से अभिप्राय लोक-सम्मति के अनुसार होने वाला शासन है।

महात्मा गांधी का दृढ़ विश्वास था कि असली भारत गाँवों में और झोपड़ियों में बसता है न कि नगरों में और महलों में। वह कहते थे कि यदि गाँव नष्ट होंगे तो भारत नष्ट हो जाएगा(प्यारेलाल, 1977)। गांधी जी का विश्वास था कि गाँव, ग्रामीण अर्थव्यवस्था, ग्रामीण उद्योग और कौशल के विकास के द्वारा ही भारत का समग्र विकास सम्भव है। ग्रामीण विकास के संदर्भ में गांधी जी आत्मनिर्भरता को ज्यादा महत्व देते थे। वह उत्कृष्ट वैज्ञानिक और आध्यात्मिक सद्गुणों के आधार पर ग्रामीण पुर्ननिर्माण चाहते थे। अपने 18 सूत्रीय रचनात्मक कार्यक्रम के माध्यम से उन्होंने 1935 में वर्धा के निकट सेवाग्राम केन्द्र में ग्रामीण पुर्ननिर्माण कार्यक्रम का सफल क्रियान्वयन किया (गांधी, 1941)।

प्रस्तुत शोध पत्र के अंतर्गत द्वितीयक आंकड़ों एवं उपलब्ध सम्बंधित साहित्य और तथ्यों के विश्लेषण पर आधारित अध्ययन किया गया है। यह स्पष्ट है कि ग्रामीण विकास की गांधीय संकल्पना एकांगी न होकर समग्रता पर आधारित है। पं. नेहरु के 'टिकल डाउन' या 'टपकन विकास मॉडल' के उलट उन्होंने 'बॉटम टू टॉप मॉडल' पर बल दिया (सिंह, 2011)। अपने विचारों और लेखों में महात्मा गांधी ने भारतीय गांवों की जिन मूलभूत समस्याओं के प्रति चिंता व्यक्त की वह कमोबेस आज भी व्याप्त है। ग्रामीण आत्मनिर्भरता, कौशल्य विकास, कुटीर उद्योग, पर्यावरण, स्वच्छता एवं स्वास्थ्य तथा श्रम की महत्ता इत्यादि ऐसे विषय हैं, जिस पर विचार करते समय हम गांधीय संकल्पना को अनदेखा नहीं कर सकते।

भारतीय गाँवों का आदर्श स्वरूप

गांधीजी के आदर्श गाँव का स्वरूप प्राचीन भारतीय गाँवों एवं ब्रिटिश शासन से पूर्व के गाँवों की तरह है, जब वह बाह्य हस्तक्षेपों से मुक्त छोटे-छोटे गणराज्यों के रूप में स्थापित थे। अंग्रेजी शासन के समय गाँवों का यह गणतंत्रात्मक स्वरुप नष्ट हो गया। ग्रामीण पुनर्निमाण की गांधीवादी योजना में शोषण से मुक्त उसी प्राचीन स्वावलम्बी गाँवों की पुर्नस्थापना का प्रयास किया गया(बोरा, 1994)।

ग्राम स्वराज के बारे में गांधी जी कहते हैं कि "ग्राम स्वराज मेरी कल्पना का ऐसा पूर्ण प्रजातंत्र होगा, जो अपनी जरूरतों के लिए अपने पड़ोसी पर भी निर्भर नहीं करेगा, और फिर भी बहुतेरी जरुरतों के लिए जिनमें दूसरों का सहयोग अनिवार्य होगा- वह परस्पर सहयोग से काम लेगा। इस तरह प्रत्येक गाँव का पहला काम यह होगा कि वह अपनी जरुरत का तमाम अनाज और कपड़े के लिए कपास खुद पैदा कर ले। उसके पास इतनी फाजिल जमीन होनी चाहिए, जिसमें पशु चर सकें और गाँव के बड़ों व बच्चों के खेलकूद के मैदान का बन्दोबस्त हो सके। कुछ जमीन पर ऐसी उपयोगी फसलें बोएगा जिसे बेचकर आर्थिक लाभ कमा सके। हर एक गाँव के पास अपनी नाटकशाला, पाठशाला और सभा भवन होगा। कुँओं एवं तालाबों पर पूर्ण नियंत्रण रखकर सिंचाई एवं पेयजल सुनिश्चित हो सकेगा" (प्यारेलाल, 1977)।

पंचायती राज

पंचायत का शाब्दिक अर्थ गाँव के लोगों द्वारा चुने हुए पाँच आदमियों की सभा है। यह शब्द उस पद्धति का सूचक है जिसके द्वारा भारत के असंख्य ग्रामों का शासन चलता था। चूँकि गाँवों का शासन करने वाली यह सभा लोगों द्वारा चुनी जाती थी इसीलिए चार्ल्स मेटकाफ ने इन्हें छोटे गणराज्यों की संज्ञा दी। यदि हम रुसो के लोकप्रिय सम्प्रभुता की अवधारणा को देखें जिसमें वह कहते हैं कि चूँकि राज्य के लोगों ने स्वयं जानबूझकर सम्प्रभु को अपने ऊपर शासन का अधिकार दिया है। इसलिए वह स्वयं से शासित होते

हैं। उसी प्रकार प्राचीन भारतीय गाँव स्वयं से शासित होते थे। उनके ऊपर किसी बाह्य सत्ता का प्रभाव या हस्तक्षेप नहीं था। राजनीतिक स्वायत्तता का इससे बढ़िया उदाहरण और क्या हो सकता है ?

महात्मा गांधी पंचायती राज के प्रबल समर्थक थे। वह पंचायतों को पूर्ण रूप से स्वायत्त एवं आत्मनिर्भर देखना चाहते थे। परन्तु इन पंचायतों द्वारा लिए जाने वाले कुछ न्यायिक निर्णयों और ऊटपटांग फैसलों से वह आहत रहते थे। उनका मानना था कि यदि पंचायतें ऐसे अनियमित और नियम विरुद्ध काम करेंगी तो वह अपने ही बोझ से दबकर खत्म हो जायेंगी (व्यास, 1963)। उन्होंने इस कमी को दूर करने के लिए कुछ उपाय बताए जैसे- पंचायतों का चुनाव ढिंढोरा पीटकर बुलाई गई सार्वजनिक सभा में हो, पंचायतों को फौजदारी मुकदमें सुनने का अधिकार नहीं होना चाहिए, किसी को पंचायत के समक्ष अपनी कोई बात रखने के लिए मजबूर न किया जाय, किसी पंचायत को जुर्माना करने की सत्ता नहीं होनी चाहिए। उसके दीवानी फैसलों के पीछे एकमात्र बल उसकी नैतिक सत्ता और निष्पक्षता है(गांधी, 1941)। उनका मानना था कि आजादी नीचे से शुरु होनी चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि प्रत्येक गाँव में प्रजातंत्र या पंचायत का राज हो। उसके पास पूरी सत्ता और ताकत होगी। गाँवों को आत्मनिर्भर होना होगा, ताकि वह अपना सारा कारोबार खुद चला सकें।

महात्मा गांधी पंचायती राज को स्वायत्त तो देखना चाहते थे परन्तु वह इसे स्वच्छन्दता और निरंकुशता से दूर रखना चाहते थे। उनका कहना था कि हर एक पंचायत से यह आशा की जाय कि वह-

अपने गाँव के लड़के-लड़कियों की शिक्षा की ओर ध्यान दें;
गाँव की सफाई का ध्यान रखें;
गाँव की दवा-दारु की जरूरत पूरी करें;
गाँव के तालाबों एवं कुँओं की रक्षा और सफाई का काम देखें;
तथाकथित अस्पृश्यों की उन्नति और दैनिक आवश्यकताएँ पूरी करने का प्रयत्न करें (गांधी, 1941)।

जो पंचायत बिना किसी सही कारण के अपने चुनाव के छः महीनों के भीतर उपरोक्त शर्तों को पूरा न करे या दूसरी तरह से गाँव वालों की सद्भावना खो दे तो उसे तोड़ दिया जाय और उसकी जगह पर दूसरी पंचायत चुन ली जाय (व्यास, 1963)। पंचायतों के कर्तव्य के बारे में गांधी जी की दृष्टि बिल्कुल स्पष्ट और व्यापक थी। इसमें कृषि, अनाज उत्पादन, पशुपालन, सफाई, स्वास्थ्य एवं शिक्षा से लेकर गाँवों की सुरक्षा और न्यायप्रियता आदि महत्वपूर्ण विषयों को शामिल किया। वह कहते हैं कि गाँव के झगड़े गाँव में ही निपटने चाहिए, इससे मुकदमेबाजी में होने वाले अनावश्यक खर्चे बचेंगे और लोगों में आपसी भाई-चारा भी बना रहेगा। यदि किसी गाँव में कोई कोर्ट गया तो यह माना जाएगा कि पंचायत ने अपना काम ठीक से नहीं किया। उनका कहना था कि यदि स्वच्छता, न्यायप्रियता और समानतायुक्त गाँव होंगे तो सारा हिन्दुस्तान आपके आदर्श गाँव को देखने आएगा और उससे प्रेरणा लेगा।

शहर और गाँव

महात्मा गांधी शहरों एवं गाँवों के बारे में स्पष्ट विचार रखते थे। गाँवों की सभ्यता और शहरों की सभ्यता को एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न मानते हुए कहते हैं कि - शहरों की सभ्यता यंत्रों और औद्योगीकरण पर निर्भर करती है और गाँवों की सभ्यता हस्त उद्योगों पर निर्भर करती है (गांधी, 1941)। उनका कहना था कि इस औद्योगीकरण ने हमारे सुख को कहाँ तक बढ़ाया है यह तो हम नहीं जानते परन्तु इसके कारण विश्व युद्ध जरूर हुए। उनका स्पष्ट विचार था कि भारत के शहरों में जो धन दिखाई देता है वह इंग्लैण्ड या

अमेरिका से नहीं आता। वह देश के गरीब से गरीब लोगों के खून से आता है। विदेशी नौकरशाही और देश के रहने वाले शहरी लोग गाँव के गरीबों का शोषण करते हैं (प्रभु, 1960)। गाँव वाले अन्न पैदा करते हैं और खुद भूखों मरते हैं। उन्होंने शहरों को भारत की राज्य संस्था पर उठे हुए फोड़े-फुंसी की संज्ञा दी (व्यास, 1963)। वह कहते हैं कि अंग्रेजों ने हिन्दुस्तान को उसके शहरों द्वारा ही चूसा है। गाँवों का खून वह सीमेण्ट है, जिससे शहरों की बड़ी-बड़ी इमारते बनी हैं। महात्मा गांधी बार-बार जोर देकर कहते थे कि भारत अपने कुछ शहरों में नहीं बल्कि सात लाख गाँवों में बसता है। लेकिन शहरवासियों का ख्याल है कि भारत शहरों में ही है और गाँवों का निर्माण शहरों की जरूरतें पूरी करने के लिए ही हुआ है।

लिओनेल कार्टिस ने भारत के गाँवों के बारे में वर्णन करते हुए उन्हें 'घूरे के ढेर' की संज्ञा दी (प्रभु, 1960)। हमें लिओनेल कार्टिस की बात बुरी लग सकती है परन्तु सच्चाई यही है कि उनकी सोच गाँव की गरीबी, अशिक्षा, अस्वच्छता का परिणाम थी। कटु सत्य यह है कि ऐसा दृश्य हमें आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में दिखाई पड़ता है। महात्मा गांधी कहते थे कि हमें गाँव को उनकी संकुचित दृष्टि, उनके पूर्वाग्रहों और कुरीतियों से मुक्त करना होगा (प्रभु, 1960)। गांधी जी का अभिमत था कि ग्राम सुधार की इस प्रक्रिया में शहर एवं शहरवासी अग्रणी भूमिका निभा सकते हैं। गाँवों एवं शहरों के बीच स्वस्थ एवं नीतियुक्त सम्बन्ध स्थापित करना होगा ताकि शहरों को अपने इस कर्तव्य का ज्ञान हो जाय कि उन्हें गाँवों का अपने स्वार्थ के लिए शोषण करने के बजाय उनसे से जो शक्ति और पोषण वह प्राप्त करते हैं, उसका पर्याप्त बदला गाँवों को देना चाहिए।

हमें ग्रामीण सभ्यता विरासत में मिली है। हमारे देश की विशालता, उसकी विराट जनसंख्या, उसकी भौगोलिक स्थिति तथा उसकी जलवायु सबको देखते हुए लगता है कि ग्रामीण सभ्यता ही उसके भाग्य में लिखी है। उसके दोषों को हम सभी अच्छी तरह जानते हैं। परन्तु एक भी दोष ऐसा नहीं जिन्हें दूर न किया जा सके। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या गाँवों की जगह शहरों को स्थापित कर देना चाहिए? या, क्या इन गाँवों में व्याप्त कमियों के कारण इन्हें नष्ट कर देना चाहिए ? परन्तु ऐसे में तो देश का अस्तित्व भी मिट जाएगा। अच्छा तो यह होगा कि हम देश के तीव्र विकास की प्रक्रिया में गाँवों को शामिल करें। पूर्व राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम की पूरा (PURA) योजना का उल्लेख करना यहाँ महत्वपूर्ण होगा जिसमें गाँवों में शहरों जैसी सुविधाएँ प्रदान करने की बात कही गई है (कलाम एंड राजन, 2003)।

ग्रामीण स्वास्थ्य एवं स्वच्छता

गाँवों में व्याप्त गंदगी और लापरवाही के लिए गांधी जी 'श्रम एवं बुद्धि के बीच अलगाव' को दोषी मानते थे (प्रभु, 1960)। अर्थात गाँव के लोग परिश्रम तो बहुत करते हैं परन्तु किस प्रकार वह स्वस्थ रह सकते हैं, इस बात का ज्ञान नहीं है। यह अशिक्षा और अजागरुकता ही है कि ग्रामीण जिस कुएँ और तालाब का स्वयं उपयोग करते हैं उसी में पशुओं को नहलाते हैं तथा अन्य गन्दगी प्रवाहित करते हैं। खुले में शौच आज भी गम्भीर समस्या बनी हुई है। यदि हम किसी गरीब ग्रामीण बस्ती में से गुजरें तो नालियों की बजबजाहट, जगह-जगह, बिखरे कूड़ों की सड़ांध आदि से घृणास्पद वातावरण पैदा होता है। इसके अलावा ग्रामीण व्यक्ति स्वयं अपनी भी सफाई के प्रति संवेदनहीन होता है। गाँवों का जीवन कठिन परिश्रम और धूल, मिट्टी के साथ बीतता है। परन्तु इसे नियति मान बैठना गंवारपन की निशानी है न कि अनिवार्यता। गांधी जी का विचार था कि हमें गाँवों को उनकी इन परिस्थितियों से घृणा कर अलग-थलग नहीं छोड़ना होगा बल्कि उनके अन्दर साफ-सफाई की भावना को जगाना होगा और ऐसा तभी होगा जब हम उनके बीच

समय बितायें और उन्हें जागरुक करें। इस प्रकार गांधी जी सफाई को मानसिक स्तर से जोड़कर सुधारने पर बल देते थे (गांधी, 1941)।

स्वास्थ्य के विषय में गांधी जी नियम और संयम को ज्यादा महत्व देते थे। उनका विचार था कि मनुष्य जाति का जिन-जिन रोगों से परिचय हुआ; उसका कारण तन्दुरुस्ती के नियमों को नहीं जानना और पालन नहीं करना है। महात्मा गांधी मन और शरीर के बीच अटूट सम्बन्ध मानते थे। उनका कहना था कि यदि हमारा मन निर्विकार होगा तो हमारा शरीर स्वयं स्वस्थ होगा। अच्छे स्वास्थ्य के लिए गांधी जी ने कुछ नियम बताएँ हैं जो इस प्रकार हैं(व्यास, 1963)-

हमेशा शुद्ध विचार कीजिए और तमाम गन्दे निकम्मे विचारों को मन से निकाल दीजिए।

दिन-रात ताजी से ताजी हवा का सेवन कीजिए।

शरीर और मन के काम का संतुलन बनाए रखें, यानि दोनों को बेमेल न होने दें।

उठने, बैठने, चलने में स्वास्थ्यपरक आदतों को शामिल करें।

जीने के लिए खाइए न कि खाने के लिए जियें। उनका मानना था कि आदमी जैसा भोजन खाता है वैसा ही बन जाता है।

आप जो पानी पीयें, खाना खायें और जिस हवा में सांस लें, वह सब बिल्कुल साफ हो।

वह कहते थे कि रोग का प्राकृतिक इलाज सबसे उत्तम है और इसके लिए किसी विद्वता या ऊँची डिग्री प्राप्त करने की जरुरत नहीं पड़ती। इसके पीछे उनकी सोच का कारण ग्रामीण इलाकों में स्वास्थ्य समस्याएँ और प्राकृतिक औषधियों की मौजूदगी थी। गांधी जी के प्राकृतिक इलाज में पंचमहाभूतों- पृथ्वी, पानी, आकाश, आग, और हवा का प्रमुख स्थान है (व्यास, 1963)। इसके पीछे उनका तर्क था कि जिन तत्वों से यह मनुष्य रूपी पुतला बना है, वह ही नैसर्गिक उपचारों के साधन हैं।

ग्रामीण यातायात

महात्मा गांधी स्थानीय यातायात के लिए मोटर की अपेक्षा ग्रामीण साधनों जैसे- बैलगाड़ी, घोड़ागाड़ी आदि को महत्व देते थे (प्रभु, 1960)। इसके पीछे उनका तर्क बहुत व्यापक था। उनका कहना था कि हमें कोई कार्य करने से पहले यह देखना चाहिए कि उस पर किया गया धन क्या वापस गाँवों में आता है? यदि नहीं तो हमें इन साधनों के अपनाने पर विचार करना होगा। मोटर गाड़ी को यदि लें तो मोटर गाड़ी से लेकर उसे चलाने के लिए प्रयुक्त ईधन इत्यादि सभी चीजें बाहर से खरीदी जाती हैं, जिसके एवज में काफी धन बाहर चला जाता है जो कभी वापस नहीं लौटकर नहीं आता। इसकी तुलना में बैलगाड़ी, मोटरगाड़ी की अपेक्षा कहीं अधिक ग्रामीणों का भला कर सकती है। क्योंकि बैलगाड़ी में व्यय सारा धन गाँव में वितरित होता रहता है और इससे कई लोगों को रोजगार प्राप्त होता है। मोटर युक्त गाड़ी की आवश्यकता वहाँ समझी जा सकती है जहाँ किसी भी काम की सफलता की कसौटी, काम का जल्दी होना है। महात्मा गांधी की दृष्टि में ग्रामीण ढाँचा जहाँ पगडंडियां, खेत और उबड़-खाबड़ रास्ते मौजूद हैं, वहाँ बैलगाड़ी ज्यादा उपयुक्त होगी।

खादी और ग्रामोद्योग

गांधी जी कहा करते थे- मेरे लिए खादी भारतीय मानव की एकता, उसकी आर्थिक स्वतंत्रता

और समानता का प्रतीक है (गांधी, 1941)। उनके अनुसार खादी एक प्रकार की मनोवृत्ति है, जिसका अर्थ है जीवन के आवश्यक पदार्थों के उत्पादन और वितरण का विकेन्द्रीकरण । यह गांधीवाद की उस आधारभूत मान्यताओं में से एक है कि प्रत्येक गाँव अपनी जरुरत की तमाम चीजें स्वयं पैदा कर ले।

गांधी जी कहते थे कि चरखे का संदेश उसकी परिधि से कहीं ज्यादा व्यापक है। उसका संदेश सादगी, मानव सेवा, अहिंसामय जीवन तथा गरीब और अमीर, पूंजी और श्रम, राजा और किसान के बीच अविच्छेद सम्बन्ध स्थापित करने का संदेश है। उनका मानना था कि जब हम एक बार खादी उद्योग का जीर्णोद्धार कर लेंगे तो अन्य सभी उद्योगों का उद्धार अपने आप ही हो जाएगा। चरखे को आधार बनाकर सम्यक ग्राम जीवन की रचना करना उनका ध्येय था।

गाँवों का पुनरुद्धार गांधीवाद का आधार है और गांधी जी ग्रामीण पुनरुद्धार के लिए ग्रामोद्योग के विकास को अनिवार्य मानते थे। उनका कहना था यदि ग्रामोद्योगों का लोप हो गया तो भारत के सात लाख गाँवों का सर्वनाश हो जाएगा। उनकी दृष्टि में यदि ग्रामवासियों को काम देना है तो वह यंत्रों के द्वारा संभव नहीं है। उनके उद्धार का सच्चा मार्ग यह है कि जिन उद्योग-धंधों को वह अब तक करते आ रहे हैं, उन्हीं को भलीभाँति जीवित एवं विकसित किया जाय। ग्रामोद्योग के प्रति गांधी जी की दृष्टि बहुत ही व्यापक और व्यवहारिक आधार पर खड़ी थी। इसमें आर्थिक एवं सामाजिक दोनों तत्वों का समावेश था। वह ग्रामोद्योग को गाँवों की अर्थव्यवस्था, सामाजिक समरसता, कार्य कुशलता, स्वालम्बन, आत्मनिर्भरता, स्वास्थ्य एवं स्वतंत्रता की कसौटी पर कसते हैं।

यहाँ हम देखते हैं कि गांधी जी के ग्रामोद्योग एवं मार्क्सवाद के अलगाव के सिद्धान्त में काफी साम्यता दिखाई देती है। अलगाव के सिद्धान्त में मार्क्सवादियों ने कहा कि भारी औद्योगीकरण के कारण व्यक्ति चार चीजों से अलगाव महसूस करता है- प्रथम कुशलता से, द्वितीय प्रकृति से, तृतीय अपने उत्पादों से और चतुर्थ स्वयं से। ग्रामोद्योग की गांधीवादी संकल्पना भी कुशलता, प्रकृति, उत्पाद और स्वावलम्बन को मजबूत आधार प्रदान करती है। स्वदेशी को गांधी जी एक नैतिक सिद्धांत अन्तर्निहित भावनात्मक गुण मानते थे (बोरा,1994)।

कृषि एवं पशुपालन

ग्रामवासियों के जीवन-यापन का मुख्य आधार कृषि है। गांधी जी अंग्रेजी शासनकाल में प्रचलित खेती के प्रारुप से खिन्न थे। उनका कहना था कि जब तक सरकार के अधिकार हमारे हाथों में नहीं आते, देश की खेती का सुधार असम्भव है। परन्तु यदि हम खेती की तकनीक और कृषि के तरीके, फसलों के चयन में सावधानी बरतें तो अभी भी हमारे किसान इससे लाभान्वित होंगे। महात्मा गांधी की यह दृष्टि कृषि सुधार की तरफ थी। वह खेती, पशुपालन और ग्रामीण उद्योग में सामंजस्य स्थापित कर इसे गाँव-गाँव में विकसित करने पर बल देते थे। यहाँ यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि गांधी जी कृषि सुधार पर बल जरुर देते थे परन्तु वह इस विचार से भिन्न मत रखते थे कि किसी भी कीमत पर अधिकतम उत्पादकता प्राप्त की जाय। वह विशुद्ध देसी तरीकों से भूमि सुधार और कृषि उत्पादन बढ़ाने पर बल देते थे। आज जब अंधाधुंध कीटनाशकों एवं रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से मृदा प्रदूषण बढ़ा है तब कृषि की गांधीवादी तकनीक ज्यादा प्रासंगिक हो गयी है।

गांधी जी पशुपालन में सहकारिता को उचित बताते थे। इस प्रश्न पर कि गोपालन वैयक्तिक हो या सामूहिक ? उनका स्पष्ट मत था कि- सामुदायिक हुए बगैर गाय बच ही नहीं सकती इसलिए अन्य पालतू

पशुओं पर भी संकट होगा। सामूहिक पशुपालन के पीछे उनकी धारणा इस प्रकार थी-
जगह बचेगी। किसान को अपने घर में मवेशी नहीं रखने पड़ेंगे जिससे उनका घर गन्दगी से भी सुरक्षित रहेगा।
पशुओं की वृद्धि होने पर अनावश्यक परेशानी से बचा जा सकेगा। पशुओं की समुचित इलाज और देखभाल होगी। प्रत्येक किसान सांड या भैंसा नहीं रख सकता। सहयोग के आधार पर बहुत से पशुओं के लिए एक अच्छे नस्ल का सांड या भैंसा पाला जा सकेगा। सामूहिक पशुपालन होने से सामूहिक चारागाह की व्यवस्था हो सकेगी।
गांधी जी ने सामूहिक पशुपालन की ही भाँति सहकारी खेती का भी सुझाव दिया है (पाण्डेय,1991)।

ग्रामीण विकास की गांधीवादी अवधारणा की सामयिक प्रासंगिकता

गांधी जी ने गाँवों के विकास एवं सुधार की प्रक्रिया में प्रमुख रूप से तीन बाधाओं की पहचान की- सार्वजनिक स्वच्छता की कमी; पर्याप्त एवं पोषक आहार की कमी तथा ग्रामवासियों की जड़ता अर्थात अपनी उन्नति की ओर से उदासीनता (व्यास,1963)। महात्मा गांधी द्वारा इंगित यह कमियाँ आज भी हमें गाँवों में कमोबेश मिल ही जाती हैं।

स्वतंत्रता के बाद देश की चुनी हुई राष्ट्रीय एवं राज्य सरकारों ने ग्रामीण विकास के महत्व को समझा तथा इसके लिए प्रयत्न भी किया गया। 1952 में अमेरिका के साथ हुए समझौते के तहत एवं फोर्ड फाउंडेशन की सहायता से सामुदायिक विकास कार्यक्रम की शुरुआत की गयी (तिवारी, 2016)। बलवंत रॉय मेहता समिति के प्रतिवेदन पर 2 अक्टूबर 1959 को सर्वप्रथम राजस्थान के नागौर में त्रिस्तरीय पंचायती राज प्रणाली का उद्घाटन (मुत्तालिब एवं खान, 1982) तथा 1992-93 में 73वें संविधान संशोधन द्वारा देश में तृस्तरीय स्थानीय स्वशासन को संवैधानिकता प्रदान किया जाना (सिंह, 2011) गांधीवादी विचारों की प्रासंगिकता को बल प्रदान करते हैं।

आज विश्व के अधिकांश देश बेरोजगारी की समस्या से ग्रस्त हैं। गांधीवादी नजरिए से देखा जाय तो इस समस्या की जड़ मशीनीकरण में वृद्धि और ग्रामीण एवं स्थानीय उद्योगों के ह्रास में है। गांधीजी 'हर हाथ को काम' में विश्वास रखते थे। गांधी जी एक कुशल अर्थशास्त्री की भाँति बेरोजगारी के कारणों एवं उससे उत्पन्न होने वाली समस्याओं को समझते थे। आर्थिक मंदी के दौर में गांधीवादी अवधारणा और अधिक प्रासंगिक हो जाती है।

गांधीवाद ग्राम विकास की समग्रता में विश्वास करता है। गांधीजी पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर गाँवों की बात करते थे। आज के गाँवों की आवश्यकता भी यही है कि वहाँ ऐसी आधारभूत अवसंरचना विकसित की जाय कि अपनी आवश्यकताएँ वह खुद पूरी कर सकें।

वर्तमान एवं भविष्य के विश्व समुदाय को गांधीवाद की अनुपम देन उनकी संपोषी विकास की अवधारणा है। आज पूरा विश्व वैश्विक ऊष्मन और बढ़ते प्रदूषण से अंधकारमय स्थिति की ओर अग्रसर है। ऐसे में जीवन जीने का गांधीवादी मार्ग हमें इस भयावह संकट से बचा सकता है। गांधीजी कहा करते थे- पृथ्वी पर मौजूद प्राकृतिक चीजें हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु पर्याप्त हैं, परन्तु हमारे लालच के लिए नहीं (व्यास, 1963)। बढ़ती भौतिकवादिता के मकड़जाल में फंसकर मनुष्य वर्तमान पीढ़ी के साथ-साथ भविष्य के लिए भी संकट के बीज बो रहे हैं।

गांधीजी गांवों की खराब स्थिति के लिए श्रम और बुद्धि के बीच असामजंस्य को जिम्मेदार

ठहराते हैं। आज भी ग्रामीणों में श्रम की कमी नहीं है परन्तु उसे सही दिशा में लगाने की कमी है। आवश्यकता इस बात की है कि हमें उन्हें उनको स्वास्थ्य, शिक्षा, सफाई के प्रति जागरुक बनाने के साथ-साथ उनके अकुशल श्रम को उचित प्रशिक्षण के द्वारा कुशल श्रम में परिवर्तित करना होगा। इसके लिए दीन दयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल्य जैसी योजनाओं का सही क्रियान्वयन और प्रसार आवश्यक है।

महात्मा गांधी सहकारी कृषि और सामूहिक पशुपालन को महत्वपूर्ण मानते थे। आज कृषि उत्पादकता में कमी और कृषि जोतों का छोटा आकार भारतीय कृषि के समक्ष बड़ी चुनौतियाँ हैं। ऐसे में सहकारी कृषि का गांधीवादी विचार न केवल इस समस्या का समाधान है बल्कि सामूहिक पशुपालन से पशुधन प्रसार भी होगा।

गांधी जी के उर्ध्वाधर विकास मॉडल को उचित मानते हुए आज अधिक विकेन्द्रीकरण की नीति अपनायी जा रही है। नीति निर्माताओं ने स्वीकार किया है कि विकास की धारा में स्थानीयता को महत्व प्रदान किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय योजना निर्माण की शुरुआत स्थानीय स्तर से हो रही है। राष्ट्रीय आयोजन एवं नीति निर्माण में स्थानीय आवश्यकताओं को महत्व दिया जा रहा है।

महात्मा गांधी को राज्यविहीन समाज की वकालत करने के कारण अराजकतावादी दार्शनिक की श्रेणी में रखा जाता है। परन्तु यहाँ यह उल्लेखनीय है कि राज्यविहीन समाज में भी उन्होंने पंचायती राज का जमकर समर्थन किया। महात्मा गांधी ग्राम-पंचायतों के संगठन द्वारा आर्थिक और राजनीतिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण का जोरदार समर्थन करते थे। उनका यह निश्चित मत था कि यदि वैज्ञानिक दृष्टि से ग्राम पंचायतों का गठन किया जाय तो उससे केवल गाँवों की सामाजिक और आर्थिक शक्ति ही नहीं बढ़ेगी बल्कि वह विदेशी आक्रमण के खतरे से राष्ट्र की रक्षा करने वाली शक्तियों को भी मजबूत और बलवान बनाएगा। इस दृष्टिकोण से भारत के गाँवों में उत्साह और उमंग के साथ पंचायती राज की जो स्थापना हुई है वह गांधीजी की कल्पना के 'ग्राम स्वराज्य' का ध्येय सिद्ध करने की दिशा में उठाया गया सही कदम है।

निष्कर्ष

उपरोक्त विश्लेषण के उपरान्त हम यह कह सकते हैं कि कोई भी विचार स्थान, काल और परिस्थितियों की उपज होता है। गांधीवाद इसका अपवाद नहीं हो सकता। परन्तु किसी सिद्धान्त की प्रासंगिकता उसकी दूरदर्शिता में निहित होती है। गांधीवाद कोई बनावटी विचार मात्र नहीं है बल्कि यह यथार्थ भारतीय परिस्थितियों की उपज है और भारतीय गाँवों का यथार्थ आज भी कमोबेश वही है। आज भी भारत की 68.8 प्रतिशत जनता ग्रामीण है (सेन्सस, 2011) और उनकी निर्भरता कृषि पर आज भी अधिकाधिक है। अशिक्षा, बेरोजगारी, अस्वच्छता, खराब स्वास्थ्य परिस्थितियाँ, गरीबी, आधारभूत सुविधाओं की वंचना आज भी भारतीय गाँवों की विवशता है। ऐसे में गांधीवादी दर्शन की प्रासंगिकता पर प्रश्नचिन्ह उठाना स्वयं अप्रासंगिक है।

सन्दर्भ सूची

प्यारेलाल (1977). *महात्मा गांधी ऑन ह्यूमन सेटलमेंट*, अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन मंदिर।

सिंह, कटार (2011). *ग्रामीण विकास: सिद्धांत, नीतियाँ एवं प्रबंध (यतीन्द्र सिंह सिसोदिया, अनु.)*, जयपुर: सेज एवं रावत पब्लिकेशन।

गांधी, एम.के. (1941). *कंस्ट्रक्टिव प्रोग्राम: इट्स मीनिंग एंड प्लेस*, अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन

मंदिर, पुनर्मुद्रित 2018।

बोरा, पी.एम. (1994). *गांधीयन मॉडल ऑफ़ रूरल डेवलपमेंट*, बाम्बे: खादी ग्रामोद्योग: जर्नल ऑफ़ रूरल इकोनोमी , वॉल्यूम 40(5)।

व्यास, हरि प्रसाद (संक.) (1963). *महात्मा गांधी –ग्राम स्वराज,* अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन मंदिर।

प्रभु, आर.के. (संक.) (1960). *महात्मा गांधी –मेरे सपनो का भारत,*अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन मंदिर।

कलाम, ए.पी.जे. एवं राजन, वाई.एस.(2003). *इंडिया 2020: ए विजन फॉर न्यू मिलेनियम*, इंडिया: पेंगुइन बुक्स।

पाण्डेय, बी.पी. (1991). *गांधी एंड इकोनोमिक डेवलपमेंट*, नई दिल्ली: रेडिएन्ट पब्लिशर्स।

तिवारी, देवेन्द्र प्रताप (2016). *मनरेगा एवं ग्रामीण विकास*, नई दिल्ली: कुनाल बुक्स।

मुत्तालिब एम.ए. एवं खान, एम. ए. (1982). *थ्योरी ऑफ़ लोकल गवर्नमेंट*, नई दिल्ली: स्टर्लिंग पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड।

भारत की जनगणना (2011). नई दिल्ली: महापंजीयक एवं जनगणना आयुक्त का कार्यालय।

डॉ. चंद्रप्रकाश द्विवेदी का साहित्यिक सिनेमा : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

मनोज कुमार भट्ट (मनोज लीला भट्ट)*
डॉ. दिग्विजय सिंह राठौर**

सारांश

डॉ. चंद्रप्रकाश द्विवेदी का नाम भारत के उन बेहतरीन फ़िल्मकारों में गिना जाता है जिनकी लेखनी और निर्देशन का टेलीविज़न और सिनेमा का सम्पूर्ण कार्य भारत देश के साहित्य के ऊपर रहा है और उन्होंने अपनी इस रचनात्मक शैली के ज़रिए टेलीविज़न और सिनेमा को एक से बढ़कर एक धारावाहिक और फ़िल्में दी हैं जोकि मील का पत्थर साबित हुई। उन्होंने अपनी बौद्धिक और रचनात्मक शैली का उपयोग केवल निर्देशन में ही नहीं बल्कि लेखन में और फ़िल्म निर्माण में भी किया। किसी भी साहित्यिक कृति को उसके साहित्यिक सिनेमा के रूप में प्रस्तुत करना हमेशा ही एक मुश्किल काम होता है जिस वजह से कई बार साहित्यिक कृतियों पर बनी फ़िल्में उनके शब्दार्थ और भाव को खो देती हैं। लेकिन डॉ. चंद्रप्रकाश द्विवेदी ने अपनी रचनात्मकता से और साहित्यिक समझ से साहित्यिक कृतियों को पहले अपने लेखन से सिनेमा के लिए उसके यथार्थ के साथ रूपांतरित किया तत्पश्चात् उसे अपने साहित्यिक दृष्टिकोण के साथ साहित्यिक कृति की मूल भावना अर्थात् उसकी आत्मा के साथ फ़िल्मांकित कर दर्शकों के सामने कठिन कथावस्तु को सरलता से प्रस्तुत किया। यह शोध-पत्र इनके द्वारा निर्देशित की गई फ़िल्म मोहल्ला अस्सी जो काशीनाथ सिंह के साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत उपन्यास काशी का अस्सी पर आधारित है, में इनके साहित्यिक दृष्टिकोण और साहित्य निरूपण का विश्लेषण और समीक्षा करता है।

बीज शब्द : साहित्य, सिनेमा, साहित्यिक दृष्टिकोण, काशी का अस्सी, मोहल्ला अस्सी

प्रस्तावना

भारत को स्वाधीन हुए सात दशक हो चुके हैं। भारत इतनी सांस्कृतिक, राजनैतिक और सामाजिक विविधिताओं वाला देश है, शायद ही पूरे विश्व में कहीं और इतनी विभिन्नताओं से निर्मित देश हो। भारतीय समाज जब समृद्ध हो रहा था तब विश्व के अन्य देश शायद अपने विकास के प्रारम्भिक काल में ही थे। प्राचीनकाल में जब इंसान ने अपनी घटनाओं को दूसरों के सामने व्यक्त करना शुरू किया होगा तभी से साहित्य का जन्म हो गया था। साहित्य जिस काल में लिखा गया है उस काल का इतिहास संजोए होता है। भारत में साहित्य की शुरूआत हमारे वेदों और अन्य धार्मिक ग्रंथों से ही हो जाती है जो भारतीय समाज को ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण वैश्विक समाज को एक श्रेष्ठ जीवन जीने की आदर्श शैली सिखाते हैं। इसी साहित्य के ज़रिए मनुष्य जाति आदिकाल से अपना जीवन और उससे जुड़ी अन्य सामग्री लोगों तक पहुँचते आयी है। साहित्य को आम तौर पर गद्य, पद्य और जिसमें यह दोनों हों उसे चंपू कहा जाता है, में बाँटा जाता है (https://hi.wikipedia.org/wiki/)। इसी साहित्य विधा के ज़रिए मनुष्य आदिकाल से ही अपना मनोरंजन सामान्य तौर पर और रचनात्मक तौर पर करता आ रहा है। इसी साहित्य की वजह से किसी भी

*शोधार्थी, जनसंचार विभाग, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उत्तर प्रदेश।
*सहायक प्राध्यापक, जनसंचार विभाग, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उत्तर प्रदेश।

समाज का अस्तित्व होता है और समाज की वजह से साहित्य का अस्तित्व होता है। हिंदी साहित्य और उसका इतिहास 900 वर्ष पुराना है और इन 900 वर्षों के इतिहास को चार कालों में विभक्त किया गया है-1. आदिकाल (वीरगाथाकाल, सं.1050-1375), 2. पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल, सं.1375-1700), 3. उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल, सं. 1700-1900), 4. आधुनिक काल (गद्यकाल, सं.1900-1984) (शुक्ल, 2018)। यह सारा हिंदी साहित्य उत्तर भारत के राज्यों से सम्बंधित है। इस हिंदी साहित्य और इससे जुड़े साहित्यकारों ने अपने आरम्भिक काल से ही देशकाल स्थिति का वर्णन तो किया ही साथ ही इस देश के विकास में और उसकी सामाजिक-राजनैतिक-आर्थिक-सांस्कृतिक दशा और दिशा तय करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

भारतीय सिनेमा अपने लगभग 107 वर्ष के लम्बे सफ़र में साहित्य से जुड़ा रहा है। भारतीय हिंदी सिनेमा के अलग-अलग समयकाल में अलग-अलग फ़िल्मकारों ने हिंदी साहित्य की रचनाओं के ऊपर फ़िल्मों का निर्माण किया। एक तरह से देखें तो सिनेमा लगभग हर तरह की रचनात्मक कलाओं जैसे - साहित्य, चित्रकला, गायन, नृत्य, संगीत एवं और भी अन्य कलाओं की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। साहित्य के प्रमुखतः चार मुख्य तत्व भाव, कल्पना बुद्धि और शैली हैं जो सिनेमा में भी पाए जाते हैं। इन्हीं कारणों से दोनों की कथावस्तु का परस्पर अटूट संबंध है। साहित्य और सिनेमा दोनों ही कलाओं का का एक दूसरे से परस्पर संबंध होने के कारण यह दोनों विधाएँ साथ मिलकर समाज में एक सुधार की भूमिका निभाती हैं तो निश्चित ही देश का सामाजिक स्तर विकसित होगा (कुंदे, 2014)।

साहित्य पाठ्य माध्यम है और इस पाठ्य माध्यम को सिनेमा ने दृश्य और श्रव्य से और ख़ूबसूरती प्रदान कर दी। ऐसा नहीं है कि हिंदी साहित्य पर बनी हर फ़िल्म सफल हुई हो। अधिकतर फ़िल्मों ने व्यावसायिक स्तर पर असफलता का स्वाद चखा है, लेकिन साहित्य पर आधारित सिनेमा बनाने वाले फ़िल्मकारों ने फ़िल्म के आरम्भ से आज तक हार नहीं मानी और अलग-अलग समयकाल के अनुसार साहित्यिक रचनाओं पर बेहतरीन फ़िल्में बनाई हैं जो व्यावसायिक स्तर पर भले ही सफल ना हुई हों, लेकिन हर एक फ़िल्मकार और इनसे सम्बंधित संस्थान उन फ़िल्मों को देखते-दिखाते और पढ़ाते हैं कि सिनेमा से समाज और देश को सही दिशा कैसे दी जा सकती है और एक अच्छी फ़िल्म कैसे बनाई जा सकती है।

भारतीय हिंदी सिनेमा में शुरू से हिंदी साहित्य पर आधारित फिल्में बनती रही हैं। यही नहीं, विदेशी लेखकों के उपन्यास और नाटकों पर आधारित फिल्में भी बनती रही हैं। जहां एक ओर शरत चंद्र, रबींद्रनाथ टैगोर, बिमल राय, केआर नारायणन, चेतन भगत जैसे कई लेखकों की रचनाओं पर अब तक काफी फिल्में बन चुकी हैं, वहीं दूसरी ओर शेक्सपियर, रस्किन बॉन्ड जैसे कई विदेशी लेखकों की रचनाओं पर भी फिल्में बन चुकी हैं। विशाल भारद्वाज की फिल्म ओमकारा और मकबूल जहां शेक्सपियर के नाटक ओथैलो और मैकबेथ पर आधारित थीं, वहीं विशाल भारद्वाज की ही एक और फिल्म सात खून माफ, रस्किन बॉन्ड की कहानी सुजैना सेवेन हसबैंड पर आधारित थी (http://vanchitvimarsh.blogspot.com/)। एक तरह से देखें तो साहित्य से सिनेमा को बहुत कुछ मिला है जबकि सिनेमा और साहित्य का धरातल अलग-अलग है। सिनेमा शुद्ध मनोरंजन प्रधान होता है जिसमें दर्शकों की मांग का ख्याल रखा जाता है। दर्शक को जो चाहिए सिनेमा वही परोसता है, जिसका सीधा संबंध व्यवसाय से होता है। जबकि साहित्य संवेदना और अनुभूति प्रधान होता है। साहित्य दर्शकों की मांग पर नहीं बल्कि साहित्यकार अपनी निजी संवेदना और अनुभूति को केंद्र में रखकर समाज के

यथार्थ रूप को सामने लाने का प्रयास करता है (http://vanchitvimarsh.blogspot.com/)।

इसी साहित्य से सिनेमा को माध्यम बनाकर कुछ बेहतरीन फ़िल्में समाज के यथार्थ को पौराणिक और आधुनिक समयानुसार प्रस्तुत किया है डॉ. चंद्रप्रकाश द्विवेदी ने। इन्होंने बतौर निर्देशक धारावाहिक चाणक्य से शुरुआत की जिसका प्रसारण 1919-92 में दूरदर्शन पर हुआ। यह उनकी निर्देशन शैली का ही कमाल था जो उन्होंने चाणक्य जैसे बुद्धिजीवी के जीवन को सरलता से दर्शकों तक पहुँचाया और जो भारतीय टेलीविज़न के इतिहास में एक मील का पत्थर आज भी है। उसके बाद इन्होंने साहित्यिक कृतियों पर आधारित मृत्युंजय धारावाहिक, जो शिवाजी सावंत के इसी नाम के मराठी उपन्यास पर था, महाकाव्य महाभारत पर आधारित धारावाहिक एक और महाभारत, अमृता प्रीतम के पंजाबी उपन्यास पिंजर पर इसी नाम से फ़िल्म, सनातन धर्म के पवित्र उपनिषदों पर आधारित धारावाहिक उपनिषद गंगा और काशीनाथ सिंह के उपन्यास पर आधारित फ़िल्म काशी का अस्सी जैसी बेहतरीन कृतियाँ अपने रचनात्मक फ़िल्मांकन शैली से बनाई ।

कोई भी साहित्यिक कृति अपने शब्दों द्वारा पढ़ने वाले के दिमाग़ में अपना प्रभाव उत्पन्न करती है, वहीं सिनेमा अपने दृश्य और श्रव्य माध्यम से, इसीलिए अगर साहित्यिक कृति को सिनेमा के रूप में सही से रूपांतरित ना किया जाए तो उस कृति की आत्मा मर जाती है और फिल्म दर्शकों पर अपना कोई प्रभाव नहीं डाल पाती है। यह डॉ. द्विवेदी की साहित्यिक समझ और रचनात्मक और बौद्धिक शैली है जिसके कारण उन्होंने इतनी कठिन साहित्यिक रचनाओं पर हर समय याद किए जाने वाले धारावाहिक बनाए वहीं दूसरी ओर अमृता प्रीतम के पंजाबी उपन्यास पिंजर पर आधारित फ़िल्म पिंजर बनाई जिसे देखते हुए आप भारत के बँटवारे के दर्द को महसूस करेंगे। वहीं उन्होंने हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकार काशीनाथ सिंह के साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित उपन्यास काशी का अस्सी पर आधारित फ़िल्म मोहल्ला अस्सी बनाई। यह उनकी साहित्यिक समझ का ही परिणाम है कि काशी का अस्सी को उन्होंने एक वाक्य में कि कैसे हम दूसरी संस्कृतियों और बाज़ारवाद के प्रभाव में अपने जीवन मूल्यों और संस्कृति को खो रहे हैं, को अपनी इस फ़िल्म के ज़रिए दर्शकों के सामने प्रस्तुत कर दिया। इन्होंने अपनी रचनात्मक फ़िल्मांकन शैली से साहित्यिक विधा को सिनेमा में प्रतिष्ठा दिलवाई है।

साहित्य पुनरावलोकन

शोध-पत्र "फ़िल्मकार डॉ. चंद्रप्रकाश द्विवेदी का साहित्यिक सिनेमा : एक अध्ययन" को तार्किक और सैद्धांतिक रूप से प्रस्तुत करने के लिए शोध-पत्र से सम्बंधित विषय में पूर्व में हुए शोध कार्यों का अध्ययन किया गया, साथ ही ब्लॉग, समाचार पत्र व लेखों का भी अध्ययन किया गया, जो निम्न प्रकार से है।

झा, श्यामा नंद (2000) अपने अप्रकाशित शोध प्रबंध 'साहित्यिक पाठ के पुनरुत्पादन की समस्याएँ: विशेष संदर्भ रंगमंच और सिनेमा' में बताते हैं कि साहित्य की प्रस्तुति और रूपांतरण रंगमंच, टेलीविज़न और सिनेमा के लिए सबसे बड़ी समस्या है। जब इनका रूपांतरण इन माध्यमों के लिए किया जाता है तो साहित्य के भाव और शब्दार्थ परिवर्तित हो जाते हैं। लेकिन इस समस्या के बाद भी साहित्य ने इन माध्यमों को बहुत कुछ दिया है। सहाय, साकेत (2016) ने अपने लेख साहित्य, सिनेमा और समाज में बताया है कि साहित्य और सिनेमा में समाज को बदलने की ताक़त है और हिंदी सिनेमा को उसके विकास पथ पर ले जाने वाले साहित्य पर और काम करने की ज़रूरत है ताकि भारतीय हिंदी सिनेमा विश्व के शिखर

पर पहुँच सके। अग्निहोत्री (2019) ने अपने शोध लेख साहित्य की सिनेमाई पटकथा रूपांतरण की समस्याएँ में बताया है कि किसी भी फ़िल्मकार के लिए साहित्य से सिनेमा का रूपांतरण करने में अनेक तकनीकी समस्याओं के साथ साहित्यिक कृति की विषय वस्तु से न्याय का भी दबाव बना रहता है। कुमारी (2014) ने अपने शोध लेख साहित्यिक कृतियाँ और सिनेमा में बताया है कि साहित्यिक रचना पर उसी फ़िल्मकार को फ़िल्म बनानी चाहिए जो साहित्यिक तत्वों को समझता हो और उसे न्यायपूर्ण ढंग से सिनेमा के लिए रूपांतरित कर सके। फलारी (2013) ने लिटरेचर टू फिल्म्स : ए स्टडी ऑफ़ सलेक्ट विमन प्रोटागोनिस्टस इन हिंदी सिनमा शीर्षक शोध-ग्रंथ में बताया है कि हिंदी सिनेमा साहित्य पर निर्भर रहा है। दोनों कहानी सुनाने से सम्बंधित हैं लेकिन फ़िल्मों को देखने का अनुभव किसी साहित्यिक पाठ की यात्रा और अनुभव से अलग है। उपरोक्त साहित्य पुनरावलोकन से स्पष्ट है कि साहित्यिक कृतियाँ सिनेमा का आधार रही हैं लेकिन सबसे बड़ी समस्या है उस कृति को सिनेमा के लिए रूपांतरित करना। जब तक फ़िल्मकार को साहित्यिक तत्वों का ज्ञान नहीं होगा वह किसी भी साहित्यिक कृति पर न्यायपूर्ण फ़िल्म नहीं बना सकेगा।

उद्देश्य एवं महत्त्व

यह शोध-पत्र डॉ द्विवेदी के सिनेमा में साहित्य की प्रस्तुति समझने की कोशिश करता है और इसके उद्देश्य निम्न हैं :

डॉ. चंद्रप्रकाश द्विवेदी के सिनेमा में साहित्य की प्रस्तुति की समीक्षा

डॉ. चंद्रप्रकाश द्विवेदी के सिनेमा में साहित्यिक दृष्टिकोण

यह शोध-पत्र डॉ. चंद्रप्रकाश द्विवेदी के सिनेमा को, सिनेमा में साहित्यिक दृष्टिकोण को और साथ ही साथ ही साहित्य को सिनेमा में परिवर्तित करने के दृष्टिकोण को समझने में मदद करेगा। यह शोध-पत्र अकादमिक और शोध पृष्ठभूमि से जुड़े लोगों को भी सम्बंधित क्षेत्र से जुड़े कार्य में मददगार होगा।

शोध प्रश्न

इस शोध के प्रश्न निम्न प्रकार हैं :

क्या डॉ. चंद्रप्रकाश द्विवेदी ने सिनेमा में साहित्य को निरूपित किया है ?

क्या डॉ. चंद्रप्रकाश द्विवेदी के सिनेमा में साहित्यिक दृष्टिकोण है ?

शोध-क्रियाविधि एवं सीमाएँ

इस शोध-पत्र के विश्लेषण के लिए डॉ. चंद्रप्रकाश द्विवेदी के सिनेमा में साहित्य की समीक्षा और साहित्यिक दृष्टिकोण उद्देश्यों के अनुरूप अंतर्वस्तु विश्लेषण शोध-क्रियाविधि का उपयोग किया गया है। इस विधि से ऐसे व्यक्ति और विषय वस्तु द्वारा किए गए संचारों या उनके व्यवहारों के बारे में इकट्ठा किए गए दस्तावेज़ों का विश्लेषण किया जाता है और निष्कर्ष पर पहुँचने की कोशिश की जाती है (सिंह, 2001)। क्योंकि सिनेमा और साहित्य की विषय-वस्तु गुणात्मक अध्ययन है और इस विधि के माध्यम से ही गुणात्मक तथ्यों के परिणाम प्राप्त किए जाते हैं। इस उपन्यास की विषय-वस्तु से सम्बंधित तथ्यों की विषयवस्तु को गुणात्मक श्रेणियों में वर्गीकृत कर वस्तुनिष्ठ विश्लेषण किया गया है। इस शोध-पत्र के लिए डॉ. चंद्रप्रकाश द्विवेदी की केवल एक फ़िल्म मोहल्ला अस्सी को लिया गया है जो काशीनाथ सिंह के

उपन्यास काशी का अस्सी पर आधारित है।

विश्लेषण

अस्सी का चिंतन 'पप्पू की दुकान'

अस्सी की पप्पू की दुकान फ़िल्म मोहल्ला अस्सी की अस्सी मोहल्ले की एक ऐसी जगह है जहाँ काशी के अलावा पूरे देश की समकालीन समस्याओं के बारे में चिंतन होता है। इस पप्पू की दुकान जोकि वास्तविकता में अस्सी मोहल्ले में स्थित है, जहां से सारे संस्मरण इकट्ठा करके काशीनाथ सिंह ने अपने उपन्यास काशी का अस्सी की रचना की। किसी भी देश की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक स्थितियों के कई प्रकार के पहलू और उनके कुछ सामान्य और विशिष्ट प्रभाव होते हैं। इन सबका पूरे समाज पर कई बार व्यापक प्रभाव पड़ता है और इस प्रभाव पर बात करने के लिए ज़रूरत होती है बुद्धिजीवियों की। पप्पू की दुकान इन्हीं बुद्धिजीवियों का सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक चिंतन करने की जगह है जहां साहित्यकार ने अपने संस्मरणों को उपन्यास के रूप में निर्मित किया है। दूसरी ओर डॉ. चंद्रप्रकाश द्विवेदी ने अपनी फ़िल्म मोहल्ला अस्सी में भी यही किया। उन्होंने पप्पू की दुकान में बैठे इन बुद्धिजीवियों के ज़रिए तत्कालीन समय के ज्वलंत मुद्दों अयोध्या मंदिर और कारसेवा, आरक्षण और साथ ही तत्कालीन राजनैतिक स्थिति पर बेबाक़ होकर अपनी रचनात्मक निर्देशन शैली में दर्शकों के सामने प्रस्तुत किया। वाराणसी साहित्यिक और सांस्कृतिक रूप से हमेशा समृद्ध रहा है और किसी भी तरह का बौद्धिक चिंतन समाज की प्रगति के लिए आवश्यक होता है। पप्पू की दुकान के इस बौद्धिक चिंतन को डॉ चंद्रप्रकाश द्विवेदी ने अपनी फ़िल्म में साहित्यिक दृष्टिकोण के साथ रखा है। किसी भी साहित्यिक कृति को जब सिनेमा की कथावस्तु के लिए चुना जाता है तो सबसे मुश्किल होता है उसको सिनेमा के ज़रिए साहित्यिक लेखनी और शब्दार्थ को खोए बिना दर्शकों तक पहुँचाना।

यही कार्य डॉ. चंद्रप्रकाश द्विवेदी द्वारा स्वतंत्र रूप से इस उपन्यास का सिनेमाई रूपांतरण पात्रों को उनकी राजनैतिक विचारधारा की निष्ठा के साथ किया किया है। साथ ही रूपांतरित कथानक को कमजोर नहीं होने दिया है (https://www.outlookindia.com/)। अपने इसी सिनेमाई दृष्टि और साहित्यिक दृष्टिकोण के ज़रिए फ़िल्म मोहल्ला अस्सी में उपन्यास काशी का अस्सी में पप्पू की दुकान पर विमर्श में आने वाले तत्कालीन मुद्दों, जिनमें अयोध्या, आरक्षण, राजनैतिक स्थिति का विरोध और पक्ष और उसके साहित्यिक शब्दार्थ को संतुलित ढंग से दिखाया गया है और कहीं भी ऐसा नहीं लगा कि उपन्यास में उल्लिखित सवेंदनशील मुद्दों पर चिंतन को ग़लत ढंग से चित्रित किया जा रहा है। काशीनाथ सिंह ने अपने उपन्यास के ज़रिए पप्पू की दुकान के होने वाले बौद्धिक चिंतन को जिस तरह से अपने शब्दों के ज़रिए लोगों तक जिस सच्चाई और यथार्थ से पहुँचाया उस चिंतन की उसी भाव से, भाव जो साहित्य का एक मूल तत्व है, जिस वजह से कोई भी व्यक्ति सम्बंधित साहित्य से जुड़ता है, उसे निर्देशक ने बरक़रार रखा है। इन्हीं संवेदनशील मुद्दों के साहित्यिक भाव को डॉक्टर चंद्रपकाश द्विवेदी ने अपनी बौद्धिक निर्देशन शैली से मोहल्ला अस्सी के ज़रिए दर्शकों तक पहुँचाया है।

अस्सी की संस्कृति

अस्सी की संस्कृति जिसके बारे में काशीनाथ सिंह ने अपने उपन्यास काशी का अस्सी की शुरूआत में ही लिखा है कि सबसे पहले इक मुख़्तसर-सा बायोड़ाटा-कमर में गमछा, कंधे पर लंगोट और

बदन पर जनेऊ-यह 'यूनीफ़ॉर्म' है अस्सी का (सिंह, 2019)। यह छोटा सा वाक्य काशी की संस्कृति और परंपराओं को बयाँ कर देता है। काशीनाथ सिंह अपने इस उपन्यास के ज़रिए वर्तमान समय में पाश्चात्य संस्कृति और आधुनिकता के प्रभाव के विषय में बताया कि कैसे काशी की धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक परम्पराएँ और पहनावा आधुनिकता के कारण लुप्त हो रही हैं। काशी का ही नहीं बल्कि हमारे पूरे भारत की संस्कृति का एक मुख्य आयाम है, सारे मनुष्यों को एक समझना अर्थात् कोई भेदभाव ना करना, और एक दूसरे की मदद करना। लेकिन काशी में अब सब बदल गया है।

काशी ऐतिहासिक तौर पर अपनी सभ्यता, संस्कृति, साहित्य और कलाओं के लिए जानी जाती है। काशी के इसी सांस्कृतिक बदलाव को इस उपन्यास में बतलाया गया है और उसको बड़ी ख़ूबसूरती से दिखाया गया है फ़िल्म मोहल्ला अस्सी में। फिल्म में एक दृश्य है उसमें उपन्यास के अनुरूप पारम्परिक होली समारोह की चर्चा में बात आती है कि इस बार होली पर होने वाला कवि सम्मेलन शहर से बाहर आयोजित होगा क्योंकि उसकी भाषा अभद्र है। इसपर एक पात्र गया सिंह कहते हैं कि 'हर हर महादेव' के साथ 'भोसड़ी' के नारा सार्वजनिक अभिवादन है (सिंह, 2019)। उपन्यास काशी का अस्सी के इस भाव और भाषा को फ़िल्म दृश्य के ज़रिए प्रस्तुत कर यह दिखाने की कोशिश की गयी है कि कैसे काशी की अपनी प्यार वाली भाषा जहाँ गाली, गाली नहीं लगती, उसे भी बोलने से यहाँ के लोग परहेज़ करने लगे हैं और वहीं दूसरी ओर एक आदिवासी समुदाय के व्यक्ति को भगवान महादेव बनकर लोगों के साथ फ़ोटो खींच कर रुपए कमाते हुए दिखाया गया है और जब उसे चंदन की ज़रूरत होती है, तो वह एक प्रमुख पंडा पांडे जी से चंदन माँगता है तो पांडे जी कहते हैं कि चंदन मुफ़्त का नहीं आता। तो यह भगवान शिव बना व्यक्ति कहता है कि हम यहाँ के असली निवासी आदिवासी हैं और यहाँ के कण-कण में भगवान शिव हैं इसीलिए हम भी भगवान शिव हैं। तुम हमसे रुपए कैसे माँग सकते हो। इसको पहले साहित्यकार ने शब्दों से और फिर फ़िल्मकार ने अपनी नायाब निर्देशन शैली से काशी की आदिवासी संस्कृति जोकि अब लुप्त हो गयी है, उसे दिखाया है। साथ ही काशी के हर मानव सहित हर जगह शिव मौजूद हैं अर्थात् काशी की शिवमय सनातन संस्कृति की बात की है। फिल्म से उपन्यास के लेखक काशीनाथ सिंह भी काफ़ी प्रभावित हुए। उनके मुताबिक़ फ़िल्म के अभिनेताओं ने अपने अभिनय से काशी की संस्कृति को जीवंत बना दिया (https://www.jagran.com/)।

फ़िल्म का एक दृश्य है जिसमें कन्नी, कैथरीन नाम की पर्यटक को मौनी बाबा के पास ले जाता है। जहाँ उसे मौनी बाबा से जो ज्ञान प्राप्त होता है वह केवल काशी के लिए नहीं पूरे देश के लिए होता है कि भविष्य में काशी सहित पूरे भारतवर्ष के लोग चिंतन कम और बोलेंगे ज़्यादा। ऐपल, ऑरेंज और बेरी की सहायता से आज वही हो रहा है। समाज में डिजिटल मीडिया के माध्यम से बोलते ज़्यादा हैं, लेकिन चिंतन बिलकुल भी नहीं है जो हमारी सनातन संस्कृति और समाज के विकास का एक मज़बूत स्तम्भ रहा है। यह आधुनिकता के प्रभाव में ग़ायब हो रहा है। निर्देशक ने अपनी रचनात्मकता से वाराणसी शहर को उसकी अपनी सांस्कृतिक शैली के साथ चित्रित किया है (https://www.google.com/)। एक तरह से साहित्य के भाव और उसकी शैली को फ़िल्कार ने अपने निर्देशन के ज़रिए सार्थक रूप से प्रस्तुत किया है कि कैसे काशी अपने जीवन को जीने की पारम्परिक भाषा, पहनावा और संस्कृति को छोड़ आधुनिकता की ओर भाग रहा है।

अस्सी का बाज़ारवाद

काशी जो अपनी सभ्यता, साहित्य, संस्कृति और जीवन मूल्यों के लिए जानी जाती है उसके इन सारे मूल्यों को भौतिकतावादी आधुनिकता बदले का प्रयास कर रही है। काशीनाथ सिंह ने अपने उपन्यास काशी का अस्सी के ज़रिए यही बताने की कोशिश की है और साथ ही उन्होंने यह भी बताया है कि काशी के लोगों को यह बदलाव पसंद नहीं है। लेकिन दूसरी तरफ़ काशी के कुछ लोग अपनी आजीविका के लिए इसका बाज़ारीकरण करना चाहते हैं। उपन्यास के इसी मर्म को डॉ चंद्रप्रकाश द्विवेदी ने अपनी फ़िल्म के पात्र कन्नी के माध्यम से सामने लाते हैं जो एक पर्यटन गाइड है, जिसने रुपए कमाने के लिए काशी के घाटों पर स्थित खटीक़ और मल्लाहों के घर विदेशी शैलानियों को किराए पर चढ़ा दिए हैं। अब उसकी नज़र प्रमुख घाटों पर है जिनके मालिक घाट के पांडे अर्थात् ब्राह्मण हैं। कन्नी खुद ब्राह्मण है लेकिन सफलता हाथ ना लगती देख जब पप्पू की दुकान पर पंडों को कन्नी भला-बुरा कह रहा होता है तो गया सिंह काशी को पूरे बाजारवाद में धकेलने के लिए कन्नी को कहते हैं कि तुम्हारे जैसे लोग जो बेरोज़गारी भत्ते पर विदेशों से यहाँ घूमने आए हैं उनके सामने सिर्फ़ रुपयों के लिए सिर झुकाए खड़े रहते हो और काशी की सभ्यता और संस्कृति को बाजारवाद की तरफ धकेल कर बर्बाद कर रहे हो।

पर्यटक कैथरीन की मदद से जब लल्लू नाई बार्बर बाबा बन कर आता है तो वह और कन्नी मिलकर प्रमुख पंडा पांडे जी को एक विदेशी महिला को संस्कृत पढ़ाने और अपने घर में रखने के लिए मना लेते हैं। पांडे जी मान भी जाते हैं क्योंकि जज़मानों से कमाई होती नहीं और वहीं मल्लाह और खटीक़ अपने घर विदेशियों को किराए पर देकर आराम से अपना जीवन चला रहे हैं। हद तो तब होती है जब पांडे जी विदेशी सैलानी की सुविधा के लिए अपने घर का शिवालय तोड़कर उसमें शौचालय का निर्माण कर देते हैं। उनकी देखा-देखी मोहल्ले के सारे ब्राह्मण परिवार अपने घर के शिवालय से शिवलिंग हटाकर उसकी जगह सैलानियों की सुविधा के लिए शौचालय और स्नान गृह जैसा निर्माण करवा देते हैं। वैश्विकीकरण और बाज़ारवाद की वजह से यह स्थिति केवल काशी की नहीं वरन पूरे भारत की है। डॉ. एन. मोहन ने अपनी किताब समकालीन हिंदी उपन्यास में लिखा है कि काशीनाथ सिंह का काशी का अस्सी बनारस का शोक-गीत है (मोहन, 2013)। इसको डॉ चंद्रप्रकाश द्विवेदी ने अपनी रचनात्मकता से फ़िल्म मोहल्ला अस्सी में बड़ी सरलता के साथ फ़िल्मांकित किया है।

यह फ़िल्म अपने कथानक के ज़रिए वैश्विकीकरण, बाज़ारवाद और उपभोक्तावाद जैसी परिस्थितियों के कारण काशी के समाज के पतन की ओर जाती नैतिकता और सामाजिकता के साथ ही आस्था और धर्म के नाम पर पालन की जाने वाली ग़लत परम्पराएँ, काशी के बहाने पूरे देश के राजनीतिक पतन पर एक विमर्श उत्पन्न करती है (https://navbharattimes.indiatimes.com/)। इन परिस्थितियों से केवल काशी ही नहीं बल्कि पूरे भारत की संस्कृति, जीवन-मूल्य, संस्कार, रहन-सहन और भाषा का जो ह्रास हुआ है वह काशीनाथ सिंह ने अपनी साहित्यिक भाषा के ज़रिए यथार्थ रूप में अपने उपन्यास मोहल्ला अस्सी के ज़रिए व्यक्त की है और इसी को सिनेमा के पर्दे पर इसके यथार्थ के साथ अपनी रचनात्मक फ़िल्मांकन लेखनी,शैली और साहित्यिक दृष्टिकोण के साथ दर्शकों के सामने चंद्रप्रकाश द्विवेदी ने रखा है।

निष्कर्ष

उपरोक्त विश्लेषण से निष्कर्ष प्राप्त होता है कि काशी का अस्सी उपन्यास की आत्मा मोहल्ला अस्सी के कथानक से ली गयी है। किसी भी साहित्यिक कृति की कथावस्तु में भाव, कल्पना, बौद्धिकता

और उसकी शैली प्रमुख तत्व होते हैं और काशी का अस्सी के इन्हीं प्रमुख तत्वों को बिना छेड़खानी किए डॉ चंद्रप्रकाश द्विवेदी ने अपने रचनात्मक और बौद्धिक लेखन और फ़िल्मांकन के ज़रिए सिनेमा के रूपहाले पर्दे पर सार्थक ढंग से उतारा है।

साहित्य का एक अर्थ होता है ज्ञात होना अर्थात् आपके अंदर का ज्ञान। अपने इसी ज्ञान से इन्होंने टेलीविजन और सिनेमा के सारे लेखन और निर्देशन की विषय-वस्तु साहित्य पर ही आधारित रखी है और अपनी फ़िल्म मोहल्ला अस्सी में उन्होंने उपन्यास काशी का अस्सी के साहित्य को पहले अपने लेखन से उसके यथार्थ के साथ निरूपित किया और फिर अपने निर्देशन में साहित्यिक दृष्टिकोण रखते हुए इसका यथार्थपरक फ़िल्मांकन कर दर्शकों के सामने बड़ी सरलता से प्रस्तुत किया है।

संदर्भ सूची

https://hi.wikipedia.org/wiki/हिंदी _साहित्य (एन.डी.) से उद्धृत।

शुक्ल, आचार्य रामचंद्र. (2018). *हिंदी साहित्य का इतिहास*. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन. पृ.01।

कुंदे, पुरुषोत्तम. (2014). *साहित्य और सिनेमा*. दिल्ली : हिंदी बुक सेंटर. पृ.301।

http://vanchitvimarsh.blogspot.com/2017/12/blog-post.html (एन.डी.) से उद्धृत।

http://vanchitvimarsh.blogspot.com/2017/12/blog-post.html (एन.डी.) से उद्धृत।

झा, श्यामा नंद. (2000). *साहित्यिक पाठ के पुनरुत्पादन की समस्याएँ : विशेष संदर्भ रंगमंच और सिनेमा*. अप्रकाशित शोध प्रबंध, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय।

https://www.jansatta.com/sunday-magazine/literature-and-cinema/204973/ से उद्धृत।

https://sahityacinemasetu.com/shodh-lekh-sahitya-ki-cinemayi-patkatha-rupantaran-ki-samsayayein/ (एन.डी.) से उद्धृत।

http://www.casirj.com/article_pdf?id=1794.pdf (एन.डी.) से उद्धृत।

फलारी, भारती पी. (2013). *लिटरेचर टू फिल्म्स : अ स्टडी ऑफ़ सलेक्ट विमन प्रोटागोनिस्टस इन हिंदी सिनेमा*, अप्रकाशित शोध प्रबंध, गोवा विश्वविद्यालय।

सिंह, अरुण कुमार. (2001). *मनोविज्ञान,समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ*. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ.236।

https://www.outlookindia.com/newsscroll/amp/mohalla-assi-provocative-pungent-relevant-movie-review/1422612 से उद्धृत।

सिंह, काशीनाथ. (2019). *काशी का अस्सी*. दिल्ली : राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड. पृ.11।

https://www.jagran.com/news/national-feedback-of-real-life-character-of-film-mohalla-assi-jagran-special-18645358.html से उद्धृत।

https://www.google.com/search?q=google+translate&rlz=1C5CHFA_enIN953IN953&oq=goog&aqs=chrome.1.69i60j69i59j46i20i131i199i263i433i465i512j69i57j35i39j69i60l3.2524j0j7&sourceid=chrome&ie=UTF-8 (एन.डी.) से उद्धृत।

मोहनन, डॉ. एन. (2013). *समकालीन हिन्दी उपन्यास*. दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृ.46।

https://navbharattimes.indiatimes.com/movie-masti/movie-review/mohalla-assi-movie-review-in-hindi/moviereview/66634304.cms से उद्धृत।

मूल्य शिक्षा संवर्धन में संस्कृति और परम्परा की भूमिका (भारत के विशेष संदर्भ में)

डॉ. परमात्मा कुमार मिश्र*

सारांश

प्रस्तुत अध्ययन मूल्य शिक्षा के संवर्धन में संस्कृति और परम्परा की भूमिका पर आधारित है। मूल्य व्यक्ति के आत्मिक, सामाजिक और अन्य सभी पक्षों को प्रकाशमान करता है। आज जब लोगों के बीच वैमनस्यता, द्वेष, राग, काम, क्रोध, मोह, माया जैसे दुर्गुण घर कर कर गयह हों तो मूल्य शिक्षा ही एक ऐसी शिक्षा है जो मनुष्य को उक्त दुर्गुणों से बचा सकती है। भारतीय संस्कृति और परम्परा मूल्य शिक्षा से ओतप्रोत है। मूल्य के बारे में गुणार्थ ज्ञान हमें भारतीय संस्कृति और परम्परा के बारे में गहराई से अध्ययन करने पर पता चलता है कि मूल्य शिक्षा के संवर्धन में हमारी संस्कृति और परम्परा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। प्रस्तुत शोध मूल्य शिक्षा, संस्कृति और परम्परा अध्ययन का सूक्ष्म और प्रामाणिक संदर्भ भी उपलब्ध कराता है।

बीज शब्द: मूल्य, मूल्य शिक्षा, संस्कृति, परम्परा, वैदिक साहित्य

प्रस्तावना

मूल्य मनुष्य के सर्वांगीण विकास की एक प्रमुख कुंजी है जिसमें आत्मिक सुख, संतोष, शांति, प्रेम, दया, करुणा, ईमानदारी, तथा सादगी आदि गुण सन्निहित हैं। संस्कृति में मूल्य का अर्थ 'इष्ट' अर्थात अपेक्षित या वांक्षित होता है। मूल्यवान का अर्थ सद्गुणों को प्राप्त करना होता है। ऑलपोर्ट (1969) ने मूल्य को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "एक ऐसा विश्वास या आस्था जिसके अनुसार काम करने को व्यक्ति बेहतर या श्रेष्ठ समझता है।" मूल्य के बारे में और समझने का प्रयास करें तो कुपुस्वामी (1972) द्वारा दी गई परिभाषा मददगार है। कुपुस्वामी के अनुसार "मूल्य किसी समूह की एक धारा सम्बंधी विशेषता है जिसके अनुसार आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। मूल्य किसी क्रिया का आधार निर्धारित करते हैं, जिसका व्यवहार के रूप में परीक्षण किया जा सके।" सारांशतः देखें तो 'मूल्य एक ऐसा सिद्धान्त या मानक या गुण होता है जिसे व्यक्ति सार्थक या वांक्षनीय समझते हैं। मूल्य के सम्बंध में दो धारणा महत्वपूर्ण हैं। प्रथमतः वह जो शिक्षक अपने विद्यार्थी को मूल्य के रूप में संचरित करते हैं। द्वितीय वह जो किसी संस्था, व्यवस्था, धर्म, सिद्धान्त और अनुभवजन्य लोगों के द्वारा प्रदान किए जाते हैं। अर्थात देखें तो मूल्य ज्ञान के लिए मूल्य शिक्षा अत्यंत जरूरी है। अनेक विद्वानों का यह भी मानना है कि मूल्य शिक्षा प्रथमतः घर से प्राप्त होती है और द्वितीय शैक्षणिक, स्वैच्छिक, धार्मिक संस्थाओं या संगठनों द्वारा दी जाती है। मूल्य शिक्षा के अपने विशिष्ट महत्व हैं जिसे उक्त घटकों के अतिरिक्त मूल्य को संस्कृति और परम्परा भी संवर्धित और संपुष्ट करती है। भारतीय संस्कृति एवं वैदिक साहित्य के बारे में पाश्चात्य विद्वानों का भी मानना है कि वह मूल्य शिक्षा का सबसे बड़ा स्रोत होने के साथ वैज्ञानिक एवं दूरगामी दृष्टि से परिपूर्ण है। मैक्समूलर और आगे

*सहायक प्राध्यापक, मीडिया अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार।

चलकर ब्रिटिश गवर्नर जरनल लार्ड मैकाले ने भारतीय शिक्षा पद्धति में समाहित मूल्य परक शिक्षा को बहुत अच्छे से पहचाना। मैकाले जानता था कि भारतीयों को यदि और अधिक तोड़ना है तो सबसे पहले उनकी मूल्यपरक शिक्षा व्यवस्था को नष्ट करो। वेद, पुराण और उपनिषद भारतीय संस्कृति के सबसे बड़े स्रोत हैं। इसी तरह हमारी परम्पराएं भी मूल्य शिक्षा से भरी पड़ी हैं। मूल्य शिक्षा के स्रोत और उसके संरक्षण को लेकर भारतीय संस्कृति और परम्परा को जिस दृष्टि से देखा जाना चाहिए, उस तरह से कम ही देखा गया है। वैदिक साहित्य और परम्परा में वर्णित एवं विद्यमान मूल्य शिक्षा को जानने एवं समझने का यह शोध एक सूक्ष्मतर प्रयास है। प्रस्तुत शोध मूल्य शिक्षा में भारतीय संस्कृति और परम्परा की भूमिका का एक रेखांकन है।

शोध पद्धति

मूल्य शिक्षा संवर्धन में भारतीय संस्कृति और परम्परा की भूमिका विषयक यह शोध गुणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है। साथ ही इसमें द्वितीयक आंकड़ों का उपयोग हुआ है। विषय के अनुसार उपलब्ध साहित्य एवं लोगों के विचारों और परिवार एवं समाज के दर्शन का अवलोकन प्रस्तुत शोध का आधार है अर्थात इस शोध हेतु अवलोकन पद्धति का उपयोग किया गया है।

उद्देश्य

- मूल्य और मूल्य शिक्षा की प्रासंगिकता का अध्ययन
- मूल्य शिक्षा के संवर्धन में भारतीय संस्कृति की भूमिका का अध्ययन
- मूल्य शिक्षा के संवर्धन में भारतीय परम्पराओं की भूमिका का अध्ययन
- वैदिक साहित्य और मूल्य शिक्षा की वैचारिकी का अध्ययन

साहित्य का पुनरावलोकन

प्रस्तुत शोध अध्ययन के क्रम में विषय को ध्यान में रखकर रामधारी सिंह दिनकर की कृत 'संस्कृति के चार अध्याय' (2019) का अध्ययन किया गया जिसके माध्यम से संस्कृति, भारतीय संस्कृति और सभ्यता, भारतीय मूल्य, स्वामी परमहंस रामकृष्ण, स्वामी विवेकानंद, लोकमान्य तिलक, महायोगी अरविंद, महात्मा गांधी के नजरिए से भारतीय संस्कृति और परम्परा को समझने में सहायता मिली। श्यामाचरण दुबे द्वारा लिखित पुस्तक 'समय और संस्कृति' (2000) के अध्ययन से परम्परा और परिधि को जानने में मदद मिली। साथ ही संस्कृति, प्रतिसंस्कृति और अपसंस्कृति के अलावा परम्पराओं व संस्कृतियों में सहअस्तित्व के बारे में जानकारी प्राप्त हुई। कृपाशंकर चौबे द्वारा लिखित पुस्तक 'मीडिया, संस्कृति और समय'(2018) में भारतीय साहित्य की संस्कृति के बारे में तो वर्णन मिलता ही है साथ ही नवजागरण की पत्रकारिता और साहित्य के साथ संबंध की भी झलक मिलती है। डॉ. सत्यनारायण दुबे द्वारा लिखित पुस्तक मूल्य-शिक्षण का भी पुनरावलोकन किया गया जिसमें मूल्य और मूल्य शिक्षण के अर्थ, परिभाषा और अन्य विविध पक्षों की जानकारी प्राप्त हुई।

मूल्य और मूल्य शिक्षा

'मैकमिलन व नैलर' (1964) कहते हैं कि ' मूल्य का क्या अर्थ है, देखें तो पता चलता है कि इसे

न तो समाज विज्ञान और न ही दर्शन ठीक ढंग से स्पष्ट कर सके हैं। लेकिन यह स्पष्ट है कि मूल्य मानव अस्तित्व में किसी महत्वपूर्ण चीज का प्रतिनिधित्व जरुर करते हैं। मनुष्य जीवन भर कुछ न कुछ अवश्य सीखता है और सीखने से उसका अनुभव भी बढ़ता है। यही अनुभव उसे यह बताता है कि क्या करना चाहिए और उसके लिए आदर्श स्थिति क्या है? इन्ही आदर्शो को हम मूल्य कहते हैं (दुबे,2000)। मूल्य के बारे में यह कहा गया है कि यह सदैव अच्छाई का समानार्थी है, जो कुछ अच्छा है मनुष्य उसी को धारण करता है। यह व्यक्ति पर निर्भर है कि वह देश और काल के अनुसार अपनी इच्छाओं और जरूरतों के अनुसार किन मूल्यों को अधिक महत्व देता है।

'मिल्टन' का मानना है कि 'जीवन मूल्य ओस की बूँदों की तरह नहीं होती हैं जो मौसम के अनुसार दिखाई दें। इनकी जड़ें प्रत्येक प्राणी में बहुत गहरे रूप में होती हैं तथा इनका वास्तविकता से बहुत गहरा संबंध है।

मूल्यों की अपनी विशिष्टता होती हैं जिसका आधार करुणा, दया, प्रेम, मानवता, नैतिकता, सदाचार जैसे तमाम गुणों से ओत-प्रोत होता है। कुछ मूल्य ऐसे होते हैं जो अपरिवर्तनीय अर्थात शाश्वत (Perpetual) और कुछ सांसारिक अर्थात लौकिक (Universal) होते हैं। शाश्वत को परम मूल्य की भी संज्ञा दी गई है। जिसके अंतर्गत सत्य, सौंदर्य, तथा अच्छाई (सत्यम, शिवम, सुंदरम) जैसे मूल्य शामिल हैं और इसका संबंध व्यक्ति के नैतिक और आध्यात्मिक विकास से जुड़ा होता है। लौकिक मूल्य हमारे वैयक्तिक तथा सामाजिक विकास के लिए बहुत जरूरी होते हैं। इसके अंतर्गत भौतिक या शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्य सम्मिलित होते हैं। इसके अलावा विभिन्न विद्वानों द्वारा मूल्यों के अनेक प्रकारों जैसे सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक, पर्यावरण, राजनैतिक, धार्मिक आदि की चर्चा की गई है। कहने का तात्पर्य मूल्य मनुष्य के सभी पक्षों से किसी न किसी रूप में जुड़े हैं जिसका फलक बहुत विस्तृत है। इसलिए मूल्य की गहरी समझ सभी में विशेषकर उच्च शिक्षित लोगों में तो होनी ही चाहिए जिससे आने वाली और वर्तमान पीढ़ी भी मूल्य सापेक्ष और मूल्य संवर्धित हो। इसके लिए मूल्य शिक्षा लोगों को भली-भांति सरलता से मिलनी चाहिए। इसके लिए सरकार सहित हम सभी नागरिकों को मंथन करन होगा।

मूल्य जीवन के प्रत्येक पक्ष से संबंधित होता है। मूल्यों द्वारा ही शिक्षा निर्देशन प्राप्त होती है (दुबे, 2000)। मूल्य विहीन शिक्षा से कभी भी किसी व्यक्ति, समाज और देश का समुचित विकास नहीं हो सकता। मनुष्य को मूल्ययुक्त शिक्षा प्राप्त होनी ही चाहिए। शिक्षा के संबंध में ब्रुवेकर ने कहा है कि 'किसी शिक्षा के उद्देश्यों का वर्णन करना ही उसके शैक्षिक मूल्यों का वर्णन करना है।' प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था के केंद्र में मूल्य शिक्षा थी। लेकिन अब ऐसा नहीं है। अब तो मूल्यहीनता की स्थिति देखने को मिलती है। इसका प्रमुख कारण मूल्य आधारित शिक्षा व्यवस्था का नहीं होना है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, पर्यावरण आदि सभी प्रकार के मूल्यों में ह्रास हुआ है। मूल्य शिक्षा इसलिए अत्यंत जरुरी है कि इससे आत्मा की शुद्धता, सच्चाई, जीवन की पूर्णता तथा समाज में उच्च स्थान प्राप्त होता है। सामाजिक जीवन में मूल्य शिक्षा का कार्य अनुकूलता प्रदान करने के साथ ही साथ कुशलता की उन्नति, कर्तव्यों की पूर्ति, संस्कृति और सभ्यता का विकास, व्यक्तिगत हित के साथ सामाजिक हित को दूर रखना और सामाजिक गुणों का विकास करना भी होता है। आज का युग विज्ञान का युग है। ऐसे समय जब विज्ञान के फलस्वरूप तकनीकी का व्यापक विकास हुआ है और उससे व्यक्ति को मशीन की तरह देखने एवं समझने की दृष्टि विकसित हो चली है तो मूल्य शिक्षा को प्रारम्भ से लेकर उच्च स्तर तक दिया जाना अत्यंत

आवश्यक है।

संस्कृति और परम्परा

संस्कृति के बारे में एक विद्वान लेखक का कहना है कि "संसार भर में जो भी सर्वोत्तम बातें जानी या कही गई हैं, उनसे अपने आपको परिचित करना संस्कृति है" (दिनकर, 2019)। संस्कृति को परिभाषित करते हुए लिखा गया कि "संस्कृति शारीरिक या मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षण, दृढ़ीकरण या विकास अथवा उससे उत्पन्न अवस्था है" (दिनकर, 2019)। संस्कृति के बारे में आगे लिखा गया कि " संस्कृति, मन, आचार अथवा रुचियों की परिष्कृति या शुद्धि" (दिनकर, 2019) है। उक्त परिभाषाएं संस्कृति के समग्र आयाम को समझने का आधार प्रस्तुत करती हैं।

परम्परा के बारे में जेम्स ड्रियर ने लिखा कि " परम्परा कानून, प्रथा, कहानी तथा किवदंती का एक ऐसा संग्रह है जो मौखिक रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित किया जाता है।" परम्परा को बहुत खूबसूरत ढंग से डॉ. योगेंद्र सिंह अपने लेख 'परम्परा और आधुनिकता' में स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि " परम्परा समाज की एक सामूहिक विरासत है जो कि सामाजिक संगठन के सभी स्तरों में व्याप्त होती है, जैसे मूल्य व्यवस्था, सामाजिक संरचना और व्यक्तित्व की संरचना । " (https://www.hindilibraryindia.com)

परम्परा के बारे में यह भी कहा गया कि "परम्परा सामाजिक विरासत का एक ऐसा अभौतिक अंग है जो हमारे व्यवहार के स्वीकृत तरीकों को बताती है, और जिसकी निरन्तरता पीढ़ी दर- पीढ़ी हस्तांतरण की प्रक्रिया द्वारा बनी रहती है" (दुबे, 2008)। इसी तरह परम्परा को कहा गया कि यह आस्था और विश्वास, लक्ष्य और मूल्य, साधन और क्रिया में अतीत से वर्तमान तक चली आयी निरन्तरता की धाराओं को हम परम्परा कहते हैं। यह दो धाराएं समय द्वारा जानी और समझी गईं। साथ ही यह उपयोगी और उपादेय भी है (दुबे, 2008)।

परम्परा से तात्पर्य जड़त्व का हो जाना नहीं होता अपितु अधुनिकता के साथ बेहतर सामंजस्य स्थापित करके आगे बढ़ने से है। "परम्परा और उससे अनुप्राणित संस्कृति मानव के सामूहिक अस्तित्व का अविभाज्य अंग होती हैं। परम्परा से एकाएक कट जाना धुरीहीनता की भावना को जन्म देता है " (दुबे, 2011)। संस्कृति और परम्परा किसी भी देश के लिए कोई नया पाठ नहीं है। भारत तो अपनी संस्कृति और परम्परा के लिए प्राचीनकाल से विश्वविख्यात है।

मूल्य शिक्षा संवर्धन में संस्कृति और परम्परा

भारत की संस्कृति व परम्पराओं का मुख्य आधार वैदिक संस्कृति को माना जाता है। भारतीय संस्कृति में धर्म का अभिप्राय धारण करने से लगाया जाता है जो उपासना और पूजा-पाठ से भिन्न होता है। इसमें अनेकता में एकता के अद्भुत दर्शन हमें देखने को मिलते हैं। वृहदारण्यक उपनिषद में लिखा भी है कि-

'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःख भाग्भवेत् (रूहेला, 2014/15)

अर्थात, सभी सुखी हों, सभी निरोग रहें। सभी सुंदर घटनाओं को देखने वाले अर्थात् साक्षी रहें और कभी किसी को दुःख का भागी न बनना पड़े।

लेखक वियोगी हरी द्वारा संपादित पुस्तक 'हमारी परम्परा' (2011) में लिखा गया है कि 'भारत

की संस्कृति इसलिए अजर-अमर है कि उसमें प्रत्येक भिन्नता को आत्मसात करने की अद्भुत क्षमता है। विद्वान आचार्य डॉ. राधाकृष्णन ने लिखा है कि 'भारतीय संस्कृति में जितने अधिक परिवर्तन समय-समय पर होते हैं वह उतनी ही अपरिवर्तित रहती है। यह देखा गया कि भारतीय भावना की शक्ति ने कठिन समयों में हमारे अस्तित्व को बनाए और बचाए रखा। यह एक राष्ट्र को उसका स्वरूप और महत्व देने वाले अमूर्त बलों में से एक है।'

तैत्तिरीय उपनिषद में अत्यंत आकर्षक मूल्य की चर्चा है देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम् । मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । अतिथिदेवो भव । यान्यनवद्यानि कर्माणि । तानि सेवितव्यानि । नो इतराणि । यान्यस्माकं सुचरितानि । तानि त्वयोपास्यानि ।।
(तैत्तिरीय उपनिषद्, शिक्षावल्ली 2)

अर्थात- देवकार्य तथा पितृकार्य से प्रमाद नहीं किया जाना चाहिए। माता को देव तुल्य मानने वाला, पिता को देव तुल्य मानने वाला तथा आचार्य को देव तुल्य मानने वाला बनो। अतिथि को देव तुल्य मानने वाला बनो। अर्थात् इन सभी के प्रति देवता के समान श्रद्धा, सम्मान और सेवाभाव का आचरण करें। जो अनिन्द्य अर्थात प्रशंसनीय कर्म हैं उन्हीं का सेवन किया जाना चाहिए, अन्य का नहीं। हमारे जो-जो कर्म अच्छे आचरण के द्योतक हों केवल उन्हीं की उपासना की जानी चाहिए।

तैत्तिरीय उपनिषद में ही यह भी लिखा है कि-सत्यं वद धर्मं चर स्वाध्यायान्मा प्रमदः
आचारस्य प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः
अर्थात- सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो, स्वाध्याय में आलस्य कभी मत करो। अपने श्रेष्ठ कर्मों से साधक को कभी भी जी नहीं चुराना चाहिए। (https://harshad30.wordpress.com)

भारतीय मनीषियों ने लिखा है कि 'सा विद्या या विमुक्तये अर्थात असली विद्या वह है जो आपको विकारों , दुखों , चिंताओं , जन्म मरण , शोक से रहित करके आत्मा और परमात्मा से एकाकार करे।

तैत्तिरीय उपनिषद में दान देने के ढंग और मूल्य वर्णित हैं- श्रद्धया देयम्। अश्रद्धयाऽदेयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्। (https://culturalsamvaad.com)
अर्थात- श्रद्धा एवं आदरपूर्वक दान करें। बिना श्रद्धा के दान करना उचित नहीं। अपनी सम्पत्ति के अनुरूप ही दान करो। विनम्रता से दान करो। भगवान के भय से दान करो कि उसके पास बिना दान दिए किस तरह जाऊंगा। सहृदयता से दान करो।

भारतीय संस्कृति में पर्यावरण मूल्य की जो शिक्षा हमें मिलती है वह भी अद्भुत और प्रेरणादायी है। यह देखा गया कि प्रकृति संरक्षण का कोई भी संस्कार अखण्ड भारतभूमि को छोड़कर अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। सनातन परम्पराओं में प्रकृति संरक्षण के सूत्र मौजूद हैं। हिंदुत्व तो वैज्ञानिक जीवन पद्धति है। प्रत्येक परम्परा के पीछे कोई न कोई वैज्ञानिक रहस्य छिपा हुआ है।

महर्षि पतंजलि के 'योग सूत्र' जो योग मूल्य का महान ग्रन्थ (https://patanjaliyogasutra.in/1-2-3) है में पाँच यम अर्थात पांच परम्परागत गुण (यम) की चर्चा है। यह यम बौद्ध और जैन धर्म में भी देखने को मिलते हैं। यह पाँच यम हैं-
अहिंसा - अहिंसा

सत्य - यथार्थ ज्ञान
अस्तेय - अस्तेय (चोरी का अभाव)
ब्रह्मचर्य - ब्रह्मचर्य (और)
अपरिग्रहा: - अपरिग्रह (संग्रह का अभाव) -

इन्ही पाँच यम को और विस्तार रूप देते हुए महात्मा गांधी ने एकादश व्रत को सबके सामने रखा- (https://hi.unionpedia.org)

- अहिंसा
- सत्य
- अस्तेय
- ब्रह्मचर्य
- असंग्रह (अपरिग्रह)
- शरीर श्रम
- अस्वाद
- सर्वत्र भय वर्जनं
- सर्वधर्म समानत्वं
- स्वदेशी
- स्पर्श भावना

'भारतीय संस्कृति के मूल आधार चार पुरुषार्थ हैं जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष हैं। धर्म, अर्थ और काम त्रिवर्ग के रूप में जाना जाता है जो ज्ञान गम्य कहलाता है। मोक्ष को मानव जीवन का अनुभव गम्य अन्तर्ज्ञान और इसे ही जीवन का चरम उद्देश्य माना गया है। संस्कृति मूल्यों पर निर्भर एक धारणा है जो मानव जीवन के किसी मूल्य निकाय की ओर हमें निर्देश करती है' (दुबे, 2000)।

प्रसिद्ध भारतीय समाज वैज्ञानिक प्रो. श्यामाचरण दुबे ने परम्परा के बारे में बहुत सुंदर बात कहीं । वह लिखते हैं कि- 'दार्शनिक चिंतन के आधार पर प्राचीन भारत के मनीषियों ने मूल्यों और आदर्श समाज-व्यवस्था की, जो परम्परा विकसित की वही परम्परा का आधार है । लोकाचार और लौकिक परम्पराएं बलवती सिद्ध हुई हैं। उनके लघु परम्पराओं के अनेक तत्व महान परम्परा में प्रतिष्ठित हुए' (दुबे, 2011)।

भारतीय संस्कृति और परम्परा किसी भी देश की तुलना में अधिक व्यावहारिक, वैज्ञानिक और सामाजिक ताने-बाने से युक्त, राष्ट्र एवं विश्वबन्धुत्व की भावना से ओत-प्रोत है। व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र के सर्वांगीण विकास पर आधारित संस्कृति और परम्परा का मूल्य शिक्षा के संवर्धन में प्रमुख भूमिका को उक्त सामग्री संदर्भित, रेखांकित और प्रमाणित करने के महत्वपूर्ण तथ्य का उद्घाटन करते हैं।

निष्कर्ष

मूल्य शिक्षा संवर्धन में संस्कृति और परम्परा की भूमिका विषयक प्रस्तुत अध्ययन में उपलब्ध साहित्य और विद्वानों के विचार से निष्कर्षतः निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं-

- मूल्य शिक्षा में भारतीय संस्कृति और सभ्यता की बहुत बड़ी भूमिका है। वैदिक साहित्य में भारतीय

जीवन मूल्य को जिस तरह से वैज्ञानिक ढंग से तथ्यों के साथ रखा गया है, वह अद्वितीय है।

- तथ्यों के प्रस्तुति और विश्लेषण से प्राप्त हुआ कि भारत में परम्पराओं का बहुत अधिक महत्व है और मूल्य शिक्षा भी परम्पराओं से अनुप्राणित है । परम्परा कोई सतही और कुछ भी मान लेने की विषयवस्तु नहीं है, अपितु भारतीय संदर्भ में परम्परा को जड़त्व से दूर रखकर वैज्ञानिक ढंग से सोचने की एक दृष्टि देती है।
- वैदिक साहित्य विशेषकर उपनिषद मूल्य शिक्षा से आच्छादित हैं। उपनिषदों और वेद की ऋचाओं में जिस तरह के मूल्य वर्णित हैं वह अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।
- मूल्य और मूल्य शिक्षा आज समाज के लिए बहुत बड़ी आवश्यकता है। तकनीकी युग में जब मनुष्य मशीन बनता जा रहा है वैसे समय में इसको प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा के विभिन्न पाठ्यक्रमों, संस्थाओं और परिवार में तीव्रता से अधिरोपित करने की जरूरत है।
- मूल्य शिक्षा की वैचारिकी को लोगों के सामने लाने की आवश्यकता है जिससे बेहतर मनुष्य का निर्माण हो सके।

संदर्भ सूची

दुबे, सत्यनारायण. (2000). *मूल्य-शिक्षण*. इलाहाबाद-2: शारदा पुस्तक भवन, पब्लिशर्स एन्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, पृष्ठ-01, पृष्ठ. 25, 109।

दिनकर, रामधारी सिंह. (2019). *संस्कृति के चार अध्याय*. प्रयागराज-01: लोक भारती प्रकाशन, पृष्ठ-27।

दुबे, श्यामाचरण. (2008). *परम्परा और परिवर्तन*. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ।

दुबे, श्यामाचरण. (2011). *समय और संस्कृति*. दिल्ली-32: साक्षरा प्रकाशन , पृष्ठ-17।

रूहेला, एस.पी. (2014/15). *शिक्षा के दार्शनिक तथा समाजशास्त्रीय आधार*. आगरा पब्लिकेशन्स।

दुबे, श्यामाचरण. (2011). *समय और संस्कृति*. दिल्ली-32: साक्षरा प्रकाशन , पृष्ठ-26।

https://www.hindilibraryindia.com/essay/A7-essay-on-tradition-in-hindi-india-sociology/ (एन.डी.) से उद्धृत।

https://harshad30.wordpress.com/2015/05/23/A6 (एन.डी.) से उद्धृत।

https://culturalsamvaad.com/thought/on-giving-taittiriya-upanishad-(एन.डी.) से उद्धृत।

https://patanjaliyogasutra.in/1-2-3 (एन.डी.) से उद्धृत।

https://hi.unionpedia.org/(एन.डी.) से उद्धृत।

लोक वनस्पति विज्ञान में उपयोगी पेड़-पौधे (बिलासपुर, हिमाचल प्रदेश के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ. रोमिता देवी*

सारांश

लोक वनस्पति विज्ञान अथवा एथनोबाटनी वनस्पति विज्ञान की वह शाखा है जो वनस्पतियों एवं स्थानीय लोगों के मध्य अंतर्संबंध को व्याख्यायित करती है। इस प्रकार लोक वनस्पति विज्ञान की सहायता से हम मनुष्य और पेड़-पौधों के बीच के अंतर्संबंध और स्थानीय संस्कृति में इनके महत्त्व एवं स्थान को व्याख्यायित करते हैं। हमारे देश में प्रकृति और मानव सभ्यता का यह अंतर्संबंध बहुत महत्वपूर्ण है एवं वैदिक काल से ही हमने वनस्पतियों को उनके गुणों, उपयोगिता एवं उनकी सुन्दरता के लिए पूजा है, उनकी प्रशंसा की है और उन्हें अपने जीवन में स्थान दिया है। हमारे संस्कार, कर्मकांड, सामाजिक परम्पराएँ, रीति-रिवाज, लोक व्यवहार में इन पेड़-पौधों को बड़े ही आदर के साथ समाहित किया गया है एवं इनकी रक्षा और संवर्धन के लिए भी बहुत से नियम बनाए गए हैं। आज आधुनिकता की दौड़ में एवं भौतिकवादी दृष्टिकोण के चलते हमारा इन पेड़-पौधों के सम्बंध में ज्ञान सीमित होता जा रहा है। ऐसे में इन वनस्पतियों की जानकारी और उपयोगिता को रेखांकित करना और शोधपरक रूप में प्रस्तुत करना एक उपयोगी कार्य हो सकता है। प्रस्तुत शोध पत्र में लोक वनस्पति विज्ञान में अनुमन्य शोध विधि के माध्यम से चयनित क्षेत्र में उपलब्ध पेड़-पौधों का वर्गीकरण एवं विवरण प्रस्तुत किया गया है।

बीज शब्द: लोक वनस्पति विज्ञान, वानस्पतिक वर्गीकरण, पारम्परिक ज्ञान, ग्रामीण, प्रकृति

प्रस्तावना

प्रकृति अपने आप में संपूर्ण है। प्रकृति मानव जीवन की जरूरतों को पूर्ण करने में सक्षम है परंतु मनुष्य की लालसा पूर्ण नहीं कर सकती। पेड़-पौधे कुदरत की अनमोल देन हैं। हरे-भरे पेड़-पौधे पृथ्वी पर जीवन का संचार करते हैं। प्राचीन ग्रंथों में वर्णित पेड़-पौधों का भारतीय संस्कृति में भी बहुत महत्व है। हमारी संस्कृति में वनस्पतियों को पूजित माना गया है। प्राचीन काल से ही हम नीम, पीपल, बरगद, शमी, बांस के साथ-साथ अपने आसपास पाए जाने वाले पौधों को पूजते रहे हैं और इनका अपने सांस्कृतिक अनुष्ठानों में उपयोग करते रहे हैं। इन पेड़-पौधों का उपयोग बड़े पैमाने पर कारगर रूप में हमारी अनेक प्रकार की व्याधियों में होता रहा है और इस प्रकार बिना किसी हानिकारक प्रभाव के यह सदियों से हमारी सेवा भी करते रहे हैं।

ग्रामीण भारत के लोग प्रकृति पर बहुत ज्यादा निर्भर रहते हैं। यहां के लोग पेड़-पौधों का उपयोग पशुओं के लिए चारे, साग-सब्जी, ईंधन, इमारती लकड़ी तथा बहुत सी बीमारियों के उपचार हेतु करते हैं। देवभूमि हिमाचल प्रदेश हिमालय के आंचल में बसा एक पहाड़ी राज्य है। हिमाचल प्रदेश के अधिकांश लोग ग्रामीण पृष्ठभूमि के हैं तथा प्रकृति पर निर्भर रहते हैं। गांव के लोग सरल स्वभाव के हैं और गांव में ही

*सहायक प्राध्यापक, जैव-विज्ञान विभाग, एमएलएसएम कॉलेज, सुंदरनगर, जिला मंडी, हिमाचल प्रदेश।

रह कर अपना जीवन यापन करते हैं। जीवन के साधन कम होते हुए भी लोग प्रकृति की गोद में खुश रहते हैं। हिमाचल प्रदेश में विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधे पाए जाते हैं जिन्हें स्थानीय निवासी विभिन्न रूप से अपने दैनिक जीवन में उपयोग करते हैं। हरे-भरे पेड़-पौधे केवल पशुओं के चारे के लिए उपयोग में नहीं लाए जाते परंतु पारंपरिक औषधि के रूप में भी प्रयोग किए जाते हैं। यह शोध पत्र हिमाचल प्रदेश के बिलासपुर जिला में पाए जाने वाले विभिन्न पेड़-पौधों के लोक वनस्पति विज्ञान में उपयोग को वर्णित करता है।

बिलासपुर जिला हिमाचल प्रदेश में शिवालिक पहाड़ियों के बीच स्थित है। बिलासपुर जिला गोविंद सागर झील तथा शक्तिपीठ श्री नैना देवी जी के लिए प्रसिद्ध है। बिलासपुर जिले का पुराना नाम कहलूर है । बिलासपुर जिला में चार तहसीलें नैना देवी, झंडुत्ता, घुमारवीं व बिलासपुर सदर हैं ।

सारणी 1: अध्ययन क्षेत्र की प्रमुख वनस्पतियाँ

क्रम संख्या	पौधे का स्थानीय नाम	पौधे का वैज्ञानिक नाम	कुल (परिवार)	उपयोग	उपयोगी भाग
1	बसूटी	*Adhatoda vasica Nees*	Acanthaceae	बदन का दर्द, फूलों का काढ़ा खांसी के लिए	टहनियां, पत्ते, फूल
2	बणा	*Vitex negundo L.*	Verbenaceae	पशुओं के पेट के रोगों के लिए, सांप का जहर उतारने के लिए, पेटदर्द सूजन	जड़ें, टहनियां
3	दरेक (नीम)	*Azadirachta Indica A . Juss.*	Meliaceae	त्वचा के लिए, पेट के कीड़े मारने के लिए, सिर की जुएं मारने, जलने पर	पत्ते
4	भटिंडू	*Cissampelos pareira L.*	Menisperma ceae	पशुओं के पेट के रोगों के उपचार लिए	पत्ते, जड़ें
5	छुछ	*Nasturtium officinale R. Br.*	Brassicaeae	पेटदर्द, फोड़े फुंसियों के लिए	पत्ते
6	करयाला	*Bauhnia variegate L.*	Fabaceae	इमारती लकड़ी, सब्जी, सूप	पत्ते, फूल, लकड़ी
7	टाली	*Dalbergia sissoo Roxb.-ex-D.C.*	Fabaceae	इमारती लकड़ी, पशुओं के चारे और बिछौने के लिए	पत्ते, लकड़ी

8	तरयाम्बलू	*Ficus roxburghi Wall.*	Moraceae	अचार, पशुओं के चारे, दाद रोगों के लिए	फल, पत्ते, लकड़ी
9	पुठकंडा	*Achyranthes aspera L.*	Amaranthaceae	खांसी के लिए	टहनियां, फूल
10	ब्राह्मी	*Centella asiatica L.*	Apiaceae	मुंह के छाले, पेटदर्द के लिए	पत्ते
11	लंब	*Bidens pilosa L.*	Asteraceae	पेटदर्द के लिए, पशुओं के चारे, कान दर्द, मासिक	पत्ते
12	पूगरू	*Tridex procumbens L.*	Asteraceae	चोट या कट लगने, सिर दर्द के लिए	पत्ते, जड़ें

1. स्थानीय नाम : बसूटी (*Adhatoda vasica* Nees Family Acanthaceae)

उपयोग : बसूटी का पौधा पशुओं के चारे के लिए उपयोग किया जाता है। दुधारू पशुओं को खल (Brassica campesptris) और बडुओं (Cotton Seeds) के साथ मिलाकर खिलाने से दुधारू पशुओं का दूध बढ़ जाता है। पत्तों और टहनियों को सुखाकर पानी में उबाला जाता है और उस पानी से नहाने से जच्चा के बदन का दर्द कम हो जाता है। इसके फूलों को सुखाकर काढ़ा बनाया जाता है जिससे खांसी में आराम मिलता है। इस प्रकार बसूटी का पौधा मनुष्य और जानवरों दोनों के लिए उपयोगी होता है।

2. स्थानीय नाम : बणा (*Vitex negundo* Linn. Family Verbenaceae)

उपयोग : यह पौधा पशुओं के पेट के रोगों को ठीक करने के लिए उपयोगी होता है। पौधे को सुखाकर पानी में उबाला जाता है और प्रसूता मादा और बच्चे को उस पानी से नहलाया जाता है। पौधे की जड़ों को सुखाकर पाऊडर बनाया जाता है। इस पाऊडर में अजवायन मिलाकर पेटदर्द में उपयोग किया जाता है। सांप का जहर उतारने के लिए भी पौधे का उपयोग किया जाता है। शरीर के किसी भी अंग पर सूजन होने पर बणा के पत्तों को गर्म पानी में डालकर सेंक दिया जाता है जिससे सूजन कम हो जाती है। इस तरह से यह पौधा बहुविध उपयोग में लाया जाता है।

3. स्थानीय नाम : दरेक (नीम) (*Azadirachta Indica* A . Juss. Family Meliaceae)

उपयोग : दरेक (नीम) के हरे पत्तों को आंवला पाऊडर के साथ मिलाकर पेस्ट बनाया जाता है जो सिर की जुएं मारने के लिए उपयोग किया जाता है। पत्तों को पानी में उबालकर खाली पेट पीने से पेट के

कीड़े मारने के लिए उपयोग किया जाता है। जल जाने पर नीम की पत्तियों को पीसकर उसका पेस्ट बना कर जलने वाली जगह पर लगाने से आराम मिलता है। फोड़े और फुंसियों के ऊपर नीम की पत्तियों का पेस्ट लगाने से फोड़े-फुंसी ठीक हो जाते हैं। नीम के तेल में कपूर मिलाकर शरीर पर लगाने से त्वचा के रोग ठीक हो जाते हैं।

4. स्थानीय नाम : भटिंडू (*Cissampelos pareira* L. Family Menispermaceae)

उपयोग : भटिंडू की बेल को हरे पत्तों सहित दुधारू पशुओं में दूध की मात्रा को बढ़ाने के चारे के रूप में दिया जाता है। पौधे को बणा और बसूटी के पत्तों के साथ पशुओं के पेट के रोगों के उपचार के लिए दिया जाता है।

5. स्थानीय नाम : छुछ (*Nasturtium officinale* R. Br. Family Brassicaeae)

उपयोग : पशुओं को चारे में दिया जाता है। हरे पत्तों को सब्जी और सलाद के लिए उपयोग किया जाता है। पत्तों का जूस बनाकर खाली पेट पीने से पेटदर्द ठीक हो जाता है। जड़ों को पेस्ट बनाकर फोड़े-फुंसियों पर लगाने से ठीक हो जाती हैं।

6. स्थानीय नाम : करयाला (*Bauhnia variegate* L. Family Fabaceae)

उपयोग : पशुओं के चारे के लिए पत्तों का उपयोग किया जाता है। सूखी लकड़ी जलाने के काम आती है। इसके फूलों और कलियों की सब्जी बनाई जाती है। लकड़ी इमारती होती है। फूलों और कोंपलों का सूप भी बनाया जाता है।

7. स्थानीय नाम : टाली (*Dalbergia sissoo* Roxb.-ex-D.C. Family Fabaceae)

उपयोग : पत्तों को पशुओं के चारे और बिछौने के लिए उपयोग किया जाता है। बिछौने के बाद स्थानीय खाद बनाई जाती है। लकड़ी से हल (Plough) बनायह जाते हैं। लकड़ी इमारती होती है।

8. स्थानीय नाम : तरयाम्बलू (*Ficus roxburghi* Wall. Family Moraceae)

उपयोग : पत्तों को पशुओं के चारे के लिए उपयोग किया जाता है। खाद्य फलों का अचार बनाया जाता है। लकड़ी को ईंधन के रूप में उपयोग किया जाता है। पत्तों से पत्तल (प्लेट) बनाई जाती है। पेड़ की छाल से बने पेस्ट को दाद रोगों के लिए उपयोग किया जाता है। पके हुए तरयाम्बलू को फल के रूप में खाया जाता है।

9. स्थानीय नाम : पुठकंडा (*Achyranthes aspera* L. Family Amaranthaceae)

उपयोग : इसकी टहनियां दांत साफ करने के लिए इस्तेमाल होती हैं। टहनियों और फूलों को सुखाकर काढ़ा बनाया जाता है जिसे खांसी में उपयोग किया जाता है। सायर के दिन सुबह-सुबह पूरा परिवार अन्य जड़ी-बूटियों के साथ पुठ कंडे के पौधे की पूजा करता है।

10. स्थानीय नाम : ब्राह्मी (*Centella asiatica* L. Family Apiaceae)

उपयोग : हरे पत्ते मुंह के छाले ठीक करने के लिए चबाए जाते हैं। हरे पत्तों का जूस बादाम और मिसरी मिलाकर बच्चों को देने से दिमाग बढ़ता है। खाली पेट पत्तों का जूस पीने से पेटदर्द ठीक हो जाता है। ब्राह्मी के पत्तों का नियमित रूप से उपयोग करने से शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली मजबूत हो जाती है जिससे बीमारियों से लड़ने में शरीर सक्षम बनता है।

11. **स्थानीय नाम : लंब (*Bidens pilosa* L. Family Asteraceae)**

उपयोग : चारे के रूप में उपयोग होता है। पत्तों को ब्रह्मी और बसूटी के पत्तों के साथ उबालकर पेटदर्द होने पर दिया जाता है। ताजे पौधे का रस निकालकर एक से दो बूंद कान में डालने से कान दर्द से छुटकारा मिलता है। पौधे के बीजों को अजवाइन के साथ मिलाकर काढ़ा बनाकर पीने से मासिक विकार में आराम मिलता है।

12. **स्थानीय नाम : पूगरू (*Tridex procumbens* L. Family Asteraceae)**

उपयोग : पत्तों का जूस निकालकर चोट या कट लगने पर खून निकलने वाली जगह पर लगाया जाता है। जड़ों को सुखाकर ब्रह्मी के पौधे के साथ पेस्ट बनाकर सिर पर लगाने से सिर दर्द ठीक हो जाता है।

क्रियाविधि

यह शोध पत्र जैन (1987) द्वारा उल्लेखित क्रिया विधि पर आधारित है और सूखी पत्तियों के संग्रह जैन व राव (1977) द्वारा उल्लिखित ज्ञात प्रथाओं के पालन के अनुसार बनाए गए हैं। एकत्रित प्रजातियों की वानस्पतिक पहचान क्षेत्रीय फूलों (चौहान, 1999; चौधरी व वाधवा, 1984; कोलेट, 1902; धीमान,1976; पोलूनीन व स्टेनटन, 1984; स्टेनटन, 1988) की सहायता से की गई है।

आंकड़ों का संग्रहण

इस शोधपत्र के लिए आंकड़े (डेटा) बिलासपुर जिला के घुमारवीं, गलासी, झंडूता, कंदरौर, चांदपुर, दधोल, बरठी, पेढवी, गेहड़वी, भगेड़, दाबला, तथा कुरनाड़ी गांवों के वयोवृद्ध और जानकार लोगों से लिए गए हैं जो वहां के स्थाई निवासी हैं तथा वर्षों से पौधों की विविधता का उपयोग करते आ रहे हैं। इन गांवों में यह पौधे बहुतायत में पाए जाते हैं। तथ्य संकलन हेतु अनुभवी लोगों को चिन्हित करने के लिए गाँव के लोगों से बातचीत कर प्रत्येक गाँव से लोगों को चिन्हित किया गया और उनसे साक्षात्कार विधि द्वारा असंरचित प्रश्न सूची की सहायता से जानकारी एकत्रित की गई। सर्वेक्षण और तथ्य संकलन हेतु सुविधा प्रतिचयन विधि एवं अवलोकन विधि का उपयोग किया गया है।

परिणाम व चर्चा

कुल 12 पौधों की प्रजातियां जो कि 10 परिवारों से हैं, अध्ययन क्षेत्र में अलग-अलग उद्देश्य के लिए सामान्य उपयोग में पाई गईं। इन सभी पेड़-पौधों के बारे में पारंपरिक ज्ञान को सहेजने की आवश्यकता है क्योंकि जनसंख्या वृद्धि और शहरीकरण के कारण इन पेड़-पौधों की प्रजातियां धीरे-धीरे कम होती जा रही हैं तथा इन पेड़-पौधों का ज्ञान रखने वाले लोगों की संख्या भी कम होती जा रही है। पेड़-पौधों के बारे में पारंपरिक ज्ञान सदियों से एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित करती आ रही है जिसे अगली पीढ़ी तक ले

जाना हमारा कर्तव्य है। इस संबंध में पढ़े-लिखे युवाओं को आगे आकर इस पारंपरिक ज्ञान का प्रलेखन करना चाहिए जिससे आने वाली पीढ़ी भी प्रकृति के इस अनमोल खजाने का लाभ उठा सके।

निष्कर्ष

कहा जा सकता है कि पारम्परिक वानस्पतिक ज्ञान अभी भी मानव समाज के लिए उसी तरह उपयोगी है जिस तरह से यह पूर्व में रहा है। दुर्भाग्यवश शहरीकरण, पश्चिमीकरण, और नई पीढ़ी की अरुचि के चलते यह ज्ञान पारम्परिक रूप से स्थानांतरित नहीं हो रहा है। इसके साथ-साथ वन उन्मूलन और सजावटी तथा आयातित पौधों की बढ़ोत्तरी के चलते इन वनस्पतियों का क्षेत्र सीमित होता जा रहा है जिससे इनकी उपलब्धता भी प्रभावित हो रही है। विदेशी प्रजाति के पौधों के अतिक्रमण की वजह से स्थानीय प्रजाति के पौधे कम होते जा रहे हैं। भूमि ऊसर बनती जा रही है। कोविड-19 जैसे संक्रमण के काल में भी यह पौधे अपनी उपयोगिता सिद्ध कर चुके हैं। इसके अतिरिक्त हमारे दैनिक जीवन में भी इनका महत्त्व बना हुआ है। आज आवश्यकता है इनसे जुड़े ज्ञान को लिपिबद्ध करने और लोगों तक पहुँचाने की जिसके लिए स्थानीय समाज, पंचायत और सरकार सभी को मिलकर प्रयास करना चाहिए। आयुर्वेद और पारम्परिक लोक वनस्पति विज्ञान हमारी सदियों से सहेजी हुई थाती है और हमारी संस्कृति का अमूल्य हिस्सा है। इसे संरक्षित करना चाहिए और इनका उपयोग करना चाहिए।

संदर्भ सूची

चौहान, एन. एस. (1999). *Medicinal and Aromatic Plants of Himachal Pradesh*. New Delhi: Indus Publ. Co.

मैमगेन, एम. डी. (1975). *हिमाचल प्रदेश डिस्टिक गैजेटियर*. चंडीगढ़ : ग्रेटर पंजाब प्रेस।

एमवस्टा, एस. पी. (1986). *The Useful Plants of India*. New Delhi: Publication and Information Directorate, C.S.I.R.

एनोनिमस (1987). *Standardisation of single drugs of unani medicine*. New Delhi.

बेनेट, एस. एस. आर. (1986). *Name changes in Flowering Plants of India and Adjacent regions*. Dehradun: Triseas Publishers, India.

बीसैट, एन. जी. (1994). *Herbal drugs and phytopharmaceuticals*. Boca Raton, FL, CRC Press.

बोरा, पी. जे. (2000). *A study on ethnomedicinal uses of plants among the Bodo tribe of north east India:* 583-589. In Maheshwari, J.K. (eds.): Ethnobotany and Medicinal Plants of Indian Subcontinent. Sci. Publ., Jodhpur (India).

चौधरी, एल. बी. आनंद, के. के. एंड श्रीवास्तव, आर. के. (2007). *A taxonomic study of endemic species of Astagalus L. (Fabaceae) of India*. Taiwania: 52: 25-48.

चौधरी, एच. जे. एंड वाधवा, बी. एम. (1984). *Flora of Himachal Pradesh*. Calcutta: Vol. 1-3. Bot. Surv. India.

कोलेट, एच. (1902). *Flora Simlensis.* Thacker Spink and Co. Calcutta and Shimla, Reprinted 1971. Bishen Singh Mahendra Pal Singh, Dehradun (India).

धीमान, डी. आर. (1976). *Himachal Pradesh Ki Vanoshdhiya Sampada*. Dharamsala : Imperial Printing Press, H.P.

जैन, एस.के. एंड राव, आर. आर. (eds.) (1977). *A Handbook of Field and Herbarium Methods.* New Delhi: Today's and Tomorrow's Printers and Publ.

जैन, एस. के. (1987). *A Manual of Ethnobotany*. Jodhpur: Sci. Publ.

पोलूनीन, ओ. एंड स्टेनटन, ए. (1984). *Flowers of the Himalaya*. Delhi: Oxford Univ. Press.

सेठ, एम. के. (2006). *Floral survey of the Chandertal wetland: progress report*. submitted to SCSTE, H.P.

स्टेनटन, ए. (1988). *Flowers of Himalaya, A Supplement*. Delhi: Oxford Univ. Press.

लांजिया सौरा जनजाति में सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन: एक सारगर्भित विश्लेषण

विक्रम कुमार जेना*
देवी प्रसाद**

सारांश

उड़ीसा के रायगड़ा जिले के पुट्टासिंग पंचायत में निवास करने वाली लांजिया सौरा प्राचीन भारतीय जनजातियों में से एक है। ईसाई मिशनरियों का हस्तक्षेप अधिक होने के कारण सौरा जनजाति में धार्मिक रूपांतरण तेजी से हो रहा है। आज यह जनजाति अपनी पुरानी सांस्कृतिक धरोहर तथा परंपरागत मूल्यों को बचाने के लिए जद्दोजहद कर रही है। प्रस्तुत आलेख में धार्मिक रूपांतरण से उत्पन्न अस्मिता संकट तथा समाज की मुख्य धारा में आने की छटपटाहट व द्वंद को सौरा जनजाति में प्रचलित सामाजिक-सांस्कृतिक मान्यताओं, आचार-व्यवहार, वंशावली, पारंपरिक रीति-रिवाज, मौखिक इतिहास और पारंपरिक कला (इडीताल या भित्ति चित्रों) आदि की सहायता से समझने प्रयास किया गया है।

बीज शब्द: इडीताल, जनजाति, धार्मिक रूपांतरण, परंपरा, मिथक

प्रस्तावना

भारतीय जनगणना 2011 के अनुसार उड़ीसा की जनजातीय आबादी लगभग 9.5 मिलियन है, जो राज्य की कुल जनसंख्या का 22.85 प्रतिशत और भारत की जनसंख्या का 9.17 प्रतिशत है। उड़ीसा राज्य में रायगड़ा जिले की कुल आबादी (832019) में आधे से ज्यादा आदिवासियों की संख्या (473379) है । प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र पुट्टासिंग पंचायत में लगभग 4911 सौरा जनजातियां निवास करती हैं (जेना, 2018; प्रसाद और बिभार, 2020)। पुट्टासिंग पंचायत के अंतर्गत छब्बीस गाँव आते हैं। यह क्षेत्र पहाड़ियों से घिरा हुआ है, जिसमें कुछ गाँव पहाड़ी क्षेत्र के ऊपर भी हैं। स्थानीय लोगों का मानना है कि सौरा जनजाति के कुछ जागरूक लोगों ने इन पहाड़ियों पर काजू के पेड़ को पैसा कमाने के लिए लगाया था, लेकिन आजकल यह पूरा पहाड़ी इलाका काजू का जंगल बन गया है। आली (कैरीओटा यूरेंस) और खजूर के पेड़ भी इन इलाकों में देखें जा सकते हैं जो सौरा जनजाति के लिए मादक पदार्थों के प्रमुख स्रोत हैं।

उद्देश्य

रायगड़ा जिले के पुट्टासिंह पंचायत की लांजिया सौरा जनजाति में विद्यमान सांस्कृतिक धरोहरों एवं सामाजिक मान्यताओं का अध्ययन

ईसाई मिशनरियों के प्रभावस्वरूप लांजिया सौरा जनजाति में परिलक्षित नवीन सांस्कृतिक मूल्यों का अध्ययन

*सहायक प्राध्यापक, मानवशास्त्र विभाग, मॉडल डिग्री कॉलेज, देवघर, उड़ीसा।
*डॉक्टोरल फैलो, समाजशास्त्र विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय।

अध्ययन पद्धति

प्रस्तुत शोध पत्र एथनोग्राफिक पद्दति पर आधारित है तथा प्राथमिक आंकड़ों के संग्रह के लिए साक्षात्कार, 'केंद्रित समूह चर्चा', अवलोकन आदि शोध तकनीकों को अपनाया गया है। पच्चीस से अधिक शोध प्रतिभागियों के साथ साक्षात्कार आयोजित करने के लिए असंरचित साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है। कुडनबोई (एक महिला पुजारी), स्थानीय चर्च पुजारी, गमंगा (पारंपरिक ग्राम प्रधान), इडिताल निर्माता (पारंपरिक दीवार चित्रकार), आदि सौरा जनजाति के प्रमुख किरदार हैं जिनकी सहायता से अनेक वस्तुओं और सांस्कृतिक धरोहरों के महत्त्व और दैनिक जीवन में उन वस्तुओं की उपयोगिता को समझने में सहायता मिली है।

वंशावली एवं नृजातीय पहचान

अगर हम प्रजातीय सन्दर्भ में लांज़िया सौरा जनजाति को देखें तो पाते हैं कि सौरा समुदाय का प्रोटो-ऑस्ट्रलायड स्टॉक के साथ नस्लीय संबंध है (ओटा एवं मोहंती, 2010)। लांज़िया सौरा की नस्लीय उपस्थिति अन्य प्री-द्रविड़ियन गुणों से मिलती-जुलती है। सौरा जनजाति की शारीरिक संरचना का विश्लेषण करें तो पाते हैं कि इनका सिर लंबा होता है तथा नाक सपाट होती है। उनके चेहरे पर परगोनाथिस्म (prognathism) के निशान होते हैं और त्वचा का रंग गहरा भूरा होता है (मोहंती और मोहंती, 2009)। पुट्टासिंग क्षेत्रों में लहरदार, सीधे, घुंघराले बाल (संरचना) वाले सौरा निवास करते हैं।

सौरा जनजातियों के बारे में हम उनके मौखिक इतिहास, रॉक कला (विशेषकर उड़ीसा की गुफाएँ), प्राचीन पवित्र (हिंदू) ग्रंथों जैसे रामायण, महाभारत, आदि के माध्यम से जान सकते हैं जिसकी विश्वासनीयता काफी संदिग्ध मानी जाती है। कुछ लोगों का मत है कि रामायण में उल्लिखित 'माता सबरी' जिन्होंने वनवास (निर्वासन) के दौरान राम को फल दिया था, वह एक सौरा आदिवासी महिला थी (पटेल, 2005)। यह मौखिक किवदंती लांज़िया सौरा जनजाति के दर्शन से निकटता से जुड़ी हुई है। ऐसा माना जा सकता है कि रामायण की कहानी संभवत: मेसोलिथिक काल से आधुनिक नवपाषाण काल तक की हो सकती है। एक स्थानीय किवदंती है कि महाभारत के अंत में जारा सावरा ने भगवान विष्णु को मार डाला। विश्ववसु एक सौरा प्रमुख, नीलामाधव विष्णु (भगवान जगन्नाथ: एक हिंदू देवता) के उपासक थे। खारवेल राजा के प्रसिद्ध हाथी गुम्फा में एक शिलालेख है जो यह दिखाता है कि 100 ईसा पूर्व से यह जनजाति इस स्थान पर रह रही है (पटेल, 2005)।

एक स्थानीय शिक्षक ने बताया कि सौरा शब्द के दो लाक्षणिक अर्थ निकाले जाते हैं: एक अर्थ ईरानी शब्द पर आधारित है जिसका अर्थ है कुल्हाड़ी। जबकि दूसरा अर्थ संस्कृत शब्द 'सबा रोय' (Saba Roye) से जुड़ा है जिसका अर्थ है 'मृत शरीर ढोने वाला'। इस जनजाति पर कई अध्ययन किए गए और संस्कृति, रीति-रिवाज, मिथक, विश्वास आदि महत्वपूर्ण पहलुओं पर लिखा गया। लेकिन बहुत कम लोगों ने सामाजिक प्रथाओं के 'प्रतीकात्मक अर्थ', शक्ति-सोपान तथा पारिवारिक संरचना पर ध्यान दिया जिसका विस्तृत विवेचन आगे किया जाएगा।

जीवनयापन के तरीके और आर्थिक जीवन

एक किसान के रूप में पहाड़ी की तलहटी में रह रहे पुटासिंग क्षेत्र का सौरा समुदाय आमतौर पर अपने पारंपरिक काम के हिस्से के रूप में पैसा कमाने के लिए 'इडीताल' बनाने में रुचि रखता है। इडीताल

बनाने का कार्य धार्मिक विश्वास से जुड़ा होने के कारण इडाईमार (चित्रकार) इसे 'पवित्र' (सेक्रेड) कार्य मानता है (पटनायक, 1989)। आजकल लंजिया सौरा समुदाय को 'बाहरी' (विदेशी पर्यटकों) लोगों के साथ मिलना-जुलना पड़ता है। अब उन्हें सिर्फ जंगल से जोड़ना या प्रकृति पर निर्भर रहने वाला बताना असल मुद्दों से भटकना होगा। आज इडाईमार अपनी पेंटिंग विदेशी पर्यटकों को ऊंचे दाम पर बेचते हैं।

इस समुदाय के कुछ व्यक्ति जीवनयापन के लिए मजदूरी तथा कुछ सरकारी विभागों में कार्यरत हैं। आर्थिक निर्वाह हेतु परिवार के पुरुष और महिला सदस्य बिना किसी लिंग-आधारित पूर्वाग्रह के काम करते हैं। पुरानी पीढ़ी के लोग हाल में हुए सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों से कम प्रभावित दिखते हैं और वह पुरानी परंपरा पर निर्भर रहते हैं। उदाहरण के लिए वह जंगल में जाना पसंद करते हैं और दिन में तीन बार (सुबह, दोपहर और शाम) नियमित रूप से ताड़ी (शराब) का सेवन करते हैं। ताड़ी पीने की आदत पुरुष और महिला दोनों में देखी जा सकती है। भारतीय समाज में ऐसी पारंपरिक आदतें, पारस्परिकता, सामाजिक विश्वास और सामाजिक संस्थाएं एक सार्वभौमिक घटना है और इसे ग्रामीण भारत के अन्य हिस्सों में भी देखा जा सकता है (प्रसाद, 2018)।

सौरा जनजाति में पारिवारिक ढांचा

अधिकांशतः यह देखा गया कि बूढ़ा व्यक्ति अपने बच्चों पर निर्भर रहता है। सौरा जनजाति के संदर्भ में यदि हम गहराई से दृष्टि डालें तो पाते हैं कि अधिकांश परिवारों में एकल परिवार की प्रथा है। नए सौरा जोड़े शादी करने के बाद अलग घर में रहना शुरू कर देते हैं। हालांकि नया घर उनके पुराने (माता-पिता के) घर के बगल में ही बनाया जाता है। यदि नवविवाहित दंपत्ति अलग से घर नहीं बनाना चाहते हैं तो उनके माता-पिता उस नए जोड़े के लिए एक अलग कक्ष पुराने घर में ही जोड़ देते हैं। परंपरागत रूप से लंजिया सौरा समाज में बहुपत्नी विवाह (पॉलीजेनिक विवाह प्रणाली) प्रथा पाई जाती है (ओटा और मोहंती, 2007)। लेकिन सांस्कृतिक परिवर्तनों और ईसाई धर्म की उपस्थिति के कारण पिछले कई वर्षों से नई पीढ़ियों को एकाकी विवाह करने के लिए प्रोत्साहन मिल रहा है। अधिकांश रूप से यह देखा जा सकता है कि पुरानी पीढ़ियों (बूढ़े लोगों) में उनकी एक से अधिक पत्नियां हैं। इसके पीछे एक तर्क यह है कि जंगल में खेती करने के लिए या अधिक भूमि रखने वाले व्यक्ति के पास कई पत्नियां रखना मजबूरी होती थी। सौरा समाज में दहेज की व्यवस्था ने बहुविवाह की परंपरा को खत्म कर दिया है। एक महिला से शादी करने के लिए दूल्हे के परिवार को नकद 'पानशाल' (दुल्हन की कीमत) का भी भुगतान करना पड़ता है। पूर्व निर्धारित तिथि के दिन दूल्हा पक्ष दुल्हन के घर जाता है और साथ में शराब के नौ बर्तन भी ले जाता है तथा शादी की रस्मों को पूरा करता है।

सौरा जनजाति में शक्ति संरचना

लंजिया सौरा जनजाति में कोई गोत्र नहीं होता है लेकिन वह एक ही सामान्य पूर्वज पर विश्वास करते हैं। प्रायः चार से पांच पीढ़ियों के सदस्य मिलकर रहते हैं जिसे 'बिरिंडा' (विस्तारित परिवार) कहा जाता है। बिरिंडा का गठन एक सामान्य पूर्वज के तहत किया जाता है जो चार से पांच पीढ़ियों का प्रतिनिधित्व कर सकता है। बिरिंडा की शक्ति संरचना का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि बिरिंडा के प्रमुख या मुखिया को 'नायक' कहा जाता है जबकि उसके सहायकों को 'मंडल' और 'दलबहेरा' कहा जाता है। बिरिंडा में 'कुडान' (पुरुष शामन) तथा कुंडान-बोई (महिला शामन) का पद भी प्रतिष्ठित समझा जाता है

। कुडान या कुडान-बोई का पद एक पुजारी के रूप में होता है और उनके सहायकों को 'भुआ', 'कारजी' और 'जानी' के रूप में पुकारा जाता है (मोहंती एवं पिकरय, 2009)।

सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना

'करेजा' (अंत्येष्टि क्रिया) और 'गहर' (वृहद् अंत्येष्टि क्रिया) के समय बिरिंडा के सदस्यों की उपस्थिति अनिवार्य होती है। यह सदस्य परिजनों (आयोजकों) को कुछ वित्तीय सहायता भी प्रदान करते हैं जो सुअर, भैंस, मुर्गा आदि के रूप में हो सकता है। बिरिंडा के सदस्यों के बीच वैवाहिक संबंध निषेध माना जाता है क्योंकि वह परंपरागत रूप से एक भाई-बहन के रूप में भावात्मक संबंध रखते हैं। एक महिला अपने पति के जीवित रहते हुए दूसरी शादी नहीं करती है। अगर वह किसी अन्य व्यक्ति से शादी करना चाहती है तो पूर्व पति को भारी-भरकम मुआवजा चुकाना पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि एक महिला अपने पति के प्रति वफादार रहने के लिए मजबूर है। अपनी निष्ठा दिखाने के लिए (पति की मृत्यु के बाद) उसे अपने पति के छोटे भाई से शादी करनी पड़ती है। इस समाज में विवाह-पूर्व यौन संबंध स्थापित करना सख्त वर्जित है क्योंकि सौरा लोगों का मानना है कि अगर जंगल में यौन गतिविधियों में कोई जोड़ा लिप्त होगा तो उन्हें 'जंगलसुम' (जंगल का देवता या देवता) दंडित करेगा। ऐसा विश्वास है कि अगर कोई इस तरह की निषिद्ध प्रथा को अंजाम देता है तो जंगलसुम नाराज हो जायहगा तथा गांव में कोई बड़ी आपदा आ सकती है (जेना, 2018)।

मिथक और मौखिक परंपराएं

कुछ प्रसिद्ध मिथक हैं जो उनकी कामुकता और लिंग भेद (जेंडर डिफरेंसेस) को प्रकट करते हैं। एल्विन (1991: 473-474) नाम के एक प्रसिद्ध मानवविज्ञानी ने इस जनजाति के मिथकों के बारे में विस्तृत अध्ययन किया है। एक मिथक कुछ इस तरह है: 'एक समय ऐसा था, जब सौरा समुदाय की लड़कियों और लड़कों को कपड़े पहनने की ज्यादा आदत नहीं थी और वह आधे-अधूरे कपड़ों में ही रहते थे तथा सौरा समाज की लड़कियां और लड़के आमतौर पर अर्द्ध-नग्न अवस्था में ही एक साथ नृत्य किया करते थे। उनमें एक यह भी विश्वास प्रचलित है कि पहले सौरा-पुरुषों के लिंग इतने लंबे होते थे कि उन्हें इसे अपनी कमर पर बांधना पड़ता था।'

आगे वह लिखते हैं कि 'एक लड़का था जो एक सौरा लड़की से प्यार करता था और एक दिन अपनी प्रेमिका के सामने सार्वजानिक समारोह में अपना अंगवस्त्र खोलकर अपने लिंग का प्रदर्शन करने लगा। जिसके परिणामस्वरूप उसकी प्रेमिका ने शर्म और गुस्सा महसूस किया। उसने एक कुल्हाड़ी ली तथा अपने प्रेमी के लिंग को कई टुकड़ों में काट दिया। लिंग के दो टुकड़ों को उसने आभूषण के रूप में अपने कानों में पहन लिया और एक जमीन में दफन कर दिया।'

स्थानीय 'कुंडान' ने 'भुआ' और 'करजी' की सहायता से स्थानीय रीति-रिवाजों के अनुसार उस लिंग के दफनाए गए स्थान पर पूजा-अर्चना की। इस घटना के परिणामस्वरूप सौरा जनजाति के लोगों ने शरीर के पिछले हिस्से को ठीक से ढकने के लिए लंबी फ्लैप ड्रेस पहनना शुरू कर दिया ताकि कोई उनके लिंग को न काटे। यह मिथक व मौखिक कहानी लंजिया सौरा जनजाति के नामकरण से भी जुड़ी हुई हैं। स्थानीय भाषा में लंजिया का अर्थ है पूंछ या एक खास पोशाक। यह मिथक सौरा के ड्रेस पैटर्न की आदत पर गहरा प्रभाव डालती है। वह वर्तमान में अलग-अलग शुभ अवसरों पर शरीर के निचले हिस्से को ढंकने के

लिए लंबी लंगोटनुमा ड्रेस पहनते हैं।

इसी प्रकार एक और प्रसिद्ध मौखिक किवदंती सांसारिक दुनिया (mortal world) और पैतृक दुनिया (immortal world) के बीच संबंधों के साथ निकटता से जुड़ी हुई है। विटबस्की (1993) लिखते हैं कि सौरा जनजाति का मानना है कि लोग 'किन्नोरई' (नश्वर दुनिया) में रहते हैं तथा मरणोपरांत व्यक्ति सीधे 'रौआंग' (पैतृक दुनिया) में जाता है। यदि वह दोनों दुनिया के बीच में कहीं अटक गया तो 'इलदासुम' (सौरा के पूर्वज या देवता) उस आत्मा और उसके बिरिंडा के सदस्यों के बारे में जानने की कोशिश करते हैं तथा उनके पूर्वज किसी सदस्य के सपने में आते हैं। उस मरे हुए व्यक्ति की आत्मा की मुक्ति के लिए 'कुंडान' (एक पुजारी), 'करजा' (एक मृत्यु संबंधी अनुष्ठान समारोह) करता है। जिसके फलस्वरूप उनके पूर्वज को बीच में फंसी आत्मा के 'बिरिंडा' की जानकारी मिल जाती है। यह सम्पूर्ण मिथक 'इडीताल' में उकेरा (चित्रित) जाता है। उपरोक्त मिथक से यह स्पष्ट होता है कि सौरा समुदाय इस बात में विश्वास करते हैं कि उनके पूर्वज भी एक अलग परिजन समूह प्रणाली का पालन करते थे।

इडीताल (भित्ति चित्रण) और पारंपरिक विश्वास

इडीताल उड़ीसा के लंजिया सौरा जनजाति की एक सांस्कृतिक धरोहर है। जिसके लिए वह दुनिया भर में प्रसिद्ध हैं। इडीताल प्रायः ऐसे स्वच्छ स्थान पर बनाया जाता था जहां वह विभिन्न कर्मकांडों या अनुष्ठानों को संपन्न कर सकें। वर्तमान में ईसाई मिशनरियों के प्रभाव के कारण 'पवित्र इडीताल' शायद ही किसी घर में एक जगह पाया जाता है। यह पुटासिंग क्षेत्र में वर्षों पहले तक सभी के लिए अपने-अपने घरों में बनाना अनिवार्य हुआ करता था। परंपरागत पवित्र इडीताल को खोजने के लिए कुछ गांवों के भ्रमण के दौरान ज्ञात हुआ कि अब इडीताल बहुत कम ही घरों में उपलब्ध है। यहां तक कि कुछ घरों में बने इडीताल भी अच्छी स्थिति में नहीं हैं क्योंकि नई पीढ़ी उन पुरानी सांस्कृतिक प्रथाओं से दूर रहने की कोशिश कर रही है। पारंपरिक पवित्र इडीताल की धारणा अपना पुराना कलेवर खो चुकी है। इडीताल बनाना युवा पीढ़ी के लिए पैसा कमाने का मात्र एक पेशा बनकर रह गया है। इसलिए उड़ीसा सरकार SCSTRTI के तहत भुवनेश्वर में माइक्रो प्रोजेक्ट के माध्यम से सौरा जनजाति के युवाओं को इडीताल बनाने के नए अवसर प्रदान करती है (बारिक, 2018)।

प्रत्येक वर्ष उड़ीसा सरकार द्वारा कई प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि लंजिया सौरा समाज की युवा पीढ़ी इस पेशे को पुरानी परंपरा को बचाने के लिए नहीं अपितु पैसे कमाने के लिए चुन रही है। आज अधिकांश पारंपरिक मूर्तियाँ बर्बाद या देखरेख के अभाव में आंशिक रूप से क्षतिग्रस्त हो चुकी हैं। पुटासिंग में भ्रमण के दौरान शोधार्थियों को यह ज्ञात हुआ कि सिर्फ पाँच घर में पारंपरिक 'पवित्र' इडीताल मौजूद है। अनुसंधान प्रतिभागियों ने दावा किया कि भारत सरकार उनके गाँव में इडीताल की परंपरा को बचाने के लिए कोई उपाय नहीं कर रही है। पारंपरिक इडीताल कभी लंजिया सौरा के लिए पारंपरिक ज्ञान का स्रोत हुआ करता था जिसके माध्यम से वह अपने पूर्वजों को तथा स्थानीय पर्यावरण को चित्रित करते थे। लेकिन आज मिशनरियों के प्रभाव के कारण नई पीढ़ियों में परम्परागत धर्म में विश्वास नहीं रहा। अधिकारियों द्वारा इडीताल के कलाकारों को शहर की दीवारों को इडीतालनुमा चित्रित करने और सुशोभित करने के लिए काम पर रखा जाता है तथा उन्हें यथोचित मजदूरी दी जाती है।

एक इडीताल (20x8) की पेंटिंग पूरा करने में पेंटर को दिनभर लग जाता है। इसे बनाने के लिए आवश्यक सामग्री सामान्यतया सौ रुपये में खरीदी जा सकती है लेकिन वह इसे लगभग सात सौ रुपये में

बेचते हैं। छोटे चित्रों की तुलना में बड़े चित्र अधिक पसंद किए जाते हैं तथा इनका मूल्य भी अधिक होता है।

वैयक्तिक अध्ययन

श्रीमती एल. नायकू: उनकी उम्र लगभग 60 वर्ष है और वह पंचायत में एक सक्रिय पुजारी हैं। नायकू कर्मकांडों में हमेशा लिप्त रहती हैं तथा सौरा जनजाति की परम्पराओं का निर्वहन कर रही हैं जिसके कारण वह कुडानबोई के नाम से जानी जाती हैं। नायकू एक जादूगरनी के रूप में भी काम करती हैं और स्थानीय निवासियों पर उनका अनौपचारिक नियंत्रण स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। श्रीमती एल॰ नायकू एक कुडानबोई होने के साथ-साथ पुटटासिंग पंचायत के राजिंगताल गाँव में एक पुजारी या शामान की हैसियत से कार्य का निर्वहन कर रही हैं तथा सरकारी अधिकारियों और स्थानीय लोगों के बीच भी काफी लोकप्रिय हैं। कुछ समय पहले उन्हें सौरा संस्कृति के संरक्षण के लिए उड़ीसा सरकार से पुरस्कार भी मिल चुका है। नायकू ने एक पारंपरिक मरहम लगाने वाले (एक दवाई देने वाले) से शादी की थी। वह सौरा की संस्कृति में पारंपरिक ढंग से विश्वास रखने वालों के लिए शादी-विवाह जैसे शुभ अवसरों पर अनुष्ठान भी संपन्न कराती हैं।

धर्मांतरण के सवाल पर वह इस बात पर जोर देती हैं कि ईसाई मिशनरी के लोग मेरे पास बार-बार आते हैं और मेरे विचारों को बदलने की कोशिश भी करते हैं लेकिन मैं अपनी संस्कृति और विश्वास को नहीं बदलूंगी। मैं सौरा के रूप में पैदा हुई हूँ और मैं सौरा के रूप में ही मरूंगी। मेरे परंपरागत कार्यों के लिए मुझे एक पहचान मिली तथा सरकार ने मुझे पुरस्कृत किया है। कई अन्य लोगों से बात करने के उपरांत ज्ञात हुआ कि वह अभी भी उन सभी लोगों के लिए अनुष्ठान समारोह कर रही हैं जो उनके प्रति विश्वास रखते हैं और पारंपरिक सौरा संस्कृति का सम्मान करते हैं। वह एक उदाहरण देती हैं कि कैसे ईसाई धर्म में परिवर्तित लोग अभी भी उनकी कर्मकांडीय गतिविधियों में विश्वास रखते हैं। नायकू ने अवगत कराया कि हाल ही में एक परिवर्तित ईसाई महिला अपने नवजात बेटे की बीमारी को ठीक करने के लिए मेरे पास आई थी और नायकू ने उसके बेटे का मंत्रों और जड़ीबूटियों से इलाज किया। वह मानती हैं कि जीवन में नामकरण का विचार बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है क्योंकि यदि नवजात शिशु को उसके पूर्वजों का नाम मिलता है तो पूर्वज उस बच्चे को संरक्षित करते हैं और वह बच्चा हमेशा के लिए 'बुरी नजर' से मुक्त हो जाता है। कई ईसाई धर्म को ग्रहण कर चुकी महिलाओं से इस सन्दर्भ में बात करने के उपरान्त उनके धार्मिक विश्वासों के बारे में पता चला कि 'नायकू के पास अभी भी अलौकिक शक्ति है जिसके कारण उनके बच्चे ठीक हो गए'। इस उदाहरण से पता चलता है कि वह अपने पारंपरिक धर्म को ईसाई धर्म या हिंदू धर्म में बदल लिए लेकिन उनमें से कुछ अभी भी चिकित्सा के लिए अपनी पुरानी सांस्कृतिक प्रथाओं और परंपरागत ज्ञान में लौटते हैं।

जे. सबारा की उम्र 65 वर्ष है। वह अबडा गाँव के निवासी हैं तथा एक पेशेवर इदिमार हैं। वह इडीताल के पारंपरिक चित्रकार के रूप में कार्यरत हैं। वह बचपन से ही अपने जीवन में कई इडीताल बना चुके हैं। उन्होंने हमें कुछ ऐसे नमूने दिखाए जो बाजार में उपलब्ध हैं तथा उन इडीताल चित्रों के महत्व और प्रतीकात्मक अर्थ को समझाने की भी कोशिश की। सबारा हमें अपने घर पर ले गए और एक पारंपरिक इडीताल दिखाया जो बाजार में उपलब्ध नहीं है। उन्होंने पारंपरिक इडीताल और आधुनिक इडीताल के बीच प्रमुख अंतरों को समझाया। जहां एक ओर पारंपरिक मूर्तियों को इस समाज में 'पवित्र' माना जाता है।

मिसाल के तौर पर, एक ख़ास इडीताल जो कि उनकी दीवार पर उपलब्ध है, जिसे सबारा ने बीस साल पहले गुजर चुके अपने पिता की याद में बनाया था, उसे वह पवित्र इडीताल मानते हैं। सबारा ने शोधार्थी से कहा कि यह हमारे बिरिंडा के सदस्यों लिए पवित्र है। जे. सबारा भी अपने पिता के द्वारा बतायह गए नक्शेकदम पर चल रहे हैं। उन्हें यह पेंटिंग स्किल अपने पिता से विरासत में मिली। दूसरी ओर आधुनिक इडीताल चित्रकला को उनके बीच कमोडिटी माना जाता है। आधुनिक इडीताल में 'पवित्रता' की धारणा का महत्त्व अब नहीं रहा क्योंकि अब चित्रकार सिर्फ 'बेचने के लिए' इडीताल बनाते हैं।

एल. सबारा - एक पेशेवर इदिमार और पेंटिंग के शिक्षक के तौर पर कार्यरत सबारा एक अन्य पारंपरिक चित्रकार हैं जो 70 साल के हो चुके हैं। कई लोग इडीताल बनाने की कला एल सबारा के मार्गदर्शन में सीख रहे हैं। उन्हें एलएसडीए (लांज़िया सौरा डेवलपमेंट एजेंसी) पुटासिंग में पढ़ाने का अवसर भी मिला। वह दीवार पेंटिंग पर 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अनुसंधान और प्रशिक्षण संस्थान' में भी कई व्याख्यान दे चुके हैं। वह कई वर्ष पहले ईसाई धर्म में परिवर्तित हो चुके हैं। एल. सबारा ने बताया कि आधुनिक चित्रकारों तथा पारंपरिक चित्रकारों के बीच मुख्य अंतर यह है कि 'पेशेवर इदिमार सौरा संस्कृति में सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों को अंगीकृत करते हुए आर्थिक पहलुओं पर ज्यादा ध्यान केन्द्रित करते हैं जबकि परंपरागत इदिमार लंजिया सौरा के पारंपरिक विश्वास के साथ अपने कर्तव्यों का निर्वहन करता है।' लक्ष्मण सबारा का दावा है कि आजकल ज्यादातर इदिमार पारंपरिक उद्देश्य या सांस्कृतिक मान्यताओं के लिए ही नहीं बल्कि पैसे कमाने के लिए भी इडीताल बनाने में संलग्न हैं।

टी. गामगंगा (उम्र 70 साल, राजिंगताल गाँव के एक 'गमंगा' (परंपरागत मुखिया)- टी. गामगंगा राजिंगताल गाँव के मुखिया रह चुके हैं। राजनीतिक रूप से वह अपने गाँव के एक सक्रिय सदस्य रहे हैं। गाँव के परंपरागत संरक्षक के रूप में वह 30 वर्ष की आयु से ही गाँव के कल्याण के लिए काम करते आयह हैं। उन्होंने 4 पत्नियों से शादी की है। उन्होंने कोई औपचारिक प्राथमिक शिक्षा तो प्राप्त नहीं की लेकिन उनका अनुभवगत ज्ञान संस्कृति और विरासत पर आधारित है। उनका परिवार भी हमेशा गमांग परंपरा का एक अभिन्न हिस्सा रहा है। उन्हें लगता है कि बहुतायत मात्रा में सौरा समाज ईसाई धर्म में परिवर्तित हो रहा है जिसके कारण इस समाज की सांस्कृतिक विरासत धीरे-धीरे विलुप्त हो रही है। सौरा समाज के लोग अब पुरानी संस्कृति का पालन नहीं कर रहे हैं। टी. गामगंगा के कथनानुसार "अब स्थानीय लोग गमांग के आदेश का पालन भी नहीं करते हैं तथा गमांग का पद अब पहले जैसा सम्मानित और सुशोभित पद नहीं रहा।" अधिकांश सौरा लोग चर्च में जाते हैं। यदि कोई सामाजिक-संघर्ष या आपसी रंजिश सामने आती है तो चर्च के स्थानीय पदाधिकारी उन मुद्दों को हल करने में सक्षम होते हैं। मिशनरियों के कार्यों से प्रभावित होकर उनके सभी बच्चे ईसाई धर्म में परिवर्तित हो गए हैं। टी. गामगंगा विदेशी पर्यटकों को सौरा समाज के बारे में विस्तृत जानकारी देते हैं और बदले में उन्हें उन सैलानियों से कुछ पैसे भी मिल जाते हैं। टी. गामगंगा के अनुसार "आमतौर पर विदेशी पर्यटक लंजिया सौरा के रीति-रिवाजों और परंपराओं को देखने के लिए गांव में आते हैं लेकिन कई वर्षों से हमारी पुरानी परम्पराओं का अवमूल्यन हो रहा है जो कि चिंताजनक है।"

दलाबेहेरा (एक चर्च प्रतिनिधि का मामला)- दलाबेहेरा की उम्र 40 है जो कई वर्षों से चर्च प्रतिनिधि के तौर पर कार्यरत हैं तथा चर्च से सम्बंधित कार्यक्रम का आयोजन करवाते हैं। उन्होंने कुछ साल पहले शादी की और उनके दो बच्चे हैं। उनका जन्म लंजिया सौरा परिवार में हुआ था। दलाबेहेरा के माता-पिता सौरा जनजाति की परम्पराओं में विश्वास करते थे लेकिन बाद में उनका परिवार ईसाई धर्म में परिवर्तित हो गया। वह कहते हैं कि अपनी रूढ़िवादी परंपरा को छोड़कर ईसाई धर्म में बदलने के पश्चात बहुत खुशी

महसूस करते हैं। उन्होंने कहा कि "इस क्षेत्र में अब कोई भी ईसाई धर्म का हिस्सा नहीं होने का दावा नहीं कर सकता है। यह धर्म मेरे लिए बहुत अच्छा है क्योंकि हम 'कुछ नया' सीखने का मौका मिलने के साथ-साथ हम एक व्यापक परिवार का हिस्सा भी बनते हैं।" दलाबेहेरा कहते हैं कि "अब मुझे पता है कि कैसे कपड़े पहनना है और लोगों से कैसे बात करनी है।" इसके अलावा वह हमें सूचित करते हैं कि अब हर गांव में एक चर्च है जिसमें लोग अब नियमित रूप से जा रहे हैं जहां उन्हें गैर-सौरा लोगों से भी संवाद करने का मौका मिलता है। दलाबेहेरा से लम्बी बात-चीत के दौरान हमें ज्ञात हुआ कि स्थानीय चर्च में विवाह और अन्य समारोह भी समय-समय पर आयोजित किए जाते हैं। दलाबेहेरा गाँव के अन्य लोगों के साथ अच्छा मेलजोल रखते हैं। वह नई पीढ़ियों को ईसाई धर्म अपनाने के लिए प्रेरित करते रहते हैं। दलाबेहेरा के विनम्र स्वभाव के कारण सौरा समाज की युवा पीढ़ी के लोग स्थानीय चर्च के सभी नृत्य और संगीत कार्यक्रम में खुशी से भाग लेते हैं।

ईसाई मिशनरियों का प्रभाव

दुनिया के हर कोने से शोधरत विद्वान अक्सर उड़ीसा के रायगड़ा जिले के गुनूपुर ब्लॉक में स्थित पुटासिंग ग्राम सभा का दौरा करते हैं और इस पीवीटीजी (विशेष रूप से कमजोर आदिवासी समूह) जनजाति की लुप्त होती संस्कृति को समझने की कोशिश करते हैं। भारत सरकार शोधकर्ताओं को शोध करने की छूट भी देती है तथा अन्य स्वयंसेवी संगठनों (एनजीओ) को भी इस पृथक जनजाति पर शोध करने के लिए राज्य सरकार से धन मिलता है। जिसके परिणामस्वरूप ईसाई मिशनरियों ने भी इन गांवों में अपनी पैठ बनानी शुरू कर दी है जिसका स्पष्ट उद्देश्य सौरा समुदाय के बीच ईसाई धर्म के विश्वास को फैलाना है। एलएसडीए (लांजा सौरा विकास एजेंसी (स्था. 1984) का गठन भी काफी महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है जिससे सौरा जनजाति बाहरी दुनिया के संपर्क में आ सकी है। ईसाई मिशनरियों के लोग न केवल सौरा की भाषा को बखूबी समझने का प्रयास करते हैं बल्कि वह कई व्यापक कहानियों को भी बनाते हैं जो स्थानीय लोगों को ईसाई धर्म में परिवर्तित होने के लिए प्रेरित कर सके।

स्थानीय निवासियों ने बताया कि 'अपरमंगटन' (स्थानीय भाषा में बाइबिल का स्थानीय नाम) स्थानीय भाषा में लिखा गया है जिससे सौरा समुदाय के लोग बाइबिल को आसानी से समझ पाने में सक्षम हो सके हैं। आज पुटासिंग के लगभग हर गांव में कैथोलिक, प्रोटेस्टेंट और बैपटिस्ट के चर्च मौजूद हैं। आज सौरा जनजाति के जीवन में गुणात्मक परिवर्तन और आर्थिक समृद्धि देखी जा सकती है।

निष्कर्ष

पुटासिंग क्षेत्र में लंजिया सौरा के आधुनिक जीवन-जीने के तरीके बहुत जटिल हैं। वह अभी भी अपनी सांस्कृतिक धरोहर से जुड़े हुए महसूस कर रहे हैं लेकिन साथ ही वह एक सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन के संक्रमण काल में हैं क्योंकि अधिकांश सौरा समाज ने पुरानी धार्मिक मान्यताओं और सांस्कृतिक प्रथाओं को परिवर्तित कर लिया है तथा ईसाई धर्म के विश्वास और सांस्कृतिक परम्पराएँ उनके रोजमर्रा के जीवन के अपरिहार्य अंग बन गए हैं। पुटटासिंग पंचायत में ईसाई धर्म के व्यापक प्रभाव के कारण सौरा की पारंपरिक धार्मिक मान्यताओं को नकार दिया गया है। सौरा जनजाति के लोग एक ही समय में आदिवासी और ईसाई धर्मों का पालन करते भी नजर आते हैं। दोनों मान्यताओं का अनुकूलन उन्हें 'सांस्कृतिक संक्रमण' की ओर जाता है। इन नए परिवर्तनों ने उनकी स्थानीय बोली को भी प्रभावित किया

है। "उड़ीसा के रायगड़ा जिले के दर्जनों आदिवासी गाँवों में जब भी सौरा जनजाति की एक महिला परिवार के लिए चावल पकाती है तो वह एक मुट्ठी-भर कच्चा चावल सामुदायिक निधि के लिए रख लेती है (बारिक, 2017)।" स्थानीय शिक्षक बच्चों को सोरा जनजाति की लुप्त होती बोली को सिखाते हैं। इसी तरह पारंपरिक गतिविधियों से जुड़े लोग (यानी, इडितालमार, पारंपरिक नृत्यकर्ता और गायक आदि) पिछले कुछ दशकों से अपने पेशे को छोड़ रहे हैं। एक तरफ दीवार चित्रों (इडिताल) के कलात्मक घटकों को बाजारवाद ने वाणिज्यिक मूल्य और वस्तु में संशोधित किया है। एक नए धर्म के अपनाने से नई पीढ़ी का इडिताल से मोहभंग होने लगा है तथा आधुनिक बाजार उनके हाथ से जाने का डर भी बना हुआ है जिसके फलस्वरूप (बाजारवाद के कारण) वह अभी भी अपने पारंपरिक सांस्कृतिक मूल्यों के साथ बंधे हुए हैं जो कि एक परस्पर-विरोधी स्थिति पैदा करती है।

आज सौरा समुदाय नए अवसरों को प्राप्त करने के साथ-साथ सरकारी नौकरियों को प्राप्त करने के लिए अपने बच्चों को औपचारिक संस्थानों में अंग्रेजी, उड़िया और हिंदी सिखाते हैं। ईसाई मिशनरियों ने उन्हें एक नई जीवन शैली बनाने का आश्वासन दिया और उनकी आंतरिक भावना को नई संस्कृति के साथ जोड़ा। "कौन सा धर्म मानना उचित है?" यह एक सवाल उन्हें (विशेषकर नई पीढ़ी को) दुविधाओं में डालता है तथा उन्हें एक अस्पष्ट स्थिति में ले जाता है। सौरा जनजाति की नई पीढ़ी भी सौरा की पारंपरिक संस्कृति का सम्मान कर रही है, साथ ही वह ईसाई धर्म को भी प्राथमिकता देती नजर आती है। उनमें से कुछ (विशेष रूप से नई पीढ़ी) आदिवासी धर्म से अनजान हैं, और वह ईसाई धर्म की सराहना करते हैं। उन्हें महसूस होता है कि संपूर्ण विकास ईसाई मिशनरियों द्वारा शुरू किया गया है और युवा पीढ़ियों जो भी प्रगति कर रही है वह ईसाई धर्म के कारण संभव हुआ है। हालांकि सौरा जनजाति को अपने सांस्कृतिक धरोहर को भूल जाने का अफ़सोस भी है।

संदर्भ सूची

ओटा, पी.ए. एंड मोहंती, एस.सी. (2007). *लांजिया सौरा*. भुवनेश्वर: सीड्युल कास्ट एंड सीड्युल ट्राइबस रिसर्च एंड ट्रेनिंग इंस्टीटयूट।

ओटा, पी.ए. एंड मोहंती, एस.सी. (2010). *सौरा*. भुवनेश्वर: सीड्युल कास्ट एंड सीड्युल ट्राइबस रिसर्च एंड ट्रेनिंग इंस्टीटयूट।

एल्विन, वी. (1991). द *मिथ ऑफ़ मिडल इंडिया*. नई दिल्ली: ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

जेना, बी.के. (2018). *एक्सप्रेसिव कल्चर ऑफ़ लांजिया सौरा: अ स्टडी इन रायगाड़ा डिस्ट्रिक्ट, ओडिशा*. हैदराबाद: अप्रकाशित एम.फिल. डिजरटेशन, हैदराबाद विश्वविद्यालय।

पटनायक, एन. (1989). द *सौरा*. भुवनेश्वर: सीड्युल कास्ट एंड सीड्युल ट्राइबस रिसर्च एंड ट्रेनिंग इंस्टीटयूट।

पटेल, सी.बी. (2005). द *सौरा एंड देयर पनोरामिक पेंटिंगस*. ओडिशा रिव्यू. http://magazines.odisha.gov.in/Orissareview/jan2005/englishPdf/Souras_Paintings.pdf, से लिया गया।

प्रसाद, डी. (2018). *रिविजिटिंग द इसुज एंड डिवेट आन कास्ट इन रूरल सोसाइटी: एन*

एनालटिकल अप्रोच. इस्टर्न एंथ्रोपोलोजिस्ट, 74 (1-2)।

प्रसाद, डी. एंड बिभार, एस. (2020). *लोकेटिंग द अट्रोसिटीज अगेंस्ट दलितस: एन एनालटिकल अप्रोच*. कंटेम्परेरी वौइस् ऑफ़ दलितस (सेज पब्लिकेशन), 12 (38)।

बारिक, एस (2018). *सौरा पेंटिंग ट्रेवल फ्रॉम ट्राइबल होम टू लिविंग रूम ओवरसीस*. द हिन्दू, दैनिक, मार्च 25, 2018. https://www.thehindu.com/entertainment/art/saora-paintings-travel-from-tribal-homes-to-living-rooms-overseas/article23343798.ece, से लिया गया।

बारिक, एस (2017). *टेकिंग ओनरशिप ऑफ़ देयर रैपिडली फैडिंग लैंगुवेज इज कुरुसियल फॉर सेविंग एंड रिवाइविंग देम*. द हिन्दू, दैनिक, जून 4, 2017. https://www.thehindu.com/news/national/other-states/tribal-communities-in-odisha-are-speaking-up-to-save-their-dialects/article18713925.ece, से उद्धरित।

मोहंती, बी.बी. एंड मोहंती, एस.सी. (2009). *ट्राइबल कस्टम एंड ट्रेडिशनस*. भुवनेश्वर: सीड्युल कास्ट एंड सीड्युल ट्राइबस रिसर्च एंड ट्रेनिंग इंस्टीटयूट।

मोहंती, एस.सी. एंड पैकरी, बी. (2009). *इम्पैक्ट ऑफ़ डिफोरेसटेशन आन ट्राइबल लाईफ एंड लाईवलीहुड: अ केस स्टडी ऑफ़ द लांजिया सोरा ऑफ़ पुतासिंग*. आदिवासी, 49 (1): 55।

विटेबस्की, पी. (1993). *डायलाग विद द डीड*. कैमब्रीज: कैमब्रीज यूनिवर्सिटी प्रेस।

शोध एवं सांख्यिकी में आरओसी वक्र का अनुप्रयोग

एस. बालस्वामी*

सारांश

बैनरमल आरओसी एक व्यक्ति या वस्तुओं को सटीकता (accuracy), इष्टतम सीमा (optimal threshold) के साथ दो समूहों में से एक में वर्गीकृत करने के लिए प्रयुक्त प्रमुख तकनीकों में से एक है। वर्गीकरण के लिए चिकित्सा क्षेत्र में आरओसी वक्रों ने बहुत महत्व प्राप्त किया है। इस पत्र में दहलीज की पहचान करने और डेटा की सटीकता का पता लगाने के लिए बैनरमल आरओसी वक्र की अवधारणा और उपयोग का वर्णन किया गया है। दो वास्तविक आंकड़ा समूह अर्थात टीबी आंकड़ा और IUGRFDS आंकड़ा समूह को कार्यप्रणाली प्रदर्शित करने के लिए महत्वपूर्ण माना जाता है।

बीज शब्द: आरओसी वक्र, यूडेंस इंडेक्स, एयूसी, थ्रेसहोल्ड, सांख्यिकी निर्णय सिद्धांत

प्रस्तावना

सांख्यिकी में वर्गीकरण समस्याओं ने वास्तविक जीवन की समस्याओं को हल करने में शोधकर्ताओं का बहुत ध्यान आकर्षित किया है जो विभिन्न विषयों में उत्पन्न होती हैं। इस तरह की समस्याओं से निपटने के लिए प्रमुखता और मांग के आधार पर विभिन्न प्रकार के सांख्यिकीय उपकरण सामने आए और उन्हें सांख्यिकीय निर्णय सिद्धांत (एसडीटी) के केंद्र में लाया गया। वर्गीकरण परिदृश्य में रुचि की सामान्य समस्या एक व्यक्ति या वस्तु को एक पूर्वनिर्धारित समूहों या आबादी में एक सीमा का उपयोग करके आवंटित करने में है। इसी तरह की स्थिति राडार संकेतों को पढ़ने और समझने के दौरान उत्पन्न हुई अर्थात संकेत को संकेत के रूप में और शोर को शोर के रूप में पहचानने की समस्या। इन समस्याओं को एक वर्गीकरण उपकरण अर्थात रिसीवर ऑपरेटिंग कैरेक्टरिस्टिक (आरओसी) वक्र का उपयोग करके संबोधित किया गया था। यह द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान विकसित हुआ था।

अपेक्षाकृत कम नैदानिक परीक्षण परीक्षण किए गए सभी विषयों को रोगग्रस्त "डी" (with condition) या स्वस्थ "एच" (without condition) के रूप में सही ढंग से वर्गीकृत करते हैं। कभी-कभी वर्गीकरण के लिए मानी जाने वाली दहलीज कुछ स्वस्थ लोगों को रोगग्रस्त और इसके विपरीत वर्गीकृत करती है। यह गलत वर्गीकरण फाल्स पॉजिटिव रेट (FPR or 1-Specificity) और फाल्स नेगेटिव रेट (FNR) की शब्दावली की ओर ले जाता है। सही निर्णय लेने वाली कोशिकाओं को ट्रू पॉजिटिव रेट (TPR or Sensitivity) तथा ट्रू negative रेट्स (TNR) कहा जाता है। आरओसी वक्र को ROC (t) = (FPR (t), TPR (t)) के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। इसका मतलब है कि आरओसी वक्र एफपीआर और टीपीआर के जोड़े के एक सेट द्वारा उत्पन्न होता है। यहां एफपीआर और टीपीआर के जोड़े के सेट को अलग-अलग सीमा बिंदुओं पर प्राप्त किया जाता है जो वास्तव में देखें गए परीक्षण स्कोर हैं। इस तरह प्रत्येक परीक्षा स्कोर कटऑफ के रूप में कार्य करेगा और बदले में समन्वय

*सहायक प्राध्यापक, सांख्यिकी विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक।

(FPR, TPR) उत्पन्न करेगा।

इसलिए आरओसी वक्र फाल्स पॉजिटिव और ट्रू पॉजिटिव रेट्स दरों के बीच संबंध का एक चित्रमय प्रतिनिधित्व है। दूसरे शब्दों में यह प्रत्येक t पर FPR और TPR के बीच एक ट्रेडऑफ़ (tradeoff) है। एक परीक्षण को बेहतर कहा जाता है यदि इसमें अधिकतम Sensitivity (Sn) और काफी कम 1-Specificity (1-Sp) है और संबंधित थ्रेसहोल्ड (threshold) को उस विशेष परीक्षण के लिए इष्टतम के रूप में संदर्भित किया जा सकता है।

यहां आरओसी वक्र के आंतरिक उपायों के गणितीय संकेतन का परिचय दिया गया है। मान लीजिए x(t) FPR को दर्शाता है और y(t) TPR को दर्शाता है, x(t) = 1 – F(t) और y(t) = 1 – G(t) के साथ। जहां एफ (F) और जी (G) सामान्य और असामान्य जनसँख्या के वितरण कार्य हैं।

x(t) = 1 – F(t) से इसका तात्पर्य है कि t = F-1(1 – x(t))

y(t) = 1 - G(t) से इसका तात्पर्य है कि y(t) = 1 – G [F-1(1 – x(t))]

इसलिए, ROC के लिए व्यंजक इस प्रकार है-

ROC (t) = 1 – G [F-1(1 – x(t))]

पारंपरिक सांख्यिकीय दृष्टिकोण दोनों आबादी (population) में वर्गीकरण के वितरण के लिए पैरामीट्रिक मॉडल (parametric model) ग्रहण करना है जो बदले में वितरण कार्यों F(x) और G(x) दोनों के लिए पैरामीट्रिक रूप प्रदान करता है।

सटीकता (Accuracy) (ज़्विग और कैंपबेल, 1993) की तुलना में आरओसी प्लॉट के कई फायदे हैं। एक आरओसी वक्र डेटा की सटीकता को दृष्टिगत रूप से प्रदर्शित कर सकता है। आरओसी वक्र प्लॉट के पैमाने सटीकता के दो बुनियादी उपाय हैं जिन्हें आसानी से प्लॉट से पढ़ा जा सकता है। ROC वक्र में सभी संभावित निर्णय सीमाएँ शामिल हैं ताकि किसी विशेष निर्णय सीमा का चयन करने की कोई आवश्यकता न हो। आरओसी वक्रों का निर्माण करके सभी निर्णय थ्रेसहोल्ड पर विभिन्न परीक्षणों की तुलना करना संभव है। उपरोक्त दो आंतरिक उपायों के साथ एरिया अंडर द कर्व (एयूसी) भी आरओसी वक्र का एक महत्वपूर्ण उपाय है और एक परीक्षण के प्रदर्शन का आकलन करने में एक प्रमुख भूमिका निभाता है। AUC 0 और 1 के बीच मान लेता है। एक पूर्ण नैदानिक परीक्षण वह होता है जिसका क्षेत्रफल (area) 1 के बराबर होता है और 0 क्षेत्र वाला परीक्षण पूरी तरह से गलत होता है। आरओसी वक्र के एयूसी की व्याख्या विशिष्टता के सभी संभावित मूल्यों के लिए संवेदनशीलता के औसत के रूप में की जा सकती है और इसके विपरीत एक ROC वक्र का AUC, ROC व्यंजक को रेंज [0, 1] पर एकीकृत करके प्राप्त किया जा सकता है, अर्थात,

AUC= _0^1 ROC(t)dt

एक बार आरओसी वक्र प्राप्त हो जाने के बाद इसमें कुछ बढ़ते परिवर्तन के संबंध में मोनोटोनिक परिवर्तन (monotonic transformation), अपरिवर्तनीयता (invariance) के गुण होने चाहिए। यही है आरओसी वक्र किसी भी मोनोटोनिक (e.g., linear, logarithmic) परीक्षण परिणामों के परिवर्तन (बालास्वामी और विष्णु वर्धन, 2016 और क्रज़ानोव्स्की एंड हैंड, 2009) के लिए अपरिवर्तनीय है। यहां आरओसी वक्र के इन मूल गुणों के बारे में एक संक्षिप्त रूपरेखा पर चर्चा की गई है।

बैनरमल आरओसी वक्र और इसकी एयूसी

मान लें कि x1 और x2 क्रमशः स्वस्थ "H" और रोगग्रस्त "D" आबादी में परीक्षण स्कोर (score) को दर्शाते हैं और माना जाता है कि यह परीक्षण स्कोर सामान्य वितरण (normal distribution) के अंतर्गत आते हैं। यानि x1 ~ N (μH, ⟦Σ⟧_H^2) और x2 ~N (μD, Σ_D^2) जहां μH, μD, ⟦" Σ" ⟧_"H" ^"2" " and " "Σ" _"D" ^"2" are the mean और variances of H and D populations । चूंकि दोनों टेस्ट स्कोर सामान्य वितरण (normal distribution) का पालन करते हैं इसलिए इस प्रकार प्राप्त ROC वक्र को बैनरमल ROC वक्र के रूप में गढ़ा जाता है। इसके अलावा यह माना जाता है कि डी (D) समूह का मध्यमान स्कोर एच (H) समूह के माध्य से अधिक होगा यानि μD > μH, लेकिन विभेद पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाया गया है। अब, S " " {"x" _"1" "," "x" _"2" } को परीक्षण मान के कुल स्कोर के रूप में परिभाषित करें फिर (("S-" "Μ" _"H")) "Σ" _"H" का H में एक मानक सामान्य वितरण है और (("S-" "Μ" _"D")) "Σ" _"D" का D में एक मानक सामान्य वितरण है। FPR , x(t) और TPR, y(t) एक विशेष दहलीज t पर परिभाषित किया गया है:

"x" ("t")"=P" ("S>t " " H")"=P" ("Z>" (("t-" "Μ" _"H"))/"Σ" _"H")"=Φ" (("Μ" _"H" "-t")/"Σ" _"H")

और

"y" ("t")"=P" ("S>t " " D")"=P" ("Z>" (("t-" "Μ" _"D"))/"Σ" _"D")"=Φ" (("Μ" _D "-t")/"Σ" _D)

x(t) और y(t) के व्यंजकों का उपयोग करते हुए, बैनोर्मल ROC वक्र इस प्रकार दिया गया है

" y" ("t")" =Φ" [("Μ" _"D" "-" "Μ" _"H")/"Σ" _"D" "+" "Σ" _"H" /"Σ" _"D" "Φ" ^"-1" ("x(t)")]

"y" ("t")"=Φ" ["a+b" "Φ" ^"-1" ("x(t)")]

यहां "a=" ("Μ" _"D" "-" "Μ" _"H")/"Σ" _"D" ,"b=" "Σ" _"H" /"Σ" _"D" और t"=" "Μ" _"H" "-" "Σ" _"H" " " "Z" _"x"

जहाँ "Z" _"x" "=" " Φ " ^"-1" "(x(t))" and Φ (.) सामान्य संचयी वितरण फलन है।

बम्बर (1975) ने सटीकता माप AUC की व्याख्या इस प्रकार की, "संभावना है कि थ्रेशोल्ड जनसंख्या D से बेतरतीब ढंग से चुने गए व्यक्ति को एक उच्च स्कोर आवंटित करेगा, जो कि जनसंख्या H से यादृच्छिक रूप से और स्वतंत्र रूप से चुने गए व्यक्ति को होगा"। अर्थात् यदि एसडी और एसएच क्रमशः डी और एच से यादृच्छिक रूप से और स्वतंत्र रूप से चुने गए व्यक्तियों को आवंटित स्कोर हैं, तो

"AUC=P" ("S" _"D" ">" "S" _"H")

बैनरमल मॉडल के लिए एयूसी अभिव्यक्ति है,

"AUC=Φ" ("a" / ("1+" "b" ^"2")

यूडेन का इंडेक्स

आरओसी कर्व एक वर्गीकरण तकनीक है जिसका उपयोग किसी परीक्षण या प्रक्रिया के प्रदर्शन का आकलन करने के लिए किया जाता है। एक व्यक्ति को थ्रेशोल्ड या कटऑफ के माध्यम से दो समूहों में से एक में वर्गीकृत किया जाएगा। एक थ्रेशोल्ड को इष्टतम कहा जाता है, यदि यह उच्च ग्रहणशीलता के साथ-साथ अधिकतम सटीकता प्रदान करता है। इष्टतम सीमा की पहचान करने के लिए सबसे परिचित और व्यापक रूप से स्वीकृत उपाय कर्व (एयूसी) और यूडेन इंडेक्स के तहत क्षेत्र हैं। यूडेन इंडेक्स (जे) समग्र नैदानिक प्रभावशीलता का एक उपाय है, जिसे पहली बार यूडेन (यूडेन, 1950) द्वारा चिकित्सा साहित्य में पेश किया गया था। Youden's Index को थ्रेशोल्ड के प्रत्येक बिंदु पर ग्रहणशीलता और ठोसता की एक जोड़ी का उपयोग करके प्रदान किया जाता है। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि अधिकतम J उस दहलीज पर होता है जो ग्रहणशीलता और ठोसता को समान भार दिए जाने पर बायोमार्कर की विभेदक क्षमता का अनुकूलन करता है (Youden, 1950; Farragi and Reiser, 2002)। ROC के संदर्भ में, Youden's Index को परिभाषित किया गया है:

$$J=\text{maximum}\{\text{Sensitivity}(t)+\text{Specificity}(t)-1\}$$

सभी कट बिंदुओं पर t, - < t < । सूचकांक (J) 0 और 1 के बीच होता है जिसमें 1 का मान पूर्ण नैदानिक प्रभावशीलता को दर्शाता है और 0 एक अप्रभावी परीक्षण को दर्शाता है।

परिणाम और चर्चा

इस पत्र में बैनरमल आरओसी पद्धति की व्याख्या करने के लिए दो वास्तविक आंकड़ा समूहों पर विचार किया गया है अर्थात क्षय रोग बेसिली (Tuberculosis Bacilli) और आईयूजीआरएफडीएस आंकड़ा समूह। इन आंकड़ा समूहों की मदद से बैनरमल आरओसी वक्र की व्याख्या की जाती है और साथ ही आंतरिक उपायों का अनुमान लगाया जाता है और वर्गीकरण परिदृश्य के बेहतर (better), मध्यम (moderate) और सबसे खराब (worst) मामलों (scenario) को दिखाने के लिए आरओसी वक्र तैयार किए जाते हैं।

क्षय रोग बेसिली (Tuberculosis Bacilli) आंकड़ा समूह

Pleural Fluid ADA (एडीए) को क्षय रोग बेसिली (टीबी) के भविष्यवक्ता के रूप में माना जाता है और यह ज्ञात है कि 30 आईयू / एल का एडीए व्यापक रूप से स्वीकृत सीमा है (विष्णु वर्धन और सरमा, 2010)। एडीए मूल्यों को टीबी और गैर-टीबी दोनों विषयों में सामान्य वितरण का पालन करने के लिए जाना जाता है (चित्र-1क)। इसके अलावा बहुत कम गलत वर्गीकरण देखा गया है और इसलिए यह बेहतर वर्गीकरण का मामला है जहां किसी को बेहतर सटीकता मिल सकती है (चित्र-1 ए)। इसके अलावा आरओसी वक्र के आंतरिक उपायों का अनुमान लगाया गया है और तालिका-1 में रिपोर्ट किया गया है। तालिका-1 से यह देखा गया है कि एयूसी को इष्टतम थ्रेसहोल्ड मान 40 के साथ 0.97 पाया गया है। इसका मतलब है कि जिसका मूल्य 40 से अधिक है, उसे टीबी पॉजिटिव के रूप में वर्गीकृत किया जाए अन्यथा नकारात्मक। इसके अलावा, यूडेन का सूचकांक मान 0.9073 के रूप में इसी ग्रहणशीलता के साथ

0.9183 के रूप में देखा गया है।

सारणी 1: आरओसी वक्र के आंतरिक माप								
μD	μH	σD	σH	t	1-Sp	Sn	J	AUC
76.27	20.48	26.022	8.519	40	0.01098	0.9183	0.9073	0.9791

आंकड़ों की सटीकता दिखाने के लिए बैनरमल आरओसी वक्र भी प्लॉट किया गया है और वक्र प्लॉट के ऊपरी बाएं कोने के करीब है जो वर्गीकरण की अधिकतम सटीकता (चित्र-1 बी) को इंगित करता है-

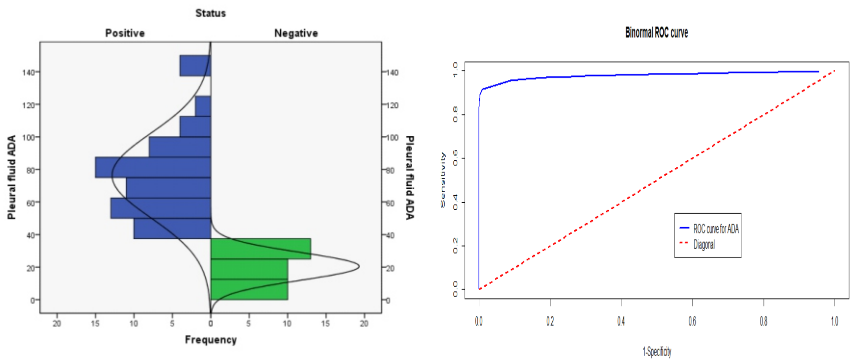

चित्र -1: एडीए आंकड़ा समूह का उपयोग कर आरओसी कर्व का इष्टतम उदाहरण

आईयूजीआरएफडीएस आंकड़ा समूह

इसके अलावा प्रस्तावित कार्यप्रणाली (विष्णु वर्धन और बालास्वामी, 2016) को स्पष्ट करने के लिए एक अन्य आंकड़ा समूह (आईयूजीआरएफडीएस) का भी उपयोग किया जाता है। बच्चे के मस्तिष्क के विकास की पहचान के लिए मां के गर्भ से बच्चे तक रक्त के प्रवाह की जांच करने के लिए आंकड़ा समूह में एमसीए, सीपीआर और यूएमबी जैसी तीन परीक्षण प्रक्रियाएं होती हैं। डेटा सेट में 82 नमूने होते हैं जिनमें से 42 नमूनों में पर्याप्त रक्त प्रवाह होता है और बाकी में मां के गर्भ से बच्चे तक पर्याप्त रक्त प्रवाह नहीं होता है। आमतौर पर रक्त के इस प्रवाह को सभी प्रक्रियाओं में पल्सेटिलिटी इंडेक्स (Pulsatility index पीआई), प्रतिरोधकता सूचकांक (Resistivity index आरआई) और सिस्टोलिक/डायस्टोलिक (Systolic/Diastolic एस/डी) अनुपात का उपयोग करके मापा जाता है। यहां इसे स्पष्ट करने का मुख्य कारण यह है कि कौन सी प्रक्रिया अपनाई जानी है की जानकारी और यह निर्धारित करने में मदद करती है कि मां से बच्चे तक पर्याप्त रक्त प्रवाह है या नहीं। ऐसी समस्या को हल करने के लिए जब डेटा सामान्य वितरण का पालन करता है तो बैनरमल आरओसी पद्धति का उचित उपयोग किया जा सकता है।

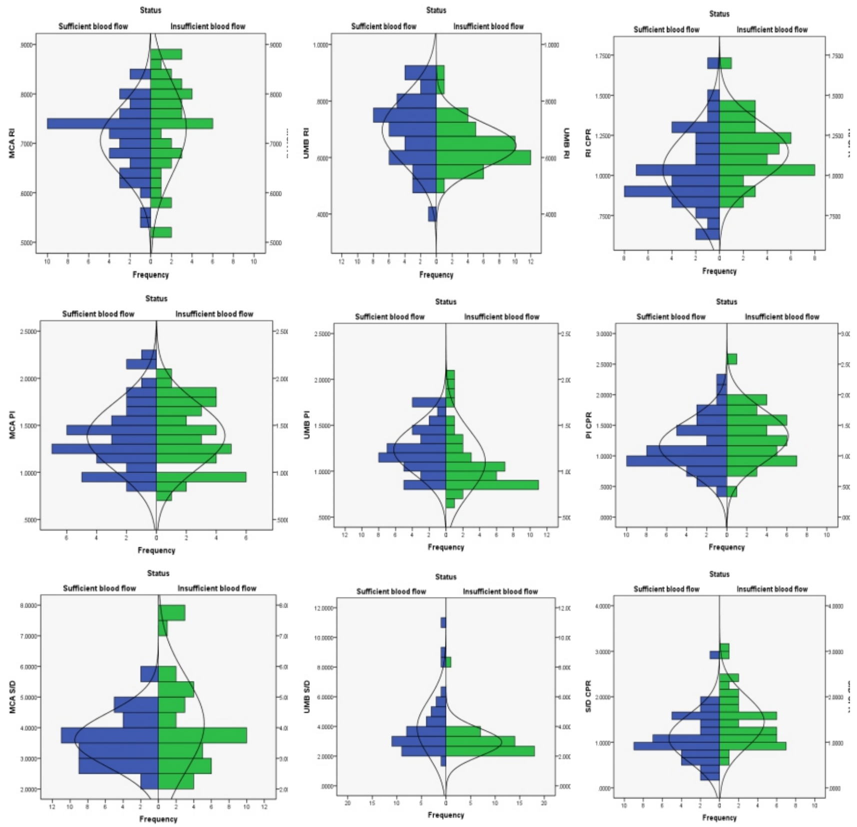

चित्र - 2: IUGRFDS आंकड़ा समूह का वर्गीकरण एवं सामान्यीकरण

गलत वर्गीकरण क्षेत्र (misclassification area) को देखने के लिए और आंकड़ों में सामान्यता (normality) दिखाने के लिए जनसँख्या पिरामिड तैयार किए गए हैं और चित्र-2 में प्रस्तुत किए गए हैं। चित्र-2 से यह देखा गया है कि यूएमबी को छोड़कर एमसीए और सीपीआर के संबंध में आरआई, पीआई और एस/डी आंकड़ों के सामान्य और असामान्य दोनों मामलों का अनुसरण कर रहे हैं। इसके अलावा मां के गर्भ से बच्चे के मस्तिष्क में रक्त प्रवाह की पहचान करने के लिए सर्वोत्तम प्रक्रिया खोजने के लिए आरओसी वक्र पद्धति लागू की जाती है क्योंकि आंकड़ा सामान्य वितरण का पालन करता है।

तालिका 2: IUGRFDS आंकड़ा समूह के लिए आरओसी वक्र के आंतरिक माप

Index	Metho	μD	μH	σD	σH	t	1-Sp	Sn	J	AUC
RI	MCA	0.7305	0.7057	0.0929	0.0686	0.76	0.2145	0.3754	0.1608	0.5849
	UMB	0.6420	0.6971	0.0787	0.1217	0.48	0.9628	0.9801	0.0173	0.3518

	CPR	1.1482	1.0337	0.1841	0.2348	1.01	0.5403	0.7735	0.2332	0.6493
PI	MCA	1.3900	1.3811	0.3483	0.3613	1.14	0.7477	0.7635	0.0157	0.5070
	UMB	1.1027	1.2340	0.3419	0.2694	1.9	0.0067	0.0098	0.0031	0.3814
	CPR	1.3232	1.1615	0.4322	0.4147	1.29	0.3783	0.5306	0.1522	0.6063
S/D	MCA	4.1302	3.5992	1.5388	0.8840	4.6	0.1288	0.3800	0.2512	0.6176
	UMB	2.9357	3.9064	0.9386	1.9010	1.94	0.8495	0.8556	0.0060	0.3235
	CPR	1.4534	1.0920	0.5671	0.5242	1.31	0.3388	0.5998	0.2609	0.6800

सभी तीन अनुक्रमित (तालिका-2) में सभी तीन प्रक्रियाओं के संबंध में सामान्य और असामान्य दोनों मामलों में मापदंडों का अनुमान लगाया गया है। इसके अलावा आरओसी वक्र के आंतरिक उपायों से सटीकता का पता लगाने के साथ-साथ बेहतर प्रक्रिया देखने का अनुमान है। तालिका-2 से यह देखा गया है कि एस/डी इंडेक्स के संबंध में अन्य दो प्रक्रियाओं एमसीए और यूएमबी की तुलना में एस/डी इंडेक्स में सीपीआर प्रक्रिया में अधिकतम एयूसी 0.6800 है। तीनों सूचकांकों में रक्त प्रवाह की पहचान करने में सीपीआर प्रक्रिया का बेहतर प्रदर्शन होता है। इसके अलावा सभी सूचकांकों में यूएमबी का एयूसी कम से कम 50% सटीकता से कम है।

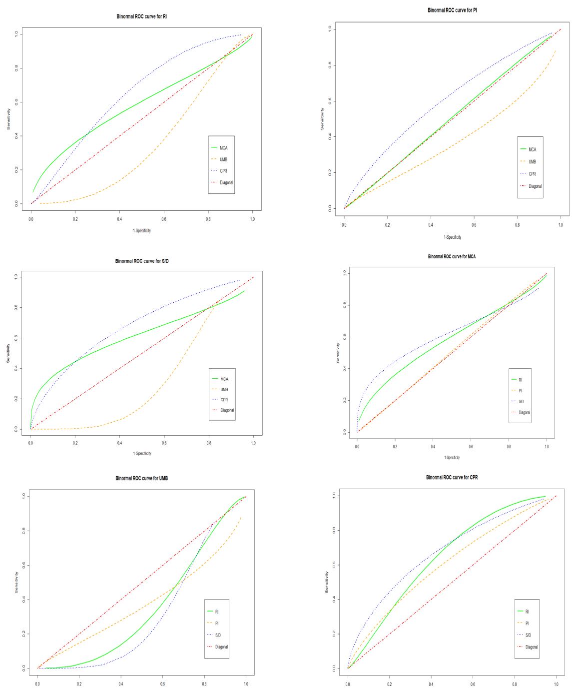

चित्र-3: आरओसी कर्वों की तुलना

इसके अलावा तुलना करने के लिए और पीआई, आरआई और एस/डी (चित्र-3) जैसे सभी इंडेक्स के संबंध में तीन प्रक्रियाओं सीपीआर, एमसीए और यूएमबी के बीच वर्गीकरण की सटीकता देखने के लिए आरओसी वक्र तैयार किए गए हैं। चित्र-3 से यह देखा गया है कि सीपीआर प्रक्रिया में अन्य दो प्रक्रियाओं की तुलना में उच्च सटीकता है। यह भी देखा गया है कि एस/डी इंडेक्स में यूएमबी को छोड़कर एमसीए और सीपीआर दोनों प्रक्रियाओं में अन्य दो इंडेक्स पीआई और आरआई की तुलना में बेहतर सटीकता है। यहां यह आरओसी वर्गीकरण के मध्यम और सबसे खराब मामलों के उदाहरणों को वक्रित करते हैं।

निष्कर्ष

वर्गीकरण का मुख्य उद्देश्य व्यक्तियों को बेहतर सटीकता के साथ दो समूहों में से एक में वर्गीकृत करना है। वर्गीकरण करने के लिए सटीकता के साथ-साथ एक इष्टतम सीमा की पहचान करने के लिए बैनरमल आरओसी वक्र का उपयोग किया जाता है। इसके अलावा आरओसी पद्धति को समझाने और बेहतर सटीकता के साथ बेहतर प्रक्रिया खोजने के लिए दो वास्तविक आंकड़ा समूह का उपयोग किया जाता है। टीबी आंकड़ा समूह में यह देखा गया है कि आरओसी वक्र बहुत कम गलत वर्गीकरण दर के साथ एक बेहतर मामला पाया जाता है और वक्र वर्गीकरण के बेहतर मामले के लिए एक उदाहरण है। इसके अलावा अन्य आंकड़ा समूह बनाएं तो यह स्पष्ट है कि आरआई, पीआई और एस/डी जैसे सभी इंडेक्स के संबंध में सीपीआर प्रक्रिया अन्य दो प्रक्रियाओं एमसीए और यूएमबी से बेहतर पाई गई है। यह आरओसी वक्र का एक उदाहरण है जहां एक मध्यम और सबसे खराब वर्गीकरण परिदृश्य हो सकता है।

सन्दर्भ सूची

ज्विग, एम. एच. & कैम्पबेल, जी. (1993). *रिसीवर ऑपरेटिंग कैरेक्टेरिस्टिक (आरओसी) प्लॉट्स: ए फंडामेंटल इवैल्यूएशन टूल इन क्लिनिकल मेडिसिन*. क्लिन केम, 39(4), 561–577।

बालास्वामी, एस. & विष्णु वर्धन, आर. (2016). *ऐन एंथोलोजी ऑफ़ पैरामीट्रिक आरओसी मॉडल्स*. रिसर्च & रिव्यूज: जर्नल ऑफ़ स्टेटिस्टिक्स. 5(2), 32-46।

क्रज़ानोव्सकी, डब्ल्यू. जे. & हैण्ड, डी.जे. (2009). *आरओसी कर्व्स फॉर कंटीन्यूअस डाटा, मोनोग्राफ्स ओं स्टेटिस्टिक्स एंड एप्लाइड प्रोबाबिलिटी*. न्यूयॉर्क, एनवाई: सीआरसी प्रेस, टेलर एंड फ्रांसिस ग्रुप।

Youden, W. J. (1950). *An index for rating diagnostic tests*. Cancer, 3, 32–35.

Faraggi, D. & Reiser, B. (2002). *Estimation of the area under the ROC curve*. Statistics in Medicine, 21(20), 3093–3106. doi:10.1002/sim.1228.

विष्णु वर्धन, आर. & सरमा, केवीएस. (2010). *ऑन द रिलेशनशिप बिटवीन द ऑड्स रेश्यो एंड द एरिया अंडर द आरओसी कर्व इन द कॉन्टेक्स्ट ऑफ़ लोजिस्टिक रिग्रेशन फॉर कॉम्परिंग सेवेरल बायोमार्कर्स*. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ स्टेटिस्टिक्स एंड सिस्टम्स. 5(2), 165-172।

विष्णु वर्धन, आर. & बालास्वामी, एस. (2016). *कॉम्परिंग सेवेरल डायग्नोस्टिक प्रोसीजर्स यूसिंग द इन्ट्रिन्सिक मेजर्स ऑफ़ आरओसी कर्व*. इंडियन जर्नल ऑफ़ मेडिकल रिसर्च एंड फर्मास्यूटिकल साइंसेज. 3(3), 48-55।

प्राचीन श्रमण साहित्य में सामाजिक विमर्श

डॉ. जिनेन्द्र कुमार जैन*

सारांश

प्रारंभिक श्रमण साहित्य विशुद्ध दार्शनिक साहित्य है जिसकी विषयवस्तु आध्यात्मिक विकास अर्थात आत्मा का यथार्थ श्रद्धान, उत्थान एवं निर्वाण है। इस साहित्यान्तर्गत त्रिलक्षण परिणामवाद, व्यापक पदार्थ मीमांसा, जीव स्वातन्त्रय, अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्तवाद, स्यादवाद, स्वनिर्मित सृष्टि की उत्पत्ति का सिद्धांत, निवृत्ति की प्रधानता, षडद्रव्य दर्शन, सप्त तत्व, साधना के क्षेत्र में जाति-वर्ण आदि की निस्सारता, बाह्य क्रियाकाण्ड के प्रति अनास्था, मुक्ति संबंधी विशिष्ट मान्यता आदि अमूल्य और मौलिक अवधारणाओं के अतिरिक्त नैतिक मानदंड, विज्ञान, स्वास्थ्य, पर्यावरणीय तत्व, समता दर्शन आदि का विशद विवेचन है। श्रमण अर्थात जैन साहित्य में सामाजिक विधि-विधानों, नियम-आदर्शों, सिद्धांतों आदि विषयों का प्रतिपादन करने के निमित्त सूत्र, एवं श्रोत-स्मृति साहित्य जैसे ग्रंथों का प्रणयन नहीं किया गया, फिर भी श्रमण परम्परा में सातवीं शती व उसके बाद रचित पुराण, चरित एवं श्रावकाचार ग्रंथों में सामाजिक संस्थाओं एवं विषयों पर प्रसंगतः विमर्श किया गया है। कतिपय प्रसंगों में वर्ण-जाति, संस्कार, चार पुरुषार्थ का समन्वय, पारिवारिक स्थिति, आश्रम व्यवस्था आदि संस्थाओं की न्यूनाधिक जानकारी प्राप्त हो जाती है जिससे श्रमण संस्कृति के समाज व्यवस्था के प्रति विचारों से अवगत हुआ जा सकता है। मूलतः सैद्धांतिक रूप से जैन धर्म में वर्ण या जाति व्यवस्था स्वीकार्य नहीं, साथ ही विधि-विधानान्तर्गत कर्मकाण्ड निस्सार हैं, वह आत्मोत्थान पर ही बल देता है लेकिन कालान्तर में समन्वय स्थापित करते हुए किस रूप व स्तर तक सूत्र-स्मृति मान्य विधानों को मान्यता प्रदान कर दी गई, यह प्रस्तुत आलेख में विवेचित है।

बीज शब्द: कर्म, संस्कार, वर्ण-जाति, समन्वय, जिनसेन

प्रस्तावना

श्रमण साहित्य से आशय जैन धर्म के साहित्य से है। प्राचीन काल से ही भारत में प्रवृतिमूलक एवं निवृतिमूलक दोनों विचारधाराएं निरंतर प्रवाहवान हैं। निवृतिमूलक विचारधारा के संवाहक श्रमण थे। वाचस्पति गेरोला ने भी मत व्यक्त किया है कि प्राचीन काल से ही भारत में दो विचारधाराएं रहीं हैं, एक ब्रह्मवादी विचारधारा जो वैदिक संस्कृति के रूप में विकसित हुई एवं दूसरी श्रामण्य विचारधारा जिसके प्रतिपादक जैन थे (गैरोला, 1960)। कालमान के आलोक में दोनों विचारधाराओं का परस्पर प्रभाव अवश्यम्भावी था अर्थात दोनों विचारधाराएं परस्पर पूरक भी रहीं एवं विरूद्धगामी भी।

श्रमण परम्परा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

जैन शब्द अत्यंत अर्वाचीन है। प्राचीन काल में जैन अनुयायी या संत श्रमण नाम से अभिहित

*सहायक प्राध्यापक, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक, म.प्र.।

थे। वैदिक काल तक जैन संतों को वातरसन मुनि से संबोधितकिया गया, कालान्तर में वह श्रमण कहलाए। ऋग्वेद के सूक्त 10.136,2,3 में "मुनयों वातरशना पिशंगा वषते मला" में वातरसना मुनियों का उल्लेख है। इसमें वातरसन मुनियों के सात भेद उल्लिखित हैं जिनमें ऋषभदेव मुख्य थे। उत्तरवैदिक साहित्य तैत्तरीय आरण्यक जैन धर्म के प्रवर्तक ऋषभदेव को वातरसन मुनि कहा गया है। भागवत पुराण में वातरसन मुनि, श्रमण व ऋषभदेव का उल्लेख एक ही श्लोक में हुआ हैः- श्रमणा वातरशनाआत्मविद्या विषारदः। वातरशनाय ऋषयः श्रमणाऊध्र्वमन्थितः। ब्रह्माख्यं धाम ते यान्ति शान्ताः सन्यासिनोमलाः। (भागवत पुराण; 12.2.20)।

जैन ग्रन्थों में जैन संतों का उल्लेख श्रमण शब्द से है। ऋषभदेव के बाद 23 अन्य तीर्थंकरों ने जैन धर्म का प्रवर्तन किया। यजुर्वेद के 26 वें अध्याय में "ॐ नमोऽर्हतो ऋषभो" एवं "ॐ रक्ष-रक्ष अरिष्टनेमि स्वाहा" सूक्त में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव एवं तेईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ को नमन किया गया है। नेमिनाथ महाभारत के महानायक श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे। पार्श्वनाथ (777 ईसा पूर्व) एवं महावीर (599-527 ईसा पूर्व) पूर्णतः ऐतिहासिक महापुरूष थे। जैन धर्म वर्द्धमान और पार्श्वनाथ से भी पहले प्रचलित था। यजुर्वेद में ऋषभदेव, अजितनाथ और अरिष्टनेमि इन तीर्थंकरों के नामों का उल्लेख है। भागवत पुराण भी इस बात का समर्थन करता है कि ऋषभदेव जैन धर्म के संस्थापक थे। जैन धर्म का नाम तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के काल तक आर्हत धर्म था, महावीर के काल में जैन धर्म का नाम निग्रंथ प्राप्त होता है। बौद्ध ग्रंथों एवं अशोक के अभिलेखों में जैन साधुओं का उल्लेख निग्रंथ नाम से हुआ है।

महावीर के पश्चात उनका संघ 300 ईसा पूर्व तक धर्म साधना एवं प्रचार-प्रसार में संलग्न रहा लेकिन इसके बाद संघ में मतभेद हो गए एवं प्रथम शती ईसवी में औपचारिक रूप से दिगम्बर एवं श्वेताम्बर आम्नाय में विभक्त हो गया। यह विभाजन दिगम्बरत्व के सिद्धांत को लेकर हुआ। दिगम्बर मतानुसार परिग्रह के पूर्ण त्याग अर्थात निर्वस्त्र ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है जबकि श्वेताम्बर आम्नाय के अनुसार सवस्त्र मुक्ति हो सकती है। श्वेताम्बरों ने सिद्धांतों में समयानुकूल परिवर्तन व परिवर्द्धन कर लिया जिसे दिगम्बर मान्यता नहीं देते हैं। उक्त मतभेद के अतिरिक्त अन्य समस्त दार्शनिक सिद्धान्तों में कोई अन्तर नहीं है।

प्राचीन श्रमण साहित्य

द्वादश अंग साहित्य जैन धर्म का प्राचीनतम साहित्य है जिनका प्रणयन पांचवीं शती ईसा पूर्व से द्वितीय शती ईसा पूर्व तक किया गया। बारह अंग इस प्रकार हैं- आचरंग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, भगवती व्याख्या प्रज्ञप्ति, ज्ञातृधर्मकथा, उपासकाध्ययन, अंतकृद्दशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, प्रश्न-व्याकरण, विपाक सूत्र, एवं दृष्टिवाद, बारहवाँ अंग अनुपलब्ध है। इसके अतिरिक्त बारह उपांग, दस प्रकीर्णक, छह छेद सूत्र आदि साहित्य है। यह साहित्य श्रुत परम्परा पर आधारित था। तीसरी शती ईसा पूर्व में जैन धर्म में नग्नत्व या दिगम्बरत्व को लेकर सैद्धांतिक विभाजन हो गया, अतः साहित्य संकलन पुनः किया गया, उस वाचना का दिगम्बर आम्नाय द्वारा बहिष्कार कर दिया गया। कालान्तर में गुप्त युग में इन ग्रंथों को अंतिम रूप दिया गया। दिगम्बर मतानुसार अंग ग्रंथों में पुष्ट पेषण कर क्षेपण जोड़ दिए गए अतः संशोधित ग्रंथ उन्हे स्वीकार्य नहीं। दिगम्बर आम्नाय के आचार्यों ने संशोधन पूर्व अंग साहित्य से प्राप्त ज्ञान के आधार पर अपना पृथक साहित्य सृजित किया, जिसे विषयवस्तु के आधार पर चार भागों में विभाजित किया गया है - प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, और द्रव्यानुयोग। प्रथमानुयोग में तीर्थंकर सहित

63 महापुरूषों का जीवन चरित्र वर्णित है जो पुराण एवं चरित साहित्य के रूप में विद्यमान है। इन ग्रंथों में यथा अवसर व प्रसंगतः धर्म, राजनीति, सामाजिक व्यवस्था, आर्थिक विचार, कलाएँ, पर्यावरण, दर्शन एवं अन्य संस्कृति आदि से संबंधित तत्त्व विद्यमान हैं। इस प्रकार पुराणों में तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक, प्राकृतिक स्थिति की भी जानकारी प्राप्त हो जाती है।

अध्ययन स्रोत

प्रस्तुत शोध पत्र लेखन हेतु प्रथमानुयोग के ग्रंथ आदिपुराण, हरिवंश पुराण, पद्मपुराण, यशस्तिलक चम्पूमहाकाव्य, सागर धर्मामृत एवं वरांग चरित का विशेष अध्ययन किया गया है जिनका सृजन काल सातवीं शती ईसवी से दसवीं शती ईसवी है। करूणानुयोग के ग्रंथों में त्रिलोक, गणित, काल, परिवर्तन आदि का अववरण किया गया है। प्रतिपाद्य विषय इस अनुयोग के ग्रंथों से संबंधित नहीं है अतः इस अनुयोग के ग्रन्थों का अनुशीलन नहीं किया गया। चरणानुयोग के ग्रंथों की विषय-वस्तु गृहस्थ एवं साधु के व्यक्तिगत आचरण की शुद्धि हेतु मार्गदर्शन कर आत्मोत्थान से संबंधित है। इस अनुयोग के ग्रन्थों में से रत्नकरंड श्रावकाचार, वसुनंदी श्रावकाचार, अमितगति श्रावकाचार, पुरुषार्थसिद्धियुपाय आदि ग्रंथों के तथ्यों को यहाँ प्रस्तुत किया गया है। आत्मा, परमात्मा, पाप-पुण्य, तत्त्व-दर्शन आदि का गूढ़ चिन्तन व विश्लेषण द्रव्यानुयोग के ग्रंथों में किया गया है। इस अनुयोग के साहित्य में से पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, नियमसार, समयसार एवं तत्वार्थ सूत्र आदि मुख्य ग्रथों का अध्ययन यहाँ समवेत है। इनका रचना काल प्रथम शती ईसवी है। प्रस्तुत शोध पत्र दिगम्बर आम्नाय के चारों अनुयोगों के अंतर्गत उक्त विवेचित ग्रंथों पर आधारित है जिनका रचना काल प्रथम शती ईसवी से बारहवीं शती ईसवी है।

सृष्टि एवं समाज उत्पत्ति विषयक विवेचन

श्रमण साहित्य का मुख्य प्रतिपाद्य विषय जैन सिद्धांतों का विवेचन है न कि समाज। जैन या श्रमण ग्रंथ अध्यात्म पर आधारित हैं लेकिन प्रसंगतः सामाजिक संस्थाओं का विवेचन भी विशेषकर चरित व पुराण साहित्य में किया गया है। समाज से संबंधित सृष्टि व संसार की रचना, वर्ण-जाति, आश्रम व्यवस्था, संस्कार आदि की अवधरणाओं को जैन साहित्य में कतिपय प्रसंगों में स्पष्ट किया गया है। जैन साहित्य में सृष्टि, संसार, समाज एवं सामाजिक संस्थाओं से संबद्ध विवेचन एवं विमर्श निम्नानुसार प्रस्तुत है:-

ईश्वरीय शक्ति विहीन सृष्टि व संसार

सत्, द्रव्य, तत्व एवं लोक आदि का दार्शनिक विवेचन सैद्धांतिक ग्रंथों में किया गया है। जैन दर्शन के अनुसार सृष्टि और समाज की उत्पत्ति में कोई ईश्वरीय शक्ति नहीं है बल्कि यह प्रकृति की अपनी रचना है। जैन दर्शनानुसार पाँच अस्तिकाय द्रव्यों के समूह से लोक बना है और यह पाँच अस्तिकाय जीव, पुद्गल (पदार्थ Matter), धर्म (प्रेरक तत्व Medium of Motion), अधर्म (गतिरोध Medium of rest) व आकाश (Space) अपनी सत्ता से निष्पन्न हुए हैं। यह लोक इन पांच अस्तिकायों व काय रहित एक प्रदेशी काल द्रव्य का समुदाय है। इन्हीं द्रव्यों के परस्पर सहयोग से लोक बनता है। अनंत सर्वव्यापी आकाश में जितना आकाश पुद्गल, जीव, धर्म, अधर्म, काल द्रव्यों से घिरा हुआ है उसे लोकाकाश कहते हैं और केवल जहाँ आकाश ही है अन्य पाँच द्रव्य नहीं रहते वह आलोकाश कहा जाता है (पंचास्तिकाय;

गाथा 4, 22, महापुराण; 3/24-50)। यह विश्व इन अनतानंत सतों का विराट आगार है और अकृत्रिम है। जैन दर्शनानुसार विश्व के समस्त पदार्थ मुख्यतः दो श्रेणियों में समाहित हो जाते हैं, एक तो चेतन अर्थात जीव (Soul) तथा दूसरे अचेतन या अजीव (Non-Living Soul)। अचेतन द्रव्यों के भी दो भेद हैं- प्रथम मूर्त तथा दूसरा अमूर्त। मूर्त द्रव्य की श्रेणी में पुद्गल आता है। पुद्गल के भी दो भेद हैं, अणु एवं स्कन्ध। अमूर्त किंतु अचेतन द्रव्यों की भी चार-चार श्रेणी हैं। धर्म अर्थात् मीडियम आफ मोशन जिसे वैज्ञानिकों ने ईथर से अभिहित किया है। अधर्म अर्थात् मीडियम आफ रेस्ट जिसे विज्ञान गुरूत्व कहता है- आकाश (Space) एवं काल (Time)। जीव द्रव्य भी अमूर्त है परंतु चेतन है। इस प्रकार पांच द्रव्य अमूर्तिक है तथा पुद्गल द्रव्य मूर्तिक है। इन छह द्रव्यों के समूह को विश्व, सृष्टि, जगत कहते हैं। प्रकृति का प्रत्येक तत्व बाहरी एवं आंतरिक रूप से जुड़ा है। जैन मतानुसार जीव एवं अजीव दोनों मित्र द्रव्य हैं। इन दोनों का संबंध अलग-अलग करना किसी के लिए संभव नहीं है। यह दोनों द्रव्य आकाश में आश्रय पाकर अनंत काल से धर्म द्रव्य की सहायता से गति करते हुए अधर्म के आश्रय से स्थिति प्राप्त करते हैं। यह सृष्टि छह द्रव्यों का समुदाय है। जीव क्रमशः धर्म द्रव्य की सहायता से प्रगति करता जाता है। संसारी जीव ही अपने कर्म के उदय से प्रेरित होकर शरीर आदि संसार की सृष्टि करते हैं और उसी में समाज का निर्माण होता है। द्रव्य अनादि अनंत एवं परिणमनशील स्वभाव वाला है। उसे किसी ने बनाया नहीं, उसका कोई पालक नहीं और न ही उसका कोई नाश कर सकता है।

तत्वार्थ सूत्र के अनुसार सत का लक्षण है "उत्पादव्ययध्रौव्यंलक्षणंसत" (तत्वार्थ सूत्र; 5/29)। द्रव्य में नवीन पर्याय की उत्पत्ति को उत्पाद (origin) कहते हैं, जैसे मिट्टी के पिण्ड से घड़े का बन जाना उत्पाद है। पूर्व पर्याय के विनाश को व्यय (destruction) कहते हैं- जैसे घड़ा बन जाने के कारण मिट्टी के पिण्ड का नाश हो जाना। पूर्व पर्याय का विनाश और नवीन पर्याय का उत्पाद पर भी सदा बने रहने वाले मूल स्वभाव को ध्रौव्य (permanence) कहते हैं, जैसे पिण्ड तथा घड़े दोनों पर्यायों में मिट्टी का रहना। प्रति समय पूर्व पर्याय का नाश और आगे की पर्याय की उत्पत्ति के होते हुए भी द्रव्य कायम रहता है। द्रव्य में अनेक पर्याय पलटने पर भी जो द्रव्य से कभी पृथक नहीं होता, सदा द्रव्य के साथ ही रहता है उसे गुण कहते हैं। जैसे जीव के ज्ञान आदि और पुद्गल के रूप रस आदि। द्रव्य में जो विक्रिया होती है अथवा जो अवस्था बदलती है उसे पर्याय कहते हैं, जैसे जीव की नर नारक आदि पर्याय। द्रव्य की प्रति समय उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यात्मक स्वरूप से ही प्रकृति व विश्व चलायमान है एवं वस्तुओं, प्राणियों, वनस्पति, व दृश्यमान सम्पूर्ण जगत में परिवर्तन ही परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं। संसार में जो कुछ भी हो रहा है, जैसे पौधों का पेड़ बनना, बालक का युवा और युवा का वृद्ध होना, दिन होना व रात होना आदि परिवर्तन हो रहा है, वह सब वस्तुओं के उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य एवं गुण और स्वभाव के कारण हो रहा है इसमें कोई ईश्वरीय शक्ति नहीं है।

वर्ण-जाति विषयक श्रमण विचार

विश्व के सामाजिक इतिहास में भारतीय वर्ण एवं जाति व्यवस्था का विशेष स्थान है। वर्ण और जाति ने समय-समय पर समाज की समस्त गतिविधियों को अपने विचारों व कार्यो से प्रभावित किया, फलतः देश में होने वाले अनेकानेक परिवर्तनों, संघर्षों तथा क्रांतियों में उसकी प्रमुख भूमिका रही। वर्ण व्यवस्था में दो प्रधान तत्व निहित हैं, एक तो भेद-परक, ऊँच-नीच भावना और दूसरे सभी वर्णों के लिए निर्धारित कर्म। इन्हीं दो तत्वों को लेकर वर्ण व्यवस्था का स्वरूप बना। समाज में भिन्न-भिन्न वर्गों का होना स्वाभाविक है, क्योंकि सभी मनुष्य समान रूप से उत्पन्न नहीं होते। सभी में समान प्रतिभा, समान आदतें

नहीं होती तथा सभी समान रूप से कार्य भी नहीं करते। भारतीय वर्ण-व्यवस्था गुण व कर्म के आधार पर मानव के विकास के लिए आरंभ हुई थी। इस व्यवस्था से जितने लाभ उससे अधिक दोष भी समाहित हो गयह। प्रारम्भ में व्यवसाय के आधार पर विभिन्न वर्गों का आविर्भाव हुआ, वर्ग कालान्तर में वर्ण में परिणित हो गए। चारों वर्णों के अपने-अपने कर्म वैज्ञानिक और सुविचारित आधार पर निर्धारित थे जो समाज के व्यवस्थित विभाजन को व्यक्त करते थे। वर्ण व्यवस्था का आधार कालान्तर में गुण कर्म के स्थान पर जन्म हो गया एवं जाति प्रथा का विकास हुआ। धार्मिक एवं सामाजिक रीति-रिवाजों की भिन्नता के कारण जातियों में सांस्कृतिक खाई लगातार बढ़ती गई। कुछ जातियाँ उच्च मानी जाने लगीं तथा कुछ हीन। वंशानुगत होने से कट्टरता का समावेश हुआ। उच्च वर्गों को विशेष अधिकार दिए गए तथा निम्न जातियों पर अन्याय हुए। निम्न वर्गों के साथ ऊँच-नीच, भेदभाव, छुआछूत आदि रिवाज बना दिए गए। निम्न वर्गों के सामाजिक व धार्मिक कार्यो पर अनेकानेक प्रतिबन्ध लगाए गए जो निन्दनीय थे।

जैन सैद्धांतिक ग्रन्थों में सामाजिक व्यवस्था से सबंधित विचारों या अवधारणाओं का वर्णन उपलब्ध नहीं है। वस्तुतः जैन धर्म मूलरूप से वर्ण व्यवस्था को मान्यता प्रदान करता ही नहीं है लेकिन दिगम्बर जैन आचार्यो ने सातवीं शताब्दी के उपरांत जिन पौराणिक ग्रन्थों की रचना की उसमें समयानुकूल वैदिक व्यवस्था के प्रभाव से वर्ण व्यवस्था सबंधी अपने मन्तव्यों को अवश्य स्पष्ट किया है जिसका विवेचन किया जा रहा है।

ब्राह्मण धर्म वर्ण व्यवस्था को जिस प्रकार जन्म से स्वीकार करता है उस प्रकार जैनाचार्य उसे जन्म से स्वीकार नहीं करते। जैनाचार्यों के मत में जन्म से केवल मनुष्य जाति उत्पन्न होती है। मनुष्य से ही मनुष्य उत्पन्न होता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह जाति भेद नहीं है। चार वर्ण जो अस्तित्व में आयह वह कर्मों के कारण ही अस्तित्व में आए। कर्म पर आधारित व्यवस्था का सर्वप्रथम संकेत प्रथम शती ईसवी के श्रमण आचार्य समन्तभद्राचार्य ने दिया। उन्होने अपने ग्रंथ स्वयंभूस्त्रोत के द्वितीय श्लोक में लिखा है -ऋषभदेव ने असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प इन छह कर्मों का उपदेश दिया एवं षटकर्म-व्यवस्था स्थापित की (स्वयंस्त्रोत श्लोक 2)। यहाँ समन्तभद्र ने वर्ण व्यवस्था का संकेत नहीं दिया। मूल में जैन धर्म वर्ण व्यवस्था तथा उसके आधार पर सामाजिक व्यवस्था को स्वीकार नहीं करता है। सैद्धांतिक ग्रन्थों में वर्ण और जाति शब्द नाम कर्म के प्रभेदों में है। जिस कर्म के उदय से शरीर में वर्ण (रूप) होता है। उसे वर्ण नाम कर्म कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं नील, शुक्ल, कृष्ण, रक्त, और पीत। जिस कर्म के उदय से अनेक प्राणियों में अविरोधी समान अवस्था प्राप्त होती है उसे जाति नाम कर्म कहते है। जाति नाम कर्म से एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रयजाति और पन्चेन्द्रियजाति में जन्म होता है। पन्चेन्द्रिय मनुष्य एवं पशु होते हैं। जैन दर्शन में जाति की जो परिभाषा दी गई है उसके अनुसार मनुष्य एवं पशु में भेद नहीं है क्योकि स्पर्श, रसना, घ्राण, चक्षु एवं श्रोत्र यह पशु की भी इन्द्रियां हैं। जैन दर्शन जाति की दृष्टि से मनुष्य एवं पशु को एक मानता है। तब वह मनुष्य-मनुष्य में भेद कैसे मान सकता है। श्रमण साहित्य के अनुसार जब जैन धर्म के प्रवर्तक तीर्थंकर को कैवल्य ज्ञान प्राप्त होता है तब एक समवशरण की रचना होती है अर्थात एक धर्म सभा का आयोजन होता है जिसमें बारह कोष्ठ होते हैं जिन पर क्रमशः मुनि, कल्पवासिनी देवियाँ, आर्यिकायें, ज्योतिष देवों की देवांगनाएँ, व्यंतर देवों की स्त्रियाँ, भवनवासी देवों की नारियाँ, ज्योतिष देव, व्यंतर देव, भवनवासी देव, कल्पवासी देव, मनुष्य और तिर्यंच पशु के स्थान निश्चित होते थे (आदिपुराण; पर्व 23 श्लोक 193)। भगवान की इस सभा में मनुष्य एवं पशु को इन्द्रियों के आधार पर स्थान दिया जाता है अर्थात सभा में मनुष्य एवं पशु में भेद नहीं किया गया। सभी मनुष्यों को एक ही कोष्ठ प्रदान

किया जाता है न कि वर्ण या जाति के आधार पर अलग-अलग। जब भगवान की सभा में कोई भेदभाव नहीं किया जाता तब भगवान के स्थान प्रतीक मंदिर में किसी वर्ण पर प्रतिबंध का प्रश्न ही नहीं। जैन धर्म अपनाने के लियह निम्न वर्ग पर कोई प्रतिबंध नहीं था वह व्यक्तिगत साधना से मोक्ष भी प्राप्त कर सकते थे। सागर धर्मामृत के अनुसार शूद्र हो या किसी भी वर्ण या संस्कृति का व्यक्ति हो उसे धर्म धारण करने का अधिकार है (सागर धर्मामृत; /2/)।

जैन धर्म के सभी तीर्थंकर क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए अतः ब्राह्मण श्रेष्ठता का प्रश्न ही नहीं। अंतिम एवं चौबीसवें तीर्थकर महावीर के संघ के सदस्य एवं अधिकांश गणधर ब्राह्मण थे जो महावीर की वाणी व उपदेशों की व्याख्या जनसाधारण के लिए किया करते थे। महावीर के ग्यारह गणधरों का उल्लेख मिलता है- इन्द्रभूति गौतम, अग्निभूति, वायुभूति, शुचिदत्त, सुधर्मस्वामी, माण्डव्य, मौर्यपुत्र, अकम्पित, अचलभ्राता, मेतार्य, एवं प्रभास। उक्त गणधरों में दो राजसी एवं शेष ब्राह्मण परिवार से थे, इन्होनें महावीर से दीक्षा लेकर जैन धर्म व संघ को अंगीकार किया (शास्त्री, परमानंद)। अधिकांश गणधरों को महावीर के निर्वाण के पूर्व ही मुक्ति प्राप्त हो गयी थी। महावीर के पश्चात् गौतम गणधर ने जैन धर्म का प्रतिनिधित्व किया। समंतभद्राचार्य अपने दूसरे ग्रंथ रत्नकरण्ड श्रावकाचार में वर्ण व जाति व्यवस्था को निरर्थक एवं महत्वहीन सिद्ध करते हुए लिखते हैं- जो मनुष्य सम्यक् दर्शन से संपन्न है वह चंडाल के कुल में उत्पन्न होकर भी देव है, राख के भीतर ढके अंगारे के भीतरी प्रकाश के समान पूज्य है (रत्नकरण्ड श्रावकाचार; /29/)। धर्म के लिए जैन धर्म में भेदभाव को कोई स्थान प्राप्त नहीं था। वरांग चरित्र में लिखा है कि सब मनुष्यों का पिता (मनुष्य जातिनाम कर्म या ब्रह्म) एक ही है अतःएव पिता के एक होने से जाति भेद बन नहीं सकता। चारों वर्णों की शारीरिक एवं मानसिक विशेषताएँ एक ही होती हैं तब भेद कैसा ? इस लोक में न कोई ब्राह्मण जाति है न क्षत्रिय जाति है और न वैश्य या शूद्र जाति ही है किन्तु यह जीव कर्मों के वश हुआ संसार चक्र में परिभ्रमण करता है। जो विद्या, क्रिया और गुणों से हीन है वह जाति मात्र से ब्राह्मण नहीं हो सकता किंतु जो ज्ञान, शील और गुण से युक्त है उसे ही ब्राह्मण कहते हैं। व्यास, वशिष्ठ, द्रोण और पाराशर यह सब आचार और तप रूप अपनी सम्पत्ति से युक्त होकर ही ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए थे।

इन तथ्यों से स्पष्ट है कि जैन आचार्यों के मतानुसार कर्म के अनुसार वर्ण व्यवस्था अस्तित्व में आई एवं कर्म के आधार पर ही विद्यमान है (शास्त्री, 1963, पृ. 344)। जैन सूत्रों का कथन है कि सिर मुंडाने से कोई श्रमण नहीं होता। ओंकार का जाप करने से कोई ब्राह्मण नहीं होता, जंगल में रहने से कोई मुनि नहीं होता, कुश-चीबर धारण करने से कोई तापस नहीं होता बल्कि हर कोई समता श्रमण ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण, ज्ञान से मुनि और तप से तपस्वी होता है (जैन, 1965, पृ. 225)। रत्नकरण्ड श्रावकाचार में जाति कुल के घमण्ड को काल्पनिक एवं निरर्थक मानते हुए निर्दिष्ट किया गया है -ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप और शरीर के आश्रय से घमण्ड होता है। इस प्रकार के घमण्ड से धर्मात्माओं का अनादर करने से धर्म की ही हानि होती है। (रत्नकरण्ड श्रावकाचार/25-26/)

दिगम्बर जैन साहित्य के प्रारम्भिक व उत्तरकालीन दार्शनिक व पौराणिक ग्रन्थों में आर्य एवं अनार्य शब्दों का मनुष्यों के भेद के रूप में उल्लेख मिलता है लेकिन यह भेद सांस्कृतिक एवं गुणात्मक दृष्टि से विवेचित किए गया। समयसार में आचार्य कुंद-कुंद ने लिखा है कि अनार्यों की अपनी भाषा थी। उमास्वामी ने आर्यों व अनार्यों के संबध में लिखा है कि जो अनेक गुणों से संपन्न होता है तथा गुणी पुरूष जिसकी सेवा करते हैं उसे आर्य कहते हैं। उन्होने तत्वार्थ सूत्र में अनार्य शब्द के स्थान पर मलेच्छ शब्द व्यवहार में लाया गया है जो आचार से भ्रष्ट होता है तथा जिसे धर्म का कुछ विवेक नहीं होता उसे मलेच्छ

कहते हैं। वेदों के अनुसार भी आर्य सदाचरण और सद्वृत्तियों का अनुसरण करने वाले थे तथा दास (अनार्य) दुःप्रवृत्तियों, अनियमितताओं और अव्यवस्थाओं को उत्पन्न करने वाले। वैदिक व जैन साहित्य से यह स्पष्ट है कि आचार सम्मत, सद्वृत्तियुक्त व सुसंस्कृत जन या जनसमूह आर्य के सूचक थे। इसके विपरीत वृत्तियो से युक्त मनुष्य अनार्य या मलेच्छ थे।

आर्य व अनार्य भेद धार्मिक व सास्कृतिक दृष्टि से था जबकि चतुर्वर्ण व्यवस्था विशुद्ध सामाजिक व्यवस्था थी। दिगम्बर जैन साहित्य से यह भी स्पष्ट होता है कि भेद लोक मान्यता पर आधारित था। इतिहासकार रामशरण शर्मा का भी मत है कि प्रारंभिक वैदिक समाज में स्पष्ट रूप से केवल आर्य वर्ण और दास वर्ण की चर्चा की गई है। ऋग्वैदिक काल का अंत होते-होते चार वर्णो की चर्चा होती है। आर्य में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को स्थान मिलता है और दास वर्ण में शूद्र को। आर्यों एवं अनार्यो के मिश्रण के कारण ब्राह्मण वर्ण का जन्म हुआ जिसमें आर्य एवं अनार्य-दोनों सम्मिलित थे। ऋग्वेद में ब्राह्मणवाद का जोर नहीं मालूम पड़ता है। इसमें सात प्रकार के पुरोहित पाए जाते हैं जिनमें ब्राह्मण भी एक है। उत्तर वैदिक काल के आरंभ में सोलह प्रकार के पुरोहित मिलते हैं जिनमें ब्राह्मण एक प्रकार है (शर्मा, 1995, पृ. 64)। कालान्तर में वर्ग, वर्ण में परिवर्तित हो गए एवं वर्ण भाषाई, क्षेत्रीय, विचारधारा, परम्परा, संस्कृति आदि के आधार पर जाति में परिणित हो गए। उपरोक्त प्रस्तुत किए गए तथ्यों के आलोक में स्पष्ट है कि जैन धर्म मूलतः एवं सैद्धांतिक दृष्टि से वर्ण व जाति व्यवस्था को मान्यता प्रदान नहीं करता है फिर भी परवर्ती साहित्य में वर्ण व्यवस्था विषयक विचारों पर विमर्श किया गया है जिसका विवरण प्रस्तुत है।

सर्वप्रथम वर्ण-जाति विषयक विचार महापुराण के प्रथम भाग आदिपुराण के रचयिता जिनसेन ने प्रस्तुत किए। आचार्य जिनसेन ने आठवीं शती ईसवी में समाज में प्रभावी रूप से व्याप्त वर्ण व्यव्स्था को कर्मणा आधार पर आत्मसात हुए जैन संस्कृति के अनुकूल व्याख्या करते हुए लिखा है:-ऋषभदेव ने अपनी दोनों भुजाओं में शस्त्र धारण कर क्षत्रिय की सृष्टि की थी अर्थात उन्हें शस्त्र विद्या का उपदेश दिया जो शास्त्रों से निर्बलों की रक्षा करते हैं उन्हे क्षत्रिय नियुक्त किया, तदनंतर भगवान ने अपनी उरूओं से यात्रा दिखलाकर अर्थात परदेश जाना सिखलाकर वैश्यों की रचना की अर्थात जो व्यापार करते थे उन्हे वैश्य नियुक्त किया। हमेशा नीच वृत्ति में तत्पर रहने वाले शूद्रों की रचना बुद्धिमान वृषभदेव ने पैरों से ही की थी, क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन उत्तम वर्णों की सेवा-शुश्रुषा आदि करना ही उनकी अनेक प्रकार की आजीविका है। इस प्रकार तीन वर्णों की सृष्टि तो स्वयं ऋषभदेव ने की थी उनके बाद भगवान ऋषभदेव के बड़े पुत्र महाराज भरत ने मुख से शास्त्रों का अध्ययन कराते हुए ब्राह्मण की रचना की। स्वयं पढ़ना, दूसरों को पढ़ाना, दान लेना, तथा पूजा करना यज्ञ करना उनके कार्य होगें (आदि पुराण; 16/243-246)। पुराण में अवश्य ही ऋग्वेद के पुरूष सूक्त में वर्णित विराट पुरूष से चार वर्णों की उत्पत्ति के आधार पर ही आचार्य जिनसेन ने अपना मत व्यक्त किया है लेकिन जिनसेन के अनुसार ऋषभदेव ने वर्ण उत्पन्न नहीं किए हैं बल्कि पूर्व से ही अलग-अलग व्यवसाय में संलग्न लोगों को अलग-अलग वर्गों में विभाजित किया था।

पुराण के अड़तीसवें अध्याय में वह पुनः मत व्यक्त करते हैं कि यद्यपि जाति नामकर्म के उदय से उत्पन्न हुई मनुष्य जाति एक ही है तथापि आजीविका के भेद से होनेवाले भेद के कारण वह चार प्रकार की हो गयी है (आदि पुराण; 38/45)। व्रतों के संस्कार से ब्राह्मण, शस्त्र धारण करने से क्षत्रिय, न्यायपूर्वक धन कमाने से वैश्य और नीच वृत्ति का आश्रय लेने से मनुष्य शूद्र कहलाते हैं (आदि पुराण; 38/46)।

आदिपुराण में सामाजिक दृष्टि से शूद्रों के दो प्रकारों का वर्णन किया गया है। एक कारू शूद्र और दूसरा अकारू शूद्र। धोबी आदि शूद्र कारू एवं उनसे भिन्न अकारू शूद्र कहलाते थे। कारू शूद्र भी स्पृश्य

तथा अस्पृश्य के भेद से दो प्रकार के माने गए हैं। उनमें से जो प्रजा से बाहर रहते थे उन्हे अस्पृश्य अर्थात् स्पर्श करने के अयोग्य और नाई वगैरह को स्पृश्य अर्थात् स्पर्श करने योग्य माना गया (आदि पुराण; 16/185-186)। पुराणकार ने तत्कालीन समाज में व्याप्त सामाजिक स्थिति की विवेचना की है। उन्होंने जिनेन्द्रदेव के ज्ञान में अनुरक्त लोगों को वर्णोत्तम ही कहा है।

संस्कार विषयक श्रमण विचार

आदिपुराणकार ने वैदिक व्यवस्था में व्यक्तित्व निर्माण और विकास के हेतु सोलह संस्कारों को जैन स्वरूप में प्रस्तुत किया। आदिपुराण में वर्णित संस्कारों को क्रियाएं नाम से उपदेशित किया गया है। जिस प्रकार वैदिक व्यवस्था में संस्कारों के लिए द्विज ही पात्र थे उसी प्रकार पुराणकार आचार्य जिनसेन ने भी अपनी क्रियाएं द्विज के लिए ही संबोधित की हैं। द्विजों के संस्कारों को दृढ़ करने के लिए गर्भान्वय, दीक्षान्वय और कर्तव्यन्वय क्रियाओं के अंतर्गत एक सौ आठ का वर्णन महापुराण के अड़तीसवें एवं उनतालीसवें अध्याय में किया गया है। यह गर्भान्वय क्रियाएं तिरपन की संख्या में हैं जो सामान्य गृहस्थ के जीवन को संस्कारित करने के उद्देश्य से हैं। पुराणकार संस्कारों के विषय में भारतीय व्यवस्थापकों की सामान्य प्रवृत्ति के अनुकूल है किंतु युग विशेष की परिवर्तित परिस्थितियों के कारण और विशेषतया साम्प्रदायिक आग्रह के फलस्वरूप इनके वर्णन अधिकांशतः भिन्न अवश्य पाए जाते हैं। तिरपन में से आधान क्रिया, प्रीति, सुप्रीति, धृति, मोह, प्रयोदभव, नामकर्म, बहियीन, निषज्ञा, प्राषन, व्युष्टि, केशवाप, लिपिसंख्यान संग्रह, उपनीति, वृतचर्या, वृतावतण, विवाह, वर्षलाभ, कुलचर्या, गृहीशिता, प्रषान्ति, गृहत्याग, दीक्षाद्य आदि गृहसूत्रों में वर्णित क्रियाओं का मात्र जैन रूपान्तरण है। जिनसेनाचार्य के अनुसार उपरोक्त सभी क्रियाओं के योग्य मात्र द्विज हैं। वैदिक सामाजिक व्यवस्था में तो ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य वर्ण ही द्विज कहलाते हैं लेकिन जिनसेन ने जिनेन्द्रदेव के ज्ञान रूपी गर्भ से जन्म लेने वाले अर्थात जैन धर्म का अनुसरण करने वाले को ही द्विज कहा है। वह साधारण द्विजों की अपेक्षा उत्तम हैं। वह वर्णो के अन्तर्गत नहीं बल्कि वर्णोत्तम हैं। जो निर्दोष आचरण करते हैं, क्षमा एवं शौच आदि गुणों से युक्त हैं वह वर्णों में उत्तम हैं (आदि पुराण; 38/130)।

श्रमण संस्कृति में समन्वय

जिनसेन समन्वयवादी थे। उनके समय (नवमी शती ईसवी) में सामाजिक विशेषाधिकार, वर्णाश्रम और संस्कार संस्था पर ही अवलंबित थे। संस्कारहीन व्यक्ति को निकृष्ट माना जाता था एवं वर्ण-जाति भी सामाजिक प्रतिष्ठा के हेतु थे अतः उन्हों दार्शनिक दृष्टि से उक्त संस्थाओं के निस्सार होने पर भी इन सामाजिक व्यवस्थाओं या संस्थाओं की उपादेयता प्रतिपादित की। उन्होने जैन धर्म अनुयायियों को वर्णोत्तम घोषित किया, साथ ही जैन धर्मानुकूल सामाजिक एवं व्यक्त्वि निर्माण संबंधित व्यवस्था दी एवं हिंसा पर आधारित सभी कर्मकांडों का विरोध किया।

दसवीं शती ईसवी में सोमदेव सूरी ने अपने ग्रंथ यशस्तिलक चम्पू महाकाव्य में वैदिक मान्यताओं का जैन रूपान्तरण न करके उन्हे वैदिक रूप में ही स्वीकार कर लिया। इसमें निर्दिष्ट है-"द्वो हि धर्मों गृहस्थानां लौकिकः पारलौकिकः। लोकाश्रयो भवेदाद्य परः स्यादागमाश्रयः। जातयोनादयः सर्वास्तक्रियापि तथविषा। श्रुतिः शास्त्रान्तरं वास्तु प्रमाणं कात्र नः क्षतिः"। इनके मत में लौकिक विधि-विधाओं से सम्यकत्व नष्ट नहीं होता एवं न ही चरित्र नष्ट होता है। वह यज्ञ में प्राणी वध को स्वीकार नहीं

करते हैं। वह उसे हिंसा ही मानते हैं। समाज धर्म के अंतर्गत वर्ण व्यवस्था सबंधी वैदिक मान्यता सोमदेव को पूर्ण मान्य थी, लेकिन व्यक्ति धर्म या पारलौकिक धर्म के संदर्भ मे जैन आगम को ही एकमात्र प्रमाण मानते हैं (यशस्तिलक चम्पूमहाकाव्य, श्लोक 18-20)। उनके मत में सामाजिक जीवन के निर्वाह के लिए यदि कोई उन्हें स्वीकृत करता है तो करे। सामाजिक मूल्य देश काल व क्षेत्र के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं किन्तु उनको मूल चिन्तन के साथ संबंद्ध करके जैन सिद्धांतो को हानि नहीं करना चाहते। जैन अनुयायियों के लिए समाज में रहने के लिए समाज व्यवस्था हेतु समाज धर्म या दिशा-निर्देश की आवश्यकता को ध्यान में रखकर सोमदेव सूरि ने वैदिक मान्यताओं को स्वीकार कर लिया।

इस संदर्भ में फूलचंद्र शास्त्री जी ने लिखा है कि मनुष्य के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह भेद आगम साहित्य और प्राचीन जैन साहित्य में उपलब्ध नहीं होते। यहाँ तक कि मूलाचार, भगवती आराधना, रत्नकरण्ड श्रावकाचार जैसे चरणानुयोग ग्रन्थों में तथा सर्वार्थ सिद्धि और राजावार्तिक जैसे सर्वविषयागर्भित टीका ग्रन्थों में भी इन भेदों का उल्लेख दृष्टि गोचर नहीं होता है। ऐसी अवस्था में वर्ण का मनुष्य कितने धर्म को धारण कर सकता है इसकी चर्चा तो दूर ही है। वर्ण के आधार पर धर्माधर्म के विचार की पद्धति बहुत ही अर्वाचीन है जो आगम सम्मत नहीं है। स्पष्ट है कि परिस्थितिवश वैदिक धर्म के प्रभाव से इसे जैन साहित्य में स्थान दिया गया। वर्णाश्रम व्यवस्था की वैदिक मान्यताओं का प्रभाव सामाजिक जीवन के रग-रग में इस प्रकार बैठ गया था कि इस व्यवस्था का घोर विरोध करने वाले जैन धर्म के अनुयायी भी इसके प्रभाव से न बच सके। दक्षिण भारत में यह प्रभाव सबसे अधिक पड़ा। इसका साक्षी वहां उत्पन्न होने वाले जैनाचार्यो का साहित्य है। सोमदेव के पूर्व नवीं शताब्दी में ही आचार्य जिनसेन ने सभी वैदिक नियमोपनियमों का जैनीकरण करके उन पर जैनधर्म की छाप लगा दी थी। जिनसेन के करीब सौ वर्ष बाद सोमदेव हुए। वह अगर विरोध करते तो भी सामाजिक जीवन में से उन मान्यताओं को पृथक करना संभव न था, इसलिए यशस्तिलक में उन्होंने यह चिन्तन दिया कि गृहस्थों का धर्म दो प्रकार का है-लौकिक तथा परलौकिक। लौकिक धर्म लोकाश्रित है तथा पारलौकिक आगमाश्रित, इसलिए लौकिक धर्म के लिए वेद (श्रुति) और स्मृतियों को प्रमाण मान लेने से कोई हानि नहीं है (शास्त्री, 1963, पृ. 100)।

सामाजिक व्यवस्था के लिए दिगम्बर जैन साहित्य में ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं था जो समाज का दिशा-निर्देशन कर सके क्योंकि वैदिक ग्रन्थ ऐसा ही कार्य कर रहे थे। सैद्धान्तिक ग्रन्थों के प्रणयन से आठवीं शती तक जो अंतर आ गया था अर्थात वर्ण व्यवस्था उस समय की आवश्यकता बन गई थी। अतः उस अनुरूप वर्ण व्यवस्था को व्यवहारिक दृष्टि से ग्रंथों में स्वीकार कर लिया गया, साथ ही स्वतंत्र अस्तित्व एवं समाज में समन्वय की दृष्टि से भी यह आवश्यक हुआ होगा। वर्ण व्यवस्था को सुरक्षित बनाने के लिए उसके नियम स्वयं भगवान ने बनायह ऐसा जिनसेन ने प्रतिपादित किया, ताकि जैन अनुयायियों में भी वैदिक व्यवस्था की तरह समाज व्यवस्था के अंतर्गत नियंत्रण बना रहेगा एवं धर्म व भगवान के डर से वर्ण अपने ही वर्ण में विवाह करेगा एवं अपने वर्ण धर्म व वर्ण कर्म का पालन करेगा।

निष्कर्ष

उक्त विवेचना से स्पष्ट है कि जैन धर्म आध्यात्मिक या सैद्धांतिक दृष्टि से वर्ण-जाति व्यवस्था को स्वीकार नहीं करता लेकिन व्यावहारिक व समाज धर्म की दृष्टि से वह प्रभावित अवश्य हुआ। वर्तमान में भी उक्त निष्कर्ष ही प्रभावी है। वर्ण व्यवस्था एवं समाज धर्म पर आधारित जनसामान्य के लिए जो चरित या पुराण साहित्य लिखा गया उसमें तत्कालीन जाति-व्यवस्था का प्रभाव व समावेश स्वाभविक था। मूल

सैद्धांतिक ग्रंथ जैसे षटखंडागम, कषायप्राभृत, कुंदकुंदाचार्य कृत ग्र्रंथ, समंतभद्र व उमास्वामी के ग्रंथ मोक्ष मार्ग की दृष्टि से रचित दार्शनिक व आध्यात्मिक ग्रंथ हैं जबकि जो ग्रंथ वर्णाश्रम धर्म का वर्णन करते हैं वह मुख्यतः समाज में रहने वाले जैन अनुयायियों की दृष्टि से रचित प्रतीत होते हैं क्योंकि समाज में रीति-रिवाजों, लौकिक क्रियाओं, पर्वों के लिए दिशानिर्देशन, जैन दर्शनानुसार कठोर साधना में असमर्थ लोगों को समाज धर्म की आवश्यकता हुई होगी, अतः पुराणों में समाज धर्म का वर्णन किया गया। बिना परम्परा, संस्कृति व रीति-रिवाज के किसी भी सम्प्रदाय का केवल दर्शन के आधार से एकजुट रहना मुश्किल था। कई दर्शन पंथों का अस्तित्व मिट चुका है। समाज में जाति व्यवस्था के प्रभाव से कोई सम्प्रदाय कैसे बच सकता था जबकि उस समय यह व्यवस्था कठोर व कट्टर थी और शासक वर्ग इसमें रूचि लेते थे। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि मूल रूप से जैन धर्म में जाति व्यवस्था या वर्ण व्यवस्था स्वीकार्य नहीं थी लेकिन बाद में उसको देश-काल और समाज रीतिवश स्वीकृति प्रदान कर दी गई।

सन्दर्भ सूची

गैरोला, वाचस्पति: (1960). *संस्कृत साहित्य का इतिहास*. बनारस: चौखम्भा प्रकाशन।

भागवत पुराण (1951). गोरखपुर: गीता प्रेस।

बाकलीवाल, पन्नालाल (सं. व अनु.) (1905). *पंचास्तिकाय*. मुंबई: रायचंद शास्त्रमाला।

आचार्य उमास्वामी (1953). *तत्वार्थ सूत्र*. संपादन व अनुवाद- मोहनलाल शास्त्री, जबलपुर।

आचार्य समन्तभद्र (1951). *स्वयंस्त्रोत*. संपादन व अनुवाद-जुगलकिशोर मुख्तार, सरसावा, 1951।

जैन, पन्नालाल (सं. व अनु.) (1996). *आदि पुराण; आचार्य जिनसेन*. बनारस: भारतीय ज्ञानपीठ।

सागर धर्मामृत (1978). बनारस: भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।

जैन, पन्नालाल (सं. व अनु.) (1939). *रत्नकरण्ड श्रावकाचार*. जबलपुर: जैन ग्रंथ माला।

शास्त्री,फूलचन्द्र : (1963). *वर्ण, जाति एवं धर्म*. बनारस: भारतीय ज्ञानपीठ।

जैन,जगदीशचन्द्र: (1965). *जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज*. बनारस।

शर्मा,आर. एस. (1995). *आर्य संस्कृति की खोज*. नई दिल्ली: सारांश प्रकाशन।

सुन्दरलाल (सं. व अनु.) (1979). *यशस्तिलक चम्पूमहाकाव्य*. बनारस: महावीर ग्रंथमाला।

कोविड-19 का भारतीय कृषि पर प्रभाव

डॉ. अंजनी श्रीवास्तव*
डॉ. अविनाश कुमार श्रीवास्तव**
डॉ. शालिनी श्रीवास्तव***

सारांश

कोविड-19 जिसने सम्पूर्ण विश्व को ठहरने के लिए मजबूर कर दिया, उसका भारतीय कृषि पर भी प्रभाव पड़ा है। प्रस्तुत शोधपत्र में कोविड-19 का भारतीय कृषि पर प्रभाव का आंकलन किया गया है। इसके लिए सर्वप्रथम कोविड-19 का कृषि तथा इससे सम्बंधित उत्पादों पर क्या प्रभाव पड़ा है इसका विस्तृत बिन्दुवार विवरण दिया गया है। लॉकडाउन के समय में कृषि उत्पादों के उत्पादन की स्थिति का विश्लेषण किया गया है तथा भारत सरकार ने कोविड-19 के नियंत्रण के पश्चात कृषि उत्पादों के लिए उत्पन्न हुई प्रतिकूल स्थिति को नियंत्रित करने के लिए जो प्रयास किए हैं उनका विश्लेषण कर अतिरिक्त सुधार के लिए सुझाव प्रदान किया गया है।

बीज शब्द: कोविड-19, लॉकडाउन, व्यावसायिक फसल, सहायक गतिविधियां

प्रस्तावना

कोविड-19 एक विश्वव्यापी महामारी है जिसने 15 दिसम्बर 2021 तक 270791973 लोगों को प्रभावित किया है। जिसमें 5318216 लोगों की मृत्यु भी शामिल है (WHO COVID-19 Dashboard, n.d.)।

भारत में इस महामारी के प्रभाव को कम करने के लिए 24 मार्च 2020 को प्रथम लॉकडाउन लगाया गया जिसे आगे चलकर चार चरणों में बढ़ाया गया।

लॉकडाउन 1.0 - (मार्च 24, 2020 - अप्रैल 14, 2020)
लॉकडाउन 2.0 - (14 अप्रैल, 2020 - 03 मई, 2020)
लॉकडाउन 3.0 - (1 मई, 2020 - 17 मई, 2020)
लॉकडाउन 4.0 - (17 मई 2020 - 31 मई 2020)

लॉकडाउन अर्थात सम्पूर्ण तालाबन्दी। सभी कार्यालय, विद्यालय, उद्योग-धंधों को बन्द कर दिया गया परन्तु इस दौरान समस्त अनिवार्य एवं अत्यावश्यक सेवाएं अबााधित रूप से जारी रखी गईं जिसमें एक महत्वपूर्ण एवं अत्यावश्यक सेवा कृषि उत्पादों का उत्पादन एवं पूर्ति भी थी। भारत में तीन प्रमुख फसलों के मौसम पाए जाते हैं- खरीफ (जून - अक्टूबर), रबी (नवम्बर - अप्रैल) तथा जायद (अप्रैल-जून-जुलाई)।

*मुख्य संपादक, अन्वेषा शोध पत्रिका।
*आई.सी.ए.आर. कानपुर से सम्बद्ध।
*वनस्पति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से सम्बद्ध।

जिस समय लॉकडाउन 1.0 लगाया गया, रबी की फसल कटाई के लिए तैयार थी तथा खरीफ की फसल की बोवाई होनी थी। कृषि उत्पादों का उत्पादन एक समयबद्ध गतिविधि है। इसे ध्यान में रखते हुए सरकार ने 20 अप्रैल, 2020 से कृषि कार्य को अनिवार्य रूप से करने की अनुमति प्रदान कर दी। अग्रलिखित परिच्छेदों में भारत में मुख्य रूप से उगाई जाने वाली रबी तथा खरीफ की प्रमुख फसलें जैसे गेहूं, चावल, मक्का, तिलहन व्यावसायिक फसलें जैसे गन्ना, जूट, कपास आदि पर लॉकडाउन के प्रभाव का बिन्दुवार विवेचन किया गया है। इसके अतिरिक्त बागवानी जैसे फल तथा सब्जियां एवं मसाले, फूलों की खेती, वृक्षारोपण फसलें जैसे काजू, चाय, रबर आदि मुर्गी पालन मछली पालन एवं दुग्ध उत्पादन भी कोविड-19 के प्रभाव से अछूते नहीं रहे हैं।

चर्चा

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख क्षेत्र रहा है। भारत की जनसंख्या का तकरीबन 58 प्रतिशत लोगों की आजीविका का साधन कृषि है। भारत की 44 प्रतिशत श्रमिक संख्या को रोजगार के अवसर भी कृषि क्षेत्र में मिलते हैं। भारत के सकल घरेलू उत्पाद में 17.2 प्रतिशत हिस्सेदारी भारतीय कृषि की है। 2018 में भारत कृषि उत्पादों का नौवां बड़ा निर्यातक था। भारतीय कृषि क्षेत्र पर लॉकडाउन का प्रभाव जटिल तथा विस्तृत है।

खाद्यान्नों के उत्पादन पर कोविड-19 का प्रभाव

गेहूं:- गेहूं रबी की फसल है। भारत में गेहूं का उत्पादन मुख्य रूप से पंजाब, हरियाणा, मध्य प्रदेश उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान में होता है। सम्पूर्ण विश्व में गेहूं के उत्पादन में भारत की हिस्सेदारी 12.5 प्रतिशत है तथा चीन के बाद दूसरा स्थान है (अरुमुगम, कनागवल्ली & मनीडा, 2020)। भारत की कुल गेहूं उपज का 79% केवल पंजाब तथा हरियाणा से आता है (देव एवं सेनगुप्ता, 2020)। गेहूं की अत्यधिक उपज के बाद भी कटाई में हुई देरी, बढ़ी हुई श्रम लागत तथा खराब मौसम के प्रभाव के कारण किसानों को गेहूं की उपज की कम वसूली हुई। पंजाब तथा हरियाणा को 2020-21 में तकरीबन 135 लाख मीट्रिक टन तथा 90 लाख मीट्रिक टन गेहूं के खरीद की उम्मीद थी जो कि पिछले दो वर्षों की तुलना में अधिक थी।

सारणी-1: पंजाब तथा हरियाणा में गेहूं के उत्पादन की मात्रा

राज्य	गेहूं का उत्पादन (MMT)		
	2020-21	2019-20	2018-19
पंजाब	135	129.12	126.92
हरियाणा	90	93.2	87.84

Source-India Today Article dated April, 2020

यद्यपि सरकार ने 2020-21 में गेहूं के न्यूनतम समर्थन मूल्य में 4.61 प्रतिशत की वृद्धि की थी, रु 1925 प्रति क्विंटल परन्तु यह वृद्धि पिछले पांच सालों की न्यूनतम थी।

चावल:- भारत विश्व में चीन के बाद चावल का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक है। सम्पूर्ण विश्व में चावल के उत्पादन में भारत की हिस्सेदारी 21.4 प्रतिशत है (वाघमारे एवं शेंडेज, 2019)। भारत में चावल का

उत्पादन मुख्य रूप से पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश, पंजाब, तमिलनाडु, बिहार, छत्तीसगढ़, उड़िसा, आसाम तथा कर्नाटक में होता है (साहू एवं राठो, 2020)।
पिछले तीन वर्षों में चावल के उत्पादन की स्थिति को सारणी-2 की सहायता से समझा जा सकता है-

सारणी - 2: भारत में चावल के उत्पादन की मात्रा

साल	चावल का उत्पादन (MMT)
2018-19	116.48
2019-20	118.87
2020-21	122.27

(source-Published by statista Research Department Oct, 26, 2021) www.statista.com

उपरोक्त सारणी के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि 2018-19 में भारत में कुल चावल उत्पादन की मात्रा 116.48 मिलियन मीट्रिक टन थी जो 2019-20 में बढ़कर 118.87 मिलियन मीट्रिक टन हो गई तथा 2020-21 में यह बढ़कर 122.27 मिलियन मीट्रिक टन हो गई। अतः यह स्पष्ट है कि लॉकडाउन के विपरीत प्रभावों के बाद भी भारत में चावल का अत्याधिक उत्पादन हुआ। भारत में एफसीआई के पास जो अधिक चावल था उसे एथेनाल में बदल कर प्रक्षालक बनाया गया (www.fazlani.com n.d.)।

मक्का:- चावल तथा गेहूं के बाद भारत में उगाया जाने वाला तीसरा प्रमुख खाद्यान्न मक्का है। मक्का उत्पादन में विश्व में भारत चौथे स्थान पर है। भारत में मुख्य रूप से मक्का उगाने वाले राज्य जिनका योगदान कुल मक्का उत्पादन के 80 प्रतिशत से भी ज्यादा है, वो हैं आन्ध्र प्रदेश 20.9 प्रतिशत, कर्नाटक 16.5 प्रतिशत, राजस्थान 9.9 प्रतिशत, महाराष्ट्र 9.1 प्रतिशत, बिहार 8.9 प्रतिशत, उत्तर प्रदेश 6.1 प्रतिशत, मध्य प्रदेश 5.7 प्रतिशत तथा हिमाचल प्रदेश 4.4 प्रतिशत।

सारणी-3: मक्का उत्पादक राज्य एवं उनकी हिस्सेदारी

राज्य	मक्का उत्पादन(MMT)
आंध्र प्रदेश	20.9
कर्नाटक	16.5
राजस्थान	9.9
महाराष्ट्र	9.1
बिहार	8.9
उत्तर प्रदेश	6.1
मध्य प्रदेश	5.7
हिमाचल प्रदेश	4.4

(Source-farmer.gov.in)

कुल मक्के के उत्पादन का तकरीबन 80 प्रतिशत भाग पशुचारा उद्योग द्वारा प्रयोग किया जाता है। इस 80 प्रतिशत में से 55 प्रतिशत मुर्गी पालन उद्योग में इस्तेमाल होता है। 2018-19 में भारत में मक्का का उत्पादन 27.2 मिलियन मीट्रिक टन था। 2019-20 में यह 28 मिलियन मीट्रिक टन था तथा 2020-21 में 24.51 मिलियन मीट्रिक टन था। लॉकडाउन के दौरान मुर्गी पालन तथा पशुचारा उद्योग में आई मन्दी के कारण मक्के की बिक्री तथा कीमत में गिरावट आई थी। किसानों को मक्का उत्पादन की लागत निकालना भी कठिन था।

सोयाबीनः- भारत में सोयाबीन का उत्पादन मुख्यतः मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, कर्नाटक तथा तेलंगाना में होता है। 2019-20 खरीफ सोयाबीन फसल उत्पादन अनुमानतः 135.05 लाख टन था जो कि पिछले साल की तुलना में कम था (अरुमुगम, कनागवल्ली, & मनीडा, 2020)।

सारणी-4: सोयाबीन का उत्पादन

साल	सोयाबीन का उत्पादन {मिलियन मीट्रिक टन }
2018-19	7.85
2019-20	7.76
2020-21	12.9

Source-www.pjtsau.edu.in

सोयाबीन भारत में पशुधन जिसमें मुर्गीपालन तथा मछलीपालन भी शामिल है, के लिए एक महत्वपूर्ण खाद्य अवयव है। 2018-19 में सोयाबीन का उत्पादन 7.85 मिलियन मीट्रिक टन था जबकि 2019-20 में यह थोड़ा घट कर 7.76 मिलियन मीट्रिक टन हो गया था। 2020-21 में यह बढ़कर 12.9 मिलियन मीट्रिक टन हो गया। सोयाबीन के उत्पादन की दर तो अच्छी थी परन्तु इसके मांग में 50 प्रतिशत तक की गिरावट दर्ज की गई थी। इसका प्रमुख कारण कोविड महामारी की रोकथाम के लिए लगाए गए लॉकडाउन की वजह से मुर्गी पालन उद्योग में आई मन्दी थी। मुर्गी पालन उद्योग में आई मन्दी के कारण वहां सोयाबीन की मांग में 50 प्रतिशत तक की गिरावट आई।

व्यावसायिक फसलेंः- भारत में मुख्य रूप से उगाई जाने वाली व्यावसायिक फसलों में गन्ना, जूट तथा कपास शामिल हैं (icmr.gov.in)।

गन्नाः- भारत में गन्ने का उत्पादन महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु, बिहार, गुजरात, हरियाणा, पंजाब, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना तथा उत्तराखण्ड में होता है।

सारणी-5: विगत तीन वर्षों का गन्ना उत्पादन का विवरण

साल	गन्ना उत्पादन (हजार टन)
2017-18	376,905
2018-19	400,157
2019-20	377,766

(source-sugarcane.icar.gov.in)

उपरोक्त सारणी के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि 2018-19 में गन्ने का अत्याधिक उत्पादन हुआ। 2019-20 में यह थोड़ा कम था। यह कमी महामारी के प्रसार के कारण हुई क्षति को दर्शाती है। लॉकडाउन के दौरान गन्ना मिल मालिकों की तरफ से भुगतान में हो रही देरी के कारण किसानों को उत्पादित गन्ना स्थानीय व्यापारियों को बहुत ही सस्ते दाम पर बेचना पड़ा था। कुछ उदाहरण तो ऐसे भी सामने आए हैं जिसमें गन्ना मिल मालिकों ने गन्ने के बदले किसानों को नगद में भुगतान ना करके चीनी दे दी। इस वजह से किसानों के हाथ में नकदी की कमी हो गई। महामारी के प्रसार के कारण किसी भी तरह के उत्सव मनाने पर रोक लगा दी गई थी जिस वजह से चीनी की मांग में कमी आई और इसका सीधा प्रभाव गन्ना उत्पादक किसानों पर पड़ा।

जूटः- भारत में जूट का उत्पादन मुख्य रूप से पश्चिम बंगाल, बिहार, असम, उड़ीसा, आन्ध्र प्रदेश, त्रिपुरा तथा मेघालय में होता है।

सारणी-6: पिछले तीन वर्षों में जूट के उत्पादन का आंकड़ा

साल	जूट उत्पादन 1000 मीट्रिक टन
2018-19	1178.1
2019-20	1161.2
2020-21	1165.1

(Source-www.statista.com)

उपरोक्त सारणी के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि विगत तीन वर्षों में जूट के उत्पादन में आंशिक वृद्धि हुई है। 2019-20 में यह थोड़ी कम थी परन्तु 2020-21 में पुनः उत्पादन में वृद्धि हुई। 2019-20 में जूट उत्पादन में आई कमी का मुख्य कारण महामारी का प्रसार था।

कपासः- भारत में कपास खरीफ की मुख्य फसल है। यहां कपास का उत्पादन मुख्यतः पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट तथा आंध्र प्रदेश और कर्नाटक के कुछ भागों में होता है।

सारणी-7: विगत वर्षों में कपास की उपज के आकड़ें

साल	**जूट उत्पादन (लाख गाँठ)**
2018-19	330
2019-20	357
2020-21	370.1

(Source-cotton association of India)

उपरोक्त आंकड़ों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि कपास के उत्पादन में लॉकडाउन के पश्चात भी उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। 2018 में यह 330 मिलियन गांठ थी जो अगले वर्ष 2019 में बढ़कर 357 मिलियन गांठ हो गई।

फल तथा सब्जियां- लॉकडाउन के समय भारत में बागवानी उत्पादों की स्थिति को निम्न आंकड़ों की

सहायता से समझा जा सकता है:-

सारणी-8: 2018-19 में कुल बागवानी उत्पादन

अवयव	उत्पादन 1000 टन
कुल बागवानी उत्पादन	314.87
फल उत्पादन	97.38
सब्जी उत्पादन	187.36

(Source-NBH Database 2020)

2018-19 में कुल बागवानी उत्पादन 314.87 हजार टन था। इतने अधिक उत्पादन के बाद भी बागवानी क्षेत्र में लॉकडाउन के समय करीब 50,000 करोड़ का घाटा दर्ज किया गया।

फूलों की खेती

भारत में मुख्य रूप से गुलाब, गेन्दा, रजनीगंधा, एयूरियम, कार्नेशन आदि फूलों की खेती की जाती है। राष्ट्रीय बागवानी डेटाबेस जोकि राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड के द्वारा प्रकाशित किया जाता है के अनुसार 2019-20 में लॉकडाउन के दौरान भारत में 305 हजार हेक्टेयर भूमि पर फूलों की खेती की गई थी जिसमें 2301 हजार टन खुले फूल तथा 762 हजार टन कटे फूलों का उत्पादन हुआ। भारत में फूलों की खेती मुख्यतः महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, हरियाणा, तमिलनाडु, राजस्थान, पश्चिम बंगाल में होती है। 2018-19 में खुले फूलों का 2059 हजार टन उत्पादन हुआ था तथा कटे फूलों का उत्पादन 313 हजार टन हुआ था (apeda.gov.in)।

वृक्षारोपण फसल- चाय, काजू, रबर

चायः- भारत में चाय की खेती मुख्यतः असम, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक, त्रिपुरा, अरुणाचल प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, सिक्किम तथा नागालैंड में होती है। भारत में लॉकडाउन के समय चाय के उत्पादन की स्थिति को सारणी -9 की सहायता से समझा जा सकता है।

सारणी 9: कुल चाय उत्पादन

साल	चाय का उत्पादन (M kg)
2018	1338.63
2019	1389.70
2020	1257*

(Source-www.hindubusiness.com; article 30751920)

उपरोक्त आंकड़ों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि लॉकडाउन के विपरीत प्रभावों के बाद भी 2018 की तुलना में 2019 में चाय का उत्पादन ज्यादा हुआ। 2020 में चाय उत्पादन की मात्रा में आई कमी का मुख्य कारण असम में आई बाढ़ तथा महामारी के प्रसार को नियंत्रित करने के लिए लगाए गए प्रतिबन्ध के कारण श्रम की उपलब्धता में कमी है।

काजूः- भारत में काजू का उत्पादन मुख्यतः महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, उड़ीसा, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, गोवा, पश्चिम बंगाल, छत्तीसगढ़ एवं गुजरात में होता है। सारणी-10 में विगत वर्षों में भारत में कुल काजू उत्पादन का विवरण है।

सारणी -10: काजू का उत्पादन

साल	काजू उत्पादन (हजार मीट्रिक टन)
2017	745
2018	814
2019	743

(Source-FAO)

उपरोक्त सारणी के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि साल 2019 में काजू के उत्पादन में कमी आई थी।

रबरः- भारत में रबर का उत्पादन मुख्य रूप से केरल, त्रिपुरा, कर्नाटक, असम, तमिलनाडु, मेघालय, नागालैंड, मणिपुर, गोवा तथा अन्डमान निकोबार द्वीप समूह में होता है।

सारणी-11: रबर का उत्पादन

साल	प्राकृतिक रबर उत्पादन (हजार मीट्रिक टन)
2018	694
2019	651
2020	712

(Source-Publised by Ian Tiso, Oct 4, 2021 www.statista.com)

उपरोक्त आंकड़ों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि साल 2019 में प्राकृतिक रबर का उत्पादन पिछले वर्ष की तुलना में कम था। परन्तु साल 2020 में इसमें फिर से वृद्धि हुई।

मुर्गी पालनः- मुर्गी पालन क्षेत्र पर भी महामारी के प्रसार का सीधा प्रभाव पड़ा। सारणी -12 में मुर्गी के मीट के उपभोग का विगत तीन वर्षों का आंकड़ा दिया गया है।

सारणी-12: मुर्गी के मीट का उपभोग

साल	उपभोग (हजार मीट्रिक टन)
2018	3700.3
2019	3737.3
2020	3955.7

(source-www.statista.com)

उपरोक्त आंकड़ों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि विगत तीन वर्षों में मुर्गी मीट की खपत में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है।

मछली पालनः- मछली पालन भारत में एक उभरता हुआ व्यावसाय है जिसमें असीम सम्भावनाएं हैं। कोविड-19 के प्रसार का प्रभाव मछली पालन उद्योग पर भी पड़ा है। सारणी-13 में विगत वर्षों में मत्स्य उत्पादन के आकड़ें दिए हुए हैं।

सारणी-13: भारत में मत्स्य उत्पादन

साल	मत्स्य उत्पादन (लाख टन)
2017-18	127.04
2018-19	135.73
2019-20	141.64

स्रोत. मात्स्यिकी विभाग एवं राज्य सरकार संघ राज्य क्षेत्र प्रशासन

प्रस्तुत आंकड़ों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि मत्स्य उत्पादन में साल 2018, 2019 तथा 2020 में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है।

दुग्ध उद्योगः- दुग्ध उत्पाद एक शीध्र नष्ट होने वाला उत्पाद है तथा किसी भी स्थिति में दुग्ध उत्पादन को रोका नहीं जा सकता। सारणी-14 में भारत में विगत वर्षों में दुग्ध उत्पादन के आकड़े दिए गए हैं।

सारणी-14: भारत में दुग्ध उत्पादन

साल	दुग्ध उत्पादन (मिलियन टन)
2016-17	165.4
2017-18	176.3
2018-19	187.7

स्रोत. मूल पशुपालन सांख्यिकी एवं डीएएचडी एंड एफए भारत सरकार

उउक्त आंकड़ों की विवेचना से यह स्पष्ट है कि वर्ष प्रति वर्ष दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र में वृद्धि हुई है।

निष्कर्ष

1. गेहूं का अत्याधिक उत्पादन हुआ। कोविड-19 के प्रसार के कारण लगे लॉकडाउन के प्रभाव के बाद भी राज्य सरकारों की सटीक रणनीति के कारण गेहूं का अत्याधिक उत्पादन सम्भव हो सका। परन्तु देश में सम्पूर्ण आर्थिक गतिविधियों के रुक जाने का प्रभाव किसानों को होने वाले लाभ पर भी पड़ा। गेहूं उत्पादन में किसानों की लाभप्रदता कम थी।
2. कोविड-19 के प्रसार के कारण लगे लॉकडाउन के विपरीत प्रभावों के पश्चात भी भारत में चावल का अत्याधिक उत्पादन हुआ। वैश्विक लॉकडाउन के बाद भी विश्व में चावल की मांग में वृद्धि दर्ज की गई थी यद्यपि इस मांग की पूर्ति में लॉकडाउन के प्रभाव के कारण दिक्कत आई।
3. सोयाबीन के अच्छे उत्पादन के पश्चात भी इसकी मांग में 50 प्रतिशत तक की गिरावट आई जिसके कारण सोयाबीन के बीजों की कीमत में भी गिरावट आई।

4. साल 2018-19 में गन्ने के अच्छे उत्पादन के बाद भी किसानों को इसका लाभ नहीं मिला। गन्ना उद्योग को मूल्य श्रृंखला में तरलता संकट का सामना करना पड़ा परन्तु लॉकडाउन के बाद भी गन्ने के उत्पादन में कोई कमी नहीं आई।
5. जूट बैग का प्रयोग मुख्य रूप से विभिन्न खाद्यान्नों, चीनी तथा दूसरी फसलों की पैकिंग में होता है। लॉकडाउन के दौरान अन्य फसलों का उत्पादन बढ़ा तो जूट बैग की मांग भी बढ़ी। यद्यपि बढ़ी हुई मांग की पूर्ति में कुछ दिक्कत श्रम की कमी तथा परिवहन पर रोक के कारण आई।
6. कपास के उत्पादन पर लॉकडाउन का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। यद्यपि उत्पादन में वृद्धि दर्ज की गई। भारत के कपड़ा उद्योग में कपास का योगदान 29 प्रतिशत का है। अत्यधिक उत्पादन के बाद भी कपास की मांग में गिरावट आई है। यह महामारी के प्रसार की रोकथाम के लिए लगाए गए लॉकडाउन का प्रभाव था।
7. उचित उत्पादन के बाद भी बागवानी क्षेत्र में किसानों को घाटा हुआ। इसका मुख्य कारण परिवहन पर रोक, रेस्टुरेन्ट तथा होटल व्यवसाय का बन्द होना, लॉकडाउन के दौरान फल तथा सब्जी मण्डियों का बन्द होना आदि है। फल तथा सब्जियां जल्दी नष्ट होने वाले पदार्थ हैं। समय पर इनकी पूर्ति ना होने से किसानों को इन्हें औने-पौने दामों पर स्थानीय व्यापारियों को बेचना पड़ा। शीतगृहों की कमी के कारण किसानों की ताजी फल तथा सब्जियां नष्ट भी हुईं।
8. लॉकडाउन के बाद भी भारत में फूलों का अत्याधिक उत्पादन हुआ। परन्तु मांग में अचानक आई अत्याधिक कमी के कारण फूलों की वार्षिक बिक्री सिमट कर 50 प्रतिशत तक रह गई। टनों फूलों को नष्ट किया गया। फूलों की खेती करने वाले किसानों को अत्यधिक घाटा हुआ।
9. यद्यपि लॉकडाउन की स्थिति में भी चाय का उत्पादन तो ज्यादा हुआ परन्तु चाय उद्योग को 10-25 प्रतिशत तक का फसल घाटा हुआ। समय पर कुशल श्रमिकों द्वारा चाय की पत्तियों को ना तोड़े जाने के कारण चाय की गुणवत्ता में भी गिरावट दर्ज की गई। निर्यात बाजार में चाय की कीमतों में 35-40 प्रतिशत तक की गिरावट आई।
10. लॉकडाउन के दौरान काजू उद्योग को तकरीबन 4000 करोड़ का नुकसान हुआ था। काजू की मांग तथा पूर्ति में एकरूपता ना होने के कारण किसानों को उत्पादित काजू न्यूनतम समर्थन मूल्य से भी कम में बेचना पड़ा।
11. 15 अप्रैल, 2020 तक रबर उत्पादन में अनुमानित घाटा पूरे देश में 30,000 से 35,000 टन था। श्रमिकों की कमी के कारण रबर के उत्पादन में भी कमी आई। टायर उत्पादन में आई कमी का सीधा प्रभाव रबर के उत्पादन पर पड़ा। भारत में 70 प्रतिशत प्राकृतिक रबर का प्रयोग टायर उत्पादन में होता है।
12. लॉकडाउन के कारण समस्त व्यावसायों में आई मन्दी के प्रभाव से मुर्गी पालन उद्योग भी अछूता नहीं था। मुर्गी पालन उद्योग का घाटा तकरीबन 27000 करोड़ रुपया था।
13. यद्यपि कोविड-19 के प्रसार का मत्स्य उत्पादन पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ा। परन्तु मत्स्य उत्पाद की मांग पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। मांग में आई कमी के कारण मत्स्य उत्पादों की कीमतों में भी भारी कमी आई जिसका सीधा प्रभाव मत्स्य उत्पादकों की आय पर पड़ा।
14. कोविड-19 के प्रसार का दुग्ध के उत्पादन पर तो प्रभाव नहीं पड़ा परन्तु इसके वितरण तथा कीमतों पर भी कोई खास प्रभाव नहीं पड़ा।

15. मक्के के कुल उत्पादन का 80 प्रतिशत पशुचारा उद्योग में प्रयोग किया जाता है। मुर्गी पालन तथा पशुपालन उद्योग में आई मन्दी के कारण मक्के के बाजार मूल्य में भी कमी आई थी। किसानों को उत्पादन लागत की भी वसूली नहीं हुई।

समाधान

कोविड महामारी के पाश्र्व नकारात्मक को कम करने के लिए भारत सरकार ने कृषि क्षेत्र के लिए निम्नलिखित प्रावधान किया है। यह व्यवस्था आत्म निर्भर भारत अभियान के अन्तर्गत की गई है (www.nabard.org)-

1. किसानों के लिए रियायती ऋण की उपलब्धता:- आत्मनिर्भर भारत अभियान में किसान क्रेडिट कार्ड योजना के अन्तर्गत निम्न ब्याज दरों पर संस्थागत ऋण उपलब्ध कराया गया है। इस योजना से करीब 2.5 करोड़ किसान लाभान्वित हुए हैं। इस योजना में मछली पालन तथा पशुपालन से जुड़े किसान भी सम्मिलित हैं। इस व्यवस्था की सफलता के लिए सरकार ने 2 लाख करोड़ रुपए का प्रावधान किया है।
2. कृषि अवसंरचना कोष:- कृषि क्षेत्र के एकत्रीकरण बिन्दु तथा फार्म गेट के बुनियादी ढांचा के विकास की परियोजना के लिए भारत सरकार ने एक लाख करोड़ रुपयह की राशि स्वीकृत की है।
3. किसानों के लिए आपातकालीन कार्यशील पूँजी की व्यवस्था:- किसानों को 90,000 करोड़ रुपए की वित्तीय सहायता प्रदान करने के अतिरिक्त नाबर्ड के द्वारा, आर आर बी, और आर सी बी को 30,000 करोड़ रुपए, किसानों की आपातकालीन कार्यशील पूँजी की मांग को पूरा करने के लिए दिए गए (PRS Legislative Research, New Delhi)। सरकार की इस योजना का लाभ तकरीबन 3 करोड़ छोटे और सीमान्त किसानों को मिला। इस सहायता से छोटे और सीमान्त किसानों की अल्पकालिक पूँजी की आवश्यकता की पूर्ति हुई।
4. मछली पालक किसानों के लिए अतिरिक्त वित्तीय सहायता:- समुद्री तथा अंतर्देशीय मत्स्य पालन के व्यापक विकास के लिए प्रधानमंत्री मत्स्य सम्पदा योजना के अन्तर्गत 11 हजार करोड़ रुपयह का प्रावधान किया गया। इसके अतिरिक्त इस योजना के अन्तर्गत मछली पालन से सम्बन्धित आधारभूत संरचना का विकास जैसे मछली पकड़ने के लिए बन्दरगाह का निर्माण, शीत गृहों के निर्माण आदि के लिए 9000 करोड़ रुपए की व्यवस्था की गई।
5. पशुपालन क्षेत्र में आधारभूत संरचना का विकास:- पशुपालन क्षेत्र में आधारभूत संरचना के विकास के लिए सरकार की तरफ से 15000 करोड़ रुपए की व्यवस्था की गई।

निष्कर्ष

कोविड महामारी के समय में खास कर जब विश्व में तीसरी लहर आ चुकी है तथा भारत में इसकी स्थिति प्रबल है, कृषि क्षेत्र को दिए गए अनुदान तथा कृषि की आधारभूत संरचना को मजबूत बनाने के लिए किए गए प्रावधान का भारतीय कृषि व्यवस्था पर अनुकूल प्रभाव पड़ा है। भारत सरकार के इस सहयोग के कारण कृषि व्यवस्था अतिशीध्र गति पकड़ लेगी तथा वापस पटरी पर आ जाएगी।

सन्दर्भ सूची

WHO COVID-19 Dashboard (एन.डी.) https://covid19.who.int से उद्धृत।

अरुमुगम, यू., कनागवल्ली, जी., मनीडा, एम. (2020). *कोविड-19 का प्रभाव: भारत में कृषि*. खंड 8, अंक 5, पीपी: (480-488)।

देव, महेंद्र, एस., और सेनगुप्ता राजेश्वरी (2020). *कोविड-19: भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव*. मुंबई: इंदिरा गांधी विकास संस्थान अनुसंधान।

वाघमारे, एम.एन. और शेन्डेज, पी.एन. (2019). *उत्पादन का आर्थिक विश्लेषण पॉलीहाउस के अंतर्गत कटे गुलाबों की संख्या वेस्टर्न* Maharashtra.Int.J.Curr.Microbiol.App.Sci. 8(02): 234-241. doi:https://doi.org/10.20546/ijcmas.2019.802.029 से उद्धृत।

साहू, प्रज्ञा, परमिता, और राठो, सुवंगी (2020). *कृषि क्षेत्र पर कोरोना वायरस का संभावित प्रभाव*. बायोटिका रिसर्च टुडे, खंड 2:4, www.bioticainternational.coml से उद्धृत।

Statista Research Department, Oct, 26, 2021 www.statista.com से उद्धृत।

Retrieved from (N.D.) www.fazlani.com

Retrieved from (N.D.) farmer.gov.in, n.d.

Retrieved from (N.D.) www.pjtsau.edu.in, n.d.

Retrieved from (N.D.) icmr.gov.in

ICAR (2020). *किसानों के लिए राज्यवार दिशा-निर्देश और परामर्श और COVID-19 के कारण लॉकडाउन अवधि के दौरान कृषि क्षेत्र*. भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद. Retrieved from https://icar.org.in/sites/default/files/State%20level%20advi .

Retrieved from (N.D.) www.sugarcane.icar.gov.in

Retrieved from (N.D.) www.statista.com

Retrieved from (N.D.) https://cotcorp.org.in/statistics.aspx?AspxAutoDetectCookieSupport=1

Retrieved from (N.D.) http://nhb.gov.in/

Retrieved from (N.D.) https://apeda.gov.in/apedawebsite/trade_promotion/study_and_report.htm

Retrieved from (N.D.) www.hindubusiness.com

Retrieved from(N.D.) https://www.fao.org/2019-ncov/covid-19-crop-calendars/en/

Retrieved from(N.D.) https://dof.gov.in/hi/related-links/maatasayaikai-saankhayaikai

Retrieved from (N.D.) https://dahd.nic.in/hi

COVID-19 के प्रभाव का आकलन भारतीय कृषि और ग्रामीण अर्थव्यवस्था (एन.डी.) www.nabard.org

Retrieved from (N.D.) https://prsindia.org/policy/analytical-reports

उपन्यास: संवेदना और सौन्दर्यशास्त्र

डॉ प्रवीण कुमार*

सारांश

प्रस्तुत शोधपत्र साहित्यिक विधा उपन्यास की अवधारणा पर आधारित है। इस क्रम में उपन्यास की संवेदना के विविध पक्षों एवं पहलुओं पर विचार किया गया है। कैसे उपन्यास ने आधुनिक गद्य साहित्य के रूप में अपने आप को स्थापित किया है और समाज की विभिन्न गतिविधियों के बारीक से बारीक सूत्र पकड़कर उसके दूरगामी प्रभाव को दिखाने का काम किया है। इस पत्र में उसकी वैचारिकी पर विचार किया गया है। समय-सापेक्ष उपन्यास की बदलती संवेदना को इतिहास के परिप्रेक्ष्य में देखने का भी प्रयास किया गया है।

बीज शब्द : यथार्थवाद, संवेदना, सौन्दर्यशास्त्र, आदर्शवाद, प्रकृतिवाद

प्रस्तावना

उपन्यास आधुनिक गद्य साहित्य है। आधुनिक चेतना के साथ जीवन संघर्ष की कहानी है। "उपन्यास केवल मात्र कथात्मक गद्य नहीं है, वह मानव के जीवन का गद्य है-ऐसी पहली कला है, जो संपूर्ण मानव को लेकर उसे अभिव्यक्ति प्रदान करने की चेष्टा करती है"(फॉक्स:1969:10)। अर्थात मानव ही नहीं संपूर्ण प्राणी के जीवन को प्रत्यक्ष करने वाली शक्ति ही उपन्यास की मूल संवेदना है। उपन्यास की लोकप्रियता का कारण जीवन की अंतरगता है, वहीं जीवन के सतहीपन और बाजारवाद के कारण न केवल समाज बदला है बल्कि उपन्यास की संवेदना में भी बदलाव हुआ है। यह बदलाव गुणों का ह्रास है। जिस कारण यथार्थ का चित्रण संभव नहीं हो पाता है और उसका सामाजिक सरोकार आम जीवन का नहीं होता है। यह पूंजीवाद की देन है और उसका सरोकार भी उसी समाज से है जिसका मकसद बाजार में मुनाफा कमाना है। बाजारवाद मानव की चेतना को जाग्रत करना नहीं करता है बल्कि उसकी संवेदना को शनैःशनैः ख़त्म कर कुंद कर देता है। इसके बगैर बाजारवाद फल-फूल नहीं सकता है। साहित्य की बाजारवादी दुनिया प्रकाशन की पूंजीवादी नीति पर चलती है। इसलिए रैल्फ फॉक्स लिखते हैं कि "पाठकों को अब वह नहीं मिलता जो कि वह चाहता है, बल्कि उसे उसी को चाहना पड़ता है जो प्रकाशन का दैत्य उसे प्रदान करता है"(फॉक्स:1969:11)। यहीं से दृष्टिकोण का फर्क शुरू होता है। उसका संकट शुरू हो जाता है। दृष्टिकोण के संकट ने उपन्यास की संवेदना को सबसे ज्यादा संकट में डाला है। यह संकट विषयवस्तु और रूप दोनों स्तर पर देखा जा सकता है क्योंकि दृष्टिकोण के संकट का संबंध दर्शन से होता है और रूप भी उससे अछूता नहीं रहता है।

उपन्यास अतीत और वर्तमान के बीच समाज को निर्मित करता रहता है। समाज का भविष्य निर्धारित करता है। इस निर्धारण में उपन्यास अतीत और वर्तमान के बीच सांस्कृतिक संबंध स्थापित करता है। सांस्कृतिक तत्वों की सार्थकता और उसकी प्रासंगिकता के साथ उसके बदलाव की प्रकृति को

*सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक।

रेखांकित करता है। इस संदर्भ में उपन्यास समाज की गतिविधियों से जुड़ता है और उसकी संवेदना को एक दस्तावेज रूप में प्रस्तुत करता है। उपन्यास की संवेदना का निकष वहां देखा जा सकता है जहां उपन्यास का समाज से संबंध और उसका सरोकार प्रतिफलित होता है। दूसरे शब्दों में इसे इस प्रकार कहा जा सकता है कि उपन्यासकार सामाजिक समस्याओं से कितना गहरा संबंध रखता है। सामाजिक समस्याओं से बेखबर उपन्यासकार की संवेदना ही उपन्यास की संवेदना को सतहीपन की ओर ले जाती है। और यह कहा जाता है कि उपन्यास सामाजिक न होकर बाजारू हो गया है। यहां बाजारू का संबन्ध उपन्यास की संवेदना के सरोकार से है। जिसका अर्थ यह होता है कि उपन्यास मनोरंजन के लिए लिखा-पढ़ा जाता है। दूसरे शब्दों में टाइम पास का साधन बन गया है। यह भी पूंजीवाद की ही देन है। उपन्यास को टाइम पास की तरह पढ़ना ही उसकी मूल संवेदना को कब्र में दफन कर देने के समान है। उपन्यास मानव जीवन की विभिन्न गतिविधियों का यथार्थ चित्रण है। मानव जीवन संघर्ष का साहित्यिक रूप है। इस अर्थ में उपन्यास की संवेदना जीवन संघर्ष का रेखांकन है।

उपन्यास आधुनिक बुर्जुआ समाज का महाकाव्य है और पूंजीवाद की देन है लेकिन उसकी संवेदना और उसका सौन्दर्य मानव जीवन का संघर्ष, स्वप्न और जिजीविषा है। रैल्फ फॉक्स के अनुसार "उपन्यास का विषय है व्यक्ति। यह समाज के विरुद्ध, प्रकृति के विरुद्ध, व्यक्ति के संघर्ष का महाकाव्य है और यह केवल उसी समाज में विकसित हो सकता है, जिसमें व्यक्ति और समाज के बीच संतुलन नष्ट हो चुका हो और जिसमें मानव का अपने सहजीवी साथियों अथवा प्रकृति से युद्ध ठना हो। पूंजीवादी समाज ऐसा ही समाज है"(फॉक्स:1969:33)। सामाजिक आलोचना और सामाजिक संरचना उपन्यास की संवेदना का मूल केन्द्र बिन्दु है। समाज के संबंधों को परखने का साधन रहा है उपन्यास। यह संबन्ध सिर्फ सामाजिक ही नहीं राजनीतिक स्तर पर भी परखा जा सकता है इस साहित्यिक विधा के साथ। यह संवेदना उपन्यास ने बाद में नहीं अर्जित की है बल्कि जन्म और विकास क्रम में ही उसका विकास होता रहा है। इसी परख में उपन्यास की दृष्टि और समाज का सत्य भी उजागर हुआ है। "उपन्यासकार का कर्तव्य जीवन के बारे में सत्य को, जिस रूप में वह उसे देखता है, उसी रूप में प्रकट करना है।---सत्य की यह अभिव्यक्ति एक ऐसे भयानक और निर्मम आक्रोश के साथ उसने की, जो अमर है, क्योंकि वह मानवीय जीवन के अधोपतन के प्रति मानवीय आक्रोश का मूर्त रूप है"(फॉक्स:1969:48)। जब अधोपतन की बात की जाती है तब उपन्यास की संवेदना मानवीय जीवन की समग्रता की खोज करती है। इस समग्रता की खोज और विकास में बुर्जुआ समाज की वह परिस्थितियां बाधक रही हैं जो उपन्यास के जन्म में महत्वपूर्ण हैं। इसी में बुर्जुआ समाज की कल्पनाशीलता का पोस्टमार्टम भी हो गया। उपन्यास की संवेदना की एक विशेषता यह भी है कि जीवन के निरंतर प्रवाह में स्त्री-पुरुष संबंधों की पहचान। विकास क्रम में न केवल सामाजिक संबन्ध बदले हैं बल्कि स्त्री-पुरुष की अंतरंगता भी बदली है। उपन्यास इन संबंधों को न केवल पकड़ने की कोशिश करता है बल्कि नए ढंग से उसकी व्याख्या भी करता है।

उपन्यास इतिहास-निर्माण की प्रक्रिया का सहायक तत्त्व है। "उपन्यासकार का काम केवल इतिवृत लिखना भर नहीं है।...बल्कि इतिहास की रचना करना है।...इतिवृत लेखक से भिन्न उपन्यासकार को उन लेखकों की पद्धति से काम लेना चाहिए, जिनका लक्ष्य देशों की क्रांतियों का उद्घाटन करना होता है। इसका अर्थ यह है कि उसे निरे वर्णन या आत्मगत विश्लेषण से ही नहीं, बल्कि परिवर्तन से, कार्य-कारण संबंध से, संकट और द्वंद्व से सरोकार रखना चाहिए"(फॉक्स:1969:92)। अर्थात उपन्यास की संवेदना परिवर्तकामी कार्य-कारण संबंध, संकट और द्वंद्व से सरोकार रखती है। प्रेमचन्द, हजारी प्रसाद द्विवेदी और

रेणु के उपन्यास हिन्दी में इसका उदाहरण हैं। उपन्यास की संवेदना आविष्कार और परख की होती है। टौम जोन्स उपन्यासकार की भूमिका पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं कि "हमारी पहुंच और ज्ञान के अंतर्गत सभी चीजों के भीतर प्रवेश करने तथा उनकी मूल भिन्नताओं को पहचानने की क्षमता होनी चाहिए।...इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि आविष्कार का अर्थ केवल किसी घटना या परिस्थिति की रचना करने की क्षमता है। आविष्कार का असली मतलब (और यही इसका शाब्दिक अर्थ है) खोज या पता लगाना ही है या यदि विस्तार से उसकी व्याख्या की जाय तो वह अपने चिंतन की समस्त वस्तुओं के वास्तविक सार को तेजी से या समझदारी के साथ पकड़ना है, किन्तु यह, मेरी समझ में तभी हो सकता है जबकि परखने की शक्ति भी साथ में हो। कारण कि बिना दो वस्तुओं के भेद की परख किए यह कहना कि उनके वास्तविक सार की खोज लिया गया है, मुझे कल्पनातीत प्रतीत होता है"(फॉक्स:1969:92)। इस प्रकार उपन्यास की संवेदना खोज की शक्ति, परखने की कसौटी प्रदान करती है जो यथार्थ की जमीन से जुड़ी होती है, किसी कल्पनातीत जगत की चीज नहीं होती है।

उपन्यास की संवेदना रचना की गतिविधियों और समाज के बीच अपनत्व का संबन्ध स्थापित करती है। यह संबंध अध्ययनशीलता के बाद ही स्थापित किया जा सकता है। वस्तुओं के सारतत्व की खोज, उनके तात्विक भेदों को देख पाने की क्षमता तथा सभी स्तर के लोगों से अपनत्व स्थापित करने की क्षमता-इन सब के परिणाम स्वरूप जो उपन्यास सामने आएगा वह पुनरावृत्ति मात्र नहीं होगा। उपन्यास की संवेदना का स्वरूप रचना में तात्विक भेद, अंतर्विरोध और पारस्परिक संबन्ध के बीच निर्धारित होता है। उसमें तीनों का समन्वय रहता है। उपन्यास की संवेदना मानव चरित्र की व्याख्या करती है। मनोविज्ञान ने मन की इच्छाएं, आकांक्षाएं और स्वप्न का अध्ययन प्रस्तुत किया है। इस कारण मानव का व्यक्तित्व किस प्रकार सामाजिक समीकरणों एवं संबंधों से बनता है और बिगड़ता है, का अध्ययन आसान हो गया। मानव समाज व्यवस्था से उत्पन्न होने वाली बाह्य वस्तुगत विभीषिकाओं के खिलाफ, फासिज्म के खिलाफ, युद्ध के खिलाफ, बेकारी के खिलाफ और कृषि के ह्रास के खिलाफ, मशीन के प्रभुत्व के खिलाफ, लड़ने पर बाध्य है। साथ ही वह इन सब चीजों के साथ मानसिक और मनोगत स्तर पर उभरते हुए प्रतिबिम्ब के खिलाफ भी लड़ता है। वह समाज में परिवर्तन के लिए, दुनिया में बदलाव के लिए और मानव सभ्यता-संस्कृति को विनाश से बचाने के लिए भी लड़ता है। वह पूंजीवादी अराजकता के खिलाफ भी संघर्ष करता है। अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी यथार्थवाद के बीच पुराने तथा कृत्रिम विभाजन को खत्म करने की कोशिश करता है। साहित्य की रचना का केन्द्र बिन्दु मानव ही होना चाहिए। उसकी परिस्थितियां तो केवल जीवन सौन्दर्य को प्रतिपादित करने में सहायक होती हैं। इसलिए जीवित मानव का चित्रण उपन्यास का सौन्दर्यबोध होना चाहिए। रैल्फ फॉक्स के शब्दों में "जीवित मानव को लेकर चलना है न कि केवल उन बाह्य परिस्थितियों को जिनमें कि वह रहता है। कतिपय समाजवादी उपन्यासकारों ने यही गलती की है। वह अपनी समूची प्रतिभा और शक्ति किसी एक हड़ताल, सामाजिक आंदोलन, समाजवाद के निर्माण, क्रांति या गृह युद्ध का चित्रण करने में खर्च कर देते हैं और यह नहीं सोचते कि सर्वोच्च महत्व की चीज सामाजिक पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि उस सामाजिक पृष्ठभूमि में स्वयं अपना पूर्ण विकास प्राप्त करने वाला मानव है"(फॉक्स:1969:95)। अर्थात सामाजिक पृष्ठभूमि में संघर्षरत मानव का सौन्दर्य ही उपन्यास का सौन्दर्य है। इसका मतलब यह भी नहीं है कि उसके सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि महत्वपूर्ण नहीं है। सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और वातावरण को नकारा नहीं जा सकता है और न ही मानव जीवन के अस्तित्व को। दूसरे शब्दों में मानव के आंतरिक और बाह्य दोनों ही वातावरण और पृष्ठभूमि का चित्रण उपन्यास का

सौन्दर्य है। इसी सौन्दर्य में उसकी संवेदना का महत्व छिपा रहता है।

अनुभूति के साथ-साथ रचना में चेतना और संवेदनशीलता का होना अनिवार्य है। यही रचना के सौन्दर्य को विस्तृत और व्यापक आयाम प्रदान करती है। केवल घटनाओं का ब्यौरा, चित्रण या अनुभूति का सलेटीपन कर देने से रचना में रचनात्मकता और सौन्दर्य नहीं आ जाता है। रचना में इसके महत्व को नकारा नहीं जा सकता है लेकिन इससे चेतनाशीलता नहीं आती है। रैल्फ फॉक्स के शब्दों में "निस्संदेह इसका भी बहुत भारी अनुभूतिमूलक महत्व होता है, किन्तु यह अनुभूतिमूलक महत्व केवल प्रथम कोटि की पत्रकारिता के क्षेत्र की वस्तु है। इसके द्वारा लेखक मानव के बारे में हमारे ज्ञान में वृद्धि नहीं करते, अथवा हमारी चेतना और संवेदनशीलता को वस्तुतः विस्तृत नहीं बनाते"(फॉक्स:1969:96)। साहित्य के उस रूप को, जिसमें लेखक मानवों के जीवित कृत्यों की जगह अपने विचारों को ठूंसता है, अच्छी रचना नहीं कही जा सकती है। रचनाकार की दृष्टि ही रचना को कलात्मकता प्रदान करती है। इसलिए रचनाकार की दृष्टि विश्वदृष्टि होनी चाहिए। जिससे मानव के प्रति ही नहीं प्राणी मात्र के कल्याण और मैत्री की भावना विकसित हो सके।

उपन्यास की रचनात्मक संवेदना के विषय में रैल्फ फॉक्स का विचार उल्लेखनीय है। उन्हीं के शब्दों में, "लेखक का काम उपदेश झाड़ना नहीं, बल्कि जीवन का एक वास्तविक ऐतिहासिक चित्र प्रस्तुत करना है। पुरुषों और स्त्रियों की जगह कठपुतलियों को खड़ा करना, हाड़ और मांस की जगह लगे बंधे विचारों से काम लेना, संदेहों, पुराने नाते-रिश्तों, रीति-रिवाजों और लगावों से ग्रस्त वास्तविक लोगों की जगह नायकों तथा खलनायकों की बारात सजाना अत्यन्त सुलभ है, किन्तु ऐसा करना उपन्यास लिखना नहीं है" (फॉक्स:1969:99)। जीवन का इतिहासबोध, मानव जीवन की विभिन्न गतिविधियां और संघर्ष से उत्पन्न दृष्टिकोण एवं विचार के विलय से उपन्यास की रचना ही वास्तव में रचना की संवेदना और उसके सौन्दर्य को रेखांकित कर सकता है। बाह्य विचारों के आरोपन से रचना की संवेदना नष्ट होती है और पात्रों के जीवन की पृष्ठभूमि, उसका इतिहास जब समसामयिक जीवन से संबद्ध होता है तभी जाकर रचनाएं कालजयी और उतकृष्टता को प्राप्त करती हैं। संघर्ष, सामाजिक जीवन और विचारधारा के बीच समन्वय और दृष्टि संपन्नता से की कई रचनाएं ही समाज में परिवर्तन का आगाज करती हैं। परिवर्तन के लिए अतीत की विरासत में जो कुछ भी प्राणवान और आशापूर्ण है, का स्वीकार्य है और भविष्य के निर्माण के लिए वर्तमान में जो कुछ भी उपयोगी है, उसे भी अंगीकार करना चाहिए। सामाजिक परिवर्तन उत्पीड़ित समुदाय और उस वर्ग की चेतना द्वारा ही संभव है। यह उसके इतिहास का हिस्सा है और भविष्य के निर्माण के लिए आवश्यक तत्व है। विश्व में जनसाधारण के अधिकारों और मानवीय संवेदना के लिए उत्पीड़ित समाज संघर्षरत है। इस संघर्ष में जीवन का सौन्दर्य है। वह यदि रचना का अभिन्न अंग बनता है तो निश्चित ही रचनाएं जीवन सौन्दर्य से स्वतः संबद्ध हो जाती हैं और वह मनुष्य के मशीनीकरण के खिलाफ विद्रोह एवं विरोध को पैदा करती हैं। "सत्य यह है कि जन साधारण को मशीन बनाने के प्रयासों के विरूद्ध एकमात्र मजदूर वर्ग ही है जो संघर्ष करता है, एकमात्र मजदूर वर्ग ने ही मशीन या मानव के हमले के विरूद्ध संघर्ष का सारा बोझ अपने कंधों पर उठाया है"(फॉक्स:1969:109)। मशीनीकरण की यह प्रक्रिया पूंजीवाद की देन है और मजदूर वर्ग के संघर्ष को चित्रित कर उपन्यास इसी संदर्भ में पूंजीवाद की खोज जन्म लेने के बाद उसके खिलाफ प्रतिरोध की संस्कृति तैयार की है।

उपन्यास की संवेदना और सौन्दर्य इतिहास लेखन की प्रक्रिया है। वह इतिहास का हिस्सा है और इतिहास भी। "उपन्यास केवल उसी हद तक इतिहास है जिस हद तक कि वह मानव के अस्तित्व,

उसके विकास, उसके जीवनयापन और शायद उसकी मृत्यु तक की कहानी कहता है। यथार्थ इतिहास लेखन से उसका कोई संबंध नहीं है, जिसमें अनुमान के लिए कोई जगह नहीं होती, जिसमें अथ से इति तक तुलना, विश्लेषण और परिलक्षित तथ्यों से ठीक-ठीक सिद्धांत निरूपण होता है"(फॉक्स:1969:118)। जीवन और परिस्थिति का समन्वय स्वरूप ही मानव जीवन के सौन्दर्य की सार्थकता प्रदान करता है। किसी भी चीज का वर्णन निर्भीकता के साथ करना चाहिए। इसी से अभिव्यक्ति का सौन्दर्य और वर्णनकार एवं वर्णित के लगाव का भी पता चलता है। किसी भी चीज का वर्णन चेतना के साथ करना और उसका मानव जीवन से संबद्धता ही उस चीज का सौन्दर्य और उसकी सार्थकता प्रदान करता है।

उपन्यास की संवेदना का मूलाधार शिवदान सिंह चौहान के शब्दों में मानव जीवन और मानव का अनुभव है। इसकी शुरूआत सांस्कृतिक चेतना के साथ हुई। आधुनिक उपन्यास का विकास सांस्कृतिक जागरण के साथ यूरोप में खासकर इटली में हुआ। "सामंती प्रथा के ह्रास और नवोत्थित व्यापारी वर्ग की उन्नति का वह युग था। प्रारंभिक इतालवी उपन्यासों में प्रेम और साहस की नैतिक और पौराणिक कहानियां होती थीं जिनमें पतित स्त्रियों, दुराचारी पादरियों, असभ्य किसानों और कुलीन घरों के सामंतों को पात्र बनाया जाता था।...लेखकों की शैली और जीवन के प्रति देखने के ढंग से चाहे हम उपन्यासों का प्रवृत्ति मूलक वर्गीकरण रोमांटिक(छायावादी, यथार्थवादी, प्रभाववादी और प्रकृतिवादी के रूप में क्यों न कर लें, किंतु इस समस्त विकास से इतना तो स्पष्ट हो चुका था कि वस्तु निरूपण की दृष्टि से उपन्यास का उद्देश्य या तो मनोरंजन करना है, या जीवन की किसी समस्या को उपस्थित करना है, या ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को अंकित करना है। साथ ही रूप-विधान और वस्तु-विन्यास के संबन्ध में भी यह सामान्य तथ्य निर्धारित हो ही चुके थे कि उपन्यास में कथानक और चरित्र-चित्रण ही प्रमुख हैं- इन दोनों में से किसी के बिना उपन्यास की रचना असंभव है। अंत में इन गुणों की भी स्थापना हो चुकी थी कि उपन्यास कितना भी यथार्थवादी क्यों न हो वह एक कल्पनाजन्य कृति है, बाह्य जीवन की केवल यथातथ्य अनुकृति नहीं और यह कि उपन्यास कितना भी काल्पनिक क्यों न हो मानव जीवन और मानव अनुभव ही उसका मूलाधार है"(चौहान:2007:127)। शिवदान सिंह चौहान के अनुसार उपन्यास कितना ही यथार्थवादी क्यों न हो वह कल्पनाजन्य कृति है और उसका आधार मानव जीवन का अनुभव ही है। लेकिन सवाल उठता है कि क्या उपन्यास या अन्य रचनाएं बिना कल्पना के संभव हैं ? मार्के की बात यह है कि जब रचनाएं जीवनानुभव और जीवन यथार्थ(सामाजिक सच्चाई) से संबद्ध होती हैं, वह भविष्य की संभावना व्यक्त कर देती हैं, जीवन रचना में गतिशील हो उठता है, उसे गतिशील करने के लिए कल्पना की जरूरत नहीं पड़ती है। जिसकी दुहाई देने के लिए कल्पना की आवश्यकता विद्वज्जन बताते रहते हैं।

कल्पना से रचना में अमूर्त का आगमन होता है और अमूर्त का चित्रण रचना को समाज से काट कर अलग कर देता है। "उपन्यास के तत्व, हीगेलीय अर्थ में, पूरी तरह अमूर्त होते हैं, अमूर्त होता है काल्पनिक परिपूर्णता के लिए अतीत में लौटने का व्यामोह जिससे उपन्यास के पात्र ग्रसित होते हैं, एक ऐसा व्यामोह जो अपने को और अपनी इच्छाओं को ही एकमात्र सच्ची वास्तविकता मानता है। अमूर्त होता है सामाजिक संरचनाओं का वह अस्तित्व जो संरचनाओं की उपस्थति के तथ्य मात्र पर और उनके चलते रहने की क्षमता पर आधारित होता है, और अंत में, अमूर्त होता है वह रूपदायी अभिप्राय जो तत्वों के इन दो अमूर्त समूहों के बीच की दूरी को पाटने के बजाय उन्हें वैसे ही बना रहने देता है, जो इस दूरी को पाटने की कोशिश तक नहीं करता, बल्कि उपन्यास के पात्रों के वास्तविक अनुभव के रूप में उसे इंद्रियगम्य बना देता है। इस दूरी को दोनों समूहों को जोड़ने का साधन बनाता है और इस तरह इसे लेखन के इस उपकरण में बदल

देता है"(लुकाच:1920:56)। इस अमूर्तता के कारण उपन्यास अनुभव से इंद्रियगम्य की ओर बढ़ने लगता है। दूसरे शब्दों में वह मनोरंजन का साधन बनने लगता है जो कि उपन्यास की प्रकृति के खिलाफ है और समाज के लिए खतरा है। जार्ज लुकाच उपन्यास में इस अमूर्तता के खतरे को रेखांकित करते हुए लिखते हैं कि "उपन्यास की मूलतः अमूर्त प्रकृति से खतरे उत्पन्न होते हैं। इन खतरों से बचने का एक ही रास्ता है कि संसार की क्षीण और अपूर्ण प्रकृति को ही अंतिम यथार्थ के रूप में प्रस्तुत किया जाएः सचेत और संगत रूप में उस प्रत्येक वस्तु को उभारते हुए जो संसार की सीमाओं से परे तथा बाहर की ओर संकेत करती है।...उपन्यास के हिस्से आने वाली विषमता का विशेष गुण यह होता है कि सारभूत जीवन की व्यापकता अनुभव के जीवन में पर्दापण करने से इनकार कर देती है जिससे रूप की ऐसी समस्या पैदा हो जाती है जो दूसरे प्रकार की कलाओं की रूप संबंधी प्रकृति से कम स्पष्ट होती है और जो चूंकि विषयवस्तु की समस्या दिखलाई पड़ती है"(लुकाच:1920:56)। जार्ज लुकाच जिसे विषयवस्तु की समस्या कहते हैं वह वस्तुतः समाज की समस्या है और महत्वपूर्ण है उपन्यास की संवेदना मानव जीवन की अभिव्यक्ति में उनकी सामाजिक समस्याओं को कितनी जगह देती है। समस्याओं का चित्रण ही रचनाओं को परिपक्व और सशक्त बनाता है। "उपन्यास का स्वभाव परिपक्व और सशक्त होता हैः इसका अर्थ यह हुआ कि यदि हम उपन्यास के संसार की समग्रता को वस्तुपरक ढंग से देखें तो वह अपूर्ण बन जाती है और यदि आत्मपरक ढंग से देखें तो वह परित्यक्त लगने लगती है। अशक्तता उपन्यास के भीतर एक ऐसे कच्चे माल के रूप में दिखलाई पड़ती है, जिसका कमजोर विधान बाद में नष्ट हो जाएगा"(लुकाच:1920:57)। अर्थात उपन्यास की संरचना में ही उसका दृष्टिकोण और सौन्दर्य है। पाठक और साहित्यकार उपन्यास को किस नजर से देखता है और किस प्रक्रिया से उपन्यास की रचना करता है। इसी रचना प्रक्रिया में उसकी संवेदना और सौन्दर्य निहित होता है। जार्ज लुकाच के शब्दों में, "उपन्यास की रचना प्रक्रिया में आचरण सिद्धांतों और सौंदर्य सिद्धांतों के बीच का संबन्ध एक तरह का होता है और साहित्य की अन्य विधाओं में दूसरी तरह का। उपन्यास का संबन्ध है आचरण-सिद्धांत-अर्थात आचरण-सिद्धांत से संबंधित आशय-प्रत्येक विवरण की बुनावट में दिखलाई पड़ता है और इसलिए वह अपनी अधिकतम मूर्त वस्तु में स्वयं कृति का एक सशक्त संरचनात्मक तत्त्व होता है। उपन्यास पूरी तरह बना हुआ न होकर बनने की प्रक्रिया में दिखलाई पड़ता है। मनोरंजन प्रदान करने वाले उपन्यास के भीतर यद्यपि उपन्यास के सभी ऊपरी तत्त्व होते हैं लेकिन वह सार रूप में न तो किसी चीज से जुड़ा होता है और न ही किसी चीज पर आधारित होता है, अर्थात पूर्णतः निरर्थक होता है। उपन्यास में सशक्त बंधन और निर्माणकारी विचारों की प्रकृति नियामक और गुप्त होती है और यह भी कि उसकी प्रक्रिया, जिसकी वास्तविक विषयवस्तु को समझाया नहीं जा सकता, तथा खोखली प्राणवता के बीच एक ऊपरी समानता होती है"(लुकाच:1920:58)। अर्थात मनोरंजन की संवेदना से की गई रचनाएं औपन्यासिक तत्त्वों से लैस तो लगती हैं लेकिन वह खोखली और निरर्थक होती हैं। यह खोखलापन वस्तुतः विचारों का खोखलापन है। जिस कारण से उपन्यास कहीं से भी और किसी भी प्रकार से समाज एवं राष्ट्र के विकास में सहायक नहीं हो पाता है क्योंकि विचार ही परिवर्तन और विकास की बुनियाद है।

इस विचारविहीन खोखलेपन को इस दृष्टि से भी समझा जा सकता है कि औपन्यासिक तत्त्वों और विज़न से लिखा गया उपन्यास कभी भी पूर्णता में भी अपूर्णता को बता देता है और समय सापेक्ष विचारों के आगमन और समस्याओं से जुड़कर रचना प्रक्रिया से जुड़ता है। "उपन्यास की प्रकृति अपनी प्रक्रिया में पूर्णता को वहीं तक नकारती है जहां तक वह विषयवस्तु से संबंधित होती है। उपन्यास जहां तक

रूप है वहां तक 'बनने' और 'होने' के बीच एक अस्थिर यद्यपि दृढ़ संतुलन स्थापित करता है, बनने के पीछे काम करने वाला वह विचार एक मूर्त अवस्था बन जाता है"(लुकाच:1920:59)। यहां स्पष्टतः देखा जा सकता है कि उपन्यास की संवेदना रचना प्रक्रिया में विषयवस्तु में निहित विचारों से संबद्ध होती है और बनने और होने के बीच अपने स्वरूप को स्थिर व संतुलित करती है। इस संदर्भ में उपन्यास जो कि कथा साहित्य का एक रूप है, की संरचना में निहित भावों को समझा जा सकता है। अंग्रेजी में कथा साहित्य के मुख्यतः दो रूप 'रोमांस' और 'नावेल' हैं। इस नावेल का ही हिन्दी अर्थ उपन्यास है। लेकिन रोमांस और नावेल में क्या अंतर है इसे समझना लाजिमी हो जाता है। क्लारा रीव के शब्दों में इस अंतर को समझा जा सकता है, "उपन्यास वास्तविक जीवन का और इसके रीति-व्यवहार का और उस गुण का चित्र होता है जिसमें इसकी रचना की जाती है। रोमांस में काव्यात्मक भाषा में उन चीजों का वर्णन किया जाता है जो न तो कभी घटित हुई हैं और न ही आगे कभी घटित हो सकती हैं। उपन्यास यथार्थवादी होता है, रोमांस काव्यात्मक या महाकाव्यात्मक होता है। उपन्यास का विकास गैर-काल्पनिक कथारूपों-पत्र, डायरी, संस्मरण या जीवन चरित, वार्ता या इतिहास-से हुआ है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि इसका विकास दस्तावेजों से हुआ है"(वेलेक,और वारेन: 2000: 283)। इस प्रकार रेनेवेलेक और आस्टिन ने उपन्यास को विकास का दस्तावेज कहा है। विचारणीय बिन्दु है कि वहीं रेने वेलेक और आस्टिन 'उपन्यास को काल्पनिक इतिहास कहते हैं। क्या सचमुच विकास का दस्तावेज एक काल्पनिक इतिहास है या इतिहास निर्मित करने की प्रक्रिया है? यहीं से साहित्य और इतिहास का अन्योन्याश्रय संबन्ध स्थापित होता है।

उपन्यास की संवेदना के सौन्दर्य के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण बात उभर कर आती है कि वह वस्तुनिष्ठ है या नाटकीय। "उपन्यास का दूसरा विपरीत लक्ष्य है 'वस्तुनिष्ठ' एवं 'नाटकीय' पद्धति, जिसके पक्ष में तर्क देने वाले और जिसे आधार बना कर लेखन करने वाले रहे हैं। वस्तुनिष्ठ पद्धति को केवल संवाद और सूचित व्यवहार तक ही सीमित नहीं मान लेना चाहिए। इसकी सबसे बड़ी सफलता यह है कि इसमें मनोजगत का भी चित्रण किया जा सकता है। इसके आवश्यक तत्व है 'सर्वदर्शी उपन्यासकार' का स्वेच्छा से उपन्यास की ओट में रहना, और इसके स्थान पर एक 'नियंत्रित दृष्टिकोण' की उपस्थिति। 'चित्र' उतना ही वस्तुपरक होता है जितना 'नाटक', फर्क केवल इतना होता है कि यह कुछ विनिर्दिष्ट आत्मनिष्ठ घटनाओं का, अर्थात् किसी एक पात्र की मानसिक घटनाओं का वस्तुपरक वर्णन होता है (जैसे मदान बावेरी, या स्ट्रेथर), जबकि नाटक में भाषण और आचरण को वस्तुपरक ढंग से पेश किया जाता है। इस सिद्धांत में यह गुंजाइश है कि 'दृष्टिकोण' को किसी एक व्यक्ति से दूसरे पर स्थानांतरित किया जा सके। शर्त यह है कि यह व्यवस्थित रूप में हो। वस्तुनिष्ठ पद्धति का अभिन्न अंग है काल-विषयक प्रस्तुतीकरण जिसमें पाठक पात्रों की प्रक्रिया से होकर गुजरते हैं"(वेलेक,और वारेन: 2000: 293-95)। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि समय सापेक्ष किसी विषयवस्तु का वैज्ञानिक प्रस्तुतीकरण ही वस्तुनिष्ठ पद्धति है। वस्तुनिष्ठ शैली के अनुसार लेखक को पहले से यह अनुमान नहीं करना चाहिए कि आगे क्या होने वाला है, उसे केवल अपना चार्ट धीरे-धीरे खोलते जाना चाहिए और ऐसा करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हमारी नज़र में एक से अधिक पंक्तियां एक समय में न आयें।

वस्तुनिष्ठता उपन्यास की एक तकनीकी विशेषता है 'चेतना प्रवाह शैली' जिसे अंगेजी में 'स्ट्रीम ऑफ कॉन्सियसनेस' कहा जाता है। जिसमें 'पाठक लेखक की ओर से स्पष्टीकरण या टिप्पणी के रूप में किसी तरह की बाधा के बिना ही पात्रों के आंतरिक जीवन में प्रवेश कर जाता है...' और इसमें 'नितांत निजी

विचारों की, अवचेतन के सर्वाधिक निकट पड़ने वाले विचारों की अभिव्यक्ति होती है"(वेलेक,और वारेन:2000:295-96)। अर्थात उपन्यास की संवेदना वस्तुनिष्ठता के तौर पर रचनाओं में समय सापेक्ष विचारों की अभिव्यक्ति है। इस अभिव्यक्ति में ऐतिहासिक विकास क्रम में उतार-चढ़ाव रहा है। विचारणीय बात यह है कि इस उतार-चढ़ाव और बदलाव एवं बदलती परिस्थितियों में किसको प्रतिष्ठित किया जा रहा है। अर्थात किन मूल्यों की स्थापना की जा रही है। इसी संदर्भ में सुरेन गेसुर्यां, के 'आज का समय, उपन्यास, और पाठक' आलेख को नहीं भुलाया जा सकता है जिसमें वह उपन्यास के संकट का सवाल उठाते हैं। वस्तुतः यह संकट पूंजीवाद के दौर में व्यक्तित्व का संकट है। विकल्प का संकट है। उपन्यास की संवेदना विकल्प की तलाश है। आत्मविश्लेषण और आत्मप्रकाशन गहरे हो सकते हैं किंतु यदि वह सत्य से दूर हैं तो उनसे उस महान कलात्मक सत्य की उपलब्धि नहीं हो सकती जो लाखों पाठकों के हृदय को आलोकित करता है। "कला का सत्य न तो यथार्थ से विमुख होने पर उपलब्ध किया जा सकता है और न यांत्रिक ढंग से जीवन के प्रस्तुतीकरण या 'चेतना प्रवाह' के द्वारा। सृजनात्मक कल्पना, फंतासी, प्रतीक आदि कला के सत्यों की उपलब्धि करा सकते हैं बशर्ते कि लेखक जनजीवन के करीब हो या जीवनसामग्री का सोद्देश्य चयन करे अर्थात उसे पता हो कि वह किस लक्ष्य की ओर अग्रसर हो रहा है।...वर्णन और सांवादिकता की ढीली-ढाली बाढ़ नायकविहीन और विषयविहीन उपन्यासों के लिए अवलंब का काम करती है जिससे यह उपन्यास अपनी विधा के सभी गुणों से रिक्त प्रतीत होते हैं। नव-उपन्यास मनुष्य विरोधी सभी बाधाओं पर विजय पाने में सक्षम है। यथार्थवाद की संभावनाएं अक्षय हैं क्योंकि यह वास्तविकता के अनंत वैविध्य पर आश्रित होता है"(गेसुर्यां :आज का समय, उपन्यासऔर पाठक:100)। अर्थात उपन्यास की संवेदना मनुष्य विरोधी बाधाओं का विरोध करती है और विषयविहीन या नायकविहीन उपन्यास में वर्णन या सवांदिकता का विरोध करती है। इसका यह अर्थ नहीं है संरचना में संवाद का या वर्णन का विरोध किया जाता है बल्कि अनावश्यकता का विरोध है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने आलेख "उपन्यास" में उपन्यास की शक्ति की पहचान करते हुए लिखा है कि "मानव जीवन के अनेक रूपों का परिचय कराना उपन्यास का काम है। यह उन सूक्ष्म से सूक्ष्म घटनाओं को प्रत्यक्ष करने का यत्न करता है, जिनसे मनुष्य का जीवन बनता है और जो इतिहास आदि की पहुंच के बाहर है। बहुत लोग उपन्यास का आधार शुद्ध कल्पना बतलाते हैं। पर उत्कृष्ट उपन्यासों का आधार अनुमान शक्ति है, न कि केवल कल्पना।... जब इन सूक्ष्म घटनाओं के संयोग में कोई उग्र घटना उमड़ पड़ती है तब जाकर इतिहास की दृष्टि उस पर पड़ती है। अपनी असंख्यता और क्षिप्रगति के कारण ऐतिहासिक प्रमाणों की पकड़ में न आनेवाली इन घटनाओं के निदर्शन के निमित्त मनुष्य की अनुमान शक्ति उठ खड़ी होती है जो अनेक व्यापारों के अभ्यास से वैसे ही किसी एक व्यापार का आरोपण कर सकती है"(शुक्ल:1910:104)। इतना ही नहीं, उन्होंने "हिन्दी साहित्य का इतिहास" में लिखा है कि "वर्तमान जगत में उपन्यासों की बड़ी शक्ति है। समाज जो रूप पकड़ रहा है उसके भिन्न भिन्न वर्गों में जो प्रवृतियाँ उत्पन्न हो रही हैं, उपन्यास उनका प्रत्यक्षीकरण ही नहीं करते, आवश्यकतानुसार उनके ठीक विन्यास, सुधार अथवा निराकरण की प्रवृत्ति भी उत्पन्न कर सकते हैं। ...लोक या किसी जनसमाज के बीच काल की गति के अनुसार जो गूढ़ और चिंत्य परिस्थितियां खड़ी होती रहती हैं उनको गोचर रूप में सामने लाना और कभी-कभी निस्तार का मार्ग भी प्रत्यक्ष करना उपन्यासों का काम है" (शुक्ल: सं.2058 : 293)। इससे यह स्पष्ट होता है कि उपन्यास की संवेदना और सौन्दर्य दोनों ही समाज की सामाजिक संरचना में निहित है। जीवन की गतिशीलता के बीच मौजूद है।

आधुनिक उपन्यास में परिवेश और परिस्थिति की अनुपस्थिति के कारण विशेष प्रकार की शून्यता का बोध होता है। अज्ञेय के अनुसार यह शून्यता आधुनिक उपन्यास का लक्षण है। जिसमें नवीनता के स्तर पर किसी परिवेश या उसके समन्वय की स्थापना नहीं है। "आधुनिक उपन्यास नया उपन्यास है, लेकिन उसका नयापन न तो विषय-वस्तु का नयापन है, न विधान का, न कथानक का, न रूपाकार का वह मूलतः जीवन के प्रति दृष्टिकोण का नयापन है। यद्यपि वस्तु शैली, विधान, कथा आदि का नयापन उसमें हो सकता है और होता भी है, तथापि उसकी आधुनिकता की कसौटी वह नहीं है, कसौटी उसका नया दृष्टिकोण ही है" (अज्ञेय: आधुनिक उपन्यास की पृष्ठभूमि: 171)। यही नया दृष्टिकोण उपन्यास को नयापन देता है और उपन्यास नया कहलाने का अधिकार रखता है। "वास्तव में उसकी वास्तविक कसौटी उसका दृष्टिकोण ही हैं: यही उसे पूर्ववर्ती उपन्यास से पृथक् करता है, और उसे समझने के लिए इसके ऐतिहासिक विकास और कारणों को समझना आवश्यक है।... उपन्यास का इतिहास है। उपन्यास मानव के अपनी परिस्थितियों के साथ संबंध की अभिव्यक्ति के उत्तरोत्तर विकास का प्रतिनिधित्व करता है। उपन्यास में दृष्टिकोण या जीवन-दर्शन का महत्व उपन्यास की परिभाषा में ही निहित है" (अज्ञेय:आधुनिक उपन्यास और दृष्टिकोण: 171-173)। इस प्रकार मानव और उसका समाज समग्रता में उपन्यास का केन्द्र बिन्दु है। जीवन संघर्ष का एक एक पहलू इसमें समाहित होता रहता है। मनुष्य सिर्फ सामाजिक स्तर पर ही नहीं जीवन के विविध आयामों के स्तर पर संघर्ष करता रहता है जिसमें उनका मानसिक संघर्ष भी शामिल है। इसलिए अज्ञेय लिखते हैं कि "आधुनिक उपन्यास में मानसिक संघर्ष का विश्लेषण विशिष्ट महत्व रखता है।…आधुनिक उपन्यासकार वास्तविक जगत से कहीं अधिक गहरा सम्पर्क रखता है। उसके लिए दृष्टिकोण मनोरंजन या रोचकता का साधन नहीं बल्कि जीने के लिए एक व्यावहारिक दार्शनिक आधार है। जीवन के लिए ऐसा आधार खोजने को वह एक समस्या और कर्तव्य के रूप में लेता है और गंभीरतापूर्वक उस समस्या और कर्तव्य का सामना करता है। यही उसकी आधुनिक कसौटी है" (अज्ञेय:आधुनिक उपन्यास और दृष्टिकोण:180)। अर्थात उपन्यास की संवेदना की कसौटी जीवन मूल्यों की खोज, उसकी समस्याओं के चित्रण और आधुनिक वस्तुनिष्ठता के बीच अधिकार और कर्तव्य के साथ जुड़ी हुई है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि "उपन्यास, ए ब्राइट बुक ऑव लाइफ ? किंतु भारतीय या यूरोपीय किताब नहीं- बल्कि जीवन की एक संपूर्ण किताब" (वर्मा: उपन्यास की मृत्यु और उसका पुनर्जन्म: 200)। जीवन की यह संपूर्ण किताब ही उपन्यास का सौन्दर्य है। उसकी संवेदना है जिसमें जीवन का अनुभव चेतना के साथ जुड़ कर सभ्यता-संस्कृति का इतिहास निर्मित करता है। यह इतिहास निर्माण हमारी संस्कृति और सांस्कृतिक चेतना से जुड़ा हुआ है। अनुभव की इसी सांस्कृति चेतना को परिलक्षित करते हुए निर्मल वर्मा लिखते हैं कि "साहित्य में प्रश्न अनुभव के विषय (कॉण्टेंट) का नहीं है, बल्कि उस रूप और रास्ते का है, जिसके द्वारा वह अनुभव एक विशिष्ट सांस्कृतिक चेतना में परिलक्षित होता है, दूसरे शब्दों में अनुभव का 'कॉण्टेंट' चाहे जैसा हो, महत्व इस चीज का है कि वह चेतना के किस धरातल और रूप में एक व्यक्ति से जुड़ता है। उदाहरण के तौर पर मनुष्य का अतीत एक सार्वभौमिक अनुभव है, पश्चिम में वैसा ही जैसा भारत में, किंतु व्यक्ति और अतीत के बीच एक विशिष्ट जुड़ाव, एक सांस्कारिक संबन्ध जिससे 'स्मृति' का जन्म होता है- यह इतिहास का विषय नहीं, संस्कृति का प्रश्न है।..उपन्यास की समस्या हमारी समूची संस्कृति के विश्लेषण से जुड़ी है। उपन्यास समय के भीतर बहता है, किंतु घटनाओं में बहता समय-जो पात्रों को एक स्तर से दूसरे स्तर पर विकसित और परिवर्तित करता है-क्या हमारा 'समय' है ?" (वर्मा: संस्कृति, समय और भारतीय उपन्यास: 220)। जब निर्मल वर्मा यह कहते हैं कि क्या हमारा समय है ? तो यह उनकी दूरदृष्टि है जिससे

हिन्दी उपन्यास की संवेदना स्वतः रेखांकित हो जाती है। उपन्यास की यह संवेदना अनुभव प्रमाणित हो तो वह और सफल होता है। अनुभव की प्रमाणिकता का सम्बन्ध सामाजिक यथार्थ और मानव चरित्र के संयोजन से आता है इसीलियह प्रेमचंद 'उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र' कहते हैं और लिखते हैं: "मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है...आदर्श को सजीव बनाने ही के लिए यथार्थ का उपयोग होना चाहिए और अच्छे उपन्यास की यही विशेषता है। उपन्यासकार की सबसे बड़ी विभूति ऐसे चरित्रों की सृष्टि है जो अपने सद्व्यवहार और सद्विचार से पाठक को मोहित कर ले। जिस उपन्यास के चरित्रों में यह गुण नहीं है, वह दो कौड़ी का है।...चरित्र को सजीव बनाने के लिए उसकी कमजोरियों का दिग्दर्शन कराने से कोई हानि नहीं होती। बल्कि यही कमजोरियां उस चरित्र को मनुष्य बना देती है" (प्रेमचंद : साहित्य का उद्देश्य :60, 63)। यहाँ यह और स्पष्ट हो जाता है कि उपन्यास सम्पूर्णता में मानव जीवन के समग्र स्वरुप का निरूपण है और यह निरूपण सामाजिक जीवन की गतिशीलता से सम्बद्ध होना चाहिए।

निष्कर्ष

समग्रतः यह कहा जा सकता है कि उपन्यास की संवेदना एक साहित्यिक कला के तौर पर समाज में आयी। लेकिन सामाजिक संरचना की विभिन्न गतिविधियों को रेखांकित करता हुआ उपन्यास ने सामाजिक संरचना के स्वरूप को ग्रहण कर लिया है। यही कारण है कि उपन्यास का समाजशास्त्रीय अध्ययन समाजशास्त्र को भी प्रस्तुत करने की क्षमता विकसित कर चुका है। दूसरे शब्दों में कहें तो उपन्यास सामाजिक संरचना की संवेदना को मानवीय धरातल पर जीवन सौन्दर्य के रूप में रेखांकित करता है। उसका सौन्दर्य संपूर्ण जीवन की रचना है। उसका यथार्थवाद है। उसमें अभिव्यक्त यथार्थ के प्रतिमान विकास की प्रक्रिया में भी समय-सापेक्ष और विकासोन्मुख रहा है। यह विकासोन्मुख प्रतिमान ही सामाजिक यथार्थवाद को जीवित रखता है। यह दीगर बात है कि यथार्थवाद का स्वरूप विभिन्न वर्गीय चरित्र के सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना के अनुरूप है और होगा भी। उपन्यास की संवेदना यह साबित करती है कि उपन्यास की रचना केवल मनःस्थिति या मनोदशा या केवल मनोरंजन के लिए नहीं है बल्कि वह समाज के अन्वेषण का भी विषय है। समाज की विभिन्न गतिविधियों को समझने का साधन भी है। सामाजिक संरचना का मानचित्र है तो सामाजिक संरचना का निर्माता भी है। सभ्यता-संस्कृति के निर्माण की प्रक्रिया की सामग्री भी है। समय से संवाद की आलोचना दृष्टि है। इसीलियह जब भी उपन्यास के सौंदर्यशास्त्र की बात होगी तो वह उपन्यास की रचनात्मक जमीन के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन मूल्यों से इतर नहीं होगा बल्कि समाज की सभ्यता-संस्कृति के कोर से उसका सौंदर्यशास्त्र निर्मित होगा। उसी पर उनकी कसौटी तय होगी।

संदर्भ सूची

फॉक्स, रैल्फ (1969). उपन्यास और लोक-जीवन. नई दिल्ली: पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस(प्रा) लिमिटेड।

चौहान, शिवदान सिंह (2007). हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष. नई दिल्ली: स्वराज प्रकाशन।

जार्ज, लुकाच, (2002). "उपन्यास का आंतरिक रूप", पारख, जवरीमल्ल (सं.), उपन्यास सिद्धांत

विवेचना. नई दिल्ली: मानवीय विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय।

वेलेक, रेने और आस्टिन,वारेन (2000). साहित्य सिद्धांत (हिन्दी अनुवाद बी एस पालीवाल) इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन।

गेसुर्यां, सुरेन (2002). "आज का समय, उपन्यासऔर पाठक" (आलेख); पारख, जवरीमल्ल (सं.), उपन्यास सिद्धांत विवेचना. नई दिल्ली: मानवीय विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय।

शुक्ल, रामचन्द्र (2002). "उपन्यास"; *नागरिक प्रचारिणी पत्रिका, भाग-15, संख्या-1, 15जुलाई* 1910 पारख, जवरीमल्ल (सं.), *उपन्यास सिद्धांत विवेचना,* नई दिल्ली:मानवीय विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय।

शुक्ल, रामचन्द्र. (संवत 2058). *हिन्दी साहित्य का इतिहास*, वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा।

अज्ञेय. (2002). "आधुनिक उपन्यास की पृष्ठभूमि"; पारख, जवरीमल्ल (सं.2). *उपन्यास सिद्धांत विवेचना*, मानवीय विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

अज्ञेय. (2002). "आधुनिक उपन्यास और दृष्टिकोण"; पारख, जवरीमल्ल (सं.), *उपन्यास सिद्धांत विवेचना*, मानवीय विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

वर्मा, निर्मल. (2002). "उपन्यास की मृत्यु और उसका पुनर्जन्म"; पारख, जवरीमल्ल (सं.), *उपन्यास सिद्धांत विवेचना*, मानवीय विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, पृ. 220।

वर्मा, निर्मल. (2002). "संस्कृति, समय और भारतीय उपन्यास", पारख, जवरीमल्ल (सं.), *उपन्यास सिद्धांत विवेचना*. नई दिल्ली: मानवीय विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय. पृ-220।

प्रेमचन्द (2001), *साहित्य का उद्देश्य*, इलाहाबाद: हंस प्रकाशन.

समत्व योग: समकालिक विमर्श

प्रो. जितेन्द्र कुमार शर्मा *

सारांश

साम्प्रतिक विश्व नाना विध त्रासदी, बर्बादी और दुःखों का साक्षी है। पर्यावरण प्रदूषण, महामारी के साथ-साथ सम्पूर्ण मानवता नाना प्रकार के नैतिक अशुभों-भ्रष्टाचार, बलात्कार, आतंकवाद से संत्रस्त है। दुःखों से सर्वथा आवृत्त मानव जाति के दुःखों से प्राण का सार्वकालिक उपाय गीता का समत्व योग है। समत्व योग गीता दर्शन का वह अमृतकुंभ है जिसका पान कर जहाँ मानव जाति परम प्राप्य मोक्षत्व को प्राप्त कर सकती है वहीं इसके व्यावहारिक आचरण से प्राकृतिक संतुलन और व्यवस्था भी कायम की जा सकती है। चाहे वह जैव-विविधता और उसके संरक्षण का प्रश्न हो, अथवा हो पर्यावरण के घटक नदी, नद, सरोवर, वन, लता, कुंज की सुरक्षा का अथवा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश जैसे पंचमहाभूतों के मानव जाति के प्रति अनुकूलता का हो, समत्व योग, वह पूर्ण दर्शन है, वह आचार संहिता है जिसका अनुपालन मानवता के लियह सर्वथा क्षेमकर और कल्याणप्रद है। यह हमारी समस्त मानसिक दुर्बलता-चिंता, अवसाद, अकर्मण्यता, अन्यमनस्कता का सर्वथा निवारण करने वाला है। इसको व्यवहृत कर मनुष्य मन की असीम उर्जा का साक्षात्कार करता है। प्रस्तुत आलेख में इन्हीं समसामयिक संदर्भों और समस्याओं की पृष्ठभूमि मे समत्व योग की युगानुकूल मीमांसा प्रस्तुत की गयी है।

बीज शब्द: समत्व योग, युगानुकूल, ज्ञानयोग, स्थिरप्रज्ञ

प्रस्तावना

सम्प्रति सम्पूर्ण विश्व भयंकर त्रासदी, बर्बादी और दुःख के दौर से गुजर रहा है। अस्पतालों में दम तोड़ते लोग, चीखते-चिल्लाते परिजन, श्मशान घाट पर लाशों का ढेर, कोविड-19 वायरस से भयाक्रांत घरों में दुबके लोग, जानमाल की भारी तबाही करने वाले निरन्तर बढ़ते हुए चक्रवातीय तूफान, धार्मिक विद्वेषाग्नि में जलते हुयह राष्ट्र, आतंकवाद के खूनी पंजे में जकड़ी हुई मानवता, अकाल, बाढ़, भूकम्प, महामारी के रूप में अपने आक्रोश को व्यक्त करती क्षुब्ध प्रकृति, ऊपर से भ्रष्टाचार बलात्कार, व्याभिचार के रूप में निरन्तर गहनतर होता जा रहा मनुष्य का पाशविक आचरण। क्या प्रकृति विजय का आकांक्षी मनुष्य सचमुच में असहाय हो चुका है। दुःखों की चतुर्दिक फैली हुई यवनिका महात्मा बुद्ध के इस कथन की बरबस याद दिला देती है-भिक्षुओं, चिरकाल तक माता के मरने का दुःख सहा है, पुत्र के मरने का दुःख सहा है, कुटुम्बों के मरने का दुःख सहा है, सम्पत्ति के विनाश का दुःख सहा है, रोगी होने का दुःख सहा है। दुःखी मानवता ने जितने आँसू बहाए हैं, उतना महासागरों में जल भी नहीं है।

आखिर में इन सबका समाधान क्या है ? दुःखों से त्राण प्राप्ति का आत्यन्तिक उपाय क्या है? सर्ववेदमयी गीता इनका समाधान करते हुए कहती है-

'' तस्मात् शास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वां शास्त्र विधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि।''(श्रीमद्भागवद्गीता, 2018, 16/24)

*प्राध्यापक, योग विभाग, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक।

कर्तव्य और अकर्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है। अतः उसका पालन करें। तो आइए सर्वशास्त्रमयी गीता में ही दुःखों से आत्यन्तिक मुक्ति का उपाय देखें-

मार्गस्त्रियो मया प्रोक्तानृणां श्रेयो विधित्सया
ज्ञानं कर्म च भक्तिंच नोपायोऽन्यास्ति कर्हिचित्। (श्रीमद्भागवद्गीता, 2018)

भगवान्नारायण ने मानव जाति के कल्याण के लिए तीन मार्ग बतलाए हैं-ज्ञान योग, कर्मयोग और भक्तियोग। इसके अतिरिक्त दुःखों से सार्वकालिक मुक्ति का दूसरा कोई उपाय नहीं है।

''तस्मात् सर्वकालेषु योगयुक्तो भावार्जुन।'' (श्रीमद्भागवद्गीता, 2018)

विवेच्य विषय-समत्वयोग ज्ञानयोग की ही विशेषता है। दूसरे शब्दों में-समत्व योग, ज्ञानयोग का ही सैद्धान्तिक विश्लेषण है। दुःखों का मूल कारण अज्ञान है। और अज्ञान का निराकरण ज्ञान से ही हो सकता है। ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः अथवा ज्ञानादेव मुक्तिः। यह अज्ञान क्या है ? जीव, जगत और जागतिक सम्बंध के यथार्थ स्वरूप की तात्विक जानकारी/ज्ञान न होना ही अज्ञान है।

जीव-जाति, रूप, रंग, लिंग, भाषा, वेशभूषा के भेद-प्रमेद से रहित स्वयं ब्रम्ह स्वरूप है। इसी आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठित होना जीव का कर्तव्य है। वेदान्त इसे 'स्वमहिम्नप्रतिष्ठितः' की संज्ञा देता है।

जगत-दृश्यमान जगत मिथ्या है। जगत् परमात्मा का अंश है। परमात्मा से भिन्न कुछ भी नहीं। जागतिक सम्बन्ध-नश्वर, क्षणिक और हेय है। काम, क्रोध, लोभ-मोह पर आधारित दैहिक जागतिक सम्बंध दुःखात्मक है। रत्नावली, जागतिक सम्बन्धों के इसी स्वरूप की तात्विक जानकारी से तुलसी को प्रबोधित करते हुए कहती है-

हाड़-मांस मम चर्म सो तासो ऐसी प्रीति
हो जाती रघुनाथ से कट जाती भव-भीति (रामायण.वर्डप्रेस, एन.डी.)

समत्व योग-जहाँ दूसरों को समझाने के संदर्भ में ज्ञानयोग की ही सैद्धान्तिक विवेचना है वहीं वैयक्तिक जीवन में यह आचरण शास्त्र है जिसका सर्वविध पालन मानवमात्र के लियह क्षेमकर और समस्त दुःखनाशक है।

गीतानायक कृष्ण जगत हितार्थ समत्व योग की विवेचना करते हुए कहते हैं-

'योगस्थः कुरु कर्माणि सगं व्यक्त्वां धनंजय
सिद्धसिद्धयो समोभूत्वा समत्वं योग उच्यते। (श्रीमद्भागवद्गीता, 2018, 2/48)

समत्व योग के तीन स्वरूपों का वर्णन गीता में किया गया है-आत्मगत समत्व, वस्तुगत समत्व, गुणातीत समत्व।

आत्मगत समत्व-इसे गीता में 'स्थितप्रज्ञ' कहा गया है। स्थितप्रज्ञ के तीन लक्षण गीता में बताए गए हैं-

1. वह मन में रही हुई सभी कामनाओं और वासनाओं को सब प्रकार से छोड़ देता है।
2. वह परमात्मा में ही संतुष्ट रहता है। प्रजहाँति यदा कामा-सर्वान्पार्थ मनोगतान आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते। (श्रीमद्भागवद्गीता, 2018, 2/55)
3. वह दुःख से उद्द्विग्न नहीं होता तथा सुख की सर्वथा लालसा नहीं करता।

दुःखेषु अनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगत स्पृहः ।
बीत राग भय क्रोधः स्थित धीर्मुनिरूच्यते। (श्रीमद्भागवद्गीता, 2018, 2/56)

भोगेच्छाएं और वासनाएं ही समस्त दुःखों की मूल हैं। मन और इन्द्रियाँ प्रकृति प्रसूत हैं और प्रकृति जड़ है। अतः मन और इन्द्रियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति भौतिकवाद और भोगवाद की तरफ रहती है।

मन सहजतः विषयाभिमुख होता है और इन्द्रियों के माध्यम से विषयों का नितरां-सुतरां भोग करना चाहता है। भोग भोगने से भोग की लालसा कभी समाप्त नहीं होती बल्कि यह उसी तरह से द्विगुणतर होती जाती है जैसे घी डालने से अग्नि ज्वाला बुझने के बजाय और भड़क उठती है।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्ण वर्तमेव भूयः एवाभिः बर्द्धते॥ (शतावधानी.कॉम, एन.डी.)

शरीर अशक्त हो जाता है, परन्तु विषयासक्त, मन कभी बूढ़ा नहीं होता। आचार्य शंकर कहते हैं-

अंग गलितं पलितं मुण्डं
दशन विहीनम जातम तुण्डम
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं
तदपि न मुंचति आशापिण्डम् आचार्य शंकर
भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता
स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः
कालो न यातो वयमेव याता
स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः (भर्तृहरिशतक-नीतिशतक, श्लोक सं.7)

श्रीमद् भगवद्गीता के अध्याय-2 के श्लोक 62-63 में भगवान श्रीकृष्ण मोहग्रस्त अर्जुन को सचेत करते हुए कहते हैं कि इन्द्रिय विषयों का चिंतन करते-करते मनुष्य की उन इन्द्रिय विषयों में आसक्ति हो जाती है। आसक्ति से काम और काम से क्रोध प्रकट होता है। क्रोध से मोह और मोह से स्मृतिलोप होता है जो बुद्धि के विनाश का कारण बनता है अंततः व्यक्ति का अधःपतन होता है।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनम् आत्मनः
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मात एतत् त्रयं त्यजेत् ।। (https://www.gitasupersite.iitk.ac.in/srimad, N.D.)

अब यहाँ पर प्रश्न यह पैदा होता है कि इन्द्रियाँ ही भोग का कारण हैं तो उन्हें ही क्यों न समाप्त कर दिया जाय। न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी। नहीं। गीता कदापि इसका समर्थन नहीं करती। विषय भोगों का संयमित उपभोग दूषण नहीं भूषण है। अपनी मर्यादा और सीमा में जीवन के सुखभोग का अपना महत्व है। इन्द्रियों की संयमित तृप्ति का अपना चिकित्सकीय और वैज्ञानिक आधार है। शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से इनका सम्यक उपभोग महत्व रखता है। धर्म संयत काम को भगवान आत्मरूप बतलाते हैं।

बलं बलवतां चाहं कामराग विवर्जितम्
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ्। (श्रीमद्भगवद्गीता, 7/11)

स्पष्ट है मन की असीम उर्जा का सकारात्मक प्रयोग हो सके इस हेतु मन की चंचल गति पर नियंत्रण कर उसका शोधन और परिमार्जन आवश्यक है। श्री अरविन्द इस प्रक्रिया को एक शब्द देते हैं 'ट्रांसफारमेशन'। इसका मतलब है-कायान्तरण, परिवर्तन, बदलाव, पूरा का पूरा बदल जाना। इस प्रक्रिया में मनुष्य की आकृति तो वही रहती है, परन्तु प्रकृति बदल जाती है। यह मानस से अतिमानस पर आरोहण है। यह हमारा आत्मिक परिवर्तन है। आत्मिक परिवर्तन का तात्पर्य हमारे मानस या आत्मा को छिपाए रखने वाले पर्दे को हटाना है। 'संसार का महारोग यह है कि मनुष्य अपनी यथार्थ अन्तरात्मा को नहीं पा सका'

(श्री अरविन्द, 2012)। चेतना को बाह्य जगत से खींचकर आभ्यंतर जगत में केन्द्रित करना जिससे हमारे अस्तित्व के निम्नतर रूपों में-भौतिक, जैविक एवं मानसिक ढंगों में आमूल परिवर्तन हो सके। अन्तर में चित् शक्ति इस रूप में प्रतिष्ठित हो सके कि-हमें विश्व के कण-कण में मूल चित् शक्ति 'माँ' का रूप दिखाई दे। इस सम्बंध में आचार्य श्रीराम शर्मा का अभिमत है-जीवन को शुद्ध, सरल, स्वाभाविक एवं पुण्य प्रतिष्ठा से भरा-पूरा बनाने का राजमार्ग यह है कि हम अपने आपको शरीर भाव से ऊँचा उठावें और आत्मभाव में जागृत हों। इससे सच्चा सुख, शान्ति और जीवन लक्ष्य की प्राप्ति होगी'' (शर्मा, 2010)। इसी स्थिति को गीता 'आत्मन्येवात्मनातुष्ट' की संज्ञा देती है। आत्मा, जाति, रूप, रंग, लिंग, भाषा-वेशभूषा से परे परमात्मा रूप है। समस्त प्रकार की क्षुद्ध प्रवृत्तियों एवं सीमितताओं से ऊपर उठकर सर्वात्मभाव में प्रतिष्ठित होना, मन की समस्त शक्तियों को इसी में केन्द्रित कर देना ही स्थित प्रज्ञता है। पुत्र, धन और लोक की समस्त तृष्णाओं (पुत्रैषणा, विन्तैषणा, लोकैषणा) को त्याग देने वाला संन्यासी ही आत्माराम, आत्मक्रीडस्थ और स्थित प्रज्ञ है। इस प्रकार आत्मसंयम और अपरिग्रह, आध्यात्मिक जीवन की वह सम्प्रदायें हैं, जो सामान्य मनुष्य को भी देवत्व में परिवर्तित कर देती हैं।

इसी अपरिग्रह व्रत के वैश्विक सिद्धांत को आचार्य श्रीराम शर्मा आध्यात्मिक अर्थशास्त्र की संज्ञा देते हुए इसे तनाव मुक्त समृद्धि कहते हैं। मन के रूपान्तरण की इसी अवस्था की तरफ संकेत करते हुए ईशावास्य उपनिषद का ऋषि निर्देश देता है-तेन त्यक्तेन मुंजीथा मा गृधः कस्य स्विद धनम्'' भोग्य पदार्थ किसी के भी नहीं हैं। यह सब परमेश्वर के हैं और उन्हीं की प्रसन्नता के लियह इनका उपयोग होना चाहिए'' (ईशावास्योपनिषद, मंत्र1,)।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है साम्प्रतिक वैश्विक समस्याओं-भ्रष्टाचार, बलात्कार, व्यभिचार, भ्रूणहत्या, मानव अंगों की तस्करी, अत्यधिक जनसंख्या, बालविवाह, देहव्यापार का एकबारगी अन्तिम समाधान गीता के इस समत्व योग में समाहित है।

आत्मगत समत्व की इस स्थिति में व्यक्ति दुःख से उद्विग्न नहीं होता और सुख की सर्वथा लालसा नहीं करता। क्योंकि सुख और दुःख तो शरीर के चोचले मात्र हैं जो देशकाल और परिस्थिति के अनुसार बदलते रहते हैं। महात्मा ईसा ने कहा था ''परमात्मा का साम्राज्य तुम्हारे भीतर है और हममें से प्रायः हर एक ने इस ओर से मुँह मोड़ रखा है। हम तो बस बाहर की दुनिया में संघर्ष कर रहे हैं। बाहर का द्वार दरिद्रता की ओर ले जाता है। वासनाएं, तृष्णाएं, कामनाएं कभी किसी को मुक्त नहीं करतीं बल्कि वह सूक्ष्म से सूक्ष्म और सख्त से सख्त बंधनों में बांध लेती हैं। वासना की सांकलों से मजबूत सांकलें न तो अब तक बनायी जा सकी हैं और न आगे कभी बनायी जा सकेंगी। इन अदृश्य जंजीरों से बंधा हुआ व्यक्ति न तो सुखी हो सकता है और न स्वतंत्र और न शक्ति सम्पन्न।

विषयानुराग और भोग में शान्ति और सुख की खोज करने वाले संतप्त मन को वास्तविक सुख शान्ति कैसे प्राप्त हो उत्तर स्वयं भगवान्नारायण के मुख से-

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमाश्चरित निःस्पृहः
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति॥ (श्रीमद्भगवद्गीता, 2018, 2/71)

निर्मम

भोग पदार्थ मेरे हैं, इस भाव से जो रहित है वही निर्मम है।

वस्तुगत समत्व:

अच्छे-बुरे, मित्र और शत्रु में समभाव रखना ही वस्तुगत समत्व है। ऐसा व्यक्ति सम्पूर्ण संसार को अपना परिवार समझता है। प्रकृति और उसके प्रत्येक उपादानों में परमात्मा दृष्टि रखना ही वस्तुगत समत्व है। समता की ऐसी स्थिति में क्या जड़ क्या चेतन। सभी में तो एकमात्र परमात्मा का अधिवास है। सभी परमात्मा का अंश होने के कारण वन्दनीय और समादरणीय हैं।

विकसित एवं सभ्य साम्प्रतिक विश्व की सबसे बड़ी समस्या पर्यावरण प्रदूषण, बिगड़ता प्राकृतिक संतुलन, विक्षुब्ध होती हुई प्रकृति है जिसका दुष्परिणाम अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूकम्प, समुद्री तूफान, सुनामी सहित नाना प्रकार की महामारियां हैं। कोविड-19 महामारी ने तो न केवल वैश्विक अर्थव्यवस्था की चूल हिला दी बल्कि अपने बुद्धि और विज्ञान पर घमण्ड रखने वाले मनुष्य को आत्मरक्षा के लिए असहाय सा घरों में बंद रहने के लिए मजबूर कर दिया। आखिर में मनुष्य और प्रकृति का निसर्गजात दोस्ताना सम्बंध बिगड़ा कैसे? उत्तर, अत्यंत संक्षिप्त है-अतृप्ति की ज्वाला जिसने प्रकृति को देवी और सहचरी के स्थान पर भोग्या और चेरी समझा। प्रकृति और प्राकृतिक उपादानों के साथ मैत्रीपूर्ण समरसता का भाव ही वस्तुगत समत्व है। आखिर में जिस परमसत्ता के प्रकाश से हम सभी प्रकाशित हैं उसी का प्रकाश तो सूरज, चांद, सितारे, नदी-नद, सरोवरों, वनस्पतियों और औषधियों में भी है।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभति।
यो देवो अग्नौ यो अप्सुयो विश्वं भुवनमाविवेश।
य ओषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः ।। (मुण्डकोपनिषद 2/10)

प्रकृति, ब्राहमी सत्ता का प्राकट्य है। प्राणिमात्र परमात्मा के प्रकाश से प्रकाशित है। मनुष्य और प्रकृति में द्वैत भाव मनुष्य की अज्ञानता है। भगवान कृष्ण स्वयं गीता में कहते हैं-

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः।। (श्वेताश्वतरोपनिषद 3/17)
ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः। (श्रीमद् भगवद्गीता, 10/26)

प्रकृति और प्राकृतिक उपादानों के साथ यही समत्व भाव हमारी सांस्कृतिक थाती रही है। उपगह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम् धीया विप्रो अजायत''(यजुर्वेद, 26/15) कहकर यजुर्वेद का ऋषि नदी, नद, सरवरों के महत्व और मनुष्य के साथ उसके आत्मीय पारिवारिक सम्बंध को संज्ञापित करता है। तरुसम्पन्न वनों और समृद्ध पर्वतों से सुख-सम्पदा प्रदान करने की अभ्यर्थना वेदों से चल पड़ी थी। उपनिषदों और आरण्यकों में पर्वतों की महिमा और उनकी पूजा के उल्लेख मिलते हैं। प्राकृतिक जीव जन्तुओं के साथ मैत्रीपूर्ण यही आत्मीय सम्बंध हमारी जैव विविधता को संरक्षित और संवर्द्धित किए हुए थी।

शकुन्तला के पतिगृह जाने हेतु विदाई के अवसर पर जहाँ वनस्पतियाँ अपने पीले पत्ते गिराकर मानो वियोगजनित पीड़ा प्रकट कर रही थी वहीं शकुन्तला के द्वारा पाला गया मृग शावक उसके वस्त्र खींचकर अपना प्रेम प्रकट कर रहा था। गीता के इस समत्व भाव की अभिव्यंजना महाकवि कालिदास के शब्दों में-

''यस्य त्वया व्रण विरोपणं इंगुदीनां

तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे
श्यामाकमुष्टि परिवर्धितको जहाँति
सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते।'' (कालिदास, 4/14)

अभिज्ञान शाकुन्तलम् की शकुन्तला जहाँ मृगशावकों का पुत्रवत पालन-पोषण करती है वहीं रघुवंश महाकाव्य में चक्रवर्ती सम्राट दिलीप अपनी समस्त कामनाओं की पूर्ति हेतु एक चाकर की भांति नन्दिनी की, पत्नी अरुन्धती के साथ सेवा करते हैं।

स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयातां निषेदुषीमासनबन्ध धीरः।
जलाभिलाषी जलमादनादं छायहव वा भूपतिरन्वगच्छत्।। (कालिदास, द्वितीय सत्र, श्लोक 21)

प्रदक्षिणीकृत्य पयस्विनी तां सुदक्षिणा साक्षातपात्रहस्ता । प्रणम्यनानर्च विशालमस्याः श्रृंगान्तरं द्वारमिवार्थसिद्धेः। (कालिदास, 4/18)

सुदक्षिणा-राजा दिलीप की पत्नी-राजमहिषी

जैव विविधता के प्रति मनुष्य का यह दैवत्व/मैत्रीभाव किस तरह से उसके दुःखों और बीमारियों को दूर करने में सहायक होता है इसकी बानगी जी न्यूज़ की इस रिपोर्ट में स्पष्ट होती है-

कोविड-19 वैश्विक महामारी के इस दौर में चिंता, अवसाद, एकाकीपन, उच्च रक्तचाप, असुरक्षा की भावना, आत्म विश्वास की कमी जैसे मनोदैहिक रोग बढ़ते जा रहे हैं। इन बीमारियों से बचने के लिए किसी मनोचिकित्सक/काउंसलर के पास जाने की आवश्यकता नहीं है। पश्चिम में इन बीमारियों से बचने का एक नया ट्रेंड विकसित हो रहा है। वह है गाय को गले लगाना, गाय को प्यार करना, गाय के साथ खेलना। इसे काऊ कटलिंग के नाम से जाना जाता है। इसके लिए लोग किसी गौशाला में जाकर गाय को गले लगाते हैं, उसे प्यार करते हैं, उसके साथ खेलते हैं। ऐसा करने से लोगों में चिंता, अवसाद और असुरक्षा की भावना में कमी पायी गयी है। अमेरिका में ऐसी सुविधा प्रदान करने वाले फार्म मालिकों को लोग 90 मिनट की इस थिरेपी हेतु 22 हजार रूपये देते हैं। मेडिलेट और स्विटजरलैण्ड में काऊमेडिकेशन गाय के साथ संवाद के नाम से यह थिरेपी जबरदस्त प्रचलन में आ रही है। यहां 3 घंटे गाय के साथ खेलने, प्यार करने गले लगाने हेतु लोग फार्म मालिकों को 4 हजार रुपये देते हैं। चिकित्सकों का कहना है कि गाय का हार्टरेट इंसान की अपेक्षा कम और गाय के शरीर का तापमान इंसानी शरीर से कुछ ज्यादा होता है। गाय की यही विशेषता गले लगाने पर मनुष्य के दिमाग को रिलैक्स प्रदान करती है। ठीक यही स्थिति ध्यान में भी होती है। काऊमेडिकेशन और मेडिटेशन दोनों स्थितियों में दिल की धड़कन काफी धीमी हो जाती है। इस तरह गाय को प्यार करने से गीता की भाषा में आत्मीयता का विस्तार करने पर मन को एक विशेष प्रकार का सुकून मिलता है, मन में छिपा डर दूर होता है, आत्मविश्वास में बढ़ोत्तरी होती है। भारतीय आर्ष संस्कृति में तो गाय-माता तुल्य समस्त दुःखों को दूर करने वाली मानी गयी है। जिसका दर्शन मात्र शुभ होता है, जिसका अमृत रूपी दूध पीकर हम सहज आरोग्यता और पोषण प्राप्त करते हैं। गाय के शरीर में समस्त देवता वास करते हैं। मनुष्य के दुःखों का हरण करने वाली इसी गाय को भगवान ने आत्मस्वरूप बतलाया है-धेनूनामस्मि कामधुक्'

विद्या विनय सम्पन्ने ब्राम्हणे गवि हस्तिनी।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।। (भगवद्गीता, 5/18)

गीतोक्त समत्व भाव जागतिक व्यवहार में, संयुक्त परिवार के पालन-पोषण में सदाचरण का मार्गदर्शक सिद्धांत बन जाता है, जिसका प्रवर्तन ऋषि कण्व पुत्री शकुन्तला के पतिगृह गमन के अवसर पर

करते हैं-

शुश्रूषस्व गुरुन कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतयामास्मप्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहणी पदं युवतयो वामाकुलस्याधयः (कालिदास, अभिज्ञानशाकुन्तलम, 4/2)

भोगवाद और बाजारवाद की आँधी में धूलिलुण्ठित मानव जाति प्राकृतिक उपादानों-जल, जमीन, जंगल और जीव-जन्तुओं को तो छोड़ दीजिए, उनका पारस्परिक जीवन भी घृणा, कलह और द्वेष से भर गया है। ''आत्मानं सततं रक्षेत'' के अर्थशास्त्र ने बसुधैव कुटुम्बकम के आदर्श को तार-तार कर दिया है। धर्म, जाति, रूप-रंग, लिंग, भाषा-वेशभूषा की सीमितताओं में आकण्ठ डूबे लोगों को परमार्थ और परार्थ झूठे और दकियानूसी प्रतीत होते हैं। सीमितताओं और छुद्र स्वार्थों की यह टकराहट परिवार समाज और राष्ट्र से होते हुए वैश्विक स्तर पर चतुर्दिक व्याप्त है। परिणामस्वरूप हिंसा, हत्या और आतंकवाद आधुनिक समाज का मानो पहचान बन गया है। ऐसे में जब तक हमारा मानसिक परिवर्तन (विचारधारा में परिवर्तन) नहीं होता है तब तक संयुक्त राष्ट्रसंघ जैसी संस्थायें और उनका हस्तक्षेप समस्या के निदान का अस्थायी उपाय है। समस्या का यदि स्थायी समाधान करना है तो समत्व योग ही अन्तिम औषधि है। हमें अपने अन्दर बुद्ध की उस करुणा का प्रसार करना ही पड़ेगा जहाँ सम्पूर्ण प्रकृति जीव जगत आत्मवत प्रतीत होती है। अयं निजः परोवेति गणना लघु चेतषां। उदार चरितानां तु बसुधैव कुटुम्बकम् का भारतीय सांस्कृतिक, आदर्श गीता के इसी तत्वदर्शन में पर्यवसित होता है-

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
इक्षते योगयुक्तात्मा सर्व समदर्शनः।। (भगवद्गीता, 6/29)
यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति। (भगवद्गीता, 6/30)

गीता के इसी वस्तुगत समत्व की आधुनिक संदर्भों में व्याख्या करते हुए स्वामी रामतीर्थ कहते हैं-

ओ पृथ्वी, सातों सागर ओ
तुम मेरे पुत्र पुत्रियां हो।
ओ सभी वनस्पति। पशु पक्षी
टूटे सब सीमा बन्धन लो
गाओ अजस्र स्वर से गाओ
ओ त्राहि माम ओ त्राहिमाम्

प्राणिमात्र में सर्वत्र आत्मदर्शन/परमात्म दर्शन द्वारा ही दुःखों का आत्यन्तिक निवारण किया जा सकता है। 'ग्लोबल विलेज' की आधुनिक अर्थशास्त्रीय अवधारणा को वेदान्तिक समाजवाद की इसी दार्शनिक अवधारणा पर विकसित करना पड़ेगा तभी मानव जाति का योगक्षेम सुनिश्चित किया जा सकेगा।

मैं महाशक्ति अब अमर प्रेम
मुझमें असीम में क्या अन्तर ?
मिल सर्वात्मा से हुआ एक

मुझमें विलीन अब स्वर्गिक स्वर

हो ऊँच-नीच समकक्ष सभी से शान्ति भरी

ममता अधीर

ऊपर नीचे मैं सभी ओर।

टूटता संयुक्त परिवार, वृद्धाश्रमों में सिसकते बुजुर्ग, दरकता और टूटता दाम्पत्य, बालश्रम, बंधुआ मजदूर, जातीय एवं धार्मिक साम्प्रदायिक संघर्ष, छुआछूत, जैव-विविधता का क्षरण जैसी समस्त समस्याओं का सार्वकालिक निदान गीता के इसी वस्तुगत समत्व के आदर्श में समाहित है।

गुणातीत समत्व: यह सुख-दुःख के परे की अवस्था है। भगवान कृष्ण ने स्वयं कहा है जो सुख और दुःख को एक समान मानता है वही धीर है। शीत और उष्ण जिसे विचलित नहीं करते वही अमरत्व का अधिकारी है। सच्चे योगी को सुख से प्रसन्न और दुःख से दुःखी नहीं होना चाहिए। वह उपलब्धि और अनुपलब्धि में समभाव से रहता है। उसके लिए मिट्टी और कांचन, निंदा और स्तुति, मान और अपमान, शत्रु और मित्र समान होते हैं। यही गुणातीत समत्व है।

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ।। (भगवद्गीता, 14/25)

मनुष्य में तीन प्रकार के गुण पाए जाते हैं। दूसरे शब्दों में सात्विक, राजसिक और तामसिक गुणों के साकल्य का नाम है मनुष्य। जिस व्यक्ति में जिस गुण की प्रबलता होती है उसी के अनुसार मनुष्य का स्वभाव निर्धारित होता है। इन्हीं तीनों गुणों के कारण मनुष्य का शरीर से राग उत्पन्न होता है परिणामतः वह नाना प्रकार के दुःख भोगता है-

सत्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृति संभवा
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् (भगवद्गीता, 14/5)

तमोगुण के बढ़ने पर अंतःकरण और इन्द्रियों में जड़ता आ जाती है। कार्य करने की इच्छा समाप्त हो जाती है। मन में अहर्निश नकारात्मक विचारों की आंधी बहती रहती है। तमोगुण का आधिक्य हो जाने पर व्यक्ति निश्चेष्ट, निष्क्रिय और मुरदे के समान पड़ा रहता है। ऐसा व्यक्ति दूसरों के दुःख से संवेदित नहीं हो सकता।

रजोगुण क्रियाशीलता का द्योतक है। कार्य करने की तीव्र इच्छा और अधिकाधिक प्राप्त करने की अभिलाषा इसकी प्रमुख विशेषता है। परन्तु रजोगुण की यह क्रियाशीलता पाप और पुण्य, शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के कर्मों में पायी जाती है। जब यह पाप होती है तो लोभ का कारण बनती है। इसमें मन चंचल होता है। सुख, दुःख, चिंता, परेशानी सतत बनी रहती है। रजोगुण जनित यही लोभ पाप दुःख का कारण होता है। रजोगुण की सक्रियता जब शुभ कर्मों की तरफ होती है तो सुख और ऐश्वर्य की वृद्धि होती है परिणामतः व्यक्ति में अहंकार बढ़ता है और यह अहंकार भी अंततः बंधन या दुःख का कारण बनता है। सत्वगुण निर्मल होने के कारण प्रकाशक और विकाररहित होता है। इससे ज्ञान उत्पन्न होता है। सत्वगुण में पुरुष स्वर्गादि उच्च लोकों को प्राप्त करता है। परन्तु यह ज्ञान से सम्बन्धित होने के कारण अभिमान को उत्पन्न करता है।

चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानिच। सुख और दुःख सतत परिवर्तनशील और गुणाधीन है। इनके प्रति संवेदनशीलता अवसाद और अहंकार का कारण बनती है। सुख और दुःख को जो समभाव से ले समझो उसने ही जीवन के शाश्वत नियम को जाना। उदेति सविता ताम्रः ताम्र स्वास्ति मेतिच। संपत्तौच

विपत्तौ च महताम् एक रूपता।

व्यक्तित्व की इसी एकरूपता या समरूपता में ठहर जाना ही स्वयं के अस्तित्व में प्रतिष्ठित होना है। वेदान्त की भाषा में इसे 'स्वमहिम्नप्रतिष्ठितः' कहा जाता है। इस अवस्था तक पहुँचने के लिए गुणों के उद्रेक से ऊपर उठना होगा। गुणों की चंचल लहरों से चित्त रूपी जलाशय को शांत कर देना होगा तभी तो अंत में भगवान अर्जुन से जोर देकर कहते हैं-'निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन''।

निष्कर्ष

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आधुनिक समाज की सभी प्रकार की समस्याओं का मानव जीवन में चतुर्दिक, व्याप्त दुःखों का आत्यन्तिक निदान गीता के इसी समत्व योग में है। आत्मगत समत्व, वस्तुगत समत्व और गुणातीत समत्व को प्राप्त कर चुका ज्ञानी लोक संग्रहार्थ कर्म करता हुआ भी कर्मों से नहीं बंधता है।

योग युक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः
सर्वभूतात्म भूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते।। (भगवद्गीता, 5/7)

आत्मभाव या समत्व भाव में प्रतिष्ठित होना ही ब्रम्हभाव है। यही सच्चिदानन्द की स्थिति है। जहाँ पर जड़ और चेतन का, बुद्धि और अहंकार का, प्रकृति और मनुष्य का, अपने और परायह का द्वैत शून्य हो जाता है। परिणामतः अखण्ड आनन्द भाव का उदय होता है। समत्व योग की इसी दिव्य आनन्दानुभूति की जयशंकर प्रसाद ने कामायनी में निम्न प्रकार से अभिव्यक्ति दी है-

समरस थे जड़ और चेतन सुन्दर साकार बना था।
चेतना एक विलसती आनन्द अखण्ड धना था। (Prasad, kamayani-3.pdf)

इसीलिए सभी प्रकार के दुःखों के निवारणार्थ भगवान कृष्ण अर्जुन के माध्यम से सम्पूर्ण मानव जाति को निर्दिष्ट करते हुए कहते हैं-

''तस्मात् सर्वकालेषु योगयुक्तो भवार्जुन'' (भगवद्गीता, 8/27)

संदर्भ सूची

श्रीमद्भगवद्गीता शांकर भाष्य, (2018). गोरखपुर : गीता प्रेस (उ.प्र.)।

https://ramayan.wordpress.com/goswami/ (एन.डी.) से उद्धृत।

https://shatavdhani.com/samhita-shlok/513/ (एन.डी.) से उद्धृत।

भर्तृहरिशतक-नीतिशतक (2017). *श्लोक सं.7.* दिल्ली: राजपाकेट बुक्स।

https://www.gitasupersite.iitk.ac.in/srimad?httyn= (N.D.) से उद्धृत।

श्री अरविन्द (2012). *दिव्य जीवन*. श्री अरविन्दो आश्रम पाण्डिचेरी, पृ. 338।

शर्मा, श्री राम, आचार्य (2010). *'मैं क्या हूँ'*. मथुरा: युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट (उ.प्र.), पृ.सं.9 ।

ईशावास्योपनिषद मंत्र 1, अन्तर्गत ईशादि नौ उपनिषद. गोरखपुर: गीता प्रेस।

मुण्डकोपनिषद 2/10 अन्तर्गत ईशादि नौ उपनिषद. गोरखपुर: गीता प्रेस।

श्वेताश्वतरोपनिषद 3/17 अन्तर्गत ईशादि नौ उपनिषद. गोरखपुर: गीता प्रेस।

यजुर्वेद, 26/15।
कालिदास (1967). *अभिज्ञान शाकुन्तलम*. दिल्ली: मेहरचंद लक्षमनदास।
कालिदास (1987). *रघुवंश महाकाव्यम*. वाराणसी: मोतीलाल बनारसी दास, पृ. 21।
https://www.holy-bhagavad-gita.org/chapter/5/verse/18/hi n.d. से उद्धृत।
http://www.jnvu.co.in/wp-content/uploads/2020/12/kamayani-3.pdf n.d. से उद्धृत।

प्राचीन भारतीय समाज एवं संस्कृति में आसन पीठिका के महत्व का अनुशीलन

डॉ . हरेराम पाण्डेय*
प्रियंका कुमारी**
प्रो. जे. एस. त्रिपाठी***

सारांश

प्राचीन भारतीय साहित्य में आसन स्थापन, आसन पीठिका का महत्व देखने को मिलता है। पतंजलि के योग सूत्र में स्थिर सुखम आसनम् श्लोक से स्पष्ट है कि जिस आसन में स्थिर बैठकर सुख मिले वह आसन पीठिका कहलाती है। प्राचीन काल से भारत में नित्य-नैमित्तिक कर्मो में बैठने के लिए किसी न किसी आसन का अवश्य प्रयोग होता है। इन आसनों को आसन पीठिका, आसन स्थापन के नाम से जाना जाता है। पूजा-पाठ, धर्म-कर्म में प्रयुक्त होने वाले आसनों का विशेष महत्व है। आसन स्थापन के बारे में वैदिक वाङ्मय एवं प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में निर्देश दिए गए हैं। सामान्यतः नित्य-नैमित्तिक कर्मो में आसनों से होने वाले लाभ-हानि के बारे में हम विचार नहीं करते हैं। वस्तुतः नित्य नैमित्तिक कार्य हो या आध्यात्मिक या योग साधना में अगर हम शास्त्रों द्वारा निर्दिष्ट आसन का प्रयोग करते हैं तो हमें विशिष्ट फल की प्राप्ति होती है। इस विषय पर अभी तक कोई विशेष शोध कार्य दृष्टिगत नहीं होता है। इस आलेख में इस अल्प अन्वेषित विषय पर प्रकाश डाला गया है।

बीज शब्द: आसन, स्थापन, वैदिक वाङ्मय, विशिष्ट फल, योग

परिचय

आसन शब्द के प्रयोग से सामान्यतया अष्टांग योग के अन्तर्गत आने वाले योगासन की तरफ ही ध्यान जाता है। दैनिक जीवन में धार्मिक कार्यों, नित्य नैमित्तिक, विशिष्ट अनुष्ठानों एवं योगासनों के करने के लिए प्रयोग किए जाने वाले आसन स्थापन (आसन-पीठिका) के बारे में इस लेख में विचार किया जा रहा है।

प्राचीन भारतीय इतिहास साहित्य एवं पुरातत्व में आसनों का विशेष महत्व है। विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं एवं संस्कृतियों में आसनों से संबंधित अनेक पुरावशेष प्राप्त हुए हैं। मिस्त्र की सभ्यता, मेसोपोटामिया की सभ्यता एवं हड़प्पा की सभ्यता में पत्थर, धातु एवं पक्की मिटटी से बने विभिन्न आसन प्राप्त हुए हैं। भारतीय सन्दर्भ में हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो से अनेक सीलें प्राप्त हुई हैं। उन सीलों पर अंकित मूर्तियों में आसनों का सुन्दर चित्रण मिलता है। भगवान शिव बाघ चर्म को ही अपनी आसन सामग्री के रुप में धारण करते हैं जबकि भगवान विष्णु शेषनाग को ही अपने आसन के रुप में प्रयोग करते हैं। सृष्टि रचयिता ब्रह्मा एवं विद्या की देवी माता सरस्वती कमलासन पर बैठे हुए दिखाए जाते हैं। इस प्रकार प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में देवी देवताओं के द्वारा बैठने हेतु प्रयुक्त आसन पीठिकाओं का विशेष रुप से

*सहायक प्राध्यापक, योग विभाग, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक।
*शोध छात्रा, कायचिकित्सा विभाग, आयुर्वेद संकाय ,चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
*प्राध्यापक, कायचिकित्सा विभाग, आयुर्वेद संकाय ,चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

उल्लेख किया गया है। (बासवरड्डी, 21 अप्रैल, 2015)

आसन शब्द की व्युत्पति आस् उपवेशने धातु से अधिकरण में ल्यूट प्रत्यय करने पर आसन शब्द निष्पन्न होता है जो कि पीठ, पिण्डी, चौकी, बैठने की अवस्था विशेष आदि का वाचक है। हाथी के स्कन्ध देश को भी आसन कहते हैं, जहां पर महावत बैठता है। आसन अष्टांग योग में तृतीय योगांग है। चरणादि हाथ, नाभि आदि अंगों में संस्थान विशेष को आसन कहते हैं। साधना में बैठने हेतु प्रयुक्त मुख्यतः पाँच आसन हैं-पद्मासन, भद्रासन, बज्रासन, वीरासन इत्यादि। प्राचीन भारतीय समाज में धार्मिक क्रियाकलापों में विभिन्न प्रकार के आसनों का प्रयोग प्राचीन काल से चला आ रहा है। धार्मिक कायों, पूजा पाठ, हवन, योग, ध्यान, संगीत एवं प्रार्थना आदि करने के लिए हम यथायोग्य विभिन्न आसन सामग्रियाँ का उपयोग करते हैं।

प्राचीन भारतीय शास्त्रों में प्रत्येक मनोकामना प्राप्ति के लिए अलग-अलग आसनों के प्रयोग का महत्व विशेष रुप से बताया गया है। आज वर्तमान समय में अध्ययन-अध्यापन एवं नित्य पूजा करते समय कैसा आसन होना चाहिए, इसकी जानकारी आम जन को नहीं हो पाती है। प्राचीन भारतीय साहित्य के अनुसार अध्ययन करते समय एवं मंत्र जाप करते समय हमेशा विशिष्ट प्रकार के आसनों का प्रयोग करना चाहिए। आसन विहीन भूमि पर बैठकर अध्ययन करने एवं मंत्र जाप करने से दुख की प्राप्ति होती है। लोक मान्यता है कि बांस के आसन पर बैठकर मंत्र जाप या देव-पूजा आराधना करने से दरिद्रता आती है। पत्थर के आसन पर बैठकर पूजा या मंत्र जाप से रोगों में वृद्धि होती है। घास से निर्मित आसन पर बैठकर पूजा करने से यश और कीर्ति नहीं मिलती है। तिनकों के आसन पर बैठकर पूजा करने से कारोबार में अथवा नौकरी में स्थायित्व नहीं रहता है और आर्थिक उन्नति में बाधा उत्पन्न होती है, और साथ ही धन हानि होने लगती है। पत्रों से निर्मित आसन पर भी बैठकर पूजा नहीं करनी चाहिए। आज वर्तमान में देखने को मिलता है कि मानवीय समाज किसी भी स्थान पर बैठ जाता है। इस प्रकार करने से व्यक्ति की मनोदशा पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। उल्लेखनीय है कि जब भी पूजा करते हैं या कोई जाप करते हैं तो भीतर आध्यात्मिक ऊर्जा का प्रवाह होता है और इस सकारात्मक ऊर्जा का संचय करना बहुत ही आवश्यक होता है जिसके लिए आसन में प्रयुक्त सामग्री का विशेष महत्व माना जाता है। उपयुक्त व्यक्ति को सकारात्मक ऊर्जा के संरक्षण में मदद करता है। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि अध्ययन-अध्यापन एवं देव पूजन इत्यादि के दौरान शास्त्र सम्मत आसन पीठिकाओं का प्रयोग करना चाहिए।

भारतीय साहित्य के गहन अध्ययन से ज्ञात होता है कि अध्ययन एवं पूजन के लिए रेशम, कंबल, काष्ठ और ताड़पत्र के आसनों का प्रयोग शुभ कार्यों में किया जाना चाहिए। आसन पीठिका के लिए शास्त्रों में कई प्रकार की आसन सामग्रियाँ बताई गयी हैं। जिसमें से कई प्रकार के आसन तो वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हम लोग नहीं उपयोग कर सकते हैं। पशुओं के चर्म के आसनों का प्रयोग करना अब संवैधानिक रूप से संभव नहीं है। इस पर पूर्ण रुप से भारतीय कानून व्यवस्था के अन्तर्गत प्रतिबंध है तथा यह अपराध माना जाता है। ब्रह्मांड पुराण में आसनों का विशेष उल्लेख विस्तारपूर्वक मिलता है। जैन मुनि हरिभद्र (700-770) ने योगदृष्टसमुच्चय में जैन धर्म एवं अन्य मतों में आसन का विस्तृत वर्णन किया है (सिन, 2006)। जिस आसन पर कोई साधक साधना कर चुका हो, साधना के लिए पुनः उसी आसन का प्रयोग वर्जित माना गया है। इसलिए साधकों को यह विशेष ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक घर में सभी सदस्यों के आसन अलग होने चाहिए। दूसरे व्यक्तियों के आसनों का प्रयोग करने में मानवीय ऊर्जा की गतिशीलता में प्रभाव पड़ता है, जो प्रारम्भिक अवस्था के साधक हैं उनके लिए दूसरे के आसन का प्रयोग करना मंगलकारी नहीं होता है

।

किसी भी नए आसन पर बैठने से पहले आसन का पूजन करना चाहिए। आसन को जल से शुद्ध कर लेना चाहिए। आसन के नीचे एक फूल अवश्य रखना चाहिए। आसन देवता से यह प्रार्थना करनी चाहिए कि हे ! आसन मैं जब तक आपके ऊपर बैठ कर आराधना करूं तब तक आप मेरी रक्षा करें तथा मुझे मेरी मनोवांछित सिद्धि प्रदान करें। पूजा के बाद अपने आसन को मोड़ कर रख देना चाहिए। हमेशा यह ध्यान रखें कि पूजा किसी दूसरे के आसन पर नहीं करें। पूजा समाप्त होने के बाद अपने आसन को ईशान कोण की ओर मोड़ कर ऐसी जगह रखना चाहिए जहां उसे कोई छू न सके।

योग साधना हेतु विहित आसन पीठिका

लोक मान्यता के अनुसार साधना के लिए साधक को सदैव नवीन एवं व्यक्तिगत आसन पर ही बैठ कर पूजा पाठ एवं आराधना करनी चाहिए। ध्यान योग साधना के लिए आसन स्थापन की विधि के बारे में वर्णन करते हुयह कहा गया है कि शुद्ध भूमि के ऊपर पहले कुशा, उसके ऊपर मृगशाला, और उसके ऊपर वस्त्र का आसन बिछाना चाहिए और वह आसन न तो बहुत ऊंचा हो न तो बहुत नीचा हो। इस प्रकार के आसन पर बैठकर चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में रखते हुए मन को एकाग्र करके अन्तःकरण की शुद्धि के लिए योग के अभ्यास की बात कही गई है।

शुचो देवों प्रतिष्ठाय स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छितं नातिनीचं चैलाजिन कुशोंतरम्।। (गोयन्दका, 2021)
तत्रैकांग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युज्ज्याद्योगमात्मविशुद्धए।। (गोयन्दका, 2021)

काय, सिर, और गर्दन को समान एवं अचल रखते हुए स्थिर रहते हुए किसी भी दिशा में न देखते हुए नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि स्थिर करना चाहिए।

कुश, कम्बल, मृगचर्म, व्याघ्रचर्म और रेशम का आसन जप करने के लिए विहित माना जाता है।

समं काय शिरोंग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्यं नासिकाग्रं स्व दिशश्चानवलोकनम्।। (गोयन्दका, 2021)
कौशेय कम्बलं चैवं अखिनं पटट्मेव च।
दारुजं तालपत्रं वा आसनं परिकल्पयहत।। (मिश्र, 2018)
कृष्णाजिने ज्ञानसिद्धी र्मोक्षश्रीव्र्याघ्र चर्मणि।
कुशासने ज्ञानसिद्धिः सर्वसिद्धिस्तु कम्बले ।।(श्री गुरुगीता, 2004)

प्राचीन साहित्य में मिलता है कि काले रंग के मृगचर्म के आसन पर बैठकर जप, पाठ एवं ध्यान करने से ज्ञान की सिद्धि होती है। बाघम्बर पर बैठकर गुरु गीता का पाठ करने पर मोक्ष की प्राप्ति होती है। कुश के आसन पर बैठकर जप, पाठ एवं ध्यान करने से ज्ञान की सिद्धि होती है। कम्बल पर बैठकर जप पाठ एवं ध्यान करने से सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

कुशैर्वा दुर्वया देवि आसने शुभ्र कम्बले।
उपविश्य ततों देवि जपेदेग्रमानसः।।(श्री गुरुगीता, 2004)

कुश से अथवा दूर्वा से बने आसन पर अथवा सफेद कम्बल के आसन पर बैठकर एकाग्रचित होकर जप पाठ एवं ध्यान करने को आसान पीठिका के लिए विहित माना गया है।

साधना हेतु निषिद्ध आसान पीठिका

वंशासने तु दारिद्रयं पाषाणे व्याधिरेव च।
धारण्यां तु भवेद् दुःखं दोभोग्यं छिद्रदारुजे।।
तृणे धयशोंहानिः पल्लवे चित्तविभुमः। (मिश्र, 2018)
गोशकृन्मृन्ययं भिन्नं तथा पलाश पिप्पलम।
लोहबटं सदैवार्कं वर्जयहदासनं बुधः।।

बांस, मिट्टी, पत्थर, तृण, पत्ते, गोबर, पलाश, पीपल, और जिसमें लोहे की कील लगी हो, ऐसे आसन पर बैठने को निषिद्ध किया गया है।

मृगचर्म प्रयत्नेन वर्जयहत पुत्रवान गृही। (मिश्र, 2018)

पुत्रवान गृहस्थ को मृगचर्म पर बैठेने से वर्जित किया गया है।

वस्त्रासने च दारिद्रयं पाषाणे रोग संभवः।
मेदिन्या दुःखमाप्नोति काष्ठे भवति निष्फलम्।। (श्री गुरुगीता, 2004)

वस्त्र के आसन पर बैठकर जप करने से दरिद्रता आती है। पत्थर पर बैठकर जप करने से रोगी होने की संम्भवना होती है। भूमि पर बैठ कर जप करने से दुःख मिलता है। लकड़ी के आसन पर बैठकर जप करने से जप निष्फल हो जाता है।

आसान पीठिका के वर्णन का महत्व

ध्येयं शुक्लं च शात्यर्थं वश्ये रक्तासनाम् प्रियह।
अभिचारे कृष्णवर्णं पीतवर्णं धनागमें।।(श्री गुरुगीता, 2004)

जप और पाठ के समय विभिन्न कामनाओं के लिए विशेष रंग के आसन या उसकी उपलब्धि का वर्णन किया गया है। दैहिक, दैविक या भौतिक तापों से शान्ति प्राप्त करने के लिए सफेद रंग के आसन पर, किसी को वश में करने के लिए लाल रंग के आसन, सुन्दर आचरण व व्यवहार के लिए काले रंग के आसन, धन की प्राप्ति के लिए पीले रंग के आसन पर बैठकर जप, पाठ एवं ध्यान करने का विधान बताया गया है।

मन्त्रन्यस्ततनुर्धीरः सितभस्मधरः सदा।
मृदासनों परि कुशान् समास्तीर्याथ्वाजिनम्।। (वशिष्ठ संहिता, 2018)

वशिष्ठ संहिता के अनुसार मंत्रों की न्यास विधि से शरीर को स्थिर कर सदैव भस्म लगाकर कोमल आसन पर कुशों को अथवा मृगचर्म बिछाने की अनुशंसा की गयी है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्राचीन काल से ही आसन पीठिकाओं का महत्व मानव जीवन में रहा है। इसके प्रमाण भारतीय पुरातत्व एवं संस्कृति के साथ-साथ प्राचीन भारतीय वैदिक साहित्य एवं पौराणिक साहित्य में मिलते हैं। भारतीय साहित्य के अनुसार आसन का प्रयोग करते समय वैदिक मंत्रों द्वारा आसन को पवित्र एवं शुद्ध किया जाना चाहिए। किसी भी समय अध्ययन-अध्यापन एवं देव पूजा इत्यादि कार्य करते समय अपने आसान को अपने मस्तिष्क पर लगाएं एवं अन्तः मन से प्रणाम करें। आसन को प्रयोग करने के पश्चात यथास्थान पर रख देना चाहिए।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि अध्ययन पूजा-पाठ एवं ध्यान इत्यादि के लिए कुशा का आसन प्रयोग करना चाहिए। इसके प्रयोग से व्यक्ति को शुचिता, तन्मयता और स्वास्थ्य में

सदैव वृद्धि होती है, उसे अनंत फलों के साथ-साथ पंचतत्व की ऊर्जा की प्राप्ति होती है। योगियों के लिए कुशा का आसन सर्वश्रेष्ठ माना गया है। यह कुशा नामक घास से बनाया जाता है, यह माना जाता है कि कुशा भगवान शिव के शरीर से उत्पन्न हुआ है। इस पर बैठ कर पूजा करने से सर्वसिद्धि मिलती है, परन्तु पिंड, श्राद्ध कर्म इत्यादि के कार्यों में कुशा का आसन प्रयोग में नहीं लाना चाहिए, इससे वांछित परिणाम नहीं मिलता है। किसी भी मंत्र को सिद्ध करने में कुशा का आसन सबसे अधिक प्रभावी है। कुशा का आसन ऊर्जा संचय में मददगार होता है।

पौराणिक साहित्य में उल्लेख मिलता है कि कुशा का संबंध केतुग्रह से है। उल्लेखनीय है कि केतु दो चीजों के बीच में विरक्ति पैदा करने के साथ-साथ यह ग्रह देव तुल्य तथा मोक्षकारक भी है। इस संसार में विशेष कार्य की साधना हेतु कियह जाने वाले कार्यों की साधना के लिए ध्यान पूजा आराधना कंबल के आसन पर बैठकर करना मंगलकारी होता है। साहित्य से ज्ञात होता है कि लाल रंग का कंबल माँ भगवती, लक्ष्मी, हनुमानजी आदि की पूजा के लिए उत्तम माना जाता है। यह कंबल का आसन हमेशा चौकोर होना चाहिए, कंबल के आसन के अभाव में रेशमी कपड़े का आसन प्रयोग किया जा सकता है। मृगचर्म के आसन का प्रयोग ब्रह्मचर्य, ज्ञान, वैराग्य, सिद्धि, शांति एवं मोक्ष प्रदान करने वाला बताया गया है। इस पर बैठ कर पूजा करने से सारी इंद्रियां संयमित रहती हैं। कीड़े-मकोड़े, रक्त, वायु, पित्त- विकार आदि से साधक की रक्षा होती है। यह शारीरिक ऊर्जा भी प्रदान करता है। इस आसन का प्रयोग गृहस्थ जीवन में नहीं करना चाहिए। व्याघ्र (बाघ) चर्म आसन का प्रयोग बड़े बड़े सन्यासी, योगी तथा साधु-महात्मा एवं स्वयं भगवान शंकर करते हैं। यह आसन सात्विक गुण, धन वैभव, भू-संपदा, पद-प्रतिष्ठा आदि प्रदान करता है। उपर्युक्त दोनों प्रकार की आसन पीठिकायें जो जानवरों की खाल से बनाई जाती हैं, वह आज वर्तमान समय में भारतीय कानून के अनुसार प्रतिबंधित हैं। साहित्य से ज्ञात होता है कि देवता के बैठाने के स्थान पर प्रयोग किए जाने वाले आसन को दर्भासन कहा जाता है और जिस पर स्वयं साधक बैठता है उसे आसन कहते हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार यह शरीर भी आसन है और प्रभु के भजन में इसे समर्पित करना सबसे बड़ी पूजा है। योग ध्यान की साधना करने वाले साधक को कभी भी जमीन पर बैठ कर पूजा नहीं करनी चाहिए। पूजा-पाठ, अध्ययन, योग-साधना का आसन एवं वस्त्र अलग रखना चाहिए। घास-फूस से बनी चटाई, पत्तों से बने आसन पर बैठ कर पूजा करने से व्यक्ति को मानसिक अस्थिरता, मनोदशा, रोग-शोक हो जाते हैं। अपना आसन, किसी अन्य व्यक्ति को प्रयोग करने के लिए नहीं देना चाहिए। ऐसा करने से व्यक्ति की ऊर्जा का क्षय हो जाता है।

निष्कर्ष

भारतीय दर्शन एवं साधना में आसन पीठिका एवं इसके निर्माण में प्रयुक्त सामग्रियों का अत्यन्त महत्व है। विशेष रूप से आसान पीठिका के निर्माण में प्रयुक्त सामग्री विशेष का प्रभाव स्पष्ट रूप से साधक की मनः स्थिति, उससे शरीर एवं साधना की सफलता को सीधे तौर पर प्रभावित करते हैं। आज योग तथा साधना हमारे दैनिक जीवन का अंग बनते जा रहे हैं। ऐसे में वैज्ञानिक दृष्टिकोण, लोक व्यवहार का मानकीकरण तथा चित्त की शुद्धि का ध्यान रखे जाने पर ध्यान एवं साधना से संतोष तथा सुख प्राप्त होता है।

सन्दर्भ सूची

बासवरड्डी, ईश्वर. वी. (21 अप्रैल, 2015). *योग, इसकी उत्पत्ति, इतिहास एवं विकास*. https://mea.gov.in/in-focus-article-hi.htm?25096/Yoga+Its+Origin+History+and+Development से उद्धृत।

सिन, एफ. (2006). *रेकांसिलिंग योगास: हरिभद्र'स कलेक्शन ऑफ़ व्यूज ऑन योगा* (विथ अ न्यू ट्रांसलेशन ऑफ़ हरिभद्र'स योगदृष्टिसमुच्चय)।

गोयन्दका, जयदयाल (2021). *श्रीमद् भगवत गीता*; अध्याय 6, श्लोक संख्या, 11,12, 13. 80 वाँ संस्करण. गोरखपुर: गीता प्रेस. पृष्ठ सं, 148-149।

मिश्र, पं. लाल बिहारी (2018). *नित्य कर्म पूजा प्रकाश*. 51 वाँ संस्करण, गोरखपुर:गीता प्रेस. पृष्ठ सं, 35।

अघोर गुरु सेवा पीठ (2004). *श्री गुरुगीता एवं देवी प्रार्थना*; श्लोक संख्या, 137, 138, 139, 140. प्रथम सस्करण. वाराणसी: महेश नगर, नगवां. पृष्ठ सं, 62-63।

वशिष्ठ संहिता (2018). *योग काण्ड*: श्लोक संख्या, 59, तृतीय संस्करण. पुणे: कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मंदिर समिति, लोनावाला, पृष्ठ सं. 78।

जे. कृष्णमूर्ति के दर्शन में सत्य और इसकी अभिव्यक्ति की पद्धति

डॉ. राकेश सोनी*

सारांश

दर्शन में सत्य की खोज विवेचना और चिंतन का विषय रहा है। अलग अलग दार्शनिकों ने समय-समय पर इस तथ्य पर प्रकाश डाला है। प्रस्तुत शोध पत्र विश्वप्रसिद्ध दार्शनिक जे. कृष्णमूर्ति के दर्शन में सत्य और इसकी अभिव्यक्ति के संदर्भ में मुख्य बिन्दुओं पर प्रकाश डालता है। जे. कृष्णमूर्ति ने सत्य की विधि और उसकी अभिव्यक्ति की संभावनाओं को नकारा है परंतु उनके ही कथनों के विश्लेषण से सत्य की विधि और उसकी अभिव्यक्ति को भारतीय ज्ञान व सत्य की परंपरा के संदर्भ में समझा जा सकता है। प्रस्तुत शोध पत्र इसी दिशा में एक प्रयास है।

बीज शब्द: दर्शनशास्त्र, सत्य चिंतन, विश्लेषण, विचार, पथहीन भूमि

प्रस्तावना

विश्वप्रसिद्ध दार्शनिक जे. कृष्णमूर्ति के प्रसिद्ध दो कथन 'सत्य पथहीन भूमि है' और 'प्रथम और अंतिम मुक्ति' चिंतन जगत में बहुत ही सारगर्भित एवं विचारोत्तेजक रूप से चर्चित रहे हैं। दोनो ही कथन क्रमशः सत्य की पद्धति और इसकी अभिव्यक्ति के भाव पर प्रकाश डालते हैं जो जीवन और जगत की संपूर्ण प्रकृति को समझने के लिए हमारा मार्गदर्शन करते हैं। यह दोनों ही विषय दर्शनशास्त्र में सदैव ही विचारणीय रहे हैं। कोई भी दर्शनशास्त्र जीवन से बड़ा नहीं हो सकता। दर्शनशास्त्र केवल अनुशासन है जो सत्य के शासन के तहत काम करता है और यही सत्य जीवन के विभिन्न रूपों और स्तरों में प्रकट होता है जिसे दर्शनशास्त्र के द्वारा एक साधन के रूप में समझा जा सकता है। जे. कृष्णमूर्ति बीसवीं सदी के बहुत ही अनूठे और मौलिक विचारक माने गए हैं। उनके अनुसार सत्य तक किसी भी विधि या प्रणाली से नहीं पहुँचा जा सकता है और न ही इसे शब्दों में पूरी तरह से व्यक्त किया जा सकता है। वास्तव में मानव इतिहास के सभी प्रबुद्ध अलग-अलग ढंग से यही बात एक समान रूप से कहते आ रहे हैं। पर चिंतन जगत में असली समस्या सत्य की विधि और इसकी अभिव्यक्ति की ही रही है। माना कि सत्य कोई स्थान या लक्ष्य नहीं है जहाँ किसी भी विधि से पहुँचा जा सके, फिर भी लोगों ने वहाँ तक पहुँचने की अनेकों विधि और अभिव्यक्ति के कई तरीके भी दिए हैं। एक दृष्टि से कृष्णमूर्ति सही हैं, लेकिन व्यवहार में सुनिश्चित विधि या प्रणाली और उसकी यथोचित अभिव्यक्ति के बिना जीवन चलता नहीं है। जीवन को चलाने के लिए हमें न्यूनतम विधि की आवश्यकता होती है। सत्य की प्रकृति सदा ही अद्वैतवादी, अभिव्यक्ति बहुलतावादी एवं जीवन में द्वैतवादी और त्रयी रूप में होती है। शायद इसीलिए दुनिया में सत्य के अनुभव और इसकी अभिव्यक्ति की अनेकों परंपराएँ प्रचलित रही हैं। जे. कृष्णमूर्ति द्वारा सत्य की विधि और उसकी अभिव्यक्ति की संभावनाओं को नकारने के बावजूद उनके ही कथनों के विश्लेषण से सत्य की विधि और उसकी अभिव्यक्ति को भारतीय ज्ञान व सत्य की परंपरा के संदर्भ में समझा जा सकता है।

जे. कृष्णमूर्ति के दर्शन की जब भी बात होती है तब हमारे सामने हमेशा ही एक धर्म संकट पैदा

*सहायक प्राध्यापक, दर्शनशास्त्र विभाग, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक।

होता है। क्योंकि वह किसी भी दर्शन, विचार या अवधारणा के न केवल विरोधी हैं बल्कि इस कर्म के प्रति वह सदा सचेत रहने के लिए प्रेरित भी करते हैं। उनके अनुसार कोई भी मानसिक या बौद्धिक प्रयास या विश्वास अंतत: मन की ही परिधि में होता है जो अपने अंतिम परिणाम में हमें सत्य से दूर ही ले जाता है (कृष्णमूर्ति. जे., 1961, पृ. 277-278)। दर्शनशास्त्र का मतलब है एक आधारभूत विश्वास या अनुभूति जो तर्क और अवधारणाओं की सुनिश्चित प्रणाली की मदद से नित नए सवालों के उत्तर में दी गयी अंतहीन व्याख्यायें हैं, जो अंततः हमारे मन को विशिष्ट देश-काल और परिस्थिति के निश्चित संदर्भ में बाँध देती हैं। इसलिए सभी प्रकार से दर्शनशास्त्र अंततः हमें सत्य से दूर ही ले जाता है। क्योंकि विचार कितना भी श्रेष्ठ हो वह अपने आप में सत्य की पूर्ण अभिव्यक्ति न होकर केवल उसका विभाजन मात्र ही होता है। विचार से सत्य के आकार को तो समझा जा सकता है लेकिन पूर्णता में उसका साक्षात्कार नहीं किया जा सकता है, क्योंकि सत्य सदा ही अपने भीतर अंतर्विरोधों को समेटे रहता है जबकि विचार की आधारभूत मान्यता है कि दो विरोधी चीजें एक साथ सत्य नहीं हो सकती हैं (कोपी. आई.एम., 2019, पृ. 47)।

इस अर्थ में यह कहा जा सकता है कि जे. कृष्णमूर्ति का अपना कोई दर्शन नहीं है। वह ना तो किसी तत्व का प्रतिपादन करते हैं और ना ही उसे पाने या जानने हेतु कोई प्रणाली या ज्ञान मीमांसा का प्रतिपादन करते हैं और ना ही विचार या दर्शन को मनुष्य की किसी भी समस्या का समाधान मानते हैं। इतना ही नहीं उनकी दृष्टि में कोई भी ऐसा नैतिक या उच्चतर मूल्य नहीं है जिसे स्थापित करने के लिए हमें नैतिक आचरण करना होगा। ऐसा कोई सौन्दर्यपरक मूल्य भी नहीं जिसके आधार पर कला और साहित्य का सृजन किया जा सके और ना ही कोई ईश्वर, देवता या सर्वोच्च सत्ता है जिसके साथ सम्बन्ध स्थापित कर किसी धर्म को खड़ा किया जा सके। वह यहाँ तक कहते हैं कि मनुष्य के द्वारा रची गयी अब तक की पूरी सभ्यता और संस्कृति भी एक प्रकार का भ्रम ही है जो सत्य से दूर मानव मन की ही विशिष्ट परिधि में आंशिक रूप से स्थित है (कृष्णमूर्ति, 1955, पृ. 240-242)। इस प्रकार गुरु, सम्प्रदाय, अनुशासन, पूजा, पद्धति, कर्म, पंथ, धर्म, संगठन, विचार, प्रक्रिया, मूल्य, शिक्षा, सर्जनात्मकता, तकनीक आदि मानव मन के द्वारा ही किया जाने वाला कृत्य है जो मन की ही विशिष्ट संरचनायें होने के कारण, सत्य को हमारे समक्ष विभाजित रूप में प्रस्तुत करता है।

संक्षेप में, यदि मानव के समस्त कर्म मनोजनित होने के कारण वह सत्य नहीं हैं तो प्रश्न उठेगा कि जे. कृष्णमूर्ति अपने विभिन्न प्रकार के वैश्विक वार्ता, गोष्ठी, बातचीत, विमर्श, भाषण और सत्संग के माध्यम से विश्व शिक्षक के रूप में क्या संदेश देना चाहते हैं ? दरअसल, वह कोई संदेश भी नहीं देना चाहते, क्योंकि संदेश देना भी एक अर्थ में सत्य की सूचना देना है जो मन की ही विभाजित अभिव्यक्ति होने से स्वयं के लिए तो सत्य हो सकता है लेकिन दूसरों के लिए वह सत्य का प्रतिबिम्ब ही होगा, सत्य का मूलरूप नहीं। तो प्रश्न उठेगा फिर मनुष्य के बीच उनके होने का अर्थ क्या है ? आखिर उन्हें हम किस रूप में ग्रहण करें ? वह अंततः कहना क्या चाहते हैं ? स्वयं को वह किस रूप में परिभाषित करते है ? वास्तव में इस तरह के सभी प्रश्नों के उत्तर निषेधात्मक ही प्राप्त होंगे लेकिन निषेध का भी एक भावात्मक पक्ष होता है।

तो फिर उनका भावात्मक पक्ष क्या है ? उनके हर निषेध के पीछे कौन सी दृष्टि काम कर रही है? इन प्रश्नों के उत्तर को समझने के लियह हमें उनके कुछ विशिष्ट कथनों एवं वाक्यांशों के विशिष्ट अर्थ की ओर ध्यान देना होगा। जैसे- दैनिक जीवन में चयन रहित निरीक्षण, सत्य के प्रति सतत जागरूकता, स्मृति, कल्पना और संवेदना से रहित वर्तमान में स्थिर रहना, जीवन को विश्लेषण से नहीं साक्षात्कार के सतत अन्वेषणात्मक अनुभूति से जानना, संबंधों के आईने में जीवन के अर्थ को ढूंढना, अस्तित्वगत स्वतंत्रता के

बोध के साथ जीवन जीना जिसमें उत्तरदायित्व, प्रेम और प्रज्ञा स्थिति होती है। सत्य पथहीन भूमि है, पहली और अंतिम मुक्ति इत्यादि अनेकों ऐसे कथन हैं जिनके माध्यम से वह किसी बात की ओर संकेत करते रहते हैं। इस तरह के कथन सत्य पर आधारित उनके प्रामाणिक जीवन पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। वस्तुतः, उनका सम्पूर्ण जीवन नग्न सत्य का चलता-फिरता रूप है (कृष्णमूर्ति, 1973, पृ. 76 & 125-126; कृष्णमूर्ति, 2006, पृ. 165-166 & 39-40; कृष्णमूर्ति 1991, पृ. 201-202; कृष्णमूर्ति, 1977, पृ. 79; कृष्णमूर्ति, 1954, पृ. 52 ; कृष्णमूर्ति और हक्सले, 1975, पृ. 51-53)।

यहाँ यह जानना आवश्यक है कि जे. कृष्णमूर्ति 'सत्य' से क्या समझते हैं। उनके अनुसार सत्य ऐसी कोई चीज नहीं है जिसे शब्दों या परिभाषाओं से समझाया जा सके। यह अनुभूति का विषय है। एक अर्थ में अनुभूति का विषय भी नहीं, क्योंकि अनुभूति में भी अनुभेय और अनुभोक्ता का सम्बन्ध होता है। सत्य से ही सारे सम्बन्ध परिभाषित होते हैं। यह हमारे ज्ञान का विषय भी नहीं बल्कि सत्य ही समस्त ज्ञान का आधार है। यह अपरिभाषेय, अनन्य, अविश्लेष्य, निरपेक्ष एवं मन से परे व्यापक अस्तित्व है। इतनी स्पष्ट दृष्टि होने के बावजूद जे. कृष्णमूर्ति को समझने में हमारे सामने धर्म संकट किस बात का है ? धर्म संकट से आशय है अंतर्विरोध की स्थिति का सामना करना। अर्थात उनके द्वारा एक ओर सत्य को किसी भी विचार प्रणाली से न समझ पाने की घोषणा करना और दूसरी ओर इसी घोषणा के माध्यम से सत्य के प्रति अपना विचार प्रस्तुत कर देना है। दरअसल यह समझ भी दर्शनशास्त्र की समझ का ही परिणाम है।

दर्शनशास्त्र सत्य को समझने का एक साधन है। यह समझ केवल विचार के स्तर में घटित होता है लेकिन सत्य की संपूर्ण समझ तभी बनती है जब वह विचार सहित अनुभूति के स्तर पर भी घटित हो, और यह तभी होता है जब दर्शनशास्त्र का भी त्याग कर दिया जाए। अर्थात दर्शनशास्त्र एक सीढ़ी की तरह है जिसे उपयोग करने के बाद उसे त्यागना ही पड़ेगा। जे. कृष्णमूर्ति या किसी अन्य सत्य को उपलब्ध व्यक्ति को समझने के लिए दर्शनशास्त्र की मदद ली जा सकती है लेकिन ध्यान रहे दर्शनशास्त्र की यह समझ केवल विचार या अवधारणा तक ही सीमित है, सत्य की अनुभूति के लिए इसकी आवश्यकता अनिवार्य नहीं है बल्कि वैकल्पिक है। अर्थात दर्शन शास्त्र से सत्य को जाना भी जा सकता है और नहीं भी। यह इस बात पर निर्भर करता है कि मनुष्य की चेतना कहाँ पर रुकी हुई है। यदि उसकी चेतना विचार में उलझी हुई है तो दर्शनशास्त्र उसकी मदद अवश्य करेगा।

भारतीय परम्परा में दर्शनशास्त्र को ब्रह्म विद्या (राधाकृष्णन, 2008) कहा गया है अर्थात ऐसा विषय जिसकी मदद से सत्य को जाना जा सके। लेकिन इसकी अनुभूति तभी उतरती है जब चित्त सभी प्रकार के विचारों से मुक्त हो, जिसका आशय है विचार को विचार से काटना, दर्शनशास्त्र का यही कार्य है। विचार से ही विचार की मुक्ति. इसलिए जे. कृष्णमूर्ति को समझने के लिए दार्शनिक मुद्रा में आना आवश्यक है, लेकिन इस चेतना के साथ कि कृष्णमूर्ति की पूरी समझ दर्शन के प्रतिपादन के साथ-साथ उसके त्याग पर भी निर्भर है। विचार की स्थापना भी हो और विचार से मुक्ति भी। यह कैसे संभव है ? इसकी प्रणाली क्या है ? इसे समझने के लिए हमें 'तटस्थीकरण की प्रक्रिया' एवं 'जीवन में संबन्ध' की अवधारणा को समझना पड़ेगा।

तटस्थीकरण

जे. कृष्णमूर्ति के दर्शन को हम तटस्थीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से समझ सकते हैं। तटस्थीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके तहत सभी प्रकार के विचार, मूल्य, कर्म, परम्परा, अनुशासन,

धर्म, व्यवस्था, उत्पादन, सृजन आदि समस्त मानव कृत्यों के प्रभाव को उसी के अनुरूप विपरीत कृत्यों से उसके प्रभाव को शून्य कर देना है। मन को मन के ही मदद से शून्य बना देना अर्थात तटस्थ बना देना। जे. कृष्णमूर्ति आजीवन अपने विमर्श से मनुष्य द्वारा सर्जित सभी प्रकार की संस्कृति और सभ्यता को इसी प्रक्रिया के द्वारा निरर्थक और प्रभावहीन करने की कोशिश करते रहे हैं और बताते रहे हैं कि सत्य के क्षेत्र में इन सबका कोई मूल्य नहीं है क्यों कि सत्य नितांत मौलिक, नूतन और स्वप्रकाश्य है (कृष्णमूर्ति,1977, पृ. 103-104)।

तटस्थीकरण की प्रक्रिया के तहत सभी मानव कृत्यों में सत्यता मूल्य अपने अंतिम विश्लेषण में समान होती है। सत्यता मूल्य से आशय मनुष्य के उन सभी कृत्यों के मूल्यांकन से है जिसका अंतिम परिणाम मनुष्य के लिए समान होगा अर्थात ज्ञान, विज्ञान, तकनीक, मूल्य, कला, साहित्य, न्याय, व्यवस्था आदि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में किए गए समस्त उपलब्धियों का परिणाम प्रथम दृष्टि में विविध और बहुआयामी होने के बावजूद अपने अंतिम परिणाम में प्रभाव की दृष्टि से एक समान ही होंगे, फिर उस प्रभाव का नाम कुछ भी दिया गया हो यथा-सुख, ज्ञान, शक्ति आदि; जो अनुभव के रूप में हमारे सामने आता है। सम्पूर्ण सभ्यता और संस्कृति का उद्देश्य अंततः जीवन अनुभव ही है। जिस प्रकार बुद्ध ने कहा था सर्वं दुखम (राधाकृष्णन, 2008) अर्थात सम्पूर्ण संसार के विविध अनुभव अंतिम विश्लेषण में दुखमय ही हैं। इसी प्रकार जीवन अनुभव का स्वरूप कुछ भी हो अपने अंतिम परिणाम में समान अनुभव ही होगा। क्योंकि सभी प्रकार के अनुभव में एक ही भोक्ता समान रूप से उपस्थित रहता है। यह भोक्ता ही आत्म चेतना है जो सत्य का ही प्रतिबिम्ब कहलाता है।

हमारे अनुभव की दिशा या तो अनंत की ओर होती है या पूर्णता की ओर। अंकों में यदि इसका मूल्यांकन करें तो अनंत के लिए 1 और पूर्णता के लिए 0 अंक दिया जा सकता है। अनंत मार्ग के लिए 1 अंक देने से आशय यह है कि यदि उपयोगिता की दृष्टि से उनका कोई मूल्य है भी तो उनका मूल्य समान अर्थ में 1 ही होगा क्योंकि अनंत एक-एक अंक के जोड़ की अंतहीन प्रक्रिया के अतिरिक्त कुछ नहीं है। और 0 से आशय जीवन की सम्पूर्ण उपलब्धियों की निरर्थकता से है। एक दूसरे अर्थ में निरर्थकता को देखने वाले दृष्टा को साररूप में पूर्णता की संज्ञा भी दी जा सकती है।

जे. कृष्णमूर्ति के अनुसार जीवन और जगत में प्रत्येक विचार, तथ्य और मूल्य का विरोधी विचार, तथ्य और मूल्य की सत्ता होती है जो अपने प्रभाव से पूर्व के विचार, तथ्य और मूल्य को प्रभावहीन कर देती है जिससे हमारा चित्त पूरी तरह से खाली होकर तटस्थ हो जाता है। जैसे सुख के प्रभाव को दुःख, अज्ञान के प्रभाव को ज्ञान, शक्ति हीनता के प्रभाव को शक्ति आदि इसके ठीक विपरीत प्रक्रिया की स्थिति अंततः मनुष्य को तटस्थ बना देता है। इन सभी का मूल्य या तो एक समान होगा या मूल्यहीन होकर संदर्भहीन हो जाएगा। यदि जे. कृष्णमूर्ति के समस्त विमर्श का अंकों के साथ मूल्यांकन किया जाए तो उन्होंने अपने विमर्श में सभी मानव कृत्यों का सत्यता मूल्य या तो एक अंक है या शून्य है। इस दृष्टि से कोई विचार कितना भी श्रेष्ठ या निम्न कोटि का हो, अंतिम विश्लेषण में उसका सत्यता मूल्य अनंत की दृष्टि से एक और सत्य के बोध की दृष्टि से शून्य होगा।

जीवन में संबन्ध

जे. कृष्णमूर्ति के लिए सबसे महत्वपूर्ण है-मानव जीवन। जीवन से बढ़कर कुछ भी नहीं। ज्ञान, दर्शन, विज्ञान इत्यादि सब कुछ जीवन जीने के साधन ही हैं साध्य नहीं। इसलिए जीवन के बारे में वह

विस्तारपूर्वक बताते हैं। जीवन वह है जो जगत के परिवेश में रहकर पूरी स्वतंत्रता के साथ चयन रहित अनुभव अर्जित करे (कृष्णमूर्ति,1956, पृ. 271-272)। यही उनकी तत्व मीमांसा है। जीवन ही एक मात्र तत्व है जो मनुष्य के लिए मूल्यवान है और हर चीज को नियंत्रित करता है। इस दृष्टि से कृष्णमूर्ति अद्वैतवादी हैं। किन्तु जीवन हमेशा ही अंतर्विरोधों से घिरा रहता है। अंतर्विरोध ही जीवन में गति प्रदान करता है, अंतर्विरोधों के महत्व और उसकी निरर्थकता के प्रति कृष्णमूर्ति सचेत करते हैं। इस दृष्टि से कृष्णमूर्ति द्वैतवादी भी हैं। जहाँ एक ओर द्वैतवाद में परस्पर संघर्ष है तो दूसरी ओर उनमें समन्वय भी है, जो पूर्व के दो विरोधी तत्व से पृथक सर्वथा नवीन तत्व बन जाता है किन्तु, एक स्तर में वह पूर्व के तत्वों से सम्बंधित भी होता है। इसलिए, तीन तत्व जीवन के रहस्य को पूरी तरह से उद्घाटित करते हैं। कृष्णमूर्ति इसके महत्व को समझते हैं। अतः कहा जा सकता है कि वह त्रिकवादी भी हैं। जीवन के इतने रूप हैं कि इसकी गिनती नहीं की जा सकती। जीवन की विविधिता और बहुरूपता अनंत है, इसीलिए जीवन आनंदमय है। इस दृष्टि से वह बहुतत्ववादी भी हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि कृष्णमूर्ति की तत्वमीमांसा में अद्वैतवाद, द्वैतवाद, त्रिकवाद और बहुतत्ववादी का सुंदर समन्वय है। जीवन नामक तत्व में यह सारी दृष्टियाँ मौजूद हैं। स्वरूप की दृष्टि से जीवन भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक तत्वों का मेल है जिसके केंद्र में जीवन बोध और परिधि में उसकी अभिव्यक्ति है। जीवन सदैव सबंधों के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। कृष्णमूर्ति हमेशा ही संबंधों के आईने में जीवन की गुणात्मकता को मापते थे। संबन्ध मनुष्य-मनुष्य के बीच, मनुष्य और प्राणियों के बीच, मनुष्य और प्रकृति के बीच होता है। चेतना इसी विविधिता के साथ पूरी दिव्यता में प्रकट होती है। जे. कृष्णमूर्ति कहते हैं कि तुम ही संसार हो और संसार ही तुम हो (कृष्णमूर्ति, 1972, पृ. 89-90)। संसार की सारी समस्याएँ वास्तव में व्यक्तिगत समस्या हैं। यदि व्यक्तिगत समस्याएँ दूर हो जाएँ तो संसार की सारी समस्यायों का समाधान हो जाएगा। इस दृष्टि से देखा जाय तो वास्तव में सत्य ही एक मात्र समस्या है जिसे यथार्थ के संबंधों के सन्दर्भ में देखा जाना चाहिए।

वस्तुतः, सत्य अपने आप में समस्या नहीं बल्कि सत्य की हमारी समझ ही सत्य की समस्या है क्योंकि सत्य को हम विभाजित चेतना से देखते हैं। ऐसा इसलिए होता है कि 'मैं' और 'अन्य' के भेद को हम ठीक तरह से नहीं समझते हैं। 'अन्य' के तहत राजनीति, प्रशासन, क़ानून, व्यापार, अर्थ, प्रबंध, तकनीक, सुरक्षा आदि की मानव व्यवस्था और कला साहित्य की सर्जनात्मकता की स्थिति में चयनात्मक अवलोकन की चेतना का प्रयोग किया जाता है। जबकि हम प्रायः चयनरहित अवलोकन की चेतना का उपयोग करते हैं और 'मैं' या 'हम' के क्षेत्र में जो कि सत्य का क्षेत्र होता है उसमें चयनरहित अवलोकन की चेतना की जगह चयनात्मक अवलोकन की चेतना का उपयोग जब हमारे द्वारा किया जाता है तो हम भ्रम के शिकार हो जाते हैं। यही सत्य की समझ की समस्या है।

शास्त्रीय दृष्टि से जे. कृष्णमूर्ति का अपना कोई दर्शन ना होने के बावजूद उनकी बातों को समझने के लिए तटस्थीकरण के तहत तत्वमीमांसा के रूप में जीवन तत्व को रेखांकित किया जाना चाहिए। जीवन बहुस्तरीय है जो केंद्र से परिधि की ओर पानी की लहर की तरह फैलता है। जे. कृष्णमूर्ति कहते हैं कि पूर्ण स्वतंत्र जीवन ही वास्तविक जीवन है जो सभी प्रकार के बंधनों से मुक्त हो। यह अवधारणात्मक नहीं बल्कि अनुभवात्मक है। जीवन और सत्य एक ही तथ्य के दो नाम हैं। अब प्रश्न यह है कि कृष्णमूर्ति इस जीवन को अर्थात सत्य को पाने के लिए कोई विधि प्रस्तुत करते हैं या नहीं। वास्तव में यह ज्ञान मीमांसीय प्रश्न है जो तत्व या सत्य से सीधे जुड़ा हुआ है। सिद्धान्तः वह सभी प्रकार की विधियों के विरोधी हैं, क्योंकि सभी विधियों का सत्यता मूल्य अनंत के दृष्टिकोण से एक और पूर्ण की दृष्टि से शून्य है। अर्थात सभी विधियाँ

परिणाम की दृष्टि से एक समान हैं। इस सम्बन्ध में उनका प्रसिद्ध वाक्य 'सत्य पथहीन भूमि है' (कृष्णमूर्ति, 1977, पृ. 56) में विधि सम्बन्धी बातें अन्तर्निहित हैं जिसके विश्लेषण से कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं ।

सत्य पथहीन भूमि है: इस वाक्य में चार पद हैं- 'सत्य', 'पथहीन', 'भूमि' और 'है'। 'सत्य' अर्थात जीवन जिसमें आत्म चेतना की स्थिरता और अनुभव की नित नयी नवीनता का सुंदर सामंजस्य होता है। 'पथहीन' से आशय ऐसा कोई मार्ग नहीं जिसमें चलकर कहीं पहुंचा जा सके। 'भूमि' अर्थात वह जमीन या आधार अथवा सत्ता जिसमें सत्य स्थिर या अस्तित्ववान रहता है और 'है' एक संयोजक पद है जो 'विषय' और 'विषयी' को आपस में जोड़ता है। पूरे वाक्य से आशय है- 'सत्य तक किसी भी मार्ग से नहीं पहुंचा जा सकता है' । इस वाक्य के दो अर्थ हो सकते हैं; पहला, सत्य तक पहुँचने का कोई मार्ग ही नहीं है और दूसरा, प्रत्येक व्यक्ति के लिए स्वयं का अपना-अपना मार्ग है। पहला अर्थ सही नहीं हो सकता क्योंकि यह कथन अपने आप में आत्मविरोधी है। यह कथन वही कह सकता है जो कम से कम स्वयं सत्य तक पहुँच चुका हो। तो प्रश्न उठेगा कि उसे यह ज्ञान कैसे हुआ कि सत्य तक किसी भी मार्ग से नहीं पहुंचा जा सकता है ? सत्य तक पहुँच कर यह घोषणा करना कि सत्य तक किसी भी मार्ग से पहुंचा नहीं जा सकता, एक निरर्थक वक्तव्य है। इसका अर्थ यह है कि कथन का दूसरा अर्थ ही सही प्रतीत होता है।

जे. कृष्णमूर्ति सत्य तक पहुँच कर ही इस बात की घोषणा करते हैं और यदि वह सत्य तक पहुँच चुके हैं तो निश्चित रूप से किसी न किसी विधि का उपयोग भी उनके द्वारा अवश्य किया गया होगा। तो फिर यहाँ प्रश्न होगा कि जे. कृष्णमूर्ति किस विधि से सत्य तक पहुंचे ? अर्थात कोई ऐसा मार्ग अवश्य है जिस पर चलकर कृष्णमूर्ति की भांति सत्य तक पंहुचा जा सकता है। दरअसल, कृष्णमूर्ति अपने कथन से केवल यह कहना चाहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति का अपना स्वयं का मार्ग होता है, जिसे पहचान कर और उस पर चलकर सत्य तक पहुंचा जा सकता है। कोई भी पूर्व से बना-बनाया मार्ग नहीं है जिस पर चलकर सत्य तक पहुंचा जा सके। और जो विभिन्न मार्गों के दावे किए जाते हैं वह वास्तव में दूसरों के द्वारा उपयोग में लाए गए मार्ग हैं जो किसी और के लिए उपयोगी नहीं हो सकते। एक प्रकार का यह 'यूज एंड थ्रो' है। कोई भी मार्ग किसी और के लिए उपयुक्त नहीं हो सकता है। एक-एक व्यक्ति को स्वयं अपना ही मार्ग चुनना होगा। इसी अर्थ में सत्य को पथहीन भूमि कहा गया है। तो अगला सवाल यह होगा कि आखिर हम अपने मार्ग को पहचानेंगे कैसे? कि यही हमारे लिए मार्ग है। मार्ग पहचानने से आशय है- चेतना के बंधन को पहचानना। चेतना के बंधन को पहचान कर ही हम अपना मार्ग चुन सकते हैं। यहाँ 'चेतना के बंधन' से भला 'मार्ग' का क्या संबंध हो सकता है ? वास्तव में, मार्ग जैसी कोई चीज नहीं होती, क्योंकि सत्य या जीवन स्वयं से पृथक कोई मंजिल नहीं है जहाँ चलकर पहुंचा जा सके। जीवन बर्फ की तरह है जो पिघल कर पानी हो जाता है जबकि बर्फ और पानी में स्वरूपतः कोई अंतर नहीं है, वह केवल अवस्था भेद है। बस हमें बर्फ को पिघलाना आना चाहिए। बर्फ को पिघलाने के लिए किसी कुशलता की जरुरत नहीं बस केवल थोड़ी गर्मी चाहिए जो सूरज की रोशनी से मुफ्त में पाया जा सकता है अथवा स्वयं के भीतर थोड़ी गर्मी पैदा करके या कहीं से आग का सहारा लेकर।

जो चीज हमारी चेतना के बंधन का कारण होती है वही हमारी मुक्ति का साधन भी। अगर हमारी चेतना विचारों से बंधी है तो विचार ही मुक्ति या सत्य का मार्ग बन जाता है, यदि चेतना किसी भावना से बंधी है तो भावना ही मुक्ति का साधन या सत्य का मार्ग है। इसी प्रकार यदि किसी विशिष्ट कर्म से चेतना बंधी है तो वही कर्म सत्य का मार्ग बन जाता है। इसी तरह जीवन या जगत की प्रत्येक वस्तु जो हमारे बंधन का

कारण है वही हमारे सत्य का मार्ग भी। इसलियह सत्य के मार्ग की पहचान का अर्थ है अपनी चेतना के बंधन की पहचान करना। व्यक्ति अपनी-अपनी चेतना के बंधन से बंधे होते हैं इसलिए हर व्यक्ति के लिए अलग अलग सत्य के मार्ग हैं। इसीलिए सत्य पथहीन भूमि है।

अब सवाल यह है कि हम अपनी चेतना के बंधन को कैसे पहचानें ? जे. कृष्णमूर्ति आजीवन विश्व संवाद के जरियह गोष्ठी, वार्ता, सत्संग आदि के जरिए लोगों के बंधनों का बोध कराकर उसके प्रति जागरूकता पैदा करते रहे ताकि वह अपना मार्ग स्वयं चुन सकें। इस प्रक्रिया में तटस्थीकरण की प्रक्रिया का वह पूरा उपयोग करते हैं। प्रत्येक बंधन या मार्ग की सत्यता मूल्य का वह मूल्यांकन भी करते रहते हैं। अनंत चेतना जब सीमित होती है तब वह चित्त बन जाती है। इस चित्त के साथ स्वयं के होने की पहचान ही बंधन है। प्रत्येक व्यक्ति चित्त के जिन-जिन बिन्दुओं से स्वयं को विशिष्ट पहचान के रूप में प्रस्तुत करता है, वही बिन्दु बंधन का कारण होता है और वही मुक्ति या सत्य का मार्ग भी बनता है। मोटे तौर पर चित्त तीन दिशा में काम करता है- बुद्धि, भाव और क्रिया। बुद्धि अर्थात विचार और तर्क के माध्यम से जीवन को समझने की चेष्टा करना। विचार जीवन को खंडित करता है। इसलिए यह बंधन है और विचार से ही जब यह समझ आ जाती है तब हम विचार से मुक्त हो जाते हैं अर्थात विचार ही सत्य का मार्ग बन जाता है। कृष्णमूर्ति विचार और तर्क के ही माध्यम से विचार और तर्क के सत्यता मूल्य को शून्य या तटस्थ करते हुए विचार और तर्क से मुक्त हो जाने की प्रक्रिया में सब को शामिल करते हैं।

भाव अर्थात जीवन से रागात्मक संबंध रखना, जिसके तहत सुख, दुःख और अपेक्षात्मक अनुभव के साथ जीवन जीने से है। इसमें भी हम मुक्त जीवन नहीं जी पाते। हमारी चेतना सुख, दुःख और अपेक्षाओं के बीच झूलती रहती है। परिणाम स्वरूप हमारा जीवन सीमित और बंधन युक्त हो जाता है। चित्त की सभी भावनाएं बंधनों का कारण हैं तो वही हमारे लिए सत्य का मार्ग भी हैं। इसी क्रम में कृष्णमूर्ति क्रोध, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, प्रेम, शांति आदि भावनाओं को समझाते हैं। समझाना और समझना एक प्रक्रिया है, घटना है, जिसकी ओर वह लोगों से जागरूक रहने के लिए निरन्तर सक्रिय रहते हैं। इस प्रकार जो भाव, बंधन का कारण है उसे ही तटस्थीकरण की प्रक्रिया से उसके सत्यता मूल्य को शून्य करते हुए परोक्षत: सत्य का मार्ग बता देते हैं।

क्रिया अर्थात कुछ ना कुछ करते रहने की इच्छा। यह भी हमारे बंधन का मूल कारण है। जन्म से लेकर मृत्यु तक कोई न कोई ऐसी महत्वाकांक्षा रहती है जिसे पूरा करने के लियह हम सदैव सक्रिय रहते हैं जबकि हमारे सभी कर्मों का मूल्य चाहे कितना भी श्रेष्ठ या निम्न कोटि का हो अपने अंतिम परिणाम में उसका सत्यता मूल्य या तो एक होगा या शून्य ही होगा, जिसका अनुभव हमें तटस्थीकरण की प्रक्रिया में होता है। अत: जो कर्म हमें बंधन में डालता है वही कर्म हमारी मुक्ति या सत्य का मार्ग भी प्रशस्त करता है। जे. कृष्णमूर्ति इसी अर्थ में मनुष्य द्वारा सृजित सभ्यता और संस्कृति का सत्यता मूल्य शून्य बताते हैं अर्थात निरर्थक कहते हैं। लेकिन यही सभ्यता और संस्कृति सत्य के मार्ग भी खोलते हैं।
इस प्रकार चित्त हमारे बंधन का कारण है तो यही सत्य का मार्ग भी और दूसरा कोई नहीं। इसीलिए जे. कृष्णमूर्ति के अनुसार सत्य पथहीन भूमि है।

सत्य की अभिव्यक्ति की विधि

सत्य की विधि का विश्लेषण करने के बाद स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि प्राप्त सत्य की अभिव्यक्ति कैसे होगी ? इस तथ्य को जे. कृष्णमूर्ति का प्रसिद्ध कथन प्रथम और अंतिम मुक्ति (कृष्णमूर्ति,

1954, पृ. 237-239) से समझा जा सकता है।

इस वाक्य के दो अर्थ हो सकते हैं प्रथम, मुक्ति सर्वथा मौलिक और नूतन होने से उसकी पुनरावृत्ति नहीं हो सकती। यह जब भी प्रकट होगा पूर्ण रूप में और एक बार ही प्रकट होगा। इसलिए इसकी अभिव्यक्ति नहीं हो सकती क्योंकि जैसे ही उसकी अभिव्यक्ति होगी वह पुनरावृति का शिकार हो जाएगी। इसी तरह सत्य के अनुभव को स्मृति या इतिहास के माध्यम से व्यक्त करने पर उसकी मौलिकता और नवीनता समाप्त हो जाएगी और तब सत्य, सत्य नहीं रह जाएगा। दूसरा, सत्य पूर्ण होता है और जब भी यह फैलेगा या तो एक इकाई के रूप में या विभाजित होकर अनंत इकाई के रूप में, और प्रत्येक इकाई अपने आप में पूर्ण और मौलिक होगी।

यदि प्रथम अर्थ को ग्रहण किया जाय कि सत्य की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती तो सत्य के संदर्भ में इतनी बात तो कह ही दी जाती है कि 'सत्य की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती' अर्थात अपने आप में यह अंतर्विरोधी वक्तव्य हो जाता है। जे. कृष्णमूर्ति सत्य के बारे में कथन कहते रहे कि 'सत्य की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती', के माध्यम से सत्य के बारे में यही सूचना देते रहे। इसलिए तार्किक रूप से प्रथम अर्थ को ग्रहण करना उचित नहीं है।

दूसरे अर्थ को यदि ग्रहण करें तो इसका आशय यह है कि सत्य सदैव मौलिक और नूतन तभी बना रहेगा जब उसकी अभिव्यक्ति अनंत इकाई के रूप में पूर्णरूप से व्यक्त होती रहे। पूर्ण और अनंत के बीच के संबंध को चाहे जिस रूप में देखें वह सदैव अपनी-अपनी दृष्टि में पूर्ण और अनंत ही रहेंगे। इस दृष्टि से जीवन और जगत के प्रत्येक कण में सत्य अस्तित्वान है। प्रत्येक क्षण का अनुभव पूर्णत: मौलिक और नूतन है और इसके प्रत्येक इकाई द्वारा सृजित हर नई इकाई भी पूर्णत: मौलिक और नूतन रहेगी।

इसके अतिरिक्त सत्य की अभिव्यक्ति द्वैत रूप में भी होती है जिसमें तार्किक रूप से एक ही सत्य दो विपरीत तथ्य के रूप में प्रकट होता है। तर्कतः यह दो विपरीत तथ्य एक साथ सत्य नहीं हो सकते किन्तु निरपेक्षत: यह एक ही सत्य के दो विपरीत रूप हैं, और इसीलिए सत्य को तर्क या विचार से समझने में मुश्किल होती है, वह हमें रहस्यमय दिखायी देता है। उस स्थिति में उसकी पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए विभिन्न प्रकार के प्रतीकों का उपयोग किया जाता है। सत्य जब दो विपरीत तथ्य के रूप में अभिव्यक्त होता है तब वह 'न्याय' के रूप जाना जाता है। यही न्याय लोकतांत्रिक व्यवस्था में सत्ता पक्ष और विरोधी पक्ष के रूप में विशिष्ट विचारधारा के रूप में उपस्थित रहता है जिनके बीच प्रायः संघर्ष और सहमति की प्रक्रिया चलती रहती है। साथ ही संविधान, कानून और न्यायालय के रूप में न्यायिक प्रक्रिया के माध्यम से न्याय की स्थापना की जाती है।

इस प्रकार सत्य की अभिव्यक्ति अनंत और द्वैत रूप दोनों में होती है। अनंतरूप में यह मौलिक, नूतन और पुनरावृति से रहित तथा द्वैत रूप में समानरूप से विभाजित न्याय के रूप में विद्यमान रहता है। अतः जे. कृष्णमूर्ति अपने कथन 'प्रथम और अंतिम मुक्ति' के माध्यम से सत्य को जीवन और जगत के रूप में अनंत की दिशा में प्रवाहित होते हुए स्थिति और गति दोनों रूप में अभिव्यक्त होते हुए देखते हैं।

अब प्रश्न यह है कि सत्य, सत्य की विधि और उसकी अभिव्यक्ति के बारे में जे. कृष्णमूर्ति की जो दृष्टि है क्या वह भारतीय ज्ञान परम्परा की ही एक कड़ी है? या जे. कृष्णमूर्ति सभी परम्पराओं से सर्वथा भिन्न मौलिक रूप से पृथक अकेले खड़े हैं। इस बात को समझने के लिए हमें भारत की ज्ञान परम्परा पर एक दृष्टि डालनी होगी। भारत में मौलिक रूप से ज्ञान की तीन परम्पराएं रही हैं- शब्द, निःशब्द और वस्तु ज्ञान।

शब्द ज्ञान से तात्पर्य है भाषा में अभिव्यक्त ज्ञान और भाषा द्वारा प्राप्त ज्ञान। विश्व की सभी

विकसित भाषायें यही दो कार्य करती रही हैं। हालांकि भाषा का काम संवाद करना भी है जिसे उक्त दोनो कार्य में अंतर्भूत कर लिया गया है। जब सभी भाषायें यही दो कार्य करती हैं तो भारत के संदर्भ में इसकी क्या विशेषता है ? वस्तुतः भारत की ज्ञान परम्परा संस्कृत भाषा में अक्षुण्ण है जिसकी वैज्ञानिकता और अनूठी तार्किक संरचना की वजह से यह विश्व की भाषाओं के मध्य अप्रतिम रूप से सिरमौर बनी हुई है। इसी विशेषता के कारण संस्कृत वास्तविक और लौकिक जीवन चेतना के अनुभवों को अभिव्यक्ति प्रदान तो करती ही है साथ ही यह चेतना के सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम अनुभवों को व्यक्त करने और चेतना के इन स्तरों को उत्पन्न करने में सक्षम है।

ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में शब्द ज्ञान सूत्र, वार्तिक, भाष्य, उपदेश, वृत्ति, अनुवृत्ति और प्रकरण, टीका, उपटीका (त्रिपाठी, 2004, पृ. 5) आदि शास्त्र के रूप में सदियों से परम्पराओं के रूप में प्रवाहित होते रहे हैं। जिसमें सर्वप्रथम ज्ञान को सैद्धांतिक बीज के रूप में प्रस्तावित कर आने वाली पीढ़ियों तक नए विचारों और प्रश्नों के साथ संशोधित और संवर्धित करते हुए ज्ञान को आगे बढ़ाया जाता रहा है। इसके अतिरिक्त आगम, यामल, तंत्र और वेद के विविध परम्पराओं में ज्ञान के अनंत रत्न भण्डार हैं जिसे चिंतन, मनन, युक्ति और निदिध्यासन (राधाकृष्णन, 2008) की मदद से निरंतर आगे बढ़ाया जाता रहा है। यह ज्ञान की लिखित परम्परा है जिसकी कुछ अपनी सीमायें होने की वजह से मौखिक परम्पराओं का भी प्रचलन रहा है। जिसके तहत वेद और तंत्र के विशिष्ट पाठों, ऋचाओं व सूत्रों को आत्मसात करके ज्ञान का साक्षात्कार करने की प्रणाली रही है। इन दोनो ही परंपराओं में शब्द को ब्रह्म अर्थात सत्य कहा गया है। इसे ही आत्मनिष्ठ विज्ञान भी कहा जाता है।

निःशब्द ज्ञान से आशय आत्मज्ञान से है। आत्मज्ञान का अर्थ मनुष्य की परम चेतना के बोध से है जो संपूर्ण जगत की चेतना का प्रतिबिम्ब है। आत्मज्ञान मनुष्य के समस्त ज्ञान का आधार है। अन्य व्यवहारिक और वैज्ञानिक ज्ञान के लियह मनुष्य की भूमिका ज्ञाता के रूप में होती है जबकि स्वयं ज्ञाता अर्थात मनुष्य कौन है ? को जाने बिना कोई भी ज्ञान अधूरा और अप्रमाणिक ही रहेगा। आत्मज्ञान भाषाई, तकनीक और तार्किक ज्ञान के द्वैतात्मक स्वरूप से नहीं समझा जा सकता है। यह केवल अंत: निरीक्षण के अद्वैत बोध से ही समझा जा सकता है।

इस बोध का साक्षात्कार करने के लिए त्रिक दर्शन और तंत्र की परम्परा में दो प्रकार के उपाय बताए गए हैं-अनुपाय और उपाय (मिश्र, 2010, सूत्र 14-15)। अनुपाय के अनुसार तत्व को किसी भी उपाय से प्राप्त नहीं किया जा सकता है। ना शास्त्र, ना विधि, ना गुरु, ना शिक्षा और ना किसी अन्य प्रयास से। केवल स्वयं की प्रतिभा के सतत अंत: निरीक्षण से चित और आनंद की चेतना के प्रकाश स्वरूप स्वयं के स्वभाव (मिश्र, 2010, सूत्र 66) के रूप में जाना जा सकता है। उपाय के अंतर्गत मनुष्य की इच्छा (संकल्प), ज्ञान और क्रिया के आधार पर क्रमशः शाम्भव, शाक्त और आणव (गुप्ता और चतुर्वेदी, 2012, श्लोक 239) उपाय हैं जो अद्वैत, द्वैतादैव और द्वैतमय स्वरूप के होते हैं। उपाय उन लोगों के लिए है जिनकी प्रतिभा उच्च स्तर की चेतना से संचालित न होकर इच्छा (संकल्प), ज्ञान और क्रिया की चेतना से बद्ध होकर संचालित होती है। आत्मज्ञान को न तो शब्दों में पूरी तरह से व्यक्त किया जा सकता है और न ही केवल शब्दों से समझा जा सकता है। इसीलिए इस ज्ञान को निःशब्द ज्ञान कहा जाता है। यह ज्ञान उपनिषद के ऋषियों के वचनों में, बुद्ध के मौन में, महावीर की परम शांति में और उन समस्त लोगों में मिल जाएगा जिन्होंने स्वयं का साक्षात्कार किया है।

ज्ञान की तीसरी परम्परा विशुद्ध भौतिक, वैज्ञानिक, और व्यवहारिक ज्ञान की रही है जिसे वस्तु

ज्ञान की परम्परा कहा जा सकता है। इसके अंतर्गत कृषि, पशुपालन, शिल्प, लघु उद्योग, भवन निर्माण, युद्ध कौशल आदि व्यवहारिक ज्ञान के साथ-साथ, गणित, भौतिक, रसायन, चिकित्सा, खगोल विज्ञान, अभियांत्रिकी, तकनीक, राजनीति, अर्थशास्त्र, दर्शन, भाषा, काव्य, संगीत, आदि विज्ञान, समाजकीय एवं मानविकी विषयों की समृद्ध परम्परा रही है जो कार्य-कारण सिद्धांत, निरीक्षण, प्रयोग और प्रक्रिया पर आधारित वस्तुनिष्ठ विज्ञान के रूप में जाना जाता है।

ध्यातव्य है कि शब्द ज्ञान और वस्तु ज्ञान वस्तुतः विज्ञान के ही दो रूप क्रमशः आत्मनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ विज्ञान हैं जो सत्य के विशिष्ट रूप को उद्घाटित करते हैं। जबकि सत्य के सामान्य रूप की अभिव्यक्ति को निःशब्द ज्ञान प्रदान करती है। ज्ञान और विज्ञान बहुत गहरे में न केवल परस्पर संबंधित हैं बल्कि अन्योन्याश्रित होते हुए एक ही सत्य या यथार्थ के दो रूप हैं। भारतीय परम्परा में सत्य और ज्ञान की समझ की यही अपनी विशिष्टता रही है, जबकि पश्चिम की ज्ञान परम्परा में इस तरह की समझ का अभाव पाया जाता है।

जहाँ तक सत्य के स्वरूप का सवाल है भारत में हमेशा से ही यह माना गया है कि 'सत्य वह है जो सदा स्थिर और नूतन है' अर्थात ऐसा सत्य जो देश काल से परे सदा अस्तित्ववान है और देश काल के सापेक्ष सदा ही नूतन है। इसे ही सनातन कहा गया है। सनातन कोई धर्म नहीं बल्कि सत्य की विशेषता या लक्षण है। जे. कृष्णमूर्ति भी सत्य का यही लक्षण बताते हैं। उनके लिए 'सत्य' और 'जीवन' समानार्थी हैं अतः: जीवन वह है जो देश काल से परे सदा अस्तित्ववान है और देश काल के सापेक्ष सदा ही नूतन है। परस्पर विरोधों को आत्मसात करना ही सत्य है। इस दृष्टि से कृष्णमूर्ति वही बातें कह रहे हैं जो सदा से ही भारत कहता आ रहा है। किन्तु वह केवल कह ही नहीं रहे हैं। वह सत्य के अनुभव के साथ वैसा ही जीवन भी जी रहे हैं। इसलिए वह परम्परा से भिन्न और मौलिक भी हैं।

जहाँ तक सत्य की विधि या प्रणाली का प्रश्न है, वेद और तंत्र की परम्परा में यह माना गया है कि सत्य प्राप्ति की या तो अनंत विधियाँ हैं या कोई भी विधि नहीं है। इसका तात्पर्य यह है कि जीवन और जगत में ऐसी कोई वस्तु या भाव नहीं जिसको आधार बनाकर सत्य तक ना पहुंचा जा सके। आतंरिक जगत में हमारा चित्त और बाह्य जगत में एक-एक परमाणु और व्यवस्था सत्य का मार्ग बन सकता है बशर्ते हमारे पास सत्य के प्रति जागरूकता हो, और यदि सत्य के प्रति जागरूकता नहीं है तो कोई भी विधि हमें सत्य तक नहीं पहुंचा सकती, फिर हम जन्मों-जन्मों तक कितना भी प्रयास कर लें। अनंत विधियों में कुछ विधियों को वर्गीकृत किया गया है। चेतना के स्तर के आधार पर 112 विधियों का उल्लेख विज्ञान भैरव (द्विवेदी, 2004, पृ. 161) ग्रंथ में उपलब्ध है। जिसे प्रायः ध्यान की विधियों के रूप में जाना जाता है। यह विधियाँ सम्पूर्ण मनुष्य जाति के लिए हैं जो अपनी-अपनी रूचि और चित्त के बंधन के आधार पर चुन सकते हैं। इन सब को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्थानांतरित करने के लिए शास्त्र, गुरु, युक्ति और अनुभूति (गुप्ता और चतुर्वेदी, 2012) की व्यवस्था की प्रक्रिया सुनिश्चित की गयी है।

इस व्यवस्था को समझना जरुरी है। शास्त्र वह हैं जिनमें सत्य संबंधी विमर्श को सूत्र रूप में व्यक्त किया जाता है। गुरु श्रुति या मौखिक परम्परा द्वारा अपनी सत्य अनुभूति की ऊर्जा को शिष्यों की चेतना में स्थापित कर उसकी चेतना को रूपांतरित होने में मदद करता है। इसीलिए शास्त्र और गुरु सत्य के साक्षात्कार में सहायक माने जाते हैं। किन्तु इतने भर से सत्य का साक्षात्कार नहीं हो जाता क्योंकि यह दूसरों के विवेक और अनुभव पर आधारित है, स्वयं पर नहीं। अगली दो प्रक्रिया स्वयं के प्रयास पर निर्भर हैं। युक्ति अर्थात तर्कपूर्ण चिंतन मनन द्वारा सत्य को अवधारणा या भाषाई बोध के स्तर पर समझना और अंत में

सत्य का प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा साक्षात्कार करना। दार्शनिक परम्परायें भी इसी परम्परा का अनुगमन करती हैं। इसीलिए भारत में दर्शन सचेतन चिंतन (भट्टाचार्य, 1975) में आलेख के माध्यम से अंततः आत्म साक्षात्कार करने की प्रक्रिया माना गया है न कि पश्चिम की तरह फिलोसफी को मात्र अवधारणात्मक चिंतन और भाषायी विश्लेषण तक सीमित रखना है।

सत्य की अभिव्यक्ति के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि सत्य मूलरूप से अद्वैत, द्वैत, बहुरूप और त्रिक रूप में व्यक्त होता है। जीवन के रूप में सत्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष (काणे, 2003, पृ. 101) इन चार मूल्यों या तत्वों के रूप में अभिव्यक्त होता है। धर्म, अर्थ और काम का स्वरूप द्वैतरूप होने से इसमें चयनात्मक अवलोकन की चेतना कार्य करती है जबकि मोक्ष अद्वैतात्मक प्रकृति के होने से चयनरहित अवलोकन की चेतना कार्य करती है और चारों तत्वों के संयोग से बहुलवादी संसार की रचना होती है।

जहाँ तक कृष्णमूर्ति की ही तरह सत्य बोध को उपलब्ध व्यक्ति का प्रश्न है तो भारत में अनेक ऐसे व्यक्ति हुए हैं जो कृष्णमूर्ति की ही तरह सत्य के बारे में कथन करते हैं। सैद्धान्तिक तौर पर आत्मबोध से उपलब्ध सभी व्यक्तियों की चेतना और उसकी अभिव्यक्ति एक जैसी होती है क्योंकि सत्य सदा ही शास्वत और स्थिर रुप में समान रूप से एक जैसा ही प्रकट होता है। किन्तु सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक-सांस्कृतिक-प्राकृतिक परिस्थिति और व्यक्ति विशेष की चेतना के स्तर की वजह से उन सबकी अभिव्यक्तियों में अंतर हो जाता है। उपनिषदों के ऋषि, बुद्ध, महावीर, पतंजलि, आदिशंकराचार्य, अभिनयगुप्त, कबीर, नानक, गोरक्षनाथ, मीरा, रामकृष्ण परमहंस, महर्षि रमण, ओशो आदि अनेक ऐसे परम चेतना को उपलब्ध व्यक्ति हुए हैं जिनके वक्तव्यों का यदि विश्लेषण करें तो सैध्यांतिक तौर पर जे. कृष्णमूर्ति की ही तरह उनका भी यही निष्कर्ष है कि सत्य पथहीन भूमि है जिसमें पहली और अंतिम मुक्ति मिलती है।

किन्तु व्यवहारिक दृष्टिकोण से 'सत्य पथहीन भूमि है' की चेतना तक पहुँचने के लियह हमें उन सभी उपायों, विधियों-अविधियों का सहारा लेना होता है जिन्हें आत्मबोध से उपलब्ध व्यक्तियों द्वारा इतिहास में विकसित किया गया है और देश-काल सापेक्ष उनकी अभिव्यक्ति प्रदान की गयी है। जे. कृष्णमूर्ति इस अर्थ में सत्य की ही परम्परा के वाहक हैं। वास्तव में सत्य के क्षेत्र में कोई नयी बात कही भी नहीं जा सकती है। एक ही सत्य को अलग-अलग शब्दावली में अपने-अपने ढंग से कहा जाता रहा है, एकम सत्य विप्रा बहुधा वदन्ति। जे. कृष्णमूर्ति सर्वाधिक मौलिक भी हैं क्योंकि उनकी चेतना में सत्य प्रकट हुआ है। दो परस्पर विरोधी बातें उनके साथ जुड़ी हुई हैं जो सत्य के ही लक्षण हैं और जिसे तर्क और चिंतन से नहीं सीधे साक्षात्कार से जाना जा सकता है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो गया है कि सिद्धांततः जे. कृष्णमूर्ति किसी भी दर्शनशास्त्र के पक्ष में नहीं हैं और ना ही वह कोई दार्शनिक स्थापना दे रहे हैं। उनकी दृष्टि में ना ही कोई तत्व है जिसका विश्लेषण किया जाए। सत्य को किसी विश्लेषण की नहीं बल्कि उसके साक्षत्कार की आवश्यकता है। सिद्धांततः सत्य तक किसी भी प्रणाली या विधि से नहीं जा पहुंचा जा सकता है क्योंकि सत्य साध्य नहीं है जो किसी साधन से जाना जा सके। वह जीवन के रूप में सदा ही शास्वत और स्थिर है। इसके साथ ही सत्य की अभिव्यक्ति भी संभव नहीं है क्योंकि अभिव्यक्ति के सारे साधन सत्य के आकार से सीमित हैं। भाषा, तर्क, प्रतीक आदि का स्वरूप सत्य की तुलना में सीमित है। भारतीय ज्ञान परम्परा भी इसकी पुष्टि करती है।

किन्तु इसके साथ ही उपर्युक्त समझ तक पहुँचने के लिए जे. कृष्णमूर्ति जीवन भर लोगों को समझाते रहे, जिसका आशय है कि दर्शनशास्त्र की भी अपनी भूमिका है जिसके तहत सत्य और यथार्थ के बीच अंतर्सबंधों को दार्शनिक सचेतन चिंतन से समझा जा सकता है। तत्पश्चात दर्शनशास्त्र को त्याग कर सत्य का साक्षत्कार किया जा सकता है। इसका यह भी अर्थ है कि सत्य की भी सुनिश्चित विधि या प्रणाली है। चित्त ही सत्य के लिए बाधक है इसलिए चित्त ही सत्य का साधन भी है जिसे शाम्भवोपाय, शाक्तोपाय, आणवोपाय से पाया जा सकता है। यह सभी उपाय एवं आनोपाय या अ-विधि अर्थात आनंद तक पहुंचाने के लिए हैं, तत्पश्चात सत्य का साक्षात्कार स्वत: ही हो जाता है। चित्त के स्वरूप को ध्यान में रखते हुए ध्यान की 112 विधियों की भी खोज की गयी जो ध्यान 'करने से आरम्भ होकर ध्यान होने तक की' यात्रा तय करने में मदद करती हैं और अंततः ध्यान ही सत्य और सत्य ही जीवन हो जाता है। भारतीय ज्ञान परम्परा में सत्य की सुनिश्चित विधियों का वर्णन किया गया है। जे. कृष्णमूर्ति को दोनों ही परम्पराओं में समझा जा सकता है अर्थात सत्य को दोनों ही परम्पराओं में देखा जा सकता है। सत्य को समझने का अर्थ स्वयं ही सत्य हो जाना है। इस प्रकार जे. कृष्णमूर्ति के अनुसार सत्य की खोज नितांत एक व्यक्तिगत यात्रा है। बाहर की दुनिया की कोई भी वस्तु, दर्शन, विधि, व्यवस्था, धर्म, विज्ञान, तकनीक आदि उसकी कोई मदद नहीं कर सकता। हमारा अनुभव ही हमारा मार्गदर्शन करता है। यही उनकी जीवन दृष्टि है और जीवन दर्शन भी।

संदर्भ सूची

कृष्णमूर्ति, जे. (1961). *दी कलेक्टेड वर्क्स ऑफ़ जे कृष्णमूर्ति: दियर इस नो थिंकर*. अमेरिका: ओनली इज थाट भाग 12 (प्रकाशन) कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ट्रस्ट।

कोपी, आई.एम. (2019). *इंट्रोडक्शन टू लोजिक: (प्रकाशन पन्द्रहवां) रूटलेज लंदन*.

कृष्णमूर्ति, जे. (1955). *दी कलेक्टेड वर्क्स ऑफ़ जे कृष्णमूर्ति*. अमेरिका: व्हाट आर यू सीकिंग भाग 8 (प्रकाशन) कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ट्रस्ट।

कृष्णमूर्ति, जे. (1973). *दी अवेकनिंग ऑफ इंटेलीजेंस*. अमेरिका: (प्रकाशन) कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ट्रस्ट।

कृष्णमूर्ति, जे. (2006). *दी होल मूवमेंट ऑफ लाईफ इज लर्निंग*. अमेरिका: (प्रकाशन) कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ट्रस्ट।

कृष्णमूर्ति, जे. (1991). *दी मिरर ऑफ रिलेशनशिप: लव, सेक्स एंड चेस्टटी*. अमेरिका: (प्रकाशन) कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ट्रस्ट।

कृष्णमूर्ति, जे. (1977). *ट्रूथ एंड एक्चुअलिटी*. अमेरिका: (प्रकाशन) कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ट्रस्ट।

कृष्णमूर्ति, जे. (1954). *दी फर्स्ट एंड लास्ट फ्रीडम*. अमेरिका: (प्रकाशन) कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ट्रस्ट।

कृष्णमूर्ति, जे. और अल्डस हक्सले (1975). *दी फर्स्ट एंड लास्ट फ्रीडम*. अमेरिका: (प्रकाशन) कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ट्रस्ट।

राधाकृष्णन, एस. (2008). *इंडियन फिलोसोफी*. दिल्ली : भाग एक (प्रकाशन) मोती लाला बनारसी दास, (आक्सफोर्ड इंडिया पेपर बैक) अध्याय: उपनिषद दर्शन।

कृष्णमूर्ति, जे. (1956). *कमेंट्रीज ऑन लीविंग*. अमेरिका: (प्रकाशन) कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ट्रस्ट।

कृष्णमूर्ति, जे. (1972). *यू आर दी वर्ल्ड*. अमेरिका: (प्रकाशन) कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ट्रस्ट।

त्रिपाठी, ब्रह्मानंद (2004). *अनुवाद चंद्रिका*. वाराणसी: (प्रकाशन) चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन।

मिश्र, प. (संपा.) (2010). *श्रीमालिनीविजियोत्तरतंत्र*. वाराणसी: (प्रकाशन) सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय।

गुप्ता, ए., और चतुर्वेदी आर. (संपा.) (2012). *श्रीतंत्रालोक*. वाराणसी: भाग चार (प्रकाशन) चौखम्बा विद्या भवन, त्रयोद्शमाहिनकम।

द्विवेदी, व (संपा.) (2004). *विज्ञान भैरव*. वाराणसी: (प्रकाशन) मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन वाराणसी सूत्र 1-161।

भट्टाचार्य, के. सी. (1936). *दी कांसेप्ट ऑफ फिलोसोफी*. कोलकाता: फंडामेंटल ऑफ के सी भट्टाचार्यर्स फिलोसोफी (1975) में आलेख: (प्रकाशन) सरस्वती लाईब्रेरी।

काणे, पा. वा. (2003) *धर्मशास्त्र का इतिहास*. लखनऊ:भाग प्रथम (प्रकाशन) उत्तरप्रदेश हिंदी संस्थान।

1834 से 1917 ई. के मध्य गिरमिटिया मजदूरों का समुद्रपारीय प्रवासन: एक अध्ययन

राजू कुमार*
डॉ. आर. के. बिजेता**

सारांश

ब्रिटिश संसद द्वारा 1833 ई. में दास-प्रथा की समाप्ति की घोषणा के बाद औपनिवेशिक बागानों में अचानक आई श्रमिकों की शून्यता को भरने के लिए 1834 ई. में भारतीय मजदूरों को पाँच वर्ष के अनुबंध/संविदा के आधार पर गिरमिटिया श्रमिक रूप में भर्ती कर एक अनुबंध-प्रथा की शुरूआत की गई जिसके तहत विभिन्न कागज़ी कानूनों को आधार बना कर मॉरीशस, गयाना, फिजी, नेटाल, त्रिनिदाद, सूरीनाम आदि देशों/द्वीपों में प्रवासित किया गया। जब तक इस अमानवीय प्रथा की खामियाँ जग-ज़ाहिर हुई तब तक करीब पंद्रह लाख भारतीयों को ऐच्छिक और अनैच्छिक (बलात) रूप से भर्ती कर समुद्रपार प्रवासित किया जा चुका था। चूँकि यह प्रथा गुलाम-दासों के प्रतिस्थापन के बदले एक विकल्प के रूप में शुरू की गई थी, इसीलिए शुरूआत से ही इसमें कई सारी खामियां मौजूद रहीं थी। लेकिन मांग-पूर्ति और अत्यधिक लाभ कमाने की दृष्टि से यह प्रथा तब तक जारी रही जब तक स्वयं गिरमिटिया श्रमिक और राष्ट्रवादी नेताओं द्वारा इसके खिलाफ़ आन्दोलन करके इसे भी दास-प्रथा के समतुल्य मानकर 1917 ई. में पूर्ण रूप से समाप्त नहीं कर दिया गया। ऐतिहासिक तथ्यों के विश्लेषण पर आधारित यह शोध-आलेख गिरमिटिया मजदूरों के आरंभ होने से लेकर उनके समुद्रपार बागानों में प्रवासन व उन्मूलन पर केन्द्रित है जो ब्रिटिश नीति की ही उपज थी। अध्ययन के लिए ऐतिहासिक शोध विधि और अभिलेखीय साक्ष्यों को आधार बनाया गया है तथा इसकी पुष्टि के लिए तत्कालीन समय की प्रकाशित सरकारी और गैर-सरकारी रिपोर्टों, समाचार-पत्रों, पत्र-पत्रिकाओं, भर्ती सम्बंधित दस्तावेजों के साथ-साथ उस समय के प्रवासित श्रमिकों के वृत्तान्तों और आत्मकथाओं को शामिल किया गया है।

कुंजी शब्द: दास-प्रथा, कुली-प्रथा, अनुबंध, गिरमिटिया मजदूर, समुद्रपारीय प्रवासन

प्रस्तावना

गिरमिटिया मजदूरों से तात्पर्य ऐसे कुशल मजदूरों से है जो ब्रिटिश, फ्रांसीसी और डच साम्राज्य के समुद्रपार देशों/द्वीपों के बागानों में एक अनुबंध/संविदा (एग्रीमेंट) के तहत 1834-1917 ई. के मध्य भर्ती कर प्रवासित किए गए थे। जिनकी संख्या 'द इनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ द इण्डियन डायस्पोरा (2007)' के अनुसार 15 लाख के करीब थी (लाल, रीव्स एवं अन्य, 2007)। तत्कालीन जाँच रिपोर्ट, अन्य दस्तावेज यह स्पष्ट करते हैं कि इन गिरमिटिया मजदूरों की भर्ती ऐच्छिक और अनैच्छिक दोनों रूपों में की जाती थी। इस प्रकार गिरमिटिया मजदूरों की लगातार भर्ती एक प्रथा के रूप में परिवर्तित हो गई जिसमें शामिल भोले-भाले भारतीय एक 'अनुबंध/संविदा वाले सहमति-पत्र' पर अपनी सहमती दे कर भर्ती होते थे। अतः: यह

*शोध छात्र, इतिहास विभाग, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक।
*सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक।

प्रथा बागान मालिकों और कुशल मजदूरों के बीच एक कागज़ी-अधिनियम के तहत संचालित होती थी जिसमें पांच और दस साल का अनुबंध/संविदा/शर्त के साथ-साथ बागानों में दी जाने वाली भोजन, वस्त्र, राशि आदि का विवरण लिखा होता था। इस अनुबंध-पत्र के तहत समुद्रपार देशों/द्वीपों के बागानों में प्रवासित किए जाने वाले प्रतिज्ञाबद्ध भारतीय ही कालांतर में 'गिरमिटिया मजदूर' (इंडेंचर लेबर) कहलाए तथा इस तरह की व्यवस्था आम बोल-चाल में 'गिरमिटिया-प्रथा अथवा गिरमिट-व्यवस्था' पुकारी जाने लगी। यह एक ऐसी शब्दावली थी जो शर्तबंदी के तहत गए भारतीयों के लिए 'पहचान' की सूचक बन गई थी। इतिहासकार मरीना कार्टर (1996) के अनुसार "इनमें वे व्यक्ति शामिल थे, जिन्होंने बागानों तक आवागमन पर हुए व्यय को स्वयं वहन नहीं किया हो बल्कि उसने निश्चित अवधि तक पूर्व निर्धारित वेतन पर कार्य करने और वापसी की शर्त के साथ अनुबंध कर किसी उपनिवेश तक जाने में यातायात सहायता प्राप्त की हो"।

'गिरमिटिया' शब्द का प्रयोग कब से हुआ तथा यह प्रचलन में कब आया, यह बताना बहुत कठिन है। सामान्यत: 'गिरमिट' शब्द पुराने डायस्पोरा के जीवन संसार को बताने के लिए प्रयुक्त किया गया शब्द है। इतिहासकार आशुतोष कुमार बताते हैं कि अभी तक प्राप्त प्रमाणों से यही पता चलता है कि इस शब्द का प्रचलन फिजी में शर्तबंदी की शुरुआत (1879 ई.) से पहले नहीं था क्योंकि इस शब्द का सबसे शुरुआती लिखित प्रमाण फिजी में ही मिलता है (लाल, कुमार एवं यादव, 2012)। 1914 ई. में फिजी से भारत लौटे पं. तोताराम सनाढ्य ने अपने संस्मरण 'फिजीद्वीप में मेरे 21 वर्ष' में प्रतिज्ञाबद्ध कुलियों के लिए कई बार गिरमिट शब्द का प्रयोग किया है (चतुर्वेदी, 1914)। 1915 ई. में महात्मा गांधी ने भी पुस्तक 'द.अफ्रीका में सत्याग्रह का इतिहास' और अपने सभी भाषणों में नटाल के श्रमिकों के लिए 'गिरमिटिया' शब्द का प्रयोग किया है। 1916 ई. में प्रकाशित सी.एफ. एंड्रयूज व पियर्सन के फिजी जांच रिपोर्ट में कई बार 'गिरमिट' शब्द का उल्लेख है (एंड्रयूज व पियर्सन, 1916)। इसी प्रकार इतिहासकार बृज.वी.लाल की पुस्तक 'गिरमिटिया: द ओरिजिन्स ऑफ़ द फिजी इंडियन्स' के प्रकाशन (1983) के बाद इस शब्द का प्रचलन काफी तेजी से बढ़ गया। इस पुस्तक में वह बताते हैं कि 'उनके दादा अपने को गिरमिटिया कहते थे।' पुस्तक 'द लिटरेचर ऑफ द इंडियन डायस्पोरा थिओरिजिंग द डायस्पोरा इमेजनरी' में विजय मिश्रा (2007) ने भी गिरमिट शब्द को विशेषत: इंडो-फिजीयन (फिजी में रहने वाले भारतीय) अनुबंधित व्यवस्था के समय में अपने अनुभव को व्यक्त करने के लिए इस शब्द का प्रयोग किया है"। कुल मिलाकर यह 'गिरमिट' शब्द एग्रीमेंट का ही भोजपुरीकरण या अपभ्रंश रूप है : एग्रीमेंट > ग्रिमेंट > गिरमिट जिसका प्रत्यक्ष संबंध ऐतिहासिक भारतीय प्रवासन से जुड़ा हुआ है। क्योंकि प्रसिद्ध भाषाविद जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन (1886) के किसी भी ग्रंथावली में इस शब्द का जिक्र नहीं है (लाल, कुमार एवं यादव, 2012)। इस शब्द की उत्पत्ति की एक ऐतिहासिक धारणा यह भी है कि शुगर मिलों और बागानों में औपनिवेशिक शासक सभी भारतीयों को 'कुली' कहा करते थे जो भारतीय अनुबंधित श्रमिकों की नज़रों में एक अपमानजनक शब्द था। उदाहरण के लिए द.अफ्रीका में गांधी जी को 'कुली बैरिस्टर' कहा जाता था। प्रसिद्ध मानवविज्ञानी ह्युग टिंकर के अनुसार 'कुली' एक तमिल शब्द है जिसका उपयोग उन लोगों के लिए किया जाता था जो पैसे के लिए श्रम करते थे/हैं। इस तरह 'कुली' का अर्थ औपनिवेशिक शासक 'काम करने/बोझ ढोने' हेतु प्रयोग करते थे (टिंकर, 1974)। भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं ने भी इस प्रथा को 'प्रतिज्ञाबद्ध कुली-प्रथा' पुकारा था।

गिरमिटिया-प्रथा का आरंभ

इस प्रथा का आरंभ सर्वप्रथम 1834 में मॉरीशस के बागानों में काम करने के लिए दास-प्रथा के प्रतिस्थापन रूप में शुरू किया गया था। दासों के प्रबल शुभ चिंतकों (विलियम बिल्बर फोर्स और उनके अनुयायी) द्वारा 'एंटी सेलेवरी सोसायटी' नामक संस्था बनाकर लगातार 'दास-मुक्ति अभियान' चलाने के फलस्वरूप ब्रिटेन की संसद द्वारा इस प्रथा को एक अधिनियम द्वारा 01 मई 1807 ई. को प्रतिबंधित कर दिया गया जिसके फलस्वरूप मार्च 1808 में यह घोषणा की गई कि किसी भी ब्रिटिश जहाज पर दासों का होना गैर-क़ानूनी पाया जाएगा (टिंकर, 1974)। इसके उपरान्त ब्रिटिश प्रधानमंत्री विलियम पिट्ट ने 23 अगस्त 1833 इसी अधिनियम को आगे बढ़ाते हुए ब्रिटेन के सभी उपनिवेशों पर लागू कर दिया और दासों को स्वतंत्रता दे दी गई। इस तरह इस कानून द्वारा अगस्त 1834 ई. तक ब्रिटिश उपनिवेशों के सभी गुलामों को मुक्त कर दिया गया (नार्थरूप, 1995)। इसी प्रकार के अधिनियम को बाद में फ्रंसीसी और डच साम्राज्य ने भी क्रमशः 1848 और 1863 ई. में अपने-अपने उपनिवेशों में लागू किया था। दास-प्रथा की समाप्ति के कारण विभिन्न उपनिवेशों के बागानों में उपजे श्रम अभाव (शून्यता) से निबटने के लिए पहले तो स्वतंत्र दासों को 'अप्रेंटिस व्यवस्था' के आधार पर कार्य प्रयोग में लिया गया फिर उनके करारबद्ध होने से इंकार कर देने पर एक नयी व्यवस्था और नए लोगों को चुना गया।

बागानों में कार्य के प्रति इस प्रकार की अनदेखी और लगातार श्रमिकों की मांग ने श्रम के वैकल्पिक स्रोतों के लिए अनुबंध-प्रथा को एक विकल्प के रूप में चुनने पर विवश किया। विकल्प के रूप में भारत की ओर देखने के साथ-साथ आरंभिक तौर पर पुनः यूरोप, अफ्रीका एवं एशिया के चीन के श्रमिकों पर भी ध्यान दिया गया था जो विभिन्न प्रयोगों में सफल नहीं हो सके। चूँकि पहले तो यह श्रमिक न ही विषुवतीय प्रदेश की कठोर जलवायु में कार्य करने में अभ्यस्त थे और न ही इनमें बागानों में कार्य करने के प्रति कोई लगाव था। भारत में इस समय ब्रिटिश शासन था और ब्रिटिश प्रशासक भारतीय श्रम से काफी परिचित थे। इस प्रथा के शुरू होने से पहले कई भारतीयों को कैदियों और दासों के रूप में मॉरीशस, बर्मा, मलाया में भेजा जा चुका था। मॉरीशस के गवर्नर फारकुहार के समय (1815-20) से अनेक भारतीयों को दास बनाकर एवं आपराधिक दोष-सिद्ध करके समुद्रपार के अन्य देशों में भी भेजा गया था जिनसे सड़कें, पुल, चर्च और मकान बनाने का कार्य आदि कराया जाता था (बर्नवेल, 1948)।

भारत से पहली बार अनुबंध अधिनियमित आधारित प्रवासन का साक्ष्य फ्रांसीसी सरकार के द्वारा 18 जनवरी, 1826 ई. को फ्रांसीसी बस्ती (कॉलोनी) से मिलता है जो हिन्द महासागर के बोरबन और रीयूनियन द्वीपों के लिए हुआ था। 1830 तक आते-आते इन फ्रांसीसी बस्तियों (करैकल और पांडिचेरी) से 3,012 मजदूरों को चोरी-छिपे समुद्रपार द्वीपों में भेजा जा चुका था। 1830 में ही जब फ्रांसीसी व्यापारी जोजेफ़ आरगड द्वारा 130 मजदूरों को कलकत्ता से बाहर भेजा जा रहा था तब ब्रिटिश भारतीय सरकार ने इस प्रवासन पर अंकुश लगाया तथा पहली बार कुछ प्रवासन के अधिनियमों का उपयोग किया। इस अधिनियम में पाँच वर्ष का अनुबंध तय किया गया तथा आठ रूपया प्रति महीना वेतन और राशन आदि देने की बात कही गई (टिंकर, 1974)। इसके बाद 1833 ई. में मॉरीशस के बागानों से दासों को मिली स्वतंत्रता ने ब्रिटिश कंपनी को गहरी चिंता में डाल दिया था, लेकिन यह चिंता भारतीयों को मॉरीशस के बागानों में भेज कर जल्द ही दूर कर दी गई। अनुबंध के आधार पर हुए अनगिनत प्रवासन के बाद भी मॉरीशस में अनेक भारतीय दास उपलब्ध थे जिसका वर्णन जेम्स हॉलमैन (1829) तथा विकासवाद सिद्धांत के महान प्रवर्तक एवं वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन (1837) ने अपने डायरियों में किया है।

दूसरी तरफ औपनिवेशिक काल में बंधुआ मजदूरी एवं आतंरिक प्रवासन जोरों पर था, ब्रिटिश आर्थिक नीति से यहाँ बेरोजगारी चरम पर थी, उद्योग-धंधे नष्ट हो गए थे, अकाल-सूखा, भारी जनसंख्या-घनत्व आदि महामारी से लोग त्रस्त थे। कुल मिलाकर लोग काम की तलाश में इधर-उधर भटकते रहते थे (टिंकर, 1974)। विशेषकर इस समय बंगाल प्रेसीडेंसी के मुख्य क्षेत्रों से असम के चाय बागानों के लिए आतंरिक प्रवासन लगातार हो रहा था। इस आतंरिक प्रवासन में छोटानागपुर के क्षेत्रों के हील-कुलियों का कार्य सबसे अलग और सफ़ल पाया गया। छोटानागपुर के इन हील-कुलियों में उंराव, मुंडा, हो, संथाल आदि जनजातीय समुदाय शामिल थे जो एक विशिष्ट आर्थिक संस्था के अंतर्गत काम करते थे। इस संस्था से कृषि गतिविधियों में काफी मदद होती थी। एक तो यह स्वयं झूम कृषि पद्धति द्वारा खेती करने के लिए अपने आप एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रवासित होते रहते थे तथा दूसरे, यह प्रत्येक वर्ष बड़े-बड़े जमींदारों के यहां धान की खेती आदि का कार्य करने के लिए पूरे समूह के साथ भी प्रवासित होते रहते थे जो कालांतर में धांगर कहलाने लगे (टिंकर, 1974)। बदले में इन मजदूरों को कुछ सालाना मज़दूरी के साथ-साथ थोड़ा सा भोजन और रहने के लिए छत भी मिलता था (विद्यार्थी एवं अन्य, 1976)।

सबसे पहले इन्हीं 36 हील कुलियों के समूह को अगस्त-सितम्बर, 1834 को मॉरीशस के बागानों में काम करने के लिए भर्ती किया गया (टिंकर, 1974)। इसे इतिहास में 'ग्रेट एक्सपेरिमेंट' अथवा 'महान प्रयोग' के नाम से जाना गया है। इस 'ग्रेट एक्सपेरिमेंट' के सफल होते ही उसी वर्ष मॉरीशस के लिए छोटानागपुर के ही कुल 75 धांगरों (हील कुलियों) को पुन: भर्ती करके भेजा गया (लाल, रीव्स एवं अन्य, 2007)। 1834 से 1838 तक जब सर्वप्रथम कुशल आदिवासी हील कुलियों को मॉरीशस तथा डमेरेरा (ब्रिटिश गयाना) के बागानों में भेजा गया तब उनके बारे में यह कहा गया कि "इन आदिवासियों को खाने-पीने और सोने के अलावा और किसी चीज की आवश्यकता नहीं है, जिसके बदले में यह श्रम करने को हमेशा तैयार हैं" (राय, 2015)।

अन्य देशों में उत्प्रवासन (समुद्रपारीय प्रवासन)

1834 ई. में जब इस प्रथा को शुरु किया गया तब इस प्रणाली के तहत भेजे जाने वाले देशों में मॉरीशस पहला देश बना था जो एक ब्रिटिश उपनिवेश था। इसके बाद अन्य ब्रिटिश उपनिवेशों (ब्रिटिश गयाना, नताल, जमैका, ग्रेनेडा, सेंट किट्स, सेंट ल्यूसिया, सेंट विंसेट, त्रिनिदाद-टोबैगो, फ़ीजी, बारबडोसा, समोआ द्वीप आदि) में भी इसी प्रक्रिया से भर्ती कर भारतीयों को भेजा गया। इतना ही नहीं डच उपनिवेश (सूरीनाम) तथा फ्रांसीसी उपनिवेश (गेड़ेल्युप, मार्टीनीक्यू, रीयूनियन द्वीप, सेशेल्स) के देशों/द्वीपों में भारतीयों को भेजा गया जो महारानी और उसके मित्र राष्ट्रों के संधि का परिणाम था (गौतम, 2015)।

सारणी-1: गिरमिटिया-प्रथा में विभिन्न देशों/द्वीपों में भर्ती गिरमिटिया मजदूरों की संख्या

समुद्रपारीय देश/द्वीप	समय-काल	गिरमिटिया मजदूर	समुद्रपारीय देश/द्वीप	समय-काल	गिरमिटिया मजदूर
मॉरीशस	1834-1900	453,063	सेंट किट्स	1860-1861	337
ब्रिटिश गुयाना	1838-1916	238,909	सेंट विसेंट्स	1860-1880	2472
मलाया	1844-1910	250,000	रीयूनियन	1861-1883	26,507
त्रिनिदाद	1854-1916	143,939	सूरीनाम	1873-1916	34,000

जमैका	1854-1913	36,412	फिजी	1879-1916	60, 965
ग्रेनेडा	1856-1885	3200	पूर्वी अफ्रीका	1896-1921	39,282
सेंट ल्यूसिया	1858-1895	4350	सेशेल्स	1904-1916	6315
नेटाल	1860-1911	152,184	---	---	----

स्रोत- बृज.वी. लाल, और अन्य (संपा.), (2007). द इनसाइक्लोपीडिया ऑफ द इंडियन डायस्पोरा,पृ. 46

इस तरह 1834 ई. से 1917 तक निरंतर चलती रही इस प्रथा में करीब 15 लाख भारतीयों को भर्ती कर समुद्रपार विभिन्न देशों-द्वीपों में प्रवासित किया गया था जिसमें महिला, पुरुष और बच्चे भी शामिल थे। इस प्रथा में करीब 80 प्रतिशत भर्ती उत्तर भारत के क्षेत्रों से हुई थी जिसमें सबसे ज्यादा उत्तरदायी कारण ब्रिटिश सरकार की आर्थिक नीति थी। जैसे- हथकरघा उद्योग में गिरावट, ज़मीनों के बढ़ते लगान, अकाल, औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया, विभिन्न विद्रोहों, बड़े पैमाने पर अशिक्षा आदि को इसके लिए जिम्मेवार माना गया है जिसके कारण भारतीयों को प्रवासित होने पर मजबूर होना पड़ा था। इसमें सबसे ज्यादा प्रवासन अकाल प्रभावित क्षेत्रों से ही हुआ था जो एक शोध का विषय भी है। साथ ही भारत में सामाजिक रूढ़िवादी कारण भी भर्ती के अन्य कारणों में शामिल था। निरंतर चलती रही इस प्रथा में बीच-बीच में कई बार जाँच और संशोधन भी होते रहे थे। जैसे कि1844 के कानून में महिलाओं की भर्ती के बारे में यह कानून बनाया गया था कि सौ पुरुषों पर चालीस महिलाओं की भर्ती की जाएगी (चतुर्वेदी, 1985)।

गिरमिटिया मजदूरों की भर्ती एवं शर्तें

इस-प्रथा में गिरमिटिया मजदूरों की भर्ती कई प्रक्रियाओं और पड़ावों से होकर गुजरती थी। चूंकि यह प्रथा मांग और पूर्ति के नियम पर आधारित थी इसलिए बागान मालिकों की मांगों के अनुरूप इसकी आपूर्ति ब्रिटिश अधिकारी किया करते थे। इस प्रथा में भर्ती करने के लिए मुख्य अधिकारी के तौर पर एक उत्प्रवासी अधिकारी होता था जिसे प्रोटेक्टर ऑफ़ इमिग्रेंट्स के नाम से जाना जाता था। इसके अंतर्गत कई उप-प्रोटेक्टर ऑफ़ इमिग्रेंट्स और प्रत्येक जिले के जिला मजिस्ट्रेट कार्य करते थे (कार्टर, 1996)। जिसके माध्यम से गांव/क़स्बा के स्तर पर अनेक मध्यस्थों को मजदूरों की खोज के लिए एक अनुज्ञप्ति (लाइसेंस) दे दी गई होती थी। इन्हीं लाइसेंसधारी मध्यस्थों (रिक्रूटर्स) को उत्तर भारत में 'अरकाटी/अरकटिया' के नाम से जाना जाता था जो पुरूष और महिला दोनों होते थे (कार्टर, 1996)। गिरमिटिया मजदूरों को बहाल करने में इन अरकटियों की बड़ी भूमिका होती थी। वस्तुत: इनकी कई श्रेणियां भी होती थीं। कुछ अरकाटी सरकारी थे तो कुछ अर्द्ध-सरकारी थे तो कुछ कमीशन पर कार्य करते थे (ग्रियर्सन एवं पीचर, 1883)।

भर्ती करने वाले यह अरकाटी गांव, मेलों, तीर्थस्थानों आदि अन्य स्थानों पर फैले होते थे जो लोगों को नौकरी का लाभ दिखाकर, कुशल जीवन के सपने दिखाकर, यहां की आर्थिक-सामाजिक परिस्थिति का हवाला देकर या बहला-फुसला कर धोखे से भर्ती होने पर मजबूर करते थे। जो व्यक्ति इनके चंगुल में आ जाता उसे नजदीकी उप-डीपो (जैसे गोरखपुर, फैजाबाद, मथुरा, बनारस, कानपुर आदि) में ले जा कर जमा कर देते थे। यह उप-डीपो उन मजदूरों का पहला पड़ाव होता था जहाँ वह एक दूसरे से अपने सुख-दुःख साझा करते थे। कई दिनों तक उप-डीपो में बंद रहने के बाद जब अरकाटी बहुत अधिक मात्रा में

लोगों को एकत्रित कर लेता था, तब जिला मजिस्ट्रेट के आदेश पर सिविल सर्जन द्वारा उनकी डॉक्टरी परीक्षा पूरी कर उन्हें जिला मजिस्ट्रेट के सामने पेश कर उनकी भर्ती (अनुबंध) सुनिश्चित कर, उनके नाम से एक पास जारी कर दिया जाता था। जिसके उपरान्त ही अरकाटी अपना वेतन (दलाली) पाता था (चतुर्वेदी, 1985)। इसके बाद इन भर्ती हुए मजदूरों का सारा खर्च सरकार उठाती और उन्हें तुरंत ही यातायात के साधनों द्वारा मुख्य डीपो (कलकत्ता, मद्रास, बाम्बे) भेज दिया जाता था जहाँ उन्हें जहाज के लिए कई दिनों-महीनों तक इंतजार करना पड़ता (दूसरा पड़ाव), फिर पुन: एक बार डॉक्टरी परीक्षण करके जहाज पर चढ़ा दिया जाता था (गौतम, 2015)। तोताराम सनाढ्य, मुंशी रहमान खान जैसे गिरमिटिया मजदूर अपने संस्मरणों में यह लिखते हैं कि एक बार कोई व्यक्ति इस डीपो में बंद हो जाता तब उसे वहां से छुटकारा पाना मुश्किल ही था। अगर कोई उनकी खोज करते डीपो तक आ जाता तो उन्हें मिलने तक नहीं दिया जाता था।

यह मजबूर कुली जिस सहमति-पत्र पर हस्ताक्षर या जबरन अंगूठे का निशान लगाए होते थे उनकी शर्तें देखने में काफी आकर्षक होती थीं। गंतव्य स्थान पर पहुँचने पर यह शर्तें सिर्फ कागजी बातें ही साबित होती थीं क्योंकि शर्त पूरा नहीं करने पर कालांतर में अनेकों बार इन श्रमिकों द्वारा विद्रोह किए जाने की घटना होती थीं। इस प्रथा की शर्तें कुछ इस प्रकार की थीं (लाल एवं अन्य, 2007):-

1. पाँच वर्ष तक काम करना होगा।
2. आने-जाने का मार्ग-व्यय मालिकों द्वारा दिया जाएगा।
3. पुरूष का वेतन 'पाँच रूपया' और स्त्री का वेतन 'चार रूपया' मासिक दिया जाएगा।
4. राशन प्रतिदिन दिया जाएगा, जो इस प्रकार था-
   (क) प्रति व्यक्ति एक सेर चावल पुरूष को
   (ख) प्रति महिला तीन पाव चावल
   (ग) पाव भर दाल
   (घ) आधी छटांक नमक, और सरसों तेल।
5. साल भर में एक बार दी जाने वाली वस्तुएँ:-
   (क) एक धोती (ख) एक कमीज (ग) दो कम्बल (घ) एक फितई (जाकेट) और दो टोपियाँ आदि।
6. नियुक्ति के समय छ: मास का वेतन अग्रिम दिया जाएगा, शेष प्रति मास मिलेगा।

उपसंहार

प्राचीन काल से ही भारत से समुद्रपारीय प्रवासन के साक्ष्य दिखाई पड़ते हैं। हड़प्पा सभ्यता-संस्कृति के काल से भारत का पश्चिम और मध्य एशिया के देशों से अत्यंत निकटतम संपर्क व्यापारिक एवं धार्मिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण से देखा जा सकता है। द.पू. एशिया में भारतीय शासकों का उपनिवेश होना यह साबित करता है कि भारतीयों ने समुद्रपार देशों में अपनी सभ्यता-संस्कृति को प्रसारित किया। मध्यकाल में यह प्रवासन धूमिल सा पड़ गया लेकिन औपनिवेशिक काल में भारतीयों का समुद्रपारीय प्रवासन 1830 के दशकों के पश्चात एक बार फिर दिखाई पड़ता है। इस समय यह प्रवासन गुलाम, दोषसिद्ध अथवा गिरमिटिया मजदूरों के करार के रूप में शुरू हुआ। भारतीय गिरमिटिया मजदूरों का समुद्रपारीय प्रवासन एक पूर्वनियोजित ऐतिहासिक घटना है जो अफ्रीकी गुलाम दासों के स्थान पर शुरू किया गया था। यह प्रथा पूर्ण रूप से बागान मालिकों और भारतीय मजदूरों के मध्य ब्रिटिश अधिकारियों के माध्यम से

सिर्फ कागज़ी अधिनियमों से संचालित होती थी जिसमें कई खामियां शामिल थीं। जब यह प्रथा 1834 ई. में मॉरीशस के लिए शुरू की गई तब इसमें शुरूआती खामियों को देखते हुए इस प्रथा के तहत प्रवासन को कुछ वर्षों के लिए रोक देना पड़ा, लेकिन बागान मालिकों के लगातार श्रम-मांग और मुनाफ़े को देखते हुए यह प्रथा पुन: संशोधित कर शुरू करना पड़ी। इतना ही नहीं भारतीयों की कड़ी मेहनत और मुनाफ़े को देखते हुए ने भारतीय मजदूरों की मांग अब ब्रिटिश गयाना के बागानों से भी आने लगी। यह भारतीय मजदूरों की कड़ी लगन का ही परिणाम था कि एक-एक कर नताल, वेस्ट इंडीज, दक्षिणी अमेरिका, त्रिनादाद, फ़ीजी आदि के बागानों में भी भारतीयों को भेजना पड़ा। इतना ही नहीं फ्रांसीसी और डच उपनिवेशों के समुद्रपार बागानों में भी भारतीय मजदूरों को अपने लाभ हेतु ब्रिटिश अधिकारियों ने भेजा था। चूंकि यह प्रथा दास प्रथा का ही दूसरा संस्करण था इसलिए इस प्रथा में लगातार खामियां जगजाहिर होती गईं और जिस प्रकार दास-प्रथा को प्रतिबन्ध किया गया था उसी प्रकार कुछ गिरमिटिया मजदूरों के कड़े संघर्षों और राष्ट्रवादी नेताओं के अथक प्रयासों के फलसवरूप इस प्रथा को 1917 में जड़ से उन्मूलित किया गया।

संदर्भ सूची

कोलोनियल सेक्रेटरी ऑफिस मिनट पेपर्स, 850/1903, नेशनल आर्काइव्स ऑफ़ फ़ीजी, सुवा।

लाल, बृज.वी. रीव्स, पी. और अन्य (संपा.), (2007). *द इनसाक्लोपीडिया ऑफ द इंडियन डायस्पोरा*. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 46।

कार्टर, एम. (1996). *वायसेस फ्रॉम इन्डेंचर: एक्सिपिरियंस ऑफ़ इण्डियन माइग्रेंट्स इन ब्रिटिश एंपायर*. लंदन: एल.यू.प्रेस, पृ. 48।

लाल, बृज वी. कुमार, ए. एवं अन्य. (2012). *भूतलेन की कथा (गिरमिट के अनुभव, तोताराम सनाढ्य)*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 9।

कुमार, ए. (2017). *कुली ऑफ़ द एम्पायर: इन्डेंचर लेबर इन द सुगर कॉलोनिस, 1830-1920*. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

चतुर्वेदी, बी. (1914). *फिजी द्वीप में मेरे 21 वर्ष. (सं.- पं. तोताराम सनाढ्य)*. आगरा: शिव आर्ट्स प्रिंटर्स (चतुर्थ संस. 1973)।

एंड्रयूज, सी.एफ. एण्ड पियर्सन, डब्ल्यू. डब्ल्यू. (1916). *इन्डेंचर लेबर इन फिजी: एन इंडिपेंडेंट इंक्वायरी*. रिपोर्ट ऑन इण्डियन इन्डेंचर लेबर इन फ़ीजी।

मिश्रा, वि. (2007). *द लिटरेचर ऑफ द इंडियन डायस्पोरा थिओरिजिंग द डायस्पोरा इमेजनरी*. रूटलेज प्रेस, पृ. 22।

ग्रियर्सन, जी.ए. एंड मेजर पी. (1883). *इन्कॉयरी इन्टू इमिग्रेशन प्रोसिडिंग*. संख्या 9-15, रेवेन्यू एंड एग्रीकल्चर डिपार्टमेंट, पृ.सं.1020-21।

टिंकर, एच. (1974). *ए न्यू सिस्टम ऑफ़ सेलेवरी: द एक्सपोर्ट ऑफ़ इण्डियन लेबर ओवेरसिज 1830-1920*. लंदन: ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 42।

नार्थरूप, डी. (1995). *इंडेंचर लेबर इन द ऐज ऑफ़ इम्पीरियलिज्म 1834-1922*. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ.19।

बर्नवेल, पी.जे. (संपा.). (1948). *विजिट एण्ड डिस्पैचेस; मॉरीशस, 1589-1948*. मौरीसस: पोर्ट

लुईस, पृ. 235।

विद्यार्थी, एल.पी. एवं अन्य. (1976). *ट्राइबल कल्चरल इन इन्डिया*. नई दिल्ली: कांसेप्ट पब्लिशिंग हॉउस, पृ.सं.112-113।

राय, ए. के. (2015). *गिरमिटिया मजदूरों का प्रवासन (ब्रिटिश गयाना के संदर्भ में)*. दिल्ली: यश पब्लिकेशंस, पृ.32।

गौतम, एम. (2015). *करिबियन देशों में हिंदी भाषा और समाज*. बहुवचन, म.गा.अं.हि.विवि, वर्धा, जुलाई-सितम्बर, पृ.सं. 42-43।

चतुर्वेदी, जे.पी. (1885). *फ़ीजी में प्रवासी भारतीय*. भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, पृ. 115।

गुप्ता, एम. एवं राय, आर.आर. (2015). *महात्मा गांधी और गिरमिटिया*. अनुसृजन, वर्धा : म.गा.अ. हि. वि.,पृ. 89-93।

तुरतुरिया, बलौदाबाजार (छत्तीसगढ़) से प्राप्त प्राचीन मूर्तिशिल्प एवं वास्तुखण्ड का विवेचन

हेमन्त कुमार वैष्णव*

सारांश

छत्तीसगढ़ क्षेत्र अपनी प्राचीन सांस्कृतिक कला एवं परंपरा के लिए संपूर्ण भारत में पहचाना जाता है। किंतु इस स्थान का एक समृद्ध कलात्मक एवं गौरवशाली इतिहास भी रहा है जिसकी बानगी हमें आज भी यदा-कदा बिखरे प्रस्तर खण्डों एवं मूर्तियों के रूप में दिखाई पड़ती है। छत्तीसगढ़ में समय-समय पर हुए सर्वेक्षण से विभिन्न कालों की प्रस्तर मूर्तियां एवं स्थापत्य प्राप्त होते हैं जो इस बात के परिचायक हैं कि यहाँ लोककला के अतिरिक्त अन्य कलात्मक पक्ष भी विद्यमान था। ऐसे ही कुछ साक्ष्य हमें तुरतुरिया से भी प्राप्त होते हैं। पुरास्थल तुरतुरिया बलौदाबाजार जिले में स्थित है। यह स्थल सिरपुर से 37 किलोमीटर की दूरी पर बारनवापारा अभ्यारण्य के घने जंगलों के मध्य स्थित है। सिरपुर के समीप होने के कारण इस स्थान का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। भारत सरकार के सहायक पुरातत्त्वीय सर्वेक्षक सर जे.डी. बेगलर ने 1874-75 तथा 1875-76 में सर्वप्रथम इस क्षेत्र का पुरातात्त्विक सर्वेक्षण किया था। इस पुरास्थल से अनेक प्रस्तर प्रतिमाएं एवं स्थापत्य खण्ड प्राप्त हुए हैं जो बौद्ध, शैव एवं वैष्णव धर्म से संबंधित हैं। इन पुरावशेषों के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि यह स्थान प्राचीन काल से ही धार्मिक मूर्तिकला के लियह छत्तीसगढ़ में विशेष महत्व रखता है। इसका विश्लेषण ही शीर्षांकित शोधपत्र का उद्देश्य है।

बीज शब्द - छत्तीसगढ़, पुरातत्त्व, प्रतिमाएं , शिल्पकला, मूर्तिशिल्प

प्रस्तावना

छत्तीसगढ़ के राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास की समृद्धि में वास्तु एवं शिल्पकला का विशेष योगदान है। छत्तीसगढ़ के मल्हार, सिरपुर, राजिम, कवर्धा तथा बस्तर आदि क्षेत्रों से अनेक ऐसे वास्तु एवं शिल्पकला के उदाहरण प्राप्त हुए हैं जो इस अंचल के प्राचीन स्थापत्य एवं मूर्तिकला को गौरव प्रदान करते हैं। छत्तीसगढ़ की वास्तु एवं शिल्पकला में आसपास के क्षेत्रीय शैलियों का सामंजस्य दिखाई पड़ता है। इस भू-भाग में किए गए सर्वेक्षण एवं उत्खनन कार्यों से अनेक वास्तु एवं शिल्पावशेषों की प्राप्ति हुई है। अधिकांश वास्तु एवं शिल्पावशेष ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैन धर्म से संबंधित हैं जिससे ज्ञात होता है कि इस क्षेत्र में विभिन्न धर्म एवं संप्रदाय पल्लवित होते रहे हैं।

कुछ ऐसे ही प्रमाण हमें तुरतुरिया नामक स्थान से भी मिलते हैं जहां से प्राप्त प्रतिमाएं एवं स्थापत्य खंड कला की दृष्टि से अत्यंत रोचक व महत्वपूर्ण हैं। तुरतुरिया, छत्तीसगढ़ राज्य के बलौदाबाजार जिले में बारनवापारा अभ्यारण्य के घने जंगलों के मध्य बलमदेही नामक स्थानीय नदी के तट पर स्थित है। प्रसिद्ध पुरास्थल सिरपुर इस स्थान से लगभग 37 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यह स्थान ऐतिहासिक तथा धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। जनश्रुति में इस स्थान को महर्षि वाल्मीकि का आश्रम स्थल कहा जाता

*शोध छात्र, प्रा.भा.इ.सं. एवं पुरातत्त्व विभाग, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक।

है। स्थानीय लोगों का मानना है कि त्रेतायुग में श्रीराम द्वारा माता सीता का परित्याग किए जाने पर माता सीता ने इसी स्थान पर आश्रय प्राप्त किया तथा अपने दोनों पुत्रों लव व कुश को यहीं जन्म दिया था जिसे वर्तमान में जानकी कुटी कहा जाता है।

इस स्थान का पुरातात्त्विक सर्वेक्षण सर्वप्रथम भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के सर जे. डी. बेगलर ने 1874-76 के मध्य किया था (बेगलर, 1884, पृ. 146-153)। सिरपुर के समीप होने तथा अनेक पुरावशेष प्राप्त होने के कारण इस स्थान का गहन अध्ययन करना नितांत आवश्यक हो जाता है।

शोध विधि एवं पद्धति

लेखक द्वारा तुरतुरिया क्षेत्र भ्रमण के दौरान प्राप्त पुरावशेषों के महत्व को ध्यान में रखते हुए यह शोध पत्र तैयार किया गया है जिसके लिए इस पुरास्थल से संबंधित साहित्यिक स्रोतों का अध्ययन किया गया है। हालांकि वास्तु खंड एवं प्रतिमाओं की माप तथा विवरण डॉ. के पी वर्मा के द्वारा प्रकाशित है (वर्मा, 2014, पृ. 90-94) तथापि शिल्पावशेषों के पुनः मापन हेतु लेखक द्वारा त्रि-अक्षीय मापन पद्धति का अनुसरण किया गया है। साहित्यिक स्रोतों से ज्ञात शिल्पावशेषों के विवरणों का पुनरावलोकन तथा विश्लेषण पश्चात कुछ विशेष एवं नवीन तथ्यों को इस शोधपत्र में प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है। तुरतुरिया से प्राप्त स्थापत्य खंड एवं प्रतिमाओं की शैली सिरपुर की कला शैली से मिलती-जुलती है जिसके आधार पर तुरतुरिया की कला शैली का निर्धारण करने का प्रयास किया गया है। साक्षात्कार के दौरान तुरतुरिया आने वाले पर्यटक एवं जानकीकुटी के पुजारी के माध्यम से यहां प्रचलित किवदंतियों का ज्ञान हुआ। यहां से प्राप्त पुरावशेषों का विवरण इस प्रकार है -

स्थापत्य खंडों का विवरण

स्तम्भ - तुरतुरिया से पाषाण स्तंभ सर्वाधिक प्राप्त हुए हैं जो मृदु एवं कठोर बलुआ प्रस्तरों पर निर्मित हैं। यह स्तंभ अलंकृत हैं जिन पर वानस्पतिक, ज्यामितीय तथा हीरक आकृतियां उत्कीर्णित हैं। इन स्तंभों को अलंकरण की दृष्टि से तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है -

1. मानवीय अंकन वाले स्तंभ
2. आभूषण अलंकरण युक्त स्तंभ तथा
3. सादे स्तंभ अथवा बिना अलंकरण वाले स्तम्भ

1. मानवीय अंकन वाले स्तंभ -आधुनिक मंदिर के समीप कुंड के बाहर दो प्राचीन स्तंभ विद्यमान हैं जो मृदु बलुआ प्रस्तर पर निर्मित हैं। दोनों स्तंभों का निचला भाग भूमि में दबा हुआ है तथा शेष ऊपरी भाग की अधिकतम लंबाई लगभग 144 सेमी है। इन स्तंभों का अधिकांश भाग अलंकृत है जो क्षरित हो रहा है। दोनों स्तंभ अष्टफलकीय हैं जिन पर पुष्प अलंकरण के साथ मानवीय अंकन की पंक्तियां भी प्राप्त होती हैं। इनमें नीचे से ऊपर की ओर क्रमशः युगल प्रतिमाएं, भारवाहक, मालाधारी गंधर्व तथा पुनः युगल प्रतिमाओं की पंक्तियों का अंकन प्राप्त होता है (चित्र क्र. 1)। दोनों स्तंभों के शीर्षभाग पर पूर्णघट निर्मित हैं। इस प्रकार के घटपल्लव गुप्तोत्तर कालीन मंदिर एवं गुफाओं के स्तंभों में भी प्राप्त होते हैं। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह स्तंभ गुप्तोत्तर शैली में निर्मित हैं। इसी प्रकार का एक अन्य स्तंभ प्रवेशद्वार के पश्चिमी छोर पर स्थित है जिसका अधिकांश भाग क्षरित हो चुका है तथा अलंकरण अस्पष्ट है। इस स्तंभ की अधिकतम लंबाई 130 सेमी है।

राम जानकी मंदिर के अंदर सीढ़ियों के पास बड़े कक्ष के द्वार के दक्षिणी छोर पर एक चतुष्फलकीय अलंकृत स्तंभ जड़ा हुआ है जिस पर युगल प्रतिमाएं एवं नाग पुरुषों का अंकन है। स्तंभ के दृष्टव्य भाग की माप 84 सेमी × 30 सेमी × 30 सेमी है।

इसी द्वार के उत्तरी छोर पर आमलक युक्त चतुष्फलकीय प्रस्तर स्तम्भ जड़ा हुआ है जिसके फलकों पर लघु अलिंद बने हुए हैं। इन अलिंदों में विष्णु के दशावतारों का अंकन है जिसमें मत्स्य, कुर्म, परशुराम, वामन, वराह एवं राम अवतार दृष्टव्य हैं। स्तंभ के शीर्षभाग में कोनों पर नागफण का अंकन है। उपर्युक्त साक्ष्यों से यह प्रतीत होता है कि यह स्तंभ गरुड़ स्तंभ का भाग रहा होगा।

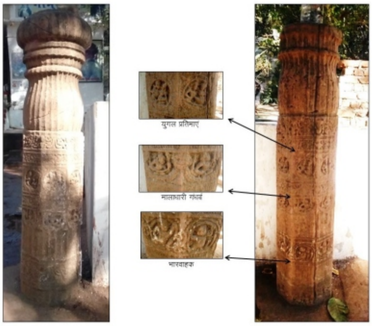

चित्र क्र. 1, मानवीय अंकन वाले स्तंभ (छायाचित्र: लेखक)

चित्र क्र. 2, (A) आभूषण अलंकरण युक्त स्तंभ (B) सादे स्तंभ (छायाचित्र: लेखक)

2. आभूषण अलंकरण युक्त स्तंभ - राम जानकी मंदिर परिसर में जलकुंड के गोमुख के पास दो लघुस्तंभ विद्यमान हैं। दोनों स्तंभ एक समान हैं, प्रत्येक स्तम्भ की माप 86 सेमी × 21 सेमी × 21 सेमी है। यह कठोर प्रस्तर पर निर्मित हैं तथा पूर्णतः अलंकृत हैं। दोनों स्तम्भ का निचला भाग अष्टफलकीय है जिनमें चार पंक्तियों में पुष्प आकृतियां निर्मित हैं। इनके ऊपर ग्रीवाभाग पर आभूषण आकृतियां निर्मित हैं तथा शीर्षभाग चतुष्फलकीय है। इनमें भी पुष्प अलंकरण प्राप्त होता है (चित्र क्र. 2 A)। इसी के समान दृष्टव्य एक स्तंभ कुंड की मूर्तियों के पास स्थापित है, किन्तु इसका शीर्षभाग खंडित है एक अन्य स्तंभ इस परिसर के प्रवेश द्वार के पूर्वी छोर पर स्थित है जिसकी माप 134 सेमी × 32 सेमी × 32 सेमी है। इसका आधार भाग चतुष्फलकीय है जिस पर पूर्ण विकसित पुष्पों का अंकन है। इसके ऊपर का भाग षोडशफलकीय है, जिनमें

कीर्तिमुख से निकल रहे आभूषण की लड़ियों का अंकन है। इसके ऊपर का भाग अष्टफलकीय है जिनमें तीन पंक्तियों में पुष्प एवं आभूषण आकृतियों का अंकन है। ग्रीवाभाग पर पुष्पदलों का अंकन तथा शीर्षभाग पर लटकते हुए आभूषण एवं पुष्पवल्लरी का अंकन है। अलंकरण की दृष्टि से इन स्तंभों का काल 9वीं से 10वीं शताब्दी के मध्य रखा जा सकता है।

3. सादे स्तंभ या बिना अलंकरण वाले स्तम्भ - बलमदेही नदी के दक्षिण में मातागढ़ जाने वाले रास्ते पर एक कुटिया के अंदर कुछ प्रस्तर स्तंभ के भाग विद्यमान हैं (चित्र क्र. 2 B)। यह स्तंभ अर्धनिर्मित प्रतीत होते हैं जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि इन स्तंभों का निर्माण इसी स्थान पर किया जाता रहा होगा। यह स्तंभ सिरपुर के गंधेश्वर मंदिर के मंडप के एक स्तंभ से समानता रखते हैं। ऐसा ही एक स्तंभ यहाँ के मातागढ़ मंदिर में स्थापित है। इन स्तंभों में अलंकरण का अभाव है।

4. मंदिरावशेष - मातागढ़ जाने वाले रास्ते पर सीढ़ियों के दायीं ओर लगभग सौ मीटर की दूरी पर एक प्राचीन टीला है। इस टीले पर प्रस्तर स्तंभ के भाग बिखरे पड़े हैं तथा टीले में ईष्टिका निर्मित संरचना दृष्टव्य है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि प्राचीन समय में यहाँ मंदिर अथवा विहार रहा होगा। आधुनिक राम जानकी मंदिर के गर्भगृह में विद्यमान प्राचीन प्रस्तर स्तंभों से यह प्रतीत होता है कि वर्तमान मंदिर प्राचीन मंदिर के अवशेषों पर निर्मित है।

सिरदल - जानकी कुटी में कोनों पर चार स्थापत्य खंड स्थापित हैं जिनमें दो खंडों पर नागपुरुष का अंकन तथा एक खंड पर गजाभिषेक लक्ष्मी का अंकन है (चित्र क्र. 3)। इस प्रकार नागपुरुषों सहित गजाभिषेक युक्त सिरदल सिरपुर के तिवरदेव विहार में प्राप्त होता है।

चित्र क्र. 3, सिरदल (छायाचित्र: लेखक)

मंदिर के शिखर का कलश भाग - राम जानकी मंदिर में प्रवेश करते ही दाईं ओर एक शिवलिंग स्थापित है किन्तु वर्तमान में जलहरी में स्थापित लिंगभाग प्राचीन मंदिर के शिखर का कलश भाग है जो शिवलिंग के रूप में पूजित है। धरण-कुंड के अंदर प्रस्तर की एक अलंकृत धरण पड़ी है जिसकी माप 118 सेमी × 40 सेमी है।

प्राप्त प्रतिमाओं का विवरण

तुरतुरिया से प्राप्त प्रतिमाओं को धार्मिक दृष्टिकोण से दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है, ब्राह्मण प्रतिमाएं एवं बौद्ध प्रतिमाएं।

ब्राह्मण प्रतिमाएं

योगासन विष्णु - तुरतुरिया से प्राप्त योगासन विष्णु की प्रतिमा अत्यंत दुर्लभ है। इस प्रतिमा की

माप 100 सेमी × 64 सेमी × 24 सेमी है। प्रतिमा काले प्रस्तर पर निर्मित है तथा राम जानकी मंदिर परिसर में कुंड में गोमुख के दायीं ओर स्थित है। विष्णु के इस रूप का वर्णन बैखानस आगम में प्राप्त होता है (श्रीवास्तव, 2007, पृ. 15) जिसके अनुसार 'प्रतिमा चतुर्भुजी तथा पद्मासन मुद्रा में विराजमान है। वह जटामुकुट, ग्रैवेयक, यज्ञोपवीत, कुंडलों तथा केयूरों से सुशोभित है। उनके नेत्र अर्धमिलित हैं और सामने के दोनों हाथ योगमुद्रा में हैं।'

चित्र क्र. 4, योगासन विष्णु
(छायाचित्र: लेखक)

प्राप्त प्रतिमा चतुर्भुजी तथा पद्मासन मुद्रा में विराजमान है जिसके तीन हाथ पूर्ण खंडित हो चुके हैं। शेष निचला दायां हाथ योगमुद्रा में दृष्टव्य है। प्रतिमा किरिटमुकुट, ग्रैवेयक, यज्ञोपवीत, कुंडल, एवं बाजूबंध से सुशोभित है। चेहरा गोल, आंखें अर्धमिलित एवं केश कंधे तक फैले हुए प्रदर्शित हैं तथा शीश के पीछे पुष्पदल युक्त प्रभामंडल अंकित है (चित्र क्र. 4)। इसी प्रकार की योगासन विष्णु की प्रतिमा मथुरा से प्राप्त है (बैनर्जी, 1956, पृ. 405)।

स्थानक विष्णु - तुरतुरिया से प्राप्त विष्णु की यह दूसरी अत्यंत दुर्लभ प्रतिमा है जो कुंड में गोमुख के बायीं ओर स्थित है। प्रतिमा काले प्रस्तर पर निर्मित है तथा कमर के स्थान से दो भागों में खंडित हो चुकी है। प्रतिमा की अधिकतम माप 117 सेमी × 47 सेमी × 26 सेमी है। प्रतिमा पूर्णविकसित कमल पर खड़े हुए तथा चतुर्भुजी है जिसके तीन हाथ खंडित हैं तथा शेष ऊपरी दाएँ हाथ में आयुध चक्र प्रदर्शित है। प्रतिमा किरीटमुकुट, कुंडल, ग्रैवेयक, यज्ञोपवीत, कलाई में कड़ा, बाजूबंध एवं पुष्पदल युक्त प्रभामंडल से शोभामान है। चेहरा गोल, आंखें अर्धमिलित, केश कंधे को स्पर्श करते हुए तथा कटिवस्त्र कमरबंद के साथ घुटने तक प्रदर्शित है। प्रतिमा के बायें हथेली पर सप्तदल पुष्प का अंकन विशेष उल्लेखनीय है।

चित्र क्र. 5, स्थानक विष्णु (छायाचित्र: लेखक)

इस प्रतिमा की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें विष्णु के आयुध तथा वाहन को मानवीय रूप में दर्शाया गया है। विष्णु के बाएं पार्श्व में गदादेवी कौमोदकी चँवर धारण किए द्विभंग मुद्रा में प्रदर्शित हैं (चित्र क्र. 5)। गदादेवी का उल्लेख विष्णुधर्मोत्तर पुराण में प्राप्त होता है जिसके अनुसार 'गदादेवी को सुन्दर शरीर वाली, पतले कटिस्थल वाली, आभूषणों से सुसज्जित तथा हाथ में चँवर लिए प्रदर्शित करना चाहिए' (मिश्र, 2009, पृ. 135)।

दक्षिणे तु गदा देवी तनुमध्या सुलोचना।
स्त्रीरूपधारिणी मुग्धा सर्वभरण भूषिता॥
पश्यन्ति देवदेवेशं कार्या चामरधारणी।
(विष्णुधर्मोत्तर पुराण 85/11-12)

गदादेवी के सिर पर प्रभु का हाथ रहता है। श्रीमदभागवत पुराण में गदा का नाम 'कौमोदकी' प्राप्त होता है (मिश्र, 2009, पृ. 136)।

विष्णु के दायें पार्श्व में उनके वाहन गरुड़ को द्विभंग मुद्रा में दर्शाया गया है। वाहन गरुड़ पंखरहित, जटाबंध, कानों में कुंडल, गले में सर्प, यज्ञोपवीत तथा घुटने तक कटिवस्त्र सहित प्रदर्शित है। गरुड़ द्विभुजी है जिसके दायाँ हाथ सर्प पकड़े हुए तथा बायाँ हाथ जंघा पर रखा हुआ प्रदर्शित है, नेत्र पूर्ण खुले हुए, चेहरा अंडाकार तथा नाक लम्बी नुकीली है। उपर्युक्त विशेषताएं ही इस प्रतिमा को दुर्लभ बनाती हैं। इस प्रकार की तीन प्रतिमाएं सिरपुर के गंधेश्वर मंदिर परिसर से प्राप्त हैं, किन्तु कलात्मक दृष्टिकोण से तुरतुरिया की यह प्रतिमा उत्कृष्ट है।

केशीवध एवं वृषभासुरवध प्रतिमाएं - राम जानकी मंदिर के विशाल कक्ष में यह दोनों प्रतिमाएं स्थापित हैं। यह प्रतिमाएं काले प्रस्तर फलक पर निर्मित हैं जिनकी माप क्रमश: 62 सेमी × 35 सेमी तथा 63 सेमी × 33 सेमी है। केशीवध प्रतिमा में कृष्ण को द्विभुजी तथा अधोवस्त्र में केशी दैत्य का वध करते हुए दर्शाया गया है तथा केशी दैत्य को अश्व के रूप में दर्शाया गया है। अश्व के सामने के दोनों पैर ऊपर उठे हुए हैं तथा मुंह में कृष्ण का दायां हाथ दबाए हुए प्रदर्शित है। केशीवध का एक दृश्य निशान पखना महेशपुर (वर्मा, 2012, पृ. 20) तथा सिरपुर संग्रहालय से प्राप्त है।

चित्र क्र. 6, केशीवध एवं वृषभासुरवध प्रतिमाएं (छायाचित्र: लेखक)

वृषभासुरवध की प्रतिमा में कृष्ण को द्विभुजी तथा वृषभासुर से युद्धरत दिखाया गया है। कृष्ण दोनों हाथों से वृषभ का सिर पकड़े हुए हैं। इसमें दैत्य को वृषभ के रूप में दिखाया गया है। दोनों प्रतिमाएं घिसी हुई हैं जिसके कारण अंग-प्रत्यंग अस्पष्ट हैं (चित्र क्र. 6)।

गणेश - कृष्ण प्रतिमाओं के दायीं ओर काले प्रस्तर पर निर्मित गणेश की एक चतुर्भुजी प्रतिमा है। प्रतिमा

की माप 80 सेमी × 39 सेमी है। प्रतिमा आंशिक क्षरित है तथा वस्त्राभूषणों से सुशोभित है। हाथों में मोदक तथा आयुध अंकुश दृष्टव्य है। गणेश की एक अन्य प्रतिमा कुंड के समीप स्थित है जो परवर्ती काल की प्रतीत होती है तथा पूर्णतः क्षरित है।

इसके अतिरिक्त राम जानकी मंदिर परिसर में शिवलिंग एवं नंदी की प्रतिमाएं हैं तथा कुंड के पास उमामहेश्वर (संभवतः) की दो प्रतिमाएं रखी हुई हैं। अत्यंत घिस चुकी होने के कारण प्रतिमाओं के अंग स्पष्ट नहीं हैं। महिषासुरमर्दिनी की प्रतिमा का निचला भाग मातागढ़ मंदिर में आधुनिक प्रतिमाओं के साथ रखा हुआ है जिसमें महिषासुर महिष के रूप में प्रदर्शित है।

बौद्ध प्रतिमाएं

1. बुद्ध प्रतिमा - यह प्रतिमा जानकी कुटी में स्थापित है। प्रतिमा काले प्रस्तर पर निर्मित है जिसकी माप 80 सेमी × 62 सेमी × 33 सेमी है। प्रतिमा के मुखपटल का भाग खंडित है। बुद्ध पद्मासन मुद्रा में आसीन एवं दोनों हाथ धर्मचक्र प्रवर्तन की मुद्रा में प्रदर्शित है। केश कुंठित एवं प्रभामंडल युक्त है। प्रतिमा का बायाँ हाथ एवं दायाँ घुटना खंडित है (चित्र क्र. 7)।

चित्र क्र. 7, बुद्ध प्रतिमा (छायाचित्र: लेखक)

2. बुद्ध प्रतिमा (खंडित) - बुद्ध की क्षतिग्रस्त एवं कई भागों में विभक्त प्रतिमा कुटी के बाहर रखी हुई है। देवता के शरीर का पूर्ण भाग खंडित है तथा बायाँ हाथ योगमुद्रा में प्रतीत हो रहा है। प्रतिमा के आधार भाग में दायीं ओर सिंह का अंकन तथा पार्श्वों में सिंह व्यालों का अंकन दृष्टव्य है। इस प्रकार की एक प्रतिमा सिरपुर के तिवरदेव विहार में स्थित है।

3. पद्मपाणि - यह प्रतिमा जानकी कुटी में स्थित है। प्रतिमा काले प्रस्तर पर निर्मित है जिसकी माप 130 सेमी × 33 सेमी × 25 सेमी है। प्रतिमा द्विभुजी तथा वक्षभाग एवं हथेलियां खंडित हैं। देवता के बाएं हाथ में पद्म प्रदर्शित है तथा केश जटायुक्त एवं बंधे हुए हैं। कानों में कुंडल व बाँह में बाजूबंध दृष्टव्य है। प्रतिमा त्रिभंग मुद्रा में है। चेहरा गोल, आंखें अर्धमिलित प्रतीत हो रही हैं। प्रतिमा के बाएं पार्श्व में एक परिचायक खड्ग लिए आसीन है तथा दाएं पार्श्व में एक उपासक अंजलि हस्तमुद्रा में बैठे हुए हैं। प्रतिमा के शीर्ष के ऊपर चार पंक्तियों में प्रारंभिक नागरी लिपि में लेख उत्कीर्ण है (चित्र क्र. 8)।

चित्र क्र. 8, पद्मपाणि (छायाचित्र: लेखक)

4. अवलोकितेश्वर - पद्मपाणि के बाँयी ओर एक अन्य अवलोकितेश्वर की प्रस्तर प्रतिमा है। इसकी माप 120 सेमी × 30 सेमी × 24 सेमी है। प्रतिमा द्विभुजी है तथा इसका मुखपटल, वक्षभाग, उदरभाग एवं दोनों हाथ खंडित हैं। प्रतिमा के बाएं हाथ में अर्धविकसित पद्म प्रदर्शित है। देवता के केश जटायुक्त बंधे हुए तथा दोनों कंधों तक लटकते हुई प्रदर्शित हैं। कानों में कुंडल, बांह में बाजूबंद एवं गले में रत्न जड़ित हार सुशोभित है। प्रतिमा त्रिभंग मुद्रा में है। प्रतिमा के बाएं पार्श्व में षट्भुजी परिचायक विशेष उल्लेखनीय है। इसके केश कुंठित, गले में कण्ठमाल, उदरभाग उभरा हुआ तथा नेत्र अर्धमिलित हैं। इसे विभिन्न शस्त्रों सहित वृषभ पर आसीन दर्शाया गया है। प्रतिमा के दायें पार्श्व में एक उपासक अंजलि हस्तमुद्रा में बैठा हुआ है। उपरोक्त प्रतिमाएं कलात्मक दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं (चित्र क्र. 9)।

चित्र क्र. 9, अवलोकितेश्वर (छायाचित्र: लेखक)

इन प्रतिमाओं के अतिरिक्त कुछ परवर्ती काल की प्रतिमाएं भी प्राप्त होती हैं जिनमें उपासक, द्वारपाल, योद्धा, राजपुरुष की प्रतिमाएं सम्मिलित हैं। कुछ देव एवं देवी प्रतिमाओं के खंडित भाग भी प्राप्त होते हैं, जिनके अंग-प्रत्यंग क्षरित हो जाने के कारण अस्पष्ट हैं।

निष्कर्ष

तुरतुरिया से प्राप्त पुरावशेषों का विश्लेषण करने पर यह ज्ञात होता है कि यहां की वास्तु एवं शिल्प कला की शैली विशिष्ट है। विभिन्न शैलियों में निर्मित स्तंभों के अवलोकन से यह कहा जा सकता है कि यह स्तंभ भिन्न-भिन्न समय अंतराल में निर्मित हुए हैं। अर्धनिर्मित स्तंभों के अवशेष इस बात के घोतक हैं कि इन स्थापत्य खंडों का निर्माण इसी स्थान पर किया जाता रहा होगा। स्तंभों के अतिरिक्त सिरदल व कलशभाग के अवशेष एवं टीला इस बात की ओर इंगित करते हैं कि तुरतुरिया में निश्चित रूप से प्राचीन मंदिर विद्यमान रहा होगा। गरुड़स्तंभ की प्राप्ति से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यहां एक विष्णु मंदिर स्थापित रहा होगा। इस बात की पुष्टि यहां से प्राप्त विष्णु की दो दुर्लभ एवं उत्कृष्ट प्रतिमाओं से भी होती है। ब्राह्मण प्रतिमाओं के साथ ही बौद्ध प्रतिमाओं की प्राप्ति से यह भी ज्ञात होता है कि तुरतुरिया सिरपुर की ही भांति धार्मिक सहिष्णुता का केंद्र था। यहां से प्राप्त स्तंभ व प्रतिमाएं सिरपुर से प्राप्त स्तंभों एवं प्रतिमाओं से विशेष समानता रखते हैं जिनके आधार पर तत्कालीन समय में तुरतुरिया व सिरपुर का परस्पर संबंध स्थापित किया जा सकता है। कला शैली की दृष्टि से यहां के पुरावशेषों को पांडुवंशी काल में निर्मित माना जा सकता है। परिवर्ती कालीन प्रतिमाओं की प्राप्ति से यह भी ज्ञात होता है कि यह स्थान दीर्घकाल तक धार्मिक आस्था का प्रमुख केंद्र था जो वर्तमान में भी पल्लवित है।

आभार

सहयोग एवं प्रोत्साहन हेतु मैं प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजाति विश्वविद्यालय, अमरकंटक (मध्यप्रदेश) के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ तथा क्षेत्र भ्रमण में मेरा सहयोग करने के लिए श्री तामेश्वर देवांगन का सहृदय धन्यवाद करता हूँ।

संदर्भ सूची

.

बेगलर, जे.डी. (1884). *आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया रिपोर्ट*. कलकत्ता: वॉल्यूम-xiii।
वर्मा, के.पी. (2014). *छत्तीसगढ़ की स्थापत्य कला*. रायपुर: भाग 1।
श्रीवास्तव, बृजभूषण (2007). *प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान एवं मूर्तिकला*. वाराणसी।
बैनर्जी, जे. एन. (1956). *दि डेवलपमेंट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी*. कलकत्ता।
मिश्र, इंदुमती (2009). *प्रतिमा विज्ञान*. भोपाल।
वर्मा, के.पी. (2012). *महेशपुर की कला*. रायपुर।

सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन एवं राष्ट्र निर्माण

डॉ. सुशील कुमार राय*

सारांश

मनुष्य और समाज परस्पर पूरक शब्द हैं। मनुष्य के बिना समाज और समाज के बिना मनुष्य जीवन संभव नहीं। समाज में रहते हुए मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। लेकिन 'समाज' शब्द कहने-सुनने में जितना सरल है, प्रकृति, कार्य और संरचना के स्तर पर इसका स्वरूप उतना ही जटिल है क्योंकि समाज में व्यक्ति न केवल रहता है बल्कि पलता है, बढ़ता है और अपनी श्रेष्ठता को प्राप्त करने का उद्यम करता है। सामाजिक संरचनाओं से जुड़ी तमाम कार्यविधियां मानव संबंधों का निर्माण करती हैं। साथ ही वे उन्हें नियंत्रित और आवश्यकतानुसार उनका मार्गदर्शन भी करती हैं। इसी क्रम में समाज सामाजिक संबन्ध, विचार, आदर्श, मूल्य-नियम,व्यवहार आदि व्यवस्थाओं का निर्माण करता रहता है जो किसी भी समाज और संस्कृति के विशिष्ट अंग हैं। समय-समय पर सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्थाओं में आवश्यकताओं के अनुरूप परिवर्तन भी होता रहता है जिन्हें सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन समझा जाता है। सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन क्या है? इनके प्रमुख अवयव, स्वरूप और निर्धारक तत्व क्या हैं? किसी संस्कृति का राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया से क्या संबन्ध और योगदान है ? यह मूल प्रश्न हैं, जिनका प्रस्तुत शोध पत्र में विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।

बीज शब्द: समाज, संस्कृति, राष्ट्र, सामाजिक परिवर्तन, सांस्कृतिक परिवर्तन, राष्ट्र निर्माण

प्रस्तावना

मनुष्य का समाज से गहरा नाता है। समाज के बिना समूची मानव जाति के अस्तित्व और विकास की कहानी बेमानी है। मनुष्य समाज में रहता है और अपने विकास के लिए ही समाज का निर्माण करता है जिसमें उसके स्वजन, परिजन, बंधु-बांधव और सभी मित्र रहते हैं। मनुष्य के लिए समाज ही वह संगठन है जिसमें रहते हुए वह बड़ा होता है। अपने जन्म से लेकर अंतिम सांस तक विकास की सारी यात्राएं पूरी करता है। इस प्रकार समाज, एक ऐसी संस्था है जिस पर व्यक्ति का अस्तित्व और विकास दोनों निर्भर है। इस संदर्भ में यदि कहा जाए कि समाज, मानव जाति की सुरक्षा, विकास और उसके समग्र उन्नति का मूलाधार है तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी। शायद इसीलिए अरस्तु ने कहा कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है (सचदेव एवं विद्याभूषण,2012)।

मानवीय व्यवहार एवं संबंधों पर आधारित संगठन का नाम ही समाज है जिसमें रहते हुए मनुष्य स्वयं को सुरक्षित, समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति और सतत उन्नतशील रहने की चेतना से युक्त रहता है। अपनी प्रगति और खुशहाल जीवन जीने की राह ढूंढता रहता है, उसे पाता और अपनाता भी है। इस संदर्भ में कूले का यह विचार सर्वथा उचित है कि "समाज क्रियाओं और प्रक्रियाओं की वह जटिल संस्था है जो एक दूसरे

*सह प्राध्यापक, स्कूल ऑफ मास कम्युनिकेशन, आईएमएस यूनिसन यूनिवर्सिटी, देहरादून।

की अन्तःक्रिया के कारण जीवित है और उनके साथ परस्पर अन्तःक्रिया करते हुए आगे बढ़ता है (सचदेव एवं विद्याभूषण, 2012)। इस प्रकार इस जटिल संपूर्ण समाज में ऐसी एकरूपता पाई जाती है जिसमें एक हिस्सा दूसरे को अनिवार्य रूप से प्रभावित करता है। इसी क्रम में गिडिंग्स भी कहते हैं कि समाज ऐसे लोगों का समूह है जो एक दूसरे की आवश्यकता व कल्याणकारी उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहयोगी होता है। इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से देखा और समझा जा सकता है कि समाज आपसी संबंधों का एक ऐसा ताना-बाना है जिसका कोई मूर्त स्वरूप नहीं। जिस प्रकार समाज के संबन्ध दिखाई नहीं देते, अमूर्त होते हैं। ठीक उसी तरह समाज का अस्तित्व भी अदृश्य है। अमूर्त है। जिसे अपनी आंखों से न तो देखा जा सकता है और न ही दिखाया जा सकता है। यह परस्पर संबन्ध और उनके बीच होने वाले अन्तःक्रिया के आपसी संबन्ध व तालमेल का अनुभव तो किया जा सकता है परंतु उसे किसी वस्तु विशेष की तरह प्रस्तुत या प्रदर्शित नहीं किया जा सकता।

सामाजिक विशेषताएं

जहां तक गुणों के आधार पर मानवीय समाज को समझने की बात है उससे जुड़ी जो विशेषताएं हैं, इसके संदर्भ में कुछ तथ्यों की चर्चा आवश्यक है। पहला, समाज अरूप है। इसका कोई मूर्त स्वरूप नहीं। बात भी सही है कि जब समाज की व्यवस्था ही व्यक्तियों के आपसी संबंधों की क्रिया-अनुक्रिया-प्रतिक्रिया पर आधारित है जिसका कोई निश्चित आकार नहीं, वह दृश्य रूप संरचना नहीं जिसकी केवल अनुभूति हो सकती है। ऐसे में समाज का कोई मूर्त रूप हो भी नहीं सकता। दूसरी बात, समाज कोई लोगों का समूह न होकर उनके बीच स्थापित अंतर्संबंधों का एक संग्रह है, व्यवस्था है जो आंतरिक सामाजिक रूप से लोगों को एक सूत्र में बांधती है। उन्हें आपस में जोड़े रखती है। तीसरा, समाज की एक अन्य विशेषता यह भी है कि समाज केवल मनुष्य जाति तक सीमित नहीं बल्कि पशुओं का भी अपना समाज होता है जिसमें एक अच्छे-खासे समूह में उनकी भी उपस्थिति देखी जा सकती है। मानव समाज और पशु समाज के बीच मुख्यतः अंतर चेतना और जागरूकता को लेकर है। बौद्धिक और आनुभविक चेतना व बोध को लेकर है जो पशु समाज की तुलना में मानव समाज में यकीनन अधिक मात्रा में पाई जाती है। किसी भी विषय पर मनुष्य अपनी भावनाओं को, वैचारिक समझ को जिस ऊंचाई और गहराई तक महसूस कर सकता है, तार्किक विश्लेषण प्रस्तुत कर सकता है, यह क्षमता और अवसर पशुओं के पास नहीं। चेतना और बोध की यही ऊर्जा एक नए समाज को जन्म देती है जो पशु समाज से बिल्कुल अलग और बेहतर बनाती है। मानव समाज की यही चेतना, जो पारस्परिक जागरूकता है, उसके सोच-विचार और संबंधों को नया आकार देती है। जिसका परिणाम है यह सूत्र 'वसुधैव कुटुंबकम'। यह भारतीय समाज का उत्कृष्ट दर्शन भी है, आचरण, क्रिया, व्यवहार और लक्ष्य भी।

भारतीय समाज का यह मूल चिंतन उसकी सबसे बड़ी विशेषताओं में से एक है जो उसके विराट स्वरूप को प्रतिबिंबित करती है, पूरी दुनिया में अलग स्थान दिलाती है। यह समाज की जागरूकता और कल्याणकारी चेतना का सामर्थ्य है जिसकी जन्मभूमि भले ही भारत हो परंतु भावभूमि संपूर्ण विश्व है। उद्गम स्थान भले ही भारतीय समाज है परंतु गंतव्य संपूर्ण वसुधा और विश्व है। संपूर्ण विश्व के कल्याण की कामना भारतीय समाज की अद्वितीय विशेषता और एक विशिष्ट पहचान को निरूपित करती है। समाज की अन्य विशेषताओं में सहयोग और संघर्ष की प्रक्रिया भी शामिल है। वास्तव में मानव जीवन और समाज में सहयोग और संघर्ष दोनों का समान महत्व है। एक तरफ सहयोग जहां लोगों को एकता के सूत्र में बांधता है,

उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक होता है, वहीं दूसरी तरफ एक निश्चित अनुपात में संघर्ष की स्थिति सामाजिक सहयोग, सामाजिक चेतना एवं सामाजिक एकता की भावना को जगाए रखने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। हालांकि संघर्ष से जीवन और विकास दोनों को गति मिलती है। बिना संघर्ष के किसी भी प्रगति के लक्ष्य को हासिल नहीं किया जा सकता और न ही उस उपलब्धि के आनंद को महसूस किया जा सकता है। निर्माण प्रक्रिया से जुड़ा संघर्ष आवश्यक है या यूं कहें संघर्ष की गोद में पलता है 'निर्माण'। लेकिन यह संघर्ष आवश्यकता से अधिक विनाशकारी क्रिया-व्यवहार से जुड़ा हो तो यह न केवल कुछ व्यक्ति विशेष या समुदाय को बल्कि पूरे समाज को आघात पहुंचाता है।

समाज की एक और प्रमुख विशेषता है गतिशीलता एवं परिवर्तनशीलता (आहूजा, 2005)। समाज कोई पर्वत-पहाड़ सरीखे अचल और जड़ सत्ता का नाम नहीं बल्कि यह एक गतिशील अवधारणा है। गतिशील समाज वह है जिसमें स्थान, समय और अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप उसके प्रकार्यात्मक संरचना में परिवर्तन की संभावना शेष बनी रहती है। व्यवस्था बदलाव के दौर से गुजरती है। इसलिए समाज की अवधारणा गतिशीलता और संवेदनशीलता की घटनाओं से अछूती नहीं। समय की गति के अनुरूप व्यक्ति की परिस्थिति, आवश्यकता एवं उद्देश्यों में परिवर्तन हो जाता है। जब कभी परिस्थितियां और विचार बदलते हैं तो हमारे आपसी संबन्ध और कार्य व्यवहार में भी परिवर्तन हो जाता है जिससे सामाजिक स्वरूप और उनके कार्यों में भी बदलाव आता है। पूर्व और पश्चात में हमारे समाज में ऐसे अनेकानेक बदलाव देखें जा सकते हैं। उदाहरण के रूप में हम देख सकते हैं कि पहले का संयुक्त परिवार किस तरह विघटित होते हुए एकल और नाभिकीय परिवार में परिवर्तित होता जा रहा है।

सामाजिक परिवर्तन

सामाजिक परिवर्तन की घटना स्वाभाविक और सर्वव्यापी है जिसका संबन्ध सभी समाज से है। मानव इतिहास में कोई भी ऐसा समाज नहीं जिसमें कोई बदलाव न आया हो या परिवर्तन की प्रक्रिया से अछूता हो। चूंकि परिवर्तन एक शाश्वत नियम है इसलिए इस नियम से पृथक होना संभव नहीं, चाहे वह संसार हो या फिर समाज। सरल शब्दों में कहे तो परिवर्तन ही समाज का अपरिवर्तनीय सत्य है। मैकाइवर कहते हैं कि सामाजिक परिवर्तन का अर्थ है सामाजिक संबंधों में परिवर्तन (जे. पी. सिंह, 2010)। बात भी सही है क्योंकि समाज कोई वस्तु या उत्पाद नहीं कि उसकी स्थिति या बनावट में होने वाले परिवर्तन को प्रत्यक्ष या मूर्त रूप से देखा जा सके। चूंकि समाज सामाजिक संबंधों पर आधारित व्यवस्था है इसलिए संबंधों में जब तक कोई परिवर्तन न हो तब तक इस पर आधारित व्यवस्था यानि समाज में होने वाले परिवर्तन का कोई औचित्य नहीं है। इसलिए यह सच है कि सामाजिक परिवर्तन मूलतः सामाजिक संबंधों पर आधारित संरचना, व्यवस्था और व्यवहार में होने वाला परिवर्तन है। आचार्य नरेंद्र देव का भी मत है कि समाज और मनुष्य एक दूसरे को प्रभावित करते हैं, परस्पर अन्योन्याश्रित होते हैं। इन्हीं परिस्थितियों में क्रिया-प्रतिक्रिया से ही सामाजिक परिवर्तन होता है (आचार्य नरेंद्र देव, 2009)।

जब हम आदिम समाज से लेकर आधुनिक समाज की कल्पना करते हैं तो यह सामाजिक परिवर्तन की घटना और उसके प्रभाव का आकलन और भी स्पष्ट हो जाता है। समय के बहाव में अपनी आदतों, जरूरतों और निरंतर बेहतर जीवन जीने की चाह में समाज तमाम परिवर्तन की राह से गुजरा है और 21वीं सदी में एक अलग स्वरूप और पहचान के साथ हम सबके बीच उपस्थित है। सामाजिक विद्वानों ने सामाजिक परिवर्तन की अनेकानेक अवस्थाओं, प्रकारों और प्रमुख कारकों की वृहद चर्चा की है। उसके

हरेक पहलू पर स्पष्ट रूप से प्रकाश डाला है। यदि हम सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न स्वरूपों की बात करें तो सामाजिक परिवर्तन के अपने कुछ पड़ाव हैं जिन्हें उद्विकास, विकास, प्रगति, क्रांति और अनुकूलन के रूप में वर्णित किया जाता है। परिवर्तन के यह सभी प्रकार समाज रूपी देह या संस्था पर उभरते हैं और अपने तरीके से बदलाव के निशान छोड़ जाते हैं। यह सभी परिवर्तन की ऐसी प्रक्रियाएं हैं जो सामाजिक संरचना और प्रकार्यात्मक आचार-व्यवहार को काफी हद तक प्रभावित करती हैं, उसमें बदलाव लाते हैं। परिवर्तन की गति या मात्रा कम-अधिक हो सकती है परन्तु यह समाज की व्यवस्थाओं में गुणात्मक परिवर्तन लाने का सामर्थ्य रखते हैं।

जहां तक सामाजिक परिवर्तनों के प्रमुख कारकों की बात है उसमें प्राकृतिक भौगोलिक, जैविक, जनसंख्यात्मक, प्रौद्योगिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक आदि प्रमुख कारक हैं (मैकाइवर एवं पेज,2000)। आज प्राकृतिक और भौगोलिक परिस्थितियों ने मानव समाज के विभिन्न पहलुओं पर अपना असर तो डाला ही है। साथ ही उसने जीवन जीने के तौर-तरीकों को भी काफी हद तक बदला है। भारी बारिश, भयंकर तूफान, बाढ़, भूकंप, सुनामी, अकाल और तमाम महामारी जैसे हाल ही में कोविड-19 ने सामाजिक व्यवस्थाओं को काफी हद तक प्रभावित किया है, उन्हें बदला है। आपसी संबंधों से लेकर सामाजिक संबंधों तक को इस महामारी ने जिस तरह से प्रभावित किया है, वह अपूर्व है। भौतिक दूरी और सामाजिक दूरी इस समाज के नए नारे बन चुके हैं। एक-दूसरे से बचते-बचाते हुए कुछ लोग अपने परिवार के वैवाहिक-धार्मिक उत्सवों से लेकर सामाजिक आयोजनों तक बचते हुए और लोगों से कटते हुए नजर आ रहे हैं। लोग कुछ महीनों के लिए तो घरों में कैद हो गए। शिक्षा-व्यापार-कारोबार आदि का सहारा ऑनलाइन बना। अपने ही लोगों के सुख-दुख में शामिल न हो पाने की टीस काफी हद तक महसूस हुई। शुभकामना हो या श्रद्धांजलि, इसका संवाहक सोशलमीडिया जैसे फेसबुक, व्हाट्सएप, मैसेंजर और इंस्टाग्राम आदि बने। लोगों का जुड़ाव रियल न होकर वर्चुअल हो गया। लोगों के खान-पान, रहन-सहन, आचार-व्यवहार, क्रिया-प्रतिक्रिया, आपसी संबंधों के स्वरूप और संरचना में काफी कुछ बदलाव आया और परिवर्तन का सिलसिला अभी भी जारी है।

तकनीकी प्रौद्योगिकी और आधुनिकीकरण ने भी सामाजिक व्यवस्थाओं को काफी हद तक प्रभावित किया है। पहिया, अग्नि, कागज के आविष्कार से लेकर सूचना संचार और डिजिटल मीडिया तक का सफर समाज में हो रहे अभूतपूर्व बदलाव की कहानी बयां करते हैं। समाज में तकनीकी आविष्कारों ने औद्योगिक क्रांति को जन्म दिया। औद्योगिक विकास ने आधुनिकीकरण को गति दी, फलस्वरुप समाज के हर क्षेत्र में तीव्र गति से जो परिवर्तन देखे गए, समाज एकरूप में दिखाई देने लगा। समाज के इस नए स्वरूप और नई पहचान ने आधुनिकीकरण को जन्म दिया जिसका मूल आशय समाज के विभिन्न पहलुओं जैसे सामाजिक दशा, आर्थिक दशा, राजनीतिक, सांस्कृतिक धार्मिक, शिक्षा, मनोवैज्ञानिक आदि क्षेत्रों में होने वाला एक ठोस बदलाव और सार्थक रूपांतरण है, जिसमें नए विचार और तकनीकी ज्ञान के सहारे उच्च आदर्शों एवं लक्ष्यों को प्राप्त करने का पुरुषार्थ निहित है।

सांस्कृतिक परिवर्तन

संस्कृति किसी भी समाज और समुदाय का वह आंतरिक स्वरूप है जिसमें मूल्यों के प्रतिमान रहते हैं। संस्कृति मनुष्य के सोच-व्यवहार, अनुशासन, नियम, स्वभाव और गुणों से युक्त एक अमूर्त मूल्य है जिसके अभाव में मानव जीवन पूर्णतः अपंग है। संस्कृति, वस्तुतः जीवन जीने का एक ढंग है और

बहुलविशेष स्तर पर यह एक स्वाभाविक सर्वमान्य संस्कार व अनुशासित परंपरा भी है।

असल में संस्कृति जिंदगी जीने का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में व्याप्त रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं। इसलिए जिस समाज में हम पैदा हुए हैं या जिस समाज में हम जी रहे हैं, उसकी संस्कृति हमारी संस्कृति है। यद्यपि अपने जीवन में हम जो संस्कार अर्जित करते हैं वह भी हमारी संस्कृति का अंग बन जाता है। इसलिए मैकाइवर का यह कथन सर्वथा उपयुक्त है कि जो हम हैं वह हमारी संस्कृति और जो हमारे पास है वह है हमारी सभ्यता (मैकाइवर एवं पेज, 2000)। सभ्यता के उपकरण जल्दी से बटोरे जा सकते हैं, मगर उनके उपयोग हेतु जो उपयुक्त संस्कृति हमें चाहिए उसका अर्जन तत्काल संभव नहीं। टॉयलर ने भी इसे एक समग्र जटिलता कहते हुए बताया कि इसमें ज्ञान, विश्वास, कला, आचार, कानून, आदत व क्षमताओं का सहज समावेश होता है जिससे मनुष्य एक सामाजिक सदस्य होने के नाते सहज रूप से प्राप्त करता है (सचदेव एवं विद्याभूषण, 2012)। यानि संस्कृति एक सामाजिक विरासत है और इस विरासत को बचाए रखने में मीडिया की भूमिका अद्वितीय है।

सांस्कृतिक विकास मूलतः मानव अस्तित्व से जुड़ी हुई एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत होने वाली घटनाओं का समानांतर प्रभाव मानव के आचार-विचार एवं व्यवहार पर पड़ता है। यह केवल एक व्यक्ति को ही प्रभावित नहीं करती वरन यह समूह, संस्था व समाज को भी प्रभावित करती है। कहते हैं कि संस्कृति कोई ऐसा उत्पाद नहीं जिसे किसी साबुन के ब्रांड की तरह बाजार में बेचा जा सके। यह सोच, विचार, रुचि एवं व्यवहार का एक ऐसा संकुल है जिसे एक व्यक्ति को विश्वास में लेकर उससे बातचीत करते हुए अपनाने के लिए प्रेरित किया जाता है।

सामाजिक-सांस्कृतिक विकास एवं परिवर्तन में मीडिया की भूमिका बहुआयामी है। इसके सकारात्मक पहलुओं पर यदि हम विचार करें तो हम मीडिया को सामाजिक-सांस्कृतिक विरासत का संरक्षक और संवाहक कह सकते हैं क्योंकि संस्कृति यदि एक समाज से दूसरे समाज में चलकर पहुंचने में सफल हुई है तो इसके पीछे मीडिया का बहुत बड़ा योगदान है। मीडिया मानव सभ्यता की सर्वाधिक बड़ी उपलब्धियों में से एक है। इसका प्रमाण हमें इसी बात से मिल जाता है कि यदि प्रेस का आविष्कार न हुआ होता तो हम न जाने कितने प्राचीन ज्ञान, साहित्य, कला, नाट्य जैसी अनेकानेक कई अन्य बौद्धिक उपलब्धियां खो चुके होते। यह प्रेस ही है जो हमारी बौद्धिक एवं सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित बनाए हुए है और उसे संवर्धित करने का काम कर रही है। यह मीडिया का ही प्रभाव है कि आज हम अपने देश में फैली विभिन्न संस्कृतियों से एकाकार हो रहे हैं। देश के अनेक प्रदेशों से लेकर दुनिया के दूसरे देशों तक की संस्कृतियों से आमजन को अवगत कराने में सफल हो रहे हैं जो किसी न किसी तरह विभिन्नता को एकता के सूत्र में बांधे रखने की भावना को बल दे रही है। आज देश से विदेश तक की संस्कृतियों का ज्ञान हम घर बैठे हासिल कर रहे हैं। इस उपलब्धि में मीडिया का सबसे बड़ा योगदान है।

मीडिया सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना का सजग प्रहरी है। यह समाज में होने वाली हर गतिविधियों व घटनाओं की तत्क्षण सूचना देती है जिससे आज हम विकास के हर मुद्दे पर सजग हो चुके हैं और उसके उचित-अनुचित होने पर विचार करते हुए अपना मत भी दे रहे हैं। मीडिया ने हमारे समाज को जागरूक बनाया है। आज गांव से लेकर दुनिया के सुदूर देशों तक, खेतों में पड़ने वाले बीज से लेकर ब्रह्मांड के ग्रह-नक्षत्र तक की गतिविधियों पर हमारी पैनी नजर है और इसमें होने वाली हर एक घटना को हम एक सांस में जान लेना चाहते हैं। अब हमारी जागरूकता केवल मनुष्य तक सीमित नहीं, बल्कि पशु-पक्षी, पेड़-पौधे और पूरा पर्यावरण इसमें शामिल हो गया है और इन सब के पीछे मीडिया का बहुत बड़ा

योगदान है। आज दुनिया की प्रत्येक महत्वपूर्ण घटना पर मीडिया चौकन्नी है, उसकी पैनी नजर जमीन-पाताल से लेकर आसमान तक फ़ैल चुकी है और हर हलचल की सूचना मीडिया अपने दर्शकों तक पहुंचा रही है।

पिछले दो दशकों में वैज्ञानिक प्रगति के कारण मीडिया विशेषकर टेलीविजन के कार्यविधियों में आए क्रांतिकारी परिवर्तनों ने मानवीय जीवन शैली को पूरी तरह बदल दिया है। बात नए ज्ञान से ओतप्रोत होने की हो या मनोरंजन से जुड़ने की, घर से बाहर देश-विदेश के किसी भी हिस्से में हुई घटनाओं की जांच पड़ताल करनी हो या सामाजिक-सांस्कृतिक विकास से जुड़ी समस्याओं को समझने की तो मीडिया एक बेहतर साधन है। आज घर बैठे ही मीडिया के माध्यम से हम पूरी दुनिया को देख रहे हैं, सुन रहे हैं, और पढ़-समझ रहे हैं।

ज्ञान-विज्ञान से लेकर कला और धर्म के क्षेत्र में तमाम चैनल हमारे सामाजिक-सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विरासत को जीवित रखने में, उसका विस्तार करने में उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। बीते समय में दूरदर्शन पर प्रसारित होने वाले रामायण और महाभारत ने तो हमारे समाज को मानो कलयुग से निकाल कर द्वापर में पहुंचा दिया था। पर समय की गति के साथ संचार माध्यमों में और उनके प्रयोग के तौर-तरीकों में भी जबरदस्त बदलाव आया है। संचार अपने परंपरागत माध्यम की सीमा रेखा से ऊपर उठकर जिस तरह से गुजरता हुआ न्यू मीडिया, इंटरनेट, सोशल मीडिया की दुनिया में प्रवेश किया है, इसने उसे सर्वव्यापी बना दिया है। पलक झपकते हम किसी भी सूचना तक पहुंच सकते हैं।

लेकिन यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि मीडिया के प्रभाव से हमारे सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन में एक नई संस्कृति उभरकर सामने आ रही है और वह है 'पापुलर कल्चर'। आजकल हम अपने रहन-सहन, खानपान में पश्चिमी देशों की बेरोकटोक नकल करने लगे हैं। यह अन्धानुकरण हमारे खान-पान, पहनावे और हमारे सामाजिक व्यवहार हर जगह दिखाई दे रहा है।

जबकि आधुनिकीकरण एक मूल्य सापेक्ष प्रत्यय है जिसका आशय अच्छाई से लिया जाता है (श्रीनिवास, 2000)। यह बताता है कि कोई विषय पहले से अच्छा है। मीडिया ने यकीनन पश्चिमीकरण और आधुनिकीकरण दोनों अवधारणाओं को बढ़ावा दिया है। हमारे समाज में तेजी के साथ सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन हो रहे हैं। नए मूल्य, संबन्ध व आकांक्षाएं पनप रही हैं। गावों में भी रूढ़िवादिता के गढ़ टूट रहे हैं और उनमें भी आधुनिकता और परिवर्तन की बयार बह रही है। समाज में जातिवाद का बंधन ढीला पड़ने लगा है। प्रेम विवाह, तार्किकता और बौद्धिकता बढ़ी है। परिवार, समाज में पुरुषों की प्रधानता कम हुई है और स्त्रियों की शक्ति और सम्मान में काफी इजाफा हुआ है। निश्चित रूप से इन सब के पीछे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मीडिया का महत्वपूर्ण योगदान है जिसने सामाजिक-सांस्कृतिक विकास और परिवर्तन की प्रक्रिया को एक नई गति दी है, समाज को गतिशील बनाया है और परंपरागत समाज को आधुनिक समाज बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

राष्ट्र एवं राष्ट्र निर्माण

'राष्ट्र' मूलतः एक सांस्कृतिक भावना है जिसके द्वारा वहां के लोग या लोगों का समूह एक साझी परंपरा, जाति, धर्म, भाषा, इतिहास और संस्कृति के आधार पर पारस्परिक सहयोग एवं एकता के भाव सूत्र में बंधे होते हैं। आपसी समानता और एकत्व के भाव का अनुभव करते हैं। 'राष्ट्र' एक भावप्रधान, गर्व और सम्मान से पूरित विचार है जो किसी सांस्कृतिक-राजनीतिक-भौगोलिक सीमा के

अंदर अपने अस्तित्व का निर्माण करती है। स्वयं को स्थापित करती है। दरअसल इन्हीं सामर्थ्य का उपयोग करते हुए जब किसी राष्ट्रीय पहचान का निर्माण किया जाता है तो वह 'राष्ट्र निर्माण' कहलाता है। इस तरह, राष्ट्र और राष्ट्रीयता कोई शुष्क विचार नहीं, बल्कि यह एक ऐसा तरल भाव है जो व्यक्ति को सांस्कृतिक-राजनीतिक भूभाग के कण-कण से, जड़-चेतन से जोड़े रखती है, गहरे एकत्व की भावना से बांधे रखती है जो किसी भी राष्ट्र और राष्ट्र निर्माण का मूल आधार है।

जन समुदाय की एकता के अभाव में किसी भी राष्ट्र का निर्माण नहीं किया जा सकता। चाणक्य ने भी राष्ट्र और राष्ट्रीयता की संकल्पना के बारे में कहा था कि नागरिकों को अपने राष्ट्र और राष्ट्रीयता पर गर्व होना चाहिए। समय और स्थिति चाहे जैसी भी हो प्रत्येक नागरिक को राष्ट्र की एकता, अखंडता, अस्मिता, गौरव और सम्मान हेतु दृढ़तापूर्वक खड़े रहना चाहिए। उनका मानना था कि 'राष्ट्र' कोई एक भूखंड मात्र नहीं जिसमें नदी, पर्वत, पशु-पक्षी और विभिन्न प्रकार की वनस्पतियां पाई जाती हैं। राष्ट्र शब्द से सभ्यता, संस्कृति, परंपरा, भाषा और इतिहास का बोध होता है। जब यह तत्व मिलकर किसी भूखंड के अवयव बनते हैं, तब वही राष्ट्र कहलाता है। चाणक्य के अनुसार देश में जन्मे प्रत्येक व्यक्ति को अपने राष्ट्र के प्रति सम्मान, त्याग और समर्पण का भाव चाहिए। यही सच्ची राष्ट्र सेवा है।

देश के युवाओं, सैनिकों, किसानों, जवानों, और समाज के हरेक क्षेत्र में चाहे वह शिक्षा हो या चिकित्सा, विज्ञान, खेल या सुरक्षा; एक सुरक्षाकर्मी से लेकर सफाईकर्मी तक, मंत्री से लेकर संतरी तक सबके हृदय में 'राष्ट्र प्रथम' का संकल्प होना चाहिए और राष्ट्र के लिए सच्ची सेवा, सम्मान और गर्व का भान होना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र का घटक है। जब तक उसके दिल में राष्ट्र के प्रति सच्ची सेवा, समर्पण और त्याग की भावना पैदा नहीं होती तब तक वास्तविक राष्ट्र और राष्ट्रीयता की कल्पना नहीं की जा सकती। राष्ट्र की संकल्पना में राष्ट्रीय हित सर्वोपरि है। लेकिन जहाँ व्यक्ति, समूह या संगठन अपने स्वार्थ या निजी हितों की पूर्ति के लिए राष्ट्रीय हितों की आहुति दे देते हैं, राष्ट्र को गौण मानते हैं, ऐसे में उस राष्ट्र को पतन की राह से बचा पाना नामुनकिन है। इसलिए ज़रूरी है किसी भी राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में वहां के सभी नागरिकों का एकसाथ सच्ची निष्ठा, लगन और ईमानदारी के साथ सम्मिलित होना। यानि वहां के लोगों का चरित्रवान और निष्ठावान होना भी जरूरी है। स्वामी विवेकानंद कहते थे कि राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया व्यक्ति-निर्माण और चरित्र-निर्माण से शुरू होती है। किसी भी राष्ट्र का राष्ट्रीय चरित्र वही है जो वहां के नागरिकों का चरित्र है। इस प्रकार राष्ट्र निर्माण में समस्त नागरिकों की सहभागिता अपरिहार्य है और इस दिशा में युवा राष्ट्र के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। चूंकि पूरी दुनिया में सबसे अधिक युवा भारत में रहते हैं, यानि भारत दुनिया का सबसे युवा देश है। इसलिए राष्ट्र की प्रगति और विकास में युवा अपने संकल्प, ऊर्जा और पुरुषार्थ से सर्वाधिक योगदान दे सकते हैं।

निष्कर्ष

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि समाज सामाजिक संबंधों पर आधारित एक व्यवस्था है जो मानवीय अस्तित्व और विकास को गति देती है। समाज के बिना मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति संभव नहीं। यह समाज ही है जो मनुष्य की हरेक सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक जरूरतों को पूरा करते हुए उसके समग्र विकास को बल देता है। समाज मानवीय कार्यविधियों को जहां एक तरफ प्रभावित करता है, वहीं दूसरी तरफ उससे स्वयं प्रभावित भी होता है जो किसी भी समाज में सामाजिक परिवर्तन का आधार बनता है। यानि सामाजिक परिवर्तन सामाजिक संबंधों में आने वाले परिवर्तन हैं जो निश्चित रूप से मानवीय

स्वभाव, सोच-विचार, आदर्श, मूल्य, नियम, विश्वास आदि सबमें बदलाव लाते हैं जिसे सांस्कृतिक परिवर्तन के रूप में जाना जाता है। जहां तक राष्ट्र निर्माण का विषय है, यह स्पष्ट है कि अपनी सांस्कृतिक विरासत की तमाम विशेषताएं राष्ट्र को एक नई पहचान देती हैं और एक विशिष्ट राष्ट्रीय पहचान बनाने की प्रक्रिया ही राष्ट्र निर्माण कहलाता है जिसमें सभी नागरिकों का सहयोग आवश्यक है। उनके बीच मजबूत एकता की भावना अपेक्षित है क्योंकि सम्मिलित सहयोग और एकता के बिना राष्ट्र निर्माण संभव नहीं और इस दिशा में युवाओं की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

सन्दर्भ सूची

सचदेव, बी. आर. एवं विद्याभूषण (2012). *समाजशास्त्र के सिद्धांत.* नई दिल्ली: किताब महल।

आहूजा, राम (2005). *भारतीय समाज*. नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन।

सिंह, जे. पी. (2010).*सामाजिक परिवर्तन : स्वरुप एवं सिद्धांत*. नई दिल्ली : प्रेंटिस हाल ऑफ़ इंडिया।

नरेंद्र देव, आचार्य (2009). *राष्ट्रीयता और समाजवाद*. नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया।

मैकाइवर, आर.एम. एवं पेज, सी.एच. (2000). *सोसाइटी*. नई दिल्ली : मैकमिलन इंडिया लिमिटेड।

श्रीनिवास, एम.एन. (2000). *आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।

आदिवासी समाज में धर्मांतरण की समस्या और हिन्दी उपन्यास

डॉ. उमेश कुमार पाण्डेय*

सारांश

भारत में आदिवासियों के धर्मांतरण का मुद्दा प्रायः विवादों में रहा है। औपनिवेशिक शासनकाल में ईसाई मिशनरियों ने अपने वर्चस्व की स्थापना के लिय बड़े पैमाने पर धर्म का सहारा लिया। वहीं आजादी के बाद अनेक संगठनों द्वारा आदिवासियों को हिन्दू धर्म की मुख्य धारा में पुनः लौटाने के प्रयास हुए हैं जिसे घर वापसी की संज्ञा दी जा रही है। इन सबके बीच आम आदिवासी की रोजमर्रा जिंदगी से जुड़े मूलभूत प्रश्न नदारद हैं। वह आज भी अपने जीवन की बेहतरी के लिए लगातार संघर्षरत है। धर्मांतरित आदिवासी अपनी संस्कृति को छोड़कर पाश्चात्य संस्कृति को अपनाने लगे हैं जिससे आदिवासी लोक संस्कृति बड़े पैमाने पर प्रभावित हुई है। धर्मांतरण की प्रक्रिया को तेज करने में चर्च के संगठन की मजबूती, राजसत्ता का सहयोग और विदेशों से पर्याप्त धन की उपलब्धता ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। भारत में आदिवासियों की गरीबी, अलगाव और अशिक्षा ने भी धर्मांतरण ही प्रक्रिया को लाभ पहुँचाया है।

मूल शब्द : आदिवासी, धर्मांतरण, अशिक्षा, लोक-संस्कृति, फंडामेंडलिस्ट

प्रस्तावना

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में जनजातियों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। भारत में जनजातियों की आबादी अफ्रीका के बाद दुनिया में सर्वाधिक है (वर्मा, 2003, पृ. 1)। ऐसा विश्वास किया जाता है कि यह लोग भारतीय प्रायद्वीप के मूल निवासी हैं। मूल निवासी होने के कारण ही इन्हें सामान्यतया 'आदिवासी' कहा जाता है। भारत में आदिवासियों के धर्मांतरण का मुद्दा प्रायः विवादों में रहा है। औपनिवेशिक शासनकाल में ईसाई मिशनरियों ने अपने वर्चस्व की स्थापना के लिय बड़े पैमाने पर धर्म का सहारा लिया। वहीं आजादी के बाद अनेक संगठनों द्वारा आदिवासियों को हिन्दू धर्म की मुख्य धारा में पुनः लौटाने के प्रयास हुए हैं जिसे घर वापसी की संज्ञा दी जा रही है। इन सबके बीच आम आदिवासी की रोजमर्रा जिंदगी से जुड़े मूलभूत प्रश्न नदारद हैं।

धर्मान्तरण के कारण एवं दुष्प्रभाव

अनेक विद्वानों का मानना है कि जनजातियों में धर्मांतरण की समस्या मुख्यतः ईसाई धर्म से संबधित रही है, क्योंकि हिन्दू धर्म अत्यंत प्राचीन काल से ही देश में विद्यमान रहा है और भारत में उत्तर-पूर्वी क्षेत्र की जनजातियों के अतिरिक्त देश की अधिकांश जनजातियाँ हिन्दू धर्म से बहुत अधिक प्रभावित रही हैं। मजूमदार और हट्टन जैसे विद्वानों ने तो जनजातीय धर्म 'जीववाद' को हिन्दू धर्म से बहुत कुछ प्रभावित और पूरक तक सिद्ध किया है। एल्विन ने भी अपने विभिन्न निबंधों में जनजातीय धर्मों तथा हिन्दू धर्म में भेद

*सहायक प्राध्यापक (हिन्दी) शासकीय महाविद्यालय बलरामपुर, रामानुजगंज (छ.ग.)।

करने की व्यर्थता की ओर संकेत किया है। यह बातें यह प्रमाणित करती हैं कि हिन्दू धर्म और जनजातीय धर्मों में कोई विशेष विरोधाभास नहीं रहा है। इसलिए धर्मांतरण जैसे प्रयास हिन्दुओं द्वारा नहीं के बराबर हुए हैं। हिन्दू धर्म एक धर्मांतरणकारी धर्म नहीं रहा है (हसनैन, 2004, पृ. 75)। हाँ, एक बात यहाँ महत्त्वपूर्ण है कि तथाकथित सभ्य समाज ने जनजातियों को सदैव उपेक्षा की दृष्टि से देखा और उनके विकास के अवसरों को सीमित किया। इस सामाजिक विषमता ने ईसाईयों द्वारा किए गए धर्मांतरण के लिए उत्प्रेरक का कार्य किया। ब्रिटिश शासन काल में ईसाई मिशनरियों ने जनजातीय इलाकों में प्रवेश कर अनेक प्रकार के सामाजिक तथा आर्थिक प्रलोभन देकर आदिवासियों को धर्म परिवर्तन के लिए बाध्य किया। इस घटना के परिणामस्वरूप बहुत सी जनजातियाँ ईसाई बन गईं। धर्मांतरण के पीछे मुख्य कारण सामाजिक व्यवस्था में ऊँचा स्थान प्राप्त करने की आशा, आर्थिक समृद्धि आदि हैं। धर्मांतरण से आदिवासियों की स्थिति में कोई उल्लेखनीय सुधार तो नहीं हुआ, हाँ इससे उनकी पारंपरिक जीवन शैली और जीवन आधार बहुत गहरे तक प्रभावित हुआ। जनजातीय लोग अपनी संस्कृति को छोड़कर पाश्चात्य संस्कृति को अपनाने लगे। इससे जनजातियों की पारंपरिक संस्कृति और कला का व्यापक पैमाने पर क्षरण हुआ।

धर्मांतरण के कारण दूसरी समस्या भाषा के स्तर पर सामने आयी। मिशनरियों ने रोमन लिपि के माध्यम से शिक्षा देना प्रारंभ किया। जिसके प्रभाव के कारण आदिवासी अपनी बोली-भाषा धीरे-धीरे भूलते गए। इससे जनजातियों की सांस्कृतिक एकता में बाधा उत्पन्न हुई। इसके अलावा बाहरी संपर्क के परिणामस्वरूप मुद्रा के प्रचलन ने जनजातीय वस्तु-विनिमय प्रथा को काफी धक्का पहुँचाया। ईसाई धर्म ग्रहण करने के बाद जनजातियों का एक बड़ा भाग जब अपनी संस्कृति की मूल धारा से अलग हो गया तो इससे सामाजिक पृथक्करण को प्रोत्साहन मिलने लगा। धर्मान्तरण के कुछेक मामलों में स्वगत प्रेरणा भी कारण रहा है लेकिन अंतःप्रेरणा और धर्म की बारीकियों से प्रभावित होकर धर्म बदलना इतने बड़े पैमाने पर संभव नहीं है। धर्मांतरण की प्रक्रिया को तेज करने में चर्च के संगठन की मजबूती, राजसत्ता का सहयोग और विदेशों से पर्याप्त धन की उपलब्धता ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। भारत में आदिवासियों की गरीबी, अलगाव और अशिक्षा ने भी धर्मांतरण की प्रक्रिया को लाभ पहुँचाया।

हिन्दी उपन्यासों में धर्मान्तरण की समस्या

धर्मांतरण की समस्या को हिन्दी के विभिन्न उपन्यासों में उठाया गया है। बस्तर क्षेत्र के जनजातीय जीवन की पृष्ठभूमि पर लिखे गए उपन्यास 'सूरज किरन की छांव' में इस समस्या के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पहलुओं की गहन पड़ताल की गयी है। आदिवासियों की गरीबी को हथियार बनाकर अक्सर उनको बरगलाया जाता रहा है। 'सूरज किरन की छांव' उपन्यास में चर्च का पादरी जरपन भोई से कहता है कि - तुम्हारा धर्म कैसा है ? तुम्हारे लोग कैसे हैं ? तुम जैसा हट्टा-कट्टा आदमी भूखों मर जाय और तेरी जाति वालों के कान में जूँ तक न रेंगे। यदि हमारे धर्म में तू आ जाय, तो जिंदगी भर आराम से खाएगा। जहाँ तेरा पसीना बहेगा हम अपना खून बहा देंगे (अवस्थी, 1979, पृ. 32)। चर्च के पादरी की गतिविधियों के बारे में लेखक आगे लिखता है कि- पादरी अक्सर आसपास के गांव जाता रहता था। वहाँ रहने वाले क्रिश्चियनों के सुःख-दुःख की जानकारी करता था। कितने इस जमात में मिले, उसकी पूछताछ करता था। खुद उपदेश देता और अपनी बड़ी-बड़ी बातों से देहातियों को चकरा देता। जो काम दूसरे ईसाई महीनों में न कर पाते, पादरी पल भर में हल कर देता (अवस्थी, 1979, पृ. 39)। यहाँ पर हम देखते हैं कि

किस तरह एक पादरी आदिवासियों की गरीबी और सीधेपन का फायदा उठाकर अपने धर्म का महिमामंडन करता है। उपन्यास में कई जगहों पर ईसाई धर्म का गुणगान उसके अनुयायियों द्वारा किया गया है। ईसाई महिलाओं और बेंजो जोसेफ जो कि एक धर्मांतरित गोंड़ युवती है के बीच संवाद होता है-

पहली बोली, "यहोबा अपना सबसे बड़ा भगवान है।''
"बड़ा महादेव से भी बड़ा ?" बेंजो जोसेफ ने पूछा।

वह बोली, कौन महादेव ? वह भी कोई देवता है? पत्थर में भला देव रहता है ? यह जंगली जाने क्या-क्या पूजते हैं। हर झाड़ को देव-हर पत्थर को भगवान।''
दूसरी बोली, हाँ, बेंजो, उससे भी बड़ा, दुनियाभर में बड़ा, उससे बड़ा कहीं कोई नहीं (अवस्थी, 1979, पृ. 44)।''

इस उपन्यास में ऋणग्रस्तता को भी धर्मांतरण की एक बड़ी वजह के रूप में चित्रित किया गया है। आदिवासी प्रायः गरीब होते हैं और वक्त पड़ने पर साहूकारों और जमींदारों से कर्ज लेते रहते हैं। दूर-दराज के क्षेत्रों में चर्च के लोग भी यह कार्य करते हैं। वहाँ पर आदिवासियों के कल्याण से अधिक उन्हें अपना ऋणी बना लेने की भावना अधिक कार्य करती है जिससे कि वह गरीब आदिवासियों को दबाव में ला सकें। उपन्यास में बैगा जनजाति की एक स्त्री बेंजो से अपनी दारुण कहानी सुनाते हुए कहती है- आठ-दस बरस पहले मेरे ससुर ने चरच से करजा लिया था। वह मर गया, करजा न पट सका। पटता भी कैसे ? बीस से चालीस जो हो गया। रोज-रोज का गोदना, सहन के बाहर हो गया। एक दिन एक नरस ने कहा, एक लड़का क्यों नहीं दे देती, सब करज पट जाएगा।' लड़का दे दूँ - मैं सोच रही थी कि उसने (पति ने) हामी भर दी (अवस्थी, 1979, पृ. 73)। वास्तव में यह कितना अफसोसजनक है कि ऋणों से मुक्ति के नाम पर आदिवासी लोगों को चर्च की आजीवन सेवा के लिए अपनी संतान तक भेंट करनी पड़ती है। यह घृणित होने के साथ-साथ अमानवीय भी है। बैगा स्त्री आगे बेंजो से कहती है- पादरी कहता था, अबकी बेर करज न उतारा, तो ईसाई बनना पड़ेगा। जाने कितने दिनों से वह हमारे पीछे पड़ा है, जाने कितने लोगों को भेजता है, सब कहते हैं ईसाई हो जाओगे तो जिंदगीभर चैन रहेगा (अवस्थी, 1979, पृ. 74)। इस तरह की मानसिकताएँ निश्चित रूप से यह प्रमाणित करती हैं कि ईसाई धर्म ने बलपूर्वक और रणनीति के तहत आदिवासियों का धर्मांतरण किया और सामाजिक सेवा के नाम पर अपने अनुयाइयों की संख्यावृद्धि में लगे रहे।

'सूरज किरन की छांव' उपन्यास में गरीबी की आड़ में धर्मान्तरण की प्रवृत्ति को भी दर्शाया गया है। देश के ज्यादातर हिस्सों में आदिवासी गरीब, बेरोजगार और तमाम मूलभूत सुविधाओं से हीन थे। ईसाई मिशनरियों ने इस स्थिति का लाभ उठाया और आदिवासियों को ईसाई धर्म में दीक्षित होकर तमाम कष्टों से छुटकारा मिलने का दुष्प्रचार किया। आर्य समाज के लोगों द्वारा ईसाईयों को पुनः हिन्दू धर्म में दीक्षित करने की आशंका को लेकर मरियम जोसेफ से कहती है-''मैंने एक बात और सुनी है, जोसेफ!'' ''क्या ?" जोसेफ ने पूछा। वह बोली, आयर समाज के कुछ लोग आने वाले हैं, वे ईसाईयों की भी जात-बदल करते हैं। उन्हें फिर हिन्दू बनाते हैं।'' ''तुम भी पागल हुई हो, मरियम।'' जोसेफ ने कहा, पैसा बिना दुनिया में क्या धरा है। वह तो पानी है, पानी। एक बूँद न मिले, तो बेड़ा पार। कहां से जुटायेंगे यह आयर समाजी इत्ता पैसा और ईसाई कब तक हिन्दूपन धरेंगें। जब भूखों मरेंगें तो पादरी के ही पैर पकड़ेंगे। तुम्ही बताओ, ऐसा न होता तो हम क्यों इस धरम में आते ? (अवस्थी, 1979, पृ. 84)। उपन्यास में आगे पुनः पैसे

के बल पर होने वाले धर्मान्तरण पर ग्रेसरी बेंजो जोसेफ से कहती है- पागल हुई हो, भाभी। यहां सबको ईसाई पैसों के बल पर बनाया जाता है। आदमी के पास पैसे रहें, तो कोई ईसाई न बने। यदि यह पैसा देना बंद कर दें तो लोग ईसाईयत से बदल जायें। जब आदमी का पेट तड़पता है और जेब खाली रहती है, तब वह धरम नहीं देखता (अवस्थी, 1979, पृ. 107)।

धर्मान्तरण की समस्या पर 'नदी के मोड़ पर' उपन्यास में भी टिप्पणी की गई है। लेखक वहां पर आदिवासियों की गरीबी और ईसाई मिशनरियों की स्वार्थपरकता को इसके लिए सर्वाधिक दोषी करार देता है। लायंस क्लब के लोग ईसाई मिशनरियों के संबंध में कहते हैं- अंग्रेज तो चला गया, लेकिन यह पादरी देश को भ्रष्ट कर रहे हैं। रोटियां बांटने के बहाने धर्म परिवर्तन करते हैं और विदेशी पैसों से जासूसी करते हैं। हिन्दुस्तान के मिलिट्री के अड्डे और एटम बम के फार्मूले बाहर भिजवाते हैं। पता नहीं इन पर सरकार की कड़ी नजर क्यों नहीं है (सदन, 1979, पृ. 125)।

धर्मान्तरण की समस्या पर 'पठार पर कोहरा' उपन्यास में भी लेखक विचार करता है। लेखक कहता है कि धर्मान्तरण की वजह से आदिवासियों में घोर असुरक्षाबोध का जन्म हुआ। आदिवासियों की मूल जीवन शैली, संस्कृति और परंपराओं पर प्रहार ने ईसाई मिशनरियों के प्रति आक्रोश उत्पन्न किया और झारखंड में बिरसा मुण्डा के नेतृत्व में आदिवासियों ने महान विद्रोह किया-मुण्डा जीवन में ईसाईयत और मिशनरियों का अनावश्यक हस्तक्षेप ही वह बुनियादी मुद्दा रहा था जो तत्कालीन ब्रिटिश सरकार की अदूरदर्शिता और ईसाई पक्षधरता के कारण विरोध के फोड़े से विद्रोह का नासूर बन गया था। फिर यह असंतोष, असुरक्षाबोध, जातीय अस्मिता का उद्घोष और मुण्डाओं का अमर्ष उलगुलान के रूप में लगभग पूरे झारखण्ड में ही दावाग्नि की भाँति व्याप्त हो गया था (सिंह, 2005, पृ. 161)। उपन्यास में लेखक धर्म को तभी तक जीवन के लिए उपयोगी मानता है जब तक कि वह लोगों की अंतःप्रेरणा से संचालित होता है। लेखक लिखता है कि -धर्म जब तक कि जनभावनाओं से संचालित होता है, जीवन जीने का आदर्श होता है। परन्तु जब धर्म राज्य, मठ या किसी धर्माधिकारी के फतवों से संचालित होने लगता है, वह विकृतियों का शिकार होने लगता है (सिंह, 2005, पृ. 173)।

काला पादरी और धर्मान्तरण की राजनीति

तेजिन्दर द्वारा लिखित 'काला पादरी' उपन्यास में धर्मान्तरण की समस्या और उस पर होने वाली राजनीति को सबसे सशक्त ढंग से उठाया गया है। 'काला पादरी' ईसाई मिशनरी की कार्यप्रणाली, उसके प्रबंध तंत्र, युवा मिशनरियों की सोच और उनके द्वंद्व की छानबीन के साथ धर्मान्तरण के मुद्दे की इस तरह से पड़ताल करता है कि मिशनरी समाज के उद्देश्यों की कई नई परतें खुलने लगती हैं। उपन्यास में आदित्य जब फादर मैथ्यूज़ से ईसाई मिशनरियों द्वारा किए जाने वाले धर्मान्तरण पर सवाल उठाता है तो फादर मैथ्यूज़ तर्क देते हैं- इनके पास ईश्वर का कोई इमेज नहीं था डियर, जिसकी ओर यह आस भरी निगाह के साथ देख सकें, जब हम यहां आया तो राजा भी अपना देवी को प्लांट कर रहा था। यू नो हाउ टू प्लांट ए थाट, इट इज वैरी इम्पार्टेंट, हमने भी प्रभु यीशु की इमेज़ प्लांट कर दी, इट वाज़ ए वार ऑफ इमेज़ेज, जिसमें जीत हमारी हुई (तेजिन्दर, 2005, पृ. 44)। इस तरह फादर मैथ्यूज वर्चस्व की लड़ाई में अपनी जीत को धर्म की जीत और धर्म की श्रेष्ठता के रूप में साबित करने की कोशिश करते हैं। लेकिन उनका ही अनुयायी जेम्स खाखा जिसके बाप-दादे कभी कन्वर्टेड हुए थे फादर मैथ्यूज की इस मानसिकता पर प्रति प्रश्न करता है- क्या यह सच नहीं कि हमारी इमेज़ेज में पहाड़ थे, नदियां थीं, पेड़ थे, शेर थे, चीते थे और राजा ने हमें बंधुआ बना

दिया, फिजिकली और इक्नॉमिकली एक्सप्लायट किया, लेकिन आपने क्या किया ? यू रादर टेम्ड अस, आपने हमें पालतू बना दिया, हमारे लिए हिंदू फंडामेंटलिस्टों और आपमें अब कोई खास फर्क नहीं है। हमारी सारी इमेज़ेज छीन लीं आप लोगों ने .... (तेजिन्दर, 2005, पृ. 45)। जेम्स खाखा का यह प्रश्न मिशनरी कार्य में लगे युवा मिशनरियों के मन में उठते सवालों को व्यापक फलक प्रदान करता है, यहां पर लेखक यह संकेत देता है कि चर्च के कार्यों में लगी युवा पीढ़ी गहरे असंतोष की शिकार है। जेम्स की प्रतिक्रिया पर फादर कहते हैं- बट यू हैव टु पे द प्राईज़ फॉर एवरी थिंग यू गैट। इस बात पर अपना असंतोष जाहिर करते हुए जेम्स खाखा कहता है- सो यू आर मोर ए बिज़नेसमैन दैन प्रीस्ट (तेजिन्दर, 2005, पृ. 45)। 'काला पादरी' बार-बार स्पष्ट करता है कि धर्मान्तरण के बाद की तीसरी पीढ़ी धर्म को उस सहजता से स्वीकार नहीं कर पा रही है जिस सहजता से पहली पीढ़ी ने स्वीकार किया था।

दरअसल जो पहली पीढ़ी मिशनरियों के प्रभाव में ईसाई बनी थी उसकी लड़ाई भूख से थी। ईसाईयत स्वीकार करना वस्तुतः उनके लिए भूख से मुक्ति का माध्यम था। भूख से मुक्ति के बाद की अगली पीढ़ी तो खुद को पूरी तरह ईसाई बनाने में ही व्यस्त रही लेकिन जेम्स खाखा की पीढ़ी के मन में अब चर्च के कार्यों में व्याप्त विसंगतियों को लेकर ढेरों सवाल पैदा हो रहे हैं। जेम्स खाखा फादर मैथ्यूज़ के संबंध में आदित्य से कहता है-फादर मैथ्यूज़ से मैं जब भी मिलता हूँ, वे हमें हमारे बौनेपन की याद दिलाते हैं (तेजिन्दर, 2005, पृ. 46)। इस तरह हम देखते हैं कि वर्षों पूर्व धर्मान्तरित हुए आदिवासियों में आज अपनी स्थिति को लेकर गहरा असंतोष है। अपने असंतोष को आगे पुनः आदित्य से जाहिर करते हुए जेम्स कहता है- मां कहती है कि चूंकि चर्च ने तुम्हारे पिता और दादा को रोटी दी थी, काम दिया था और राजा की बेगार से मुक्ति दिलवायी थी, इसलिए तुम्हें अपना पूरा जीवन चर्च की सेवा में बिताना है। क्या यह एक तरह का बंधुआ विचार नहीं है (तेजिन्दर, 2005, पृ. 47)। जेम्स खाखा अपना विरोध प्रकट करते हुए आदित्य से फिर कहता है-आखिर एक-दो पीढ़ी पहले तो हमें अपने अस्तित्व का पता नहीं था ठीक से, और अब जब पता चल गया है तो कहते हैं कि भूल जाओ, तुम्हारा कुछ नहीं है, जो कुछ है प्रभु परमेश्वर का है और परमेश्वर का रास्ता मिशनरीज से होकर जाता है, माई फुट, मैं कहता हूँ, परमेश्वर का रास्ता हमारी छोटी-सी नदी ईब से होकर गुजरता है, हमारे पेड़ों और पहाड़ों से होकर जाता है, और तो और सोज़ेलिन मिंज की आंखों से होकर जाता है (तेजिन्दर, 2005, पृ. 48)। इस तरह हम देखते हैं कि जहाँ जेम्स खाखा की टिप्पणियाँ उसे विशिष्ट चरित्र बनाती हैं वहीं उपन्यास में कई ऐसे प्रसंग हैं जो इस तरह के मनोभावों को सहजता से उजागर करते हैं। आदित्य जब लुईसा टोप्पो नामक युवती से पूछता है कि उसके पिता क्या करते हैं, तो उसका जवाब होता है कि वे यीशु के मंदिर में प्रार्थना की बेगार कराते हैं (तेजिन्दर, 2005, पृ. 53)। यानी खेतों में बेगार करने वालों का उपयोग अब प्रार्थना के बेगार में हो रहा है।

'काला पादरी' में अतिवादियों द्वारा किए जा रहे अत्याचारों को भी तेजिन्दर ने अपने उपन्यास का विषय बनाया है। यह संगठन आदिवासियों को प्रायः 'वनवासी' नाम से संबोधित करते हैं। वनवासी कल्याण आश्रम की आड़ में यह संगठन भोले-भाले आदिवासियों को सांप्रदायिकता के जहर में ढाल की तरह इस्तेमाल करते हैं। तेजिन्दर उपन्यास में यह दिखलाने की स्पष्ट कोशिश करते हैं कि किस प्रकार अतिवादी 'घर वापसी' कार्यक्रम के तहत समाज में द्वेष और वैमनस्य फैला रहे हैं। उनके निशाने पर चर्च और मिशनरियां हैं लेकिन इनके बीच पिस रहे हैं आम आदिवासी। अतिवादी जगह-जगह आदिवासियों के बीच इस तरह के धमकी भरे शब्दों का प्रयोग करते हैं-'विदेशी धन पर अपना धर्म बेचने वाले गद्दारों, वापस आ जाओ' और 'यहां रहना है तो हिन्दू बनकर रहना होगा (तेजिन्दर, 2005, पृ . 80)।' निश्चय ही

अतिवादियों की यह मानसिकता सामासिक संस्कृति और धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र के भविष्य के लिए शुभ नहीं है।

'काला पादरी' में सिर्फ चर्च की धार्मिक सत्ता का विश्लेषण नहीं है, वहाँ अंबिकापुर का 'पैलेस' भी है जो यूँ तो सत्ता का प्रतीक है लेकिन आजकल उसके दिन ठीक नहीं हैं क्योंकि प्रदेश में हिंदूवादी पार्टी की सरकार है। यानी 'पैलेस' एक तरह से धर्मनिरपेक्षता का पक्षधर होने का दावा करता है। लेकिन उसकी धर्मनिरपेक्षता की क्या परिभाषा है। वह उपन्यास में बार-बार जाहिर होता रहता है। हिन्दूवाद के उभार से जहाँ चर्च परेशान है, वहीं 'पैलेस' की व्यथा भी कम नहीं है। 'पैलेस' और चर्च के बीच अच्छा तालमेल भी है। अंबिकापुर क्षेत्र में सूखे का प्रकोप है और लोग भूख से मर रहे हैं। चर्च के पास खाद्यान्न का पर्याप्त भंडार है लेकिन बिना 'पैलेस' की अनुमति के वह भूख से पीड़ित लोगों में उन्हें वितरित नहीं करना चाहता। चर्च और 'पैलेस' दोनों की मंशा है कि जब भूख से कुछ लोग मर जाएँ, जनता त्राहि-त्राहि करने लगे तो यह हिंदूवादी सरकार खुद-ब-खुद एक्सपोज हो जाएगी। उस समय जनता को इन्हें वोट देने की गलती का अहसास होगा और तब 'पैलेस' के इशारे पर चर्च आदिवासियों और गरीबों में अनाज का वितरण करेगी। इन धर्मनिरपेक्ष ताकतों का मानवता के प्रति क्या दृष्टिकोण है साफ दिख जाता है (झा, 2002, पृ. 243)। षडयंत्र उस समय और स्पष्ट हो जाता है जब इस संबंध में बिशपस्वामी जेम्स खाखा से कहता है कि- "मतलब साफ है। हमारा अपना इंटरेस्ट हमारे लिए सबसे बड़ा है। वी हैव टू ब्रिंग मैक्सीमम पीपल इन अवर फोल्ड दैट इज अवर ड्यूटी फॉर व्हिच गॉड हैज़ सैंट अस टू दिस अर्थ, इसके लिए अगर कुछ लोग भूख से मर जाते हैं तो वह भी प्रभु की इच्छा है।" जेम्स खाखा को एकाएक विश्वास नहीं हुआ कि यह वही बिशपस्वामी हैं जो हर रविवार की सुबह गिरिजाघर में सभी मनुष्यों के प्रति प्रेम और क्षमा की बात करते हैं और कहते हैं, प्रभु इन्हें क्षमा कर देना, यह नहीं जानते कि यह क्या कर रहे हैं (तेजिन्दर, 2005, पृ. 124)। इस तरह हम देखते हैं कि हर तरफ राजनीति हो रही है और सब अपने-अपने हितों के लिए काम कर रहे हैं, आम आदिवासी की चिंता किसी को नहीं है। वह सब तरफ से पिस रहा है।

निष्कर्ष

कहना न होगा कि धर्मांतरण जैसी प्रक्रियाओं से परंपरागत आदिवासी संस्कृति में व्यापक पैमाने पर संक्रमण पैदा हुआ है और अंततः उनका ही नुकसान हुआ है। ईसाई मिशनरियाँ जो कर रही हैं वह निश्चय ही गलत है क्योंकि दर्शन, अध्यात्म और धर्म जैसी चीजें चेतना के उच्च विकास की अवस्थायें हैं, अभी तो वह रोटी-पानी के मोहताज हैं और अगर वह रोटी देकर दूसरे हाथ में बाइबिल थमा रहे हैं तो वह भी उतने ही दोषी हैं जितने कि वह लोग जो उनका पांव पूजकर उनको वापस मुख्य धारा में लाने की कोशिश कर रहे हैं। उसके बाद उन्हें छोड़ देते हैं, भूल जाते हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि आदिवासियों को स्वाभाविक विकास के अवसर उपलब्ध कराए जायें जिससे वह अपनी संस्कृति को सुरक्षित रखते हुए समाज की मुख्य धारा में शामिल हो सकें।

संदर्भ सूची

वर्मा, रूपचंद (2003). *भारतीय जनजातियां*. नई दिल्ली: प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार।

हसनैन, नदीम (2004). *जनजातीय भारत*. नई दिल्ली: जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीव्यूटर्स।

अवस्थी, राजेन्द्र (1979). *सूरज किरण की छांव*. नई दिल्ली: पराग प्रकाशन।

सदन, दामोदर (1979). *नदी के मोड़ पर*. नई दिल्ली: पराग प्रकाशन।

तेजिन्दर, काला पादरी (2005). नई दिल्ली: नेशनल पेपरबैक्स।

झा, विमल (2002). *मानसिकता का छद्म (लेख), पुस्तकवार्ता, नवंबर-दिसंबर*. वर्धा: महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय।

सिंह, राकेश कुमार (2005). *पठार पर कोहरा*. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ।

अण्डमान द्वीप समूह के मूल निवासियों का एक परिचय

प्रमोद कुमार*

सारांश

भारत सांस्कृतिक और सामाजिक विविधताओं का देश है। यहाँ भिन्न-भिन्न धर्मों और संस्कृतियों के लोग रहते हैं। यह लोग अलग-अलग धर्मों, जातियों एवं संस्कृतियों के मुताबिक अलग-अलग समाजों या समूहों में बंटे हुए हैं। इनमें से कई ऐसे समुदाय हैं जिनका रहन-सहन आधुनिक जीवन शैली के अनुसार चलता है। लेकिन अभी भी कई ऐसे समूह हैं जो जंगलों में रहते हैं और शिकारी-संग्रहकर्ता जीवन शैली का अनुसरण करते हैं। इन शिकारी-संग्रहकर्ता जिंदगी जीने वाले समुदायों में कुछ ऐसे समूह हैं जो शिकारी-संग्रहकर्ता जिन्दगी जीते हुए जंगल से संग्रह की गई सामग्रियों को अपने इर्द-गिर्द रहने वाले अन्य समूहों से आवश्यक खाद्य पदार्थों के लिए अदला-बदली करते हैं, जबकि कई ऐसे समूह हैं जो आज भी जंगल में रहते हुए पुरापषाण युग की तरह अपनी जिंदगी जीते हैं। अंडमान में आज भी कुछ ऐसे समूह रहते हैं जो पुरापाषाण युग की तरह ही अपनी जिंदगी जीते हैं। हम इस आलेख में इन समुदायों के बारे में चर्चा करेगें। यह समुदाय मानव सभ्यता के सबसे पुराने समुदायों में से एक हैं।

बीज शब्द: अंडमान द्वीप समूह, आदिम जनजाति, प्रवासी या सैटलर, विलुप्त, मूल निवासी

परिचय

हालाँकि आज के अंडमान में भारत के अलग-अलग प्रदेशों से आकर लोग बसे हैं जो यहाँ की आबादी का बड़ा हिस्सा हैं लेकिन हम इस आलेख में अंग्रेजी उपनिवेशवाद से पहले से रह रहे समुदायों की चर्चा करेंगें जिन्हें हम मूल निवासी कहते हैं। यह सर्वविदित है कि हमको हमेशा से अपने इतिहास और समाज के विकास के बारे में जानने की इच्छा रही है। हम वैज्ञानिक, दार्शनिक, सामाजिक, एवं भाषाई अध्ययनों के माध्यम से अपने इतिहास और समाज के विकास के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार आधुनिक मनुष्यों की उत्पत्ति वानर समूह से हुई है जो विकास के कई चरणों को पार करते हुए ज्ञानी-मानव (Homo-Sapiens) के रूप में आज इस धरती पर विद्यमान हैं। ऐसा माना जाता है कि इस ज्ञानी-मानव की उत्पति 315 से 200 हजार साल पहले अफ्रीका में हुई थी। हालांकि पूरे विश्व में इन आधुनिक ज्ञानी-मानव का विस्तार 60 से 70 हजार वर्ष पूर्व हुआ था (थंगराज एवं अन्य, 2003, 2005) जिसे इतिहासकार पुरापाषाण काल के नाम से बुलाते हैं। यह भी सत्य है कि 10 हजार वर्ष पूर्व तक धरती पर हिम-युग था जो इन समुदायों के संचलन के लिए उपयुक्त था (पहुँच के हिसाब से धरती की उपलब्धता के अनुसार)। यही कारण है कि यह समुदाय अफ्रीका से अंडमान तक आसानी से पहुँचने में सफल हुए। इससे पता चलता है कि सदियों से इन समूहों के लोगों के लिए अंडमान द्वीप समूह बसेरा रहा है। इसके अलावा अंडमान ऐसी जगहों में से एक है जहाँ थोड़ा उष्णकटिबंधीय क्षेत्र सा वातावरण है जो बाद में इन समुदायों के रहने के लिए अनुकूल साबित हुआ। हालाँकि विश्व में कई ऐसी जगहें हैं जहाँ इन समुदायों के लिए रहना

*सहायक प्राध्यापक, भाषा विज्ञान विभाग, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक।

मुश्किल था। आनुवांशिक एवं भाषा-वैज्ञानिक अध्ययनों के अनुसार इन समुदायों ने अलग-अलग काल खंडों में इस द्वीप को अपना बसेरा बनाया है (अब्बी 2006, थंगराज इत्यादि 2005)। इसके अलावा विश्व का यह एक ऐसा समुदाय है जो लम्बे समय से आधुनिक मानव समाज से दूर और अलग रहा है (कश्यप आदि, 2003)। आनुवांशिक अध्ययन के अनुसार यह लोग पुरापाषाण मनुष्य जाति से संबन्धित हैं जिन्होंने सर्वप्रथम 40 से 60 हजार वर्ष पूर्व दक्षिण-पूर्व एशिया की धरती को अपनी जीवन-स्थली बनाया था (थंगराज एवं अन्य, 2003, 2005)। ऐतिहासिक अध्ययन से यह पता चलता है कि इन समुदायों का अलग-अलग समयकाल में आधुनिक समाज से संपर्क हुआ। अंग्रजों के आने से पहले इन द्वीपों के लोगों का इतिहास धुंधला है। कुछ यात्रियों द्वारा उनके यात्रा-वृतांत में किए गए वर्णन के अलावा हमारे पास कोई और ठोस सबूत नहीं है। हालाँकि इन यात्रा-वृतांतों में उपलब्ध जानकारियाँ वर्तमान में उपलब्ध साक्ष्यों से अलग प्रतीत होती हैं।

अंडमान

अंडमान और निकोबार द्वीप समूह भारतीय गणराज्य का एक केन्द्र शासित प्रदेश है जो बंगाल की खाड़ी में हिन्द महासागर के दक्षिणी भाग में स्थित है। यह द्वीपसमूह एक अर्धचंद्र आकार में फैला है जो म्यांमार के केप नेग्राइस से इंडोनेशिया के सुमात्रा के बांदा आर्क तक स्थित है। अंडमान को म्यांमार की जलमग्न अराकानयोमा पर्वत श्रृंखला का विस्तार माना जाता है जबकि सुमात्रा के दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम में टावेई द्वीप समूह को निकोबार की दक्षिणी निरंतरता मानी जाती है (अब्बी 2006)। अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह 8249 वर्ग किमी के क्षेत्र में फैला हुआ है जिसमें 574 छोटे-छोटे द्वीपों, चट्टानों और चट्टानी बहिर्गमन का एक द्वीपसमूह है। हालाँकि इनमें से सिर्फ कुछ ही द्वीपों पर लोग रहते हैं (अब्बी 2006)। यहाँ की राजधानी और सबसे बड़ा शहर पोर्टब्लेयर है। इस द्वीप समूह के पूर्व में अंडमान सागर और पश्चिम में बंगाल की खाड़ी स्थित है। अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह को दो भागों में बांटा गया है, अंडमान और निकोबार। अंडमान, अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह का एक भाग है। अंडमान द्वीप समूहों को निकोबार द्वीप समूहों से एक 150 कि.मी. चौड़ा चैनल अलग करता है जिसे 10° चैनल के नाम से जाना जाता है। अंडमान 6408 वर्ग कि.मी. में फैला है और लगभग 550 छोटे-छोटे द्वीपों, चट्टानों और चट्टानी बहिर्गमन से बना है। इस 550 छोटे-छोटे द्वीपों, चट्टानों और चट्टानी बहिर्गमन में से केवल 26 द्वीपों में लोग स्थायी रूप से रहते हैं। निकोबार 1841 वर्ग कि.मी. के क्षेत्र में फैला हुआ है जिसमें 24 छोटे-छोटे द्वीप, चट्टानें एवं चट्टानी बहिर्गमन सम्माहित हैं। हालाँकि इनमें से केवल 11 द्वीपों में लोग स्थायी रूप से रहते हैं।

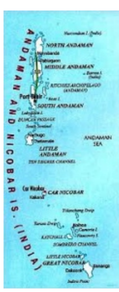

मानचित्र 1: अण्डमान और निकोबार द्वीप समूह (अंडमान और निकोबार प्रशासन वेबसाइट से साभार)

अण्डमान के निवासी

अंडमान के लोगों को मुख्यः रूप से दो समुदायों में वर्गीकृत किया जाता है; मूल निवासी या आदिम जनजाति और प्रवासी या सैटलर। 1858 से पूर्व अंडमान द्वीप समूह केवल मूल निवासी या आदिम जनजाति का निवास-स्थल था। लेकिन 1857 में सिपाही विद्रोह के बाद अंग्रेजों के द्वारा अंडमान को दण्डीय कॉलोनी बनाने एवं अंग्रेजी उपनिवेश का हिस्सा बनाने के लिए इन द्वीपसमूहों को गैर मूल निवासियों का आशियाना बनाने की शुरुआत हुई। इसमें विभिन्न समुदायों एवं सम्प्रदायों के लोगों को लाया गया जिन्होंनें इन द्वीपों को अपने जीवन-यापन का क्षेत्र बनाया।

अतः वर्तमान समय में अंडमान और निकोबार द्वीप समूह अलग-अलग संप्रदायों और धर्मों के लोगों का घर है। यहाँ गैर मूल-निवासियों का आगमन ब्रिटिश उपनिवेश की स्थापना के साथ शुरू हुआ जब उपनिवेशवादी अपने साथ मजदूरों, कैदियों और अन्य लोगों को लाए जिनमें से कई लोग इन्हीं द्वीपों पर बस गए। इन लोगों में मध्य एवं पूर्वी भारत की जनजातियाँ भी शामिल हैं। इन्हें राँची समुदाय के नाम से जाना जाता है। लेकिन इन जनजातियों के लिए अंडमान में भारत की अन्य जनजातियों की तरह जनजातीय आरक्षण की व्यवस्था नहीं है।

स्वतंत्रता के बाद सरकारी नीतियों के तहत इन द्वीपों पर गैर मूल-निवासियों को बसाने की शुरुआत हुई। खासकर 1950 एवं 1960 के दशक में बांग्लादेश (उस समय का पूर्वी पाकिस्तान) और श्रीलंका से आए शरणार्थियों को भारत सरकार की नीतियों के तहत इन द्वीपों पर बसाने की प्रक्रिया की शुरुआत हुई। फलस्वरुप इन गैर मूल-निवासियों का आगमन जारी रहा और भिन्न-भिन्न प्रकार के समूहों से यह द्वीप आबाद होता रहा। इन गैर मूल-निवासियों में वह लोग भी शामिल थे जो नौकरी की तलाश में (कुछ ठेका मजदूर के रुप में या अन्य रोजगारों की तलाश में) या व्यापार के लिए द्वीपों में आए थे। इसके परिणामस्वरूप एक विभिन्न तरीके की आबादी का निर्माण हुआ जो भिन्न-भिन्न द्वीपों में अलग-अलग पॉकेट (छोटे-छोटे इलाकों) में बस गईं या बसाई गईं। इनमें से कुछ इलाके जारवा रिजर्व एरिया के किनारे पर स्थित हैं। यही स्थिति लिटिल अंडमान की है जहाँ यहाँ के मूल निवासियों को एक छोटे से द्वीप में बसा दिया गया और सारे द्वीप को प्रवासियों के हवाले कर दिया गया। निकोबार में कमोबेस स्थिति थोड़ी अलग है। यहाँ भारतीय वायु सेना का बेस होने के कारण गैर मूल-निवासियों का प्रवेश निषेध है। इसलिए यहाँ प्रशासनिक सेवा से जुड़े स्टाफ के अलावा केवल दिहाड़ी मजदूर और कुछ आवश्यक वस्तुओं की दुकानें एवं उसे चलाने वाले लोग ही रहते हैं जिन्हें अपना पास समय-समय पर नवीकृत कराते रहना होता है। इसके अलावा यहाँ पहले से बसे मूल निवासी जैसे निकोबारी, शोम्पेन इत्यादि रहते हैं। अंडमान और निकोबार द्वीप समूह की जनसंख्या तालिका 1.1 में जनगणना रिपोर्ट (1971-2011) के आधार प्रस्तुत की गई है। वहीं तालिका 1.2 में धर्म के अनुसार विवरण दिया गया है।

सारणी 1.1: अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में गैर मूल-निवासियों की जनसंख्या (Census of India के सौजन्य से)

विषय	1971	1981	1991	2001	2011
कुल जनसंख्या	115133	188741	280661	356152	380581
पुरुष	70027	107261	154369	192972	202871

महिला	45106	81480	126292	163180	192972
ग्रामीण जनसंख्या	88915	139107	205706	239954	237093
पुरुष	53195	78401	111986	128961	126287
महिला	35720	60706	93720	110993	110806
शहरी जनसंख्या	26218	49634	74955	116198	143488
पुरुष	16832	28860	42383	64011	76584
महिला	9386	20774	32572	52187	66904

सारणी 1.2: अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में गैर मूल-निवासियों की धर्म के अनुसार जनसंख्या (Census of India के सौजन्य से)

धर्म	1971	1981	1991	2001	2011
हिन्दू	70134	121793	189521	246589	264296
ईसाई	30342	48274	67211	77178	80984
मुस्लिम	11655	16188	21354	29265	32413
सिख	865	991	1350	1587	1286
बौध	103	127	322	421	338
जैन	14	11	17	23	31
अन्य	2020	1357	886	1089	1233

अंडमान के मूल निवासी

इतिहास के पन्नों में अंडमान के निवासियों को कई नामों से जाना जाता रहा है। इन्हे नरभक्षक, राक्षस, नंगे लोग, शत्रु आदि नामों से पुकारा जाता रहा। जब पहली बार अंग्रेजों द्वारा ग्रेट अंडमानी समुदाय के दो लोगों को कलकत्ता लाया गया था तो लोगों ने इन्हे हनुमान के नाम से पुकारा (पोर्टमैन 1889)। अंडमान द्वीप समूहों एवं इस पर रहने वालों को विश्व सदियों से जानता है। इन द्वीप समूहों एवं इनके निवासियों का पहला उल्लेख दूसरी सदी ईसा पूर्व टॉलमी (Ptolemy) के द्वारा बनाए गए मानचित्र में मिलता है जिसमें हिंद महासागर में कुछ चित्तीदार छोटे द्वीपों को दिखाया गया है, जिन्हें बुज़ाकाटा कहा गया था (मुखर्जी, 2003)। हालाँकि ऐतिहासिक साक्ष्य इस ओर भी इशारा करते हैं कि चीन और जापान को इन द्वीपों के बारे में जानकारी पहली शताब्दी ईसा पूर्व से थी (पोर्टमैन 1889)। हालाँकि अंग्रेजों के यहाँ आने से पहले यहाँ के बारे में जानकारियाँ यात्रा-वृतांत में ही मिलती हैं जो दूर से किए गए अवलोकन की तरह है और सच्चाई से परे महसूस होता है। इसी तरह का पहला विवरण दो अरब यात्रियों के यात्रा-वृतांत में मिलता है जिन्होंने नौवीं शताब्दी में भारत और चीन के बड़े हिस्से की यात्रा की थी (मुखर्जी 2003)। इन अरब यात्रियों ने 857 ई. में अंडमान के लोगों का वर्णन इस प्रकार कियाः

इस तट के लोग मानव मांस काफी कच्चा खाते हैं, उनका रंग काला है, उनके बाल झड़ गए हैं,

उनका चेहरा और आंखें डरावनी हैं, उनके पैर बहुत बड़े हैं, और लंबाई में लगभग एक हाथ है और वह पूरी तरह से नग्न रहते हैं। उनके पास किसी प्रकार की छाल या अन्य बर्तन नहीं होते हैं; यदि उनके पास होता तो वह उन सभी यात्रियों को पकड़ लेते और खा जाते जिन पर वह हाथ रख सकते थे (Translated from Mukherjee 2003)।

(The people on this coast eat human flesh quite raw; their complexion is black, their hair frizzled, their countenance and eyes frightful, their feet are very large, and almost a cubit in length, and they go quite naked. They have no sort of barks or other vessels; if they had, they would seize and devour all the passengers they could lay hands on.)(Mukherjee, 2003).

ग्यारहवीं शताब्दी की एक अरबी किताब "अजैब-अल-हिंद" में इनके बारे में उल्लेख किया गया है:

अंडमान पर आज तक कोई नहीं उतरा, जहां के लोग नरभक्षी हैं (Translated from Mukherjee 2003)।

(No one to this day has landed on the Andaman where people are cannibals.)(Mukherjee, 2003).

अपने घर इटली जाते समय मार्को पोलो 1290 में अंडमान और निकोबार द्वीप समूह के तट पर उतरा था। उसने अंडमान का उल्लेख अंगमानैन के रूप में किया और लोगों के बारे में इस प्रकार वर्णन किया है-

अंगमानैन एक बहुत लंबा द्वीप है। यहाँ के लोग बिना राजा के हैं, और मूर्तिपूजक हैं और जंगली जानवरों से बेहतर नहीं हैं। और मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि अंगमानैन के इस द्वीप के सभी निवासियों के सिर कुत्तों की भाँति हैं, और दांत और आंखें भी उसी तरह की हैं; वास्तव में, वह सभी चेहरे से बड़े मास्टिफ कुत्तों की तरह हैं। उनके पास मसालों की पर्याप्त मात्रा है; लेकिन वह सबसे क्रूर पीढ़ी के लोग हैं और वह जिसको भी पकड़ लेते हैं उन सभी को खा जाते हैं यदि वह उनकी जाति का ना हो (Translated from Mukherjee 2003)।

(Angamanain is a very long island. The people are without a king, and are Idolaters, and are no better than wild beasts. And I assure you all the men of this Island of Angamanain have heads like dogs, and teeth and eyes likewise; in fact, in the face they are all just like big mastiff dogs! They have a quantity of spices; but they are a most cruel generation, and eat everybody that they can catch, if not of their own race.)(Mukherjee, 2003).

1771 में जॉनरिची का सर्वे एवं 1788-89 के दौरान रॉयल इन्डियन मैरीन के लेफ्टिनेट आर. एच. कोलब्रुक एवं आर्कीवाल्ड ब्लेयर का सर्वेक्षण और अंततः 1789 में ब्लेयर के द्वारा दक्षिण अंडमान की दक्षिण-पूर्वी खाड़ी में अंग्रेजी हुकूमत का आधार रखना अंडमान के इतिहास में एक नए युग की शुरुआत मानी जाती है (पोर्टमैन 1889)। यह युग अंडमान के मूल निवासियों के लिए बुरे युग की शुरुआत कहा जा सकता है। जिस द्वीप पर ब्लेयर ने अंग्रेजी हुकूमत का झंडा गाड़ा उस द्वीप का नाम उस समय के गर्वनर जनरल के नाम पर पोर्ट कॉर्नावलिस रखा गया जिसे आज पोर्ट ब्लेयर के नाम से जाना जाता है।

लेकिन 1792 में यह प्रशासनिक व्यवस्था सामरिक एवं क्षेत्रवाद के फायदे के लिए उत्तर की ओर बेहतरीन रणनीतिक स्थान पर स्थानांतरित कर दिया गया। वर्तमान में इस द्वीप को डिगलीपुर के नाम से जानते हैं। हालाँकि यह स्थानांतरण अंग्रेजों को बहुत महँगा पड़ा। यहाँ पर अत्यधिक अस्वस्थता और उच्च मृत्यु दर का सामना करना पड़ा जिसके कारण 1796 में इन द्वीपों पर उपनिवेश का हिस्सा बनाने का इरादा छोड़ना पड़ा। हालाँकि पोर्टमैन (1889) के अनुसार 1788-96 के दौरान अंग्रेजों एवं अंडमान के मूल निवासियों के बीच के सम्बंध या अन्य घटनाओं की कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है।

लेकिन 1857 में भारत में सिपाही विद्रोह के बाद अंग्रेजी हुकूमत ने अंडमान को एक बार फिर से अपना उपनिवेश बनाने का मन बनाया और दक्षिणी अंडमान के द्वीपों को अपने उपनिवेश का केंद्र बनाया क्योंकि पहले उपनिवेश के दौरान इन द्वीपों में ऐसा कोई नुकसान नहीं हुआ था। हालाँकि पोर्टमैन (1889) इस बात से इत्तेफाक नहीं रखते। उनका मानना है कि अंग्रेजी हुकूमत ने सामरिक एवं भौगोलिक परिस्थितियों के कारण इन द्वीपों पर अपना उपनिवेश स्थापित करने की योजना बनायी।

हालाँकि पोर्टमैन ने विज्ञान की दुहाई देकर इन जनजातियों के बारे में जानकारियाँ जुटाना आरम्भ किया और उनके बारे में बहुत कुछ लिखा। उन्होनें ग्रेट अंडमानी भाषाओं का तुलनात्मक शब्दकोष बनाया एवं उन लोगों पर अंग्रेजी नीतियों एवं उसके प्रभावों पर किताबें एवं शोध पत्र लिखे। उन्होनें अंग्रेजों के सम्पर्क में आने से फैली बीमारियों से हुई तबाहियों का जिक्र किया है और कैसे हैजा एवं दूसरी बीमारियों से यह जनजातियाँ मर रही थीं और अंग्रेजी हुकूमत कुछ भी मदद करने में असमर्थ थी। यही कारण था कि बीसवीं सदी के आते-आते जांगिल जाति विलुप्त हो गई और अन्य जातियों की अबादी बहुत तेजी से घटने लगी। इसके परिणामस्वरुप हजारों की संख्या में रहने वाले समुदाय दहाई और सैकड़ा में बचे थे। 1901 की जनसंख्या के अनुसार ग्रेट अंडमानी समुदायों की जनसंख्या 625 तक पहुँच गयी और यह संख्या इसके बाद भी लगातार गिरती रही। जो समुदाय इनके सम्पर्क में नहीं आए जैसे जारवा और सेंटिनली वह महामारी से होने वाले नुकसान से बच गए। यहाँ तक की जारवा मजबूत हुए और अपने इलाके का विस्तार किया।

रैडक्लिफ ब्राउन (1948) ने भाषाई और सांस्कृतिक समानता के आधार पर अंडमान के मूल निवासियों को दो व्यापक श्रेणियों में वर्गीकृत किया। एक समूह में ग्रेट अंडमान के दस समुदाय शामिल हैं; दूसरा ग्रेट अंडमान के जरावा, लिटिल अंडमान के ओन्गे और सेंटिनल द्वीप के निवासियों को शामिल किया गया है। पहले वाले समूह को ग्रेट अंडमानी और दूसरे वाले समूह को लिटिल अंडमानी कहा जाता है। यह कहा जाता है कि जब अंग्रेजों ने इन द्वीपों को अपने उपनिवेश का हिस्सा बनाने का सोचा तो उस वक्त पूरा अंडमान इन जनजातियों से भरा था (पोर्टमैन1889)। मानचित्र 2 में अंडमान में 1800 और 2000 में मूल निवासियों की आबादी की तुलनात्मक तस्वीर प्रस्तुत है।

मानचित्र 2:अंडमानी जनजातियों की तुलनात्मक स्थिति (अंडमान.ओआरजी के सौजन्य से)

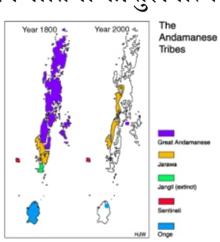

ग्रेट अंडमानी

ग्रेट अंडमानी दस समुदायों का एक समूह है जो दक्षिण अंडमान से उत्तरी अंडमान तक के क्षेत्र में फैले रहे हैं। इन समुदायों के नाम क्रमशः आका-चारी, आका-कोरा, आका-बो, आका-जेरू, आका-केडे, आका-कोल, ओको-जुवोई, आका-पुचिकवार, अकर-बाले और आका-बेया हैं। इन समुदायों का अपना क्षेत्र होता था जिसमें यह रहते थे और अपना जीवन-यापन करते थे। यह लोग अपने क्षेत्र के बाहर ना शिकार करने जाते थे ना ही भोजन-सामग्री एकत्र करने जाते थे। मानचित्र 3 इन समुदायों का 1860 से पहले की भौगोलिक स्थिति (इन समुदायों के क्षेत्रों) को दर्शाता है।

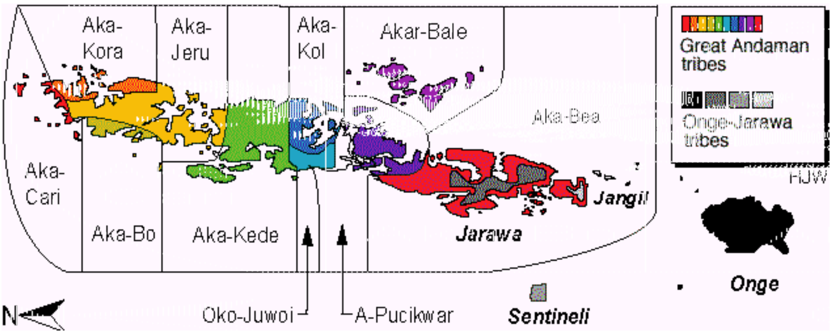

मानचित्र 3-1860 के पहले अंडमान में मूल निवासियों की क्षेत्रीय स्थिति (अंडमान.ओआरजी के सौजन्य से)

1858 में ब्रिटिश उपनिवेश की स्थापना से पहले ग्रेट अंडमानी समूह के सभी दस समुदाय पूरे ग्रेट अंडमान क्षेत्र में फैले हुए थे। उनका अपना-अपना क्षेत्र था। जरावा और जांगिल दक्षिणी अंडमान के एक छोटे से क्षेत्र पर रहते थे। ग्रेट अंडमानी समुदायों को उपनिवेशवादियों के संपर्क में आने से भारी नुकसान हुआ। जहाँ 1860 से पहले ग्रेट अंडमान के हर समुदाय की जनसंख्या हजारों में थी वहीं बीसवीं सदी आते-आते इनकी संख्या दहाई एवं सैकड़ा में रह गई। 1901 की जनगणना के अनुसार ग्रेट अंडमानी की जनसंख्या घटकर 625 हो गई थी। 1931 की जनगणना में उनकी संख्या 74 जमा 16 (शुद्ध नस्ल की 74 और आधी नस्ल की 16) बताई गई और 1974 तक केवल 23 जीवित रहे (चक्रवर्ती 1990) और केवल जनसंख्या में एक छोटी सी वृद्धि देखी गई है और उनकी संख्या अब 40 को पार कर गई है (अब्बी 2006)। रैडक्लिफ ब्राउन (1948:11-12) ने बताया कि ग्रेट अंडमानी समूह की सभी भाषाएं एक दूसरे से संबंधित थीं। उनकी व्याकरणिक संरचना समान थी और बड़ी संख्या में धातु (मूल शब्द) सभी में या उनमें से कई में समान थे। अब्बी (2006) ने पाया कि वर्तमान ग्रेट अंडमानी भाषा ग्रेट अंडमानी के सभी जीवित समुदायों की भाषाओं का एक मिश्रण है। उसने आगे पाया कि वर्तमान में चार अलग-अलग ग्रेट अंडमानी भाषाओं के कुछ बुज़ुर्ग ही बचे हैं जो अपनी भाषाओं को जानते हैं। वह लोग बो (अका-बो), जेरू (अका-जेरु), खोरा (अका-कोरा) और सारे (अका-चारे) भाषाएं बोलने वाले बुज़ुर्ग हैं। परन्तु 2021 तक वह लोग भी नहीं रहे। बची हुई ग्रेट अंडमानी आबादी ने चूँकि अपनी भाषा नहीं सीखी और स्कूल में एवं पोर्टब्लेयर में रहते हुए अंडमानी हिन्दी सीखी अतः वर्तमान में वह केवल अंडमानी हिन्दी ही बोलते हैं।

ओंगे

एक समय में पूरा लिटिल अंडमान ओंगे समुदाय के लिए घर था जहाँ वह अपना जीवन-यापन करते थे। लेकिन अंग्रेजी उपनिवेशिवाद आने के बाद इस समुदाय का जमीनी हक कम हुआ। अंग्रेजों ने पहले उनको अपने उपनिवेश में शामिल किया और सामरिक परिस्थितियों के लिए उपयोग करना शुरु किया। लेकिन स्वतंत्रता के बाद भारतीय सरकारों ने इन द्वीपों को अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप विस्तार करने के लिए उपयोग करना शुरु किया। 1950 के बाद भारत सरकार द्वारा शरणार्थियों को अंडमान द्वीप समूह में बसाने के निर्णय के बाद इन द्वीपों पर गैर-ओंगे आबादी बसने लगी। यह गैर-ओंगे आबादी अपने साथ कई बीमारियाँ लेकर आई जिसने यहाँ के द्वीपों के पारिस्थितिक संतुलन को बिगाड़ दिया; नतीजतन, ओंगे की आबादी घटने लगी। वर्तमान में उनकी आबादी लगभग 104 है (अब्बी 2006)। 1970 के दशक में इन्हे दो क्षेत्रों में बसाया गया: डुगोंगक्रीक और साउथ बे। हालाँकि वर्तमान में साउथ के ओंगे अबादी को भी डुगोंगक्रीक इलाके में बसा दिया गया है। अतः आज के दिनों में ओंगे केवल डुगोंगक्रीक में ही रहते हैं। उनकी भाषा जरावा के समान प्रतीत होती है (अब्बी 2006; ब्लेविन्स 2007)।

जारवा

जारवा दक्षिण और मध्य अंडमान द्वीप समूह के पश्चिमी तट पर निवास करते हैं। उपनिवेशीकरण के प्रारंभिक चरण में और दूसरे चरण के प्रारंभिक वर्षों में जारवा दक्षिण अंडमान के दक्षिणी भाग जो आज पोर्टब्लेयर का हिस्सा है और कुछ रुटलैण्ड द्वीप का हिस्सा है, में निवास करते थे। उपनिवेशीकरण के दूसरे चरण में इन क्षेत्रों में अधिकांश बंदरगाह और दण्डीय कॉलोनी बना दी गईं। उन्नीसवीं सदी के अंत तक पूरा क्षेत्र दण्डीय कॉलोनी एवं वन कार्यों के अंतर्गत आ गया। इसके परिणामस्वरूप जारवाओं को शिकार करने और खाद्य सामग्री इकट्ठा करने में समस्याएं आने लगीं। परिणामस्वरुप उन्हें उत्तर की ओर बढ़ने के लिए मजबूर होना पड़ा। उस समय तक ग्रेट अंडमानी समुदायों की शक्ति और जनसंख्या में भारी गिरावट आ गई थी जिससे जारवाओं को उत्तर की ओर बढ़ने का एक सुरक्षित मार्ग मिल गया। पोर्टमैन (1889) के अनुसार उपनिवेशीकरण के प्रथम चरण (1789-92) में जारवा अंग्रेजों के सम्पर्क में आए थे लेकिन शायद उन्हे नुकसान हुआ इसलिए दूसरे चरण (1858 के बाद) में अंग्रेजों एवं उनके द्वारा लाए गए गैर मूल निवासियों से जारवा ने दूरी बनाए रखी। हालाँकि अंग्रेजों के आने से पहले इन समुदायों (सारे अलग-अलग मूल निवासी समुदाय) के बीच कोई सम्पर्क या दोस्ताना सम्बंध होने का कोई साक्ष्य नहीं है। बल्कि जारवा शब्द ग्रेट अंडमानी समूह की अका-बेया भाषा से लिया गया है। लेकिन जारावा वास्तव में अपने आप को "अंग" कहते हैं। यह एक सच्चाई है कि जब भी अंग्रेजी हुकूमत की टीम किसी दूसरे समुदाय के यहाँ छापा मारती थी तो वह दोस्त बने ग्रेट अंडमानी समुदाय के कुछ लोगों को साथ लेकर जाती थी। और उन्हीं लोगों से उन समुदायों का नाम पूछती थी। इसलिए जब जारवा पर छापा मारा गया और अका-बेया के लोगों से उनके बारे में पूछा गया तो अका-बेया ने उन्हें जारवा कहा। रैडक्लीफ-ब्राउन (1948) के अनुसार अका-बेया भाषा में जारवा शब्द का अर्थ "अजनबी" या "डरावना" होता है। इसका मतलब अका-बेया समुदाय जारवा को नहीं जानते थे या दोनों पड़ोसी समुदायों में पारम्परिक दुश्मनी रही होगी। 1997 यह समुदाय अंडमान प्रशासन एवं जारवा रिजर्व इलाके के नजदीक में बसाए गए गैर मूल निवासी आबादी के लिए मुश्किल का एक सबब बना था।1997 के बाद इस समुदाय ने अंडमान प्रशासन एवं यहाँ के गैर मूल निवासियों से दोस्ती का हाथ बढ़ाया और गैर मूल निवासियों की बस्तियों पर छापा मारना बंद कर दिया। वर्तमान में जारवा रिजर्व इलाके में जारवाओं के लिए अंडमान

प्रशासन ने शिक्षा के लिए स्कूल खोले हैं। हालाँकि अभी भी भारत सरकार एवं अंडमान प्रशासन ने इन समुदायों से किसी भी प्रकार के सम्पर्क पर प्रतिबंध लगाए हुए हैं। अभी इनकी जनसंख्या 450 से अधिक है और यह अपनी परंपराओं के अनुसार जीते हैं। यह लोग बाहरी दुनिया के सम्पर्क से दूर रहते हैं हालाँकि अंडमान प्रशासन एवं यहाँ बसे लोगों के सम्पर्क में रहते हैं।

जांगिल

इस समुदाय के बारे में ना के बराबर जानकारी उपलब्ध है। माना जाता है कि अंग्रेजों एवं इनके साथ आए प्रवासी मजदूर एवं कैदियों के संपर्क में आने से इस समुदाय में कुछ बीमारियाँ फैली थीं जिससे बीसवीं सदी के आते-आते यह जाति विलुप्त हो गई।

सेंटिनली

सेंटिनली समुदाय उत्तरी सेंटिनल द्वीप में रहते हैं। वह दुनिया के कुछ ऐसे समुदायों में से एक हैं जिनका अभी भी बाहरी दुनिया से कोई संपर्क नहीं है। उनका बाहरी दुनिया से दूर रहने की कई वजहें हैं जिनमें से उस द्वीप की भौगोलिक परिस्थिति (चूँकि वह द्वीप उथले चट्टानों से घिरा होने के कारण ना ही मुख्य समुद्री मार्ग से जुड़ा है ना ही बन्दरगाह बनाने की सम्भावना है), भारत सरकार की पाबंदियाँ एवं सेंटिनल द्वीप में रहने वाले लोगों का विरोध शामिल है। इसका मतलब यह नहीं है कि इन लोगों से संपर्क करने की कोई कोशिश नहीं की गई है। 1890 में एम. वी. पोर्टमैन अपनी टीम (जिसमें नेवी के स्टाफ एवं ग्रेट अंडमानी समुदाय के लोग सम्मिलित थे) के साथ इस द्वीप पर गए थे लेकिन उन्हे जल्दबाजी में खाली किए गए झोपड़ियों के अलावा एक बुजुर्ग दंपति और चार बच्चे मिले जिन्हे पकड़ करके अंडमान की राजधानी पोर्ट ब्लेयर लाया गया। शीघ्र ही यह लोग बीमार हो गए और बुजुर्ग दंपति का निधन हो गया। बाद मे उन चार बच्चों को उत्तरी सेंटिनल द्वीप के किनारे पर छोड़ दिया गया। इसके बाद 1896 में एक अपराधी अस्थायी ने राफ्ट की मदद से ग्रेट अंडमान दंड कॉलोनी से भागने की कोशिश की लेकिन कुछ दिनों बाद अंग्रेजी खोजी दल को उत्तरी सेंटिनल द्वीप के तट पर उसका शव मिला जिसका गला कटा हुआ था और शरीर पर तीरों से वार के निशान थे। उस घटना के बाद अंग्रेजों ने उस द्वीप पर जाना छोड़ दिया और अपने पूरे उपनिवेशवाद की अवधि में उन्हे कभी नहीं छेड़ा। स्वतंत्रता के बाद 1970 के दशक से 1996 तक अंडमान प्रशासन के द्वारा संपर्क पार्टी बनाकर, जिसमें प्रशासन के लोगों के अलावा भारतीय नृजातीय सर्वेक्षण के स्टाफ भी शामिल रहते थे, कई कोशिश की गई पर दोस्ताना संबंध बनाने में सफलता नहीं मिली। 2006 में दो मछुआरों की हत्या और 2018 में एक अमेरीकी व्यक्ति की हत्या यही दर्शाता है कि वह अभी भी बाहरी दुनिया से दूर और अलग रहना चाहते हैं। सुनामी के बाद की एक खबर और फोटो अख़बारों में चर्चित हुई थी जिसमें नेवी के हेलिकॉप्टर उनकी स्थिति का जायजा लेने का लिए लो-फ्लाइ जोन में उड़ रहे थे और फोटोग्राफी कर रहे थे। उस में से एक फोटो में एक सेंटिनल व्यक्ति अपने तीर-धनुष से नेवी के हेलिकॉप्टर को निशाना बना रहा था। जाहिर है वह व्यक्ति यह बताने की कोशिश कर रहा हो कि अगर इस द्वीप पर उतरे तो उनके तीरों का शिकार हो जाओगे। इस प्रकार उन्होंने आज तक बाहरी लोगों के साथ संपर्क का हर संभव विरोध किया है। इसलिए उनके और उनकी भाषा के बारे में नहीं के बराबर जानकारी है।

निष्कर्ष

कभी अंडमान नरभक्षी, राक्षसों एवं नंगे लोगों के प्रदेश के नाम से प्रसिद्ध था जो गलत था। यह मूल निवासी अपनी धरती की रक्षा एवं अपने समुदायों की सुरक्षा के लिए लड़े लेकिन अंग्रेजी हुकूमत और परवर्ती सरकारों की नीतियों ने इन लोगों को बर्बाद कर दिया। हजारों की संख्यों में रहने वाले लोग अब 40 में आ गए हैं। इतिहास बता रहा है कि मूल निवासियों का बाहरी सभ्याताओं से सम्पर्क उन मूल निवासियों के विनाश का कारण बना। 1857 के सिपाही विद्रोह के बाद भारत ब्रिटिश साम्राज्य का हिस्सा बन गया और भारतीय हुकूमत को हिदायत दी गयी कि अंडमान में तस्मानिया (Tasmania) की पुनरावृत्ति न हो। लेकिन हुआ वही, तस्मानिया के लोगों की तरह अंडमान की कई जनजातियाँ विलुप्त हो गईं। जारवा का भविष्य तो पता नहीं है लेकिन सेंटिनली ने अपना विरोध जता कर अपना भविष्य सुरक्षित कर लिया है। यह लोग अपनी संस्कृति, जीवन पद्धति एवं भाषाओं को छोड़कर जीवित नहीं रह सकते हैं। बहुत ही अल्प संख्या में बची जनजातीय आबादी के ऊपर विलुप्त होने का खतरा बढ़ता ही जा रहा है अतः उनके संरक्षण और संवर्धन का सही रास्ता तलाशना आवश्यक है।

संदर्भ सूची

थंगराज, के., सिंह, लालजी, रेड्डी, अला जी., राव. वी. राघवेन्द्र, सेहगल, सुभाष सी., उन्डेरहील, पीटर ए, पीयरसन, एम., फ्रेम, इयान जी., हैगलबर्ग, ए. (2003). जेनिटिक अफिनिटिज ऑफ द अंडमान आइलैण्डर्स, अ वैनिसशिन्ग ह्युमन पॉपुलेशन. करेन्ट बाइलोजी 13: 86-93।

थंगराज के, चौबे, ज्ञानेश्वर, किविसिल्ड, टी., रेड्डी, अला जी., सिंह,वी., रसल्कार, अविनाश., ए., सिंह, लालजी. (2005). रिकंस्ट्रैक्टिंग द ऑरिजन ऑफ अंडमान आइलैण्डर्स. साइंस 308: 996।

अब्बी, अन्विता. (2006) . द इन्डेन्जरड लैंग्वेजेज ऑफ द अंडमान आइलैंड्स. म्युनिक : लिंकम युरोपा।

कश्यप, विजेन्द्र, सीतालक्ष्मी, थीरुनावुक्करसु, सरकार, बिश्वनाथ, त्रिवेदी, रजनी . (2003). मोलिक्युलर रिलेटेडनेस ऑफ द एबऑरिजिनल ग्रुप्स ऑफ अंडमान एंड निकोबार आइलैण्ड्स विद् सिमिलर इथनिक पॉपुलेशन्स. इन्टरनेशनल जरनल ऑफ ह्युमन जेनेटिक्स 3: 5-11।

www.andman.gov.in n.d. से उद्धृत।

https://censusindia.gov.in n.d. से उद्धृत।

पोर्टमैन, एम. वी. (1889). अ हिस्टरी ऑफ आवर रिलेशन विथ द अंडमानिज. (रीप्रिन्ट 1990). नई दिल्लीः एशियन एजुकेशनल सर्विसेज।

मुखर्जी, मधुश्री. (2003). द लैंड ऑफ नेकेड पीपुलः इनकॉन्टर्स विद स्टोन एज आइलैण्ड्रस. नई दिल्लीः पेन्ग्युइन बुक्स इडिया लिमिटेड।

रैडक्लिफ ब्राउन, ए. आर. (1922). द अंडमान आइलैन्डर्स. ग्लेलस्वाइ. (रीप्रिन्ट 1948). इलेनॉइसः द फ्री प्रेस।

www.andman.org n.d. से उद्धृत।

चक्रबर्ती, डी. के. (1990). द ग्रेट अंडमानिज. कलकत्ताः सिगुल बुक्स।

ब्लेविन्स, जुल्लियट. (2007). अ लॉन्ग लॉस्ट सिस्टर ऑफ प्रोटो-ऑस्ट्रोनेसियन प्रोटो-ओंगान, मदर ऑफ जारवा ऐन्ड ओंगे ऑफ द अंडमान आइलैण्ड्स. ओस्यानिक लिंग्विस्टिक 46 154-198।

मेकल मीमांसा वर्ष-13, अंक-02, जुलाई-दिसम्बर -2021 ISSN-0974-0118

भारत और दक्षिणी अफ्रीकी देशों के मध्य व्यापारिक सम्बन्ध का विश्लेषणात्मक अध्ययन

जय प्रकाश यादव*

डॉ बिमलेश सिंह**

सारांश

वैश्वीकरण की प्रक्रिया में सभी विकासशील देशों की अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में भागीदारी विगत वर्षों में बढ़ी है। वैश्वीकरण के साथ ही भारत और अफ्रीकी देशों के मध्य व्यापार में वृद्धि हुई है। 2001 के बाद भारत का अफ्रीकी देशों के साथ व्यापार बढ़ा है। दक्षिणी अफ्रीकी देशों के समूह मे दक्षिण अफ्रीका, बोत्सवाना, नामीबिया, लेसोथो तथा एस्वातिनी देश शामिल हैं। यह शोध पत्र भारत और दक्षिणी अफ्रीकी देशों के समूह के मध्य व्यापार का विश्लेषण करता है। इस विश्लेषण से निष्कर्ष निकलता है कि दक्षिणी अफ्रीकी देशों में, दक्षिण अफ्रीका का भारत के साथ व्यापार में हिस्सेदारी सर्वाधिक है, इसके अलावा, बोत्सवाना और नामीबिया से भी भारत के व्यापारिक सम्बन्धों में वृद्धि दर्ज की गई है। वर्ष 2001 से 2011 में भारत- दक्षिणी अफ्रीकी देशों के साथ व्यापार में तीव्र वृद्धि हुई है जबकि वर्ष 2011 के पश्चात् वृद्धि दर में स्थिरता आयी है। वर्ष 2001 से 2020 तक भारत और दक्षिणी अफ्रीकी देशों के मध्य व्यापार में होने वाली वस्तुओं की संरचना में बदलाव आया है। वर्तमान समय में भारत और साउदर्न अफ्रीकन कस्टम यूनियन (साकू) के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में विकास के उद्देश्य से दोनों पक्षों में अधिमान्य व्यापार करार (पी.टी.ए.) की बैठक चल रही है। यह लेख भारत और दक्षिण अफ्रीकी देशों के बीच व्यापार संबंधों की समीक्षा प्रस्तुत करता है।

बीज शब्द : व्यापारिक सम्बन्ध , दक्षिण अफ्रीका , नामीबिया , एस्वातिनी , व्यापार आधिक्य , व्यापार घाटा

प्रस्तावना

आधुनिक अर्थव्यवस्था में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के महत्व को नकारा नहीं जा सकता है। विश्व के सभी देश व्यापार में अपनी जगह बनाने का प्रयास कर रहे हैं तथा भारत भी इस प्रक्रिया में प्रयासरत है। इस सन्दर्भ में भारत और अफ्रीकी देशों के मध्य व्यापारिक सम्बन्ध ध्यान देने योग्य है। भारत और अफ्रीका के बीच द्विपक्षीय व्यापार में पिछले कुछ वर्षों में निरंतर वृद्धि हुई है। भारत सरकार अफ्रीका महाद्वीप के साथ व्यापार बढ़ाने के लिए व्यवस्थित तथा निरंतर प्रयास कर रही है (हर्षे , 2002)। वर्ष 2000 के बाद भारत और दक्षिणी अफ्रीकी देशों के बीच व्यापार में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है परिणामस्वरूप पिछले 20 वर्षों में दोनों देशों के आयात और निर्यात के स्वरुप में बदलाव आया है। 1990 के बाद जैसे ही वैश्वीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई अफ्रीका महाद्वीप के देश और भारत ने अपनी विदेशी व्यापार नीतियों को उदार बनाया और वैश्वीकरण में भागीदारी की ओर कदम बढ़ाया जिससे दोनों देशों के व्यापार में सतत वृद्धि हुई है।

*शोधार्थी, अर्थशास्त्र विभाग, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक।

*सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक।

वैश्विकरण की प्रक्रिया में भारत तथा अफ्रीकी देशों के व्यापारिक सम्बन्धों में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है (ब्रगिना, 2018)। वर्तमान समय में दक्षिणी अफ्रीकी देश (अफ्रीकी महाद्वीप में) भारत के प्रमुख व्यापारिक भागीदार बन गए हैं। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार दक्षिणी अफ्रीकी देश पाँच देशों के समूह हैं जिसमें दक्षिण अफ्रीका, बोत्सवाना, नामीबिया, लेसोथो तथा एस्वातिनी शामिल हैं (यूनाइटेड नेशन स्टेटिस्टिक्स डिवीज़न, 2022)। यह पाँच देश मिलकर कस्टम यूनियन बनाते हैं जिसको साउदर्न अफ्रीकन कस्टम यूनियन (साकू) के नाम से जाना जाता है। अब तक भारत- साउदर्न अफ्रीकन कस्टम यूनियन (साकू) के मध्य अधिमान्य व्यापार करार (पी.टी.ए.) पर वर्ष 2007 से पाँच दौर की बातचीत हो चुकी है (वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय भारत सरकार, 2021)। हाल ही में 15 जुलाई 2020 को भारत- साउदर्न अफ्रीकन कस्टम यूनियन (साकू) का अधिमान्य व्यापार करार (पी.टी.ए.) पर ऑनलाइन बैठक में व्यापारिक संबंधों को मजबूत बनाने हेतु विभिन्न मुद्दों पर चर्चा हुई (चौधरी ,2020)। कुछ द्विपक्षीय और बहुपक्षीय समझौतों पर अभी भी चर्चा चल रही है। इनमें भारत-मेर्कोसुर -साकू त्रिपक्षीय समझौता शामिल है (पी.एच.डी. चेम्बर ऑफ़ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री, 2018)।

विगत वर्षों में भारत का ब्रिक्स (भारत, ब्राज़ील, चीन, रूस तथा दक्षिण अफ्रीका), सार्क तथा एशियान देशों के साथ व्यापार संबंधो का अध्ययन मिलता है परन्तु भारत और दक्षिणी अफ्रीकी देशों के व्यापारिक सम्बन्धों से सम्बंधित अध्ययन सीमित है। विशेष तौर पर बोत्सवाना, नामीबिया, लेसोथो तथा इस्वतिनी देशों के मध्य व्यापारिक संबंधो से सम्बंधित शोध की विशेष कमी है। इसके सन्दर्भ में केवल भारत सरकार के आधिकारिक दस्तावेज तथा समाचार वेबसाइट का लेख उपलब्ध है। इस शोध पत्र का उद्देश्य भारत तथा दक्षिणी अफ्रीकी देशों के मध्य व्यापारिक स्वरूप तथा व्यापारिक संभावनाओं का विश्लेषण करना है। यह शोध पत्र इन्हीं पाँच देशों के मध्य इंटरनेशनल ट्रेड सेंटर (आई.टी.सी) के वेबसाइट से प्राप्त वर्ष 2001 से 2020 तक के आंकड़ों के विश्लेषण पर आधारित है।

सारणी 1: व्यापक आर्थिक परिदृश्य

देश	जनसंख्या (लाख में)	प्रत्येक दक्षिण अफ्रीकी देशों की दक्षिणी अफ्रीकी देशों की कुल जनसँख्या में हिस्सेदारी	सकल घरेलू उत्पाद- लाख अमेरिकी डालर (वर्तमान कीमत में)	प्रत्येक दक्षिण अफ्रीकी देशों की दक्षिण अफ्रीकी देशों के कुल सकल घरेलू उत्पाद में हिस्सेदारी	सकल घरेलू उत्पाद का वर्ष 2001 से 2020 का चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर

	2001	2020	प्रतिशत	2001	2020	प्रतिशत	सी.ए.जी.आर. प्रतिशत
भारत	10,750.00	13,800.04	-	48,544.10	2,62,298.37	-	8.80
दक्षिण अफ्रीका	455.71	593.09	87.86	12,151.47	30,192.36	90.34	4.66
बोत्सवाना	16.75	23.52	3.48	548.96	1,578.17	4.72	5.42
नामीबिया	18.24	25.41	3.76	355.73	1,069.99	3.20	5.66
एस्वातिनी	10.14	11.60	1.72	154.25	396.25	1.19	4.83
लेसोथो	20.36	21.42	3.17	82.57	184.45	0.55	4.10
दक्षिणी अफ्रीकी देश	521.19	675.04	100.00	13292.98	33,421.23	100	4.72

नोट : स्रोत https://databank.worldbank.org/source/world-development-indicators तथा आंकड़ों के आधार पर शोधार्थी द्वारा की गई गणना

सारणी 2: व्यापक आर्थिक परिदृश्य

देश	सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि दर (वार्षिक प्रतिशत)	प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद अमेरिकी डालर में (वर्तमान कीमत)	प्रति व्यक्ति आय में दो दशक की वृद्धि दर	कुल बेरोजगारी दर प्रतिशत	कुल बेरोजगारी दर प्रतिशत			
	2001	2019	2020	2001	2020	प्रतिशत	2001	2020
भारत	4.82	4.04	-7.96	451.57	1900.71	320.91	5.73	7.11
दक्षिणी अफ्रीका	2.7	0.15	-6.96	2666.48	5090.72	90.91	30.69	28.74

नोट : स्रोत https://databank.worldbank.org/source/world-development-indicators तथा आंकड़ों के आधार पर शोधार्थी द्वारा की गई गणना

भारत और दक्षिणी अफ्रीकी देशों के व्यापक आर्थिक परिदृश्य

भारत और पाँच दक्षिणी अफ्रीकी देशों के व्यापारिक संबंधों के विश्लेषण से पहले इन देशों के व्यापक आर्थिक परिदृश्य पर एक तुलनात्मक दृष्टि डालते हैं। आर्थिक परिदृश्य के आंकड़ों को विश्व बैंक द्वारा बनाए गए वर्ल्ड डेवलपमेंट इंडिकेटर (डब्ल्यू.डी.आई.) के वेबसाइट से लिया गया है।

सारणी क्रमांक 1 में, भारत और दक्षिणी अफ्रीकी देशों की जनसंख्या और सकल घरेलू उत्पाद का आंकड़ा प्रदर्शित किया गया है। वर्ष 2001 में दक्षिणी अफ्रीकी देशों की कुल जनसँख्या 521.19 लाख तथा भारत की जनसंख्या 10750.00 लाख थी। भारत की जनसंख्या दक्षिणी अफ्रीकी देशों की जनसंख्या की तुलना में लगभग 20.62 गुना अधिक थी। वर्ष 2020 में दक्षिणी अफ्रीकी देशों की जनसंख्या 675.04 लाख तथा भारत की जनसंख्या 13,800.04 लाख अनुमानित है जो कि दक्षिणी अफ्रीकी देशों की कुल जनसंख्या से 20.44 गुना अधिक है। लगभग दो दशक बाद भी भारत और दक्षिणी अफ्रीकी देशों की जनसंख्या अनुपात में कोई विशेष बदलाव नहीं आया है। दक्षिणी अफ्रीकी देशों के समूह में सर्वाधिक जनसंख्या दक्षिण अफ्रीका की है जिसकी हिस्सेदारी लगभग 87.86 प्रतिशत है। इसके बाद नामीबिया, बोत्सवाना, लेसोथो तथा एस्वातिनी देशों की जनसंख्या में हिस्सेदारी क्रमशः 3.76 प्रतिशत, 3.48 प्रतिशत, 3.17 प्रतिशत तथा 1.72 प्रतिशत है।

सारणी 1 में सकल घरेलू उत्पाद का आंकड़ा दिया हुआ है जिसके अनुसार वर्ष 2001 में भारत का सकल घरेलू उत्पाद 48544.10 करोड़ अमेरिकी डालर तथा दक्षिणी अफ्रीकी देशों का सकल घरेलू उत्पाद 13292.98 करोड़ अमेरिकी डालर था। तत्कालीन समय में भारत का सकल घरेलू उत्पाद दक्षिणी अफ्रीकी देशों के कुल सकल घरेलू उत्पाद से 3.65 गुना अधिक था। वर्ष 2020 में दक्षिणी अफ्रीकी देशों का सकल घरेलू उत्पाद 33,421.23 करोड़ अमेरिकी डालर तथा भारत का सकल घरेलू उत्पाद 2,62,298.37 करोड़ अमेरिकी डालर अनुमानित है जो दक्षिणी अफ्रीकी देशों के कुल सकल घरेलू उत्पाद की तुलना में 7.87 गुना अधिक है। दक्षिणी अफ्रीकी देशों के समूह में सर्वाधिक सकल घरेलू उत्पाद वाला देश दक्षिण अफ्रीका है जोकि 30,192.36 करोड़ अमेरिकी डालर के साथ दक्षिणी अफ्रीकी देशों में 90.34 प्रतिशत का हिस्सेदारी रखता है। उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि पिछले दो दशकों में भारत और दक्षिणी अफ्रीकी देशों के सकल घरेलू उत्पाद में अंतर का मुख्य कारण दक्षिणी अफ्रीकी देशों की वृद्धि दर, भारत की वृद्धि दर की तुलना में निम्न होना है। वर्ष 2001 से 2020 तक भारत के सकल घरेलू उत्पाद की चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर (सी.ए.जी.आर.) 8.80 प्रतिशत है, वहीं दक्षिणी अफ्रीकी देशों का कुल चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर (सी.ए.जी.आर.) 4.72 प्रतिशत है। दक्षिणी अफ्रीकी देशों में दक्षिण अफ्रीका एक महत्वपूर्ण देश है। इस समूह में इसकी हिस्सेदारी कुल जनसँख्या में 87.86 प्रतिशत तथा सकल घरेलू उत्पाद में 0.34 प्रतिशत है। इसलिए भारत के साथ व्यापारिक सम्बन्ध में दक्षिण अफ्रीका का मुख्य भागीदार होना स्वाभाविक है। दक्षिणी अफ्रीकी देशों के सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि देखें तो वर्ष 2001 में दक्षिण अफ्रीका की विकास दर 2.27 प्रतिशत रही जबकि दक्षिण अफ्रीका के अलावा अन्य देशों जैसे नामीबिया, लेसोथो, बोत्सवाना तथा एस्वातिनी की विकास दर क्रमशः1.18 प्रतिशत, 3.56 प्रतिशत, 0.25 प्रतिशत तथा 1.5 प्रतिशत थी।

वर्ष 2019 में दक्षिण अफ्रीका की विकास दर 0.15 प्रतिशत थी और नामीबिया और लेसोथो की विकास दर क्रमशः -0.61 प्रतिशत और -0.38 प्रतिशत थी। एस्वातिनी और बोत्सवाना की विकास दर क्रमशः3.03 प्रतिशत तथा 2.24 प्रतिशत थी। वर्ष 2001 तथा 2019 के विकास दरों की तुलना करने के पश्चात यह ध्यान योग्य है कि दक्षिण अफ्रीका की विकास दर कम हुई है, जबकि एस्तिवानी तथा बोत्सवाना की विकास दर सापेक्ष रूप में बढ़ी है।वहीं नामीबिया तथा लेसोथो की विकास दर में ऋणात्मक वृद्धि दर्ज की गई है। इस प्रकार देखते हैं कि दक्षिण अफ्रीका सहित अन्य देशों की विकास दर अस्थिर रही है। इसका भारत के साथ व्यापारिक सम्बन्धों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। वर्ष 2020 में भारत सहित सभी दक्षिणी अफ्रीकी देशों की विकास दर कोविड-19 के कारण प्रभावित हुई जिसके परिणामस्वरूप इन देशों की विकास दर ऋणात्मक रही थी।

सारणी 3: भारत और दक्षिणी अफ्रीकी देशों में आयात-निर्यात

वर्ष	भारत का दक्षिणी अफ्रीकी देशों को निर्यात (अमेरिकी डालर, लाख में)	भारत के कुल निर्यात में हिस्सेदारी (प्रतिशत)	भारत का दक्षिणी अफ्रीकी देशों से आयात (अमेरिकी डालर, लाख में)	भारत की कुल आयात में हिस्सेदारी (प्रतिशत)	व्यापारिक घाटा/आधिक्य (अमेरिकी डालर, लाख में)	कुल व्यापार (आयात +निर्यात) (अमेरिकी डालर, लाख में)
2001	3,434.93	0.78	14,040.31	2.77	-10,605.38	17,475.24
2002	4,868.27	0.97	19,529.03	3.40	-14,660.76	24,397.30
2003	5,154.52	0.87	19,508.26	2.69	-14,353.74	24,662.78
2004	9,435.39	1.24	17,953.20	1.81	-8,517.81	27,388.59
2005	14,497.64	1.44	26,888.95	1.91	-12,391.31	41,386.59
2006	21,353.25	1.76	25,996.95	1.46	-4,643.70	47,350.20
2007	21,841.36	1.50	32,303.11	1.48	-10,461.75	54,144.47

2008	26,510.48	1.46	56,097.28	1.78	-29,586.80	82,607.76
2009	20,929.78	1.18	51,115.52	1.92	-30,185.74	72,045.30
2010	37,931.67	1.72	70,741.58	2.02	-32,809.91	1,08,673.25
2011	45,396.06	1.51	94,369.35	2.04	-48,973.29	1,39,765.41
2012	51,487.41	1.78	81,777.94	1.67	-30,290.53	1,33,265.35
2013	60,877.39	1.81	75,904.18	1.63	-15,026.79	1,36,781.57
2014	59,555.82	1.88	71,941.24	1.57	-12,385.42	1,31,497.06
2015	40,246.06	1.53	69,040.02	1.77	-28,793.96	1,09,286.08
2016	34,563.33	1.32	61,719.69	1.73	-27,156.36	96,283.02
2017	43,038.88	1.45	87,877.93	1.98	-44,839.05	1,30,916.81
2018	42,759.34	1.32	78,118.55	1.53	-35,359.21	1,20,877.89
2019	43,47,5.84	1.34	74,47,1.55	1.56	-30,995.71	1,17,94,7.39
2020	37,60,9.39	1.37	71,80,2.99	1.95	-34,193.60	1,09,41,2.38

नोट : स्रोत https://www.trademap.org/ तथा आंकड़ों के आधार पर शोधार्थी द्वारा की गई गणना

ग्राफ क्रमांक 1: आयात-निर्यात तथा व्यापार संतुलन की काल श्रेणी

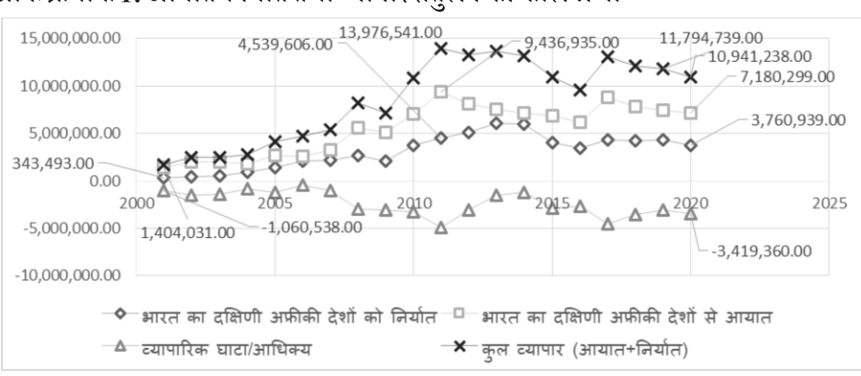

ग्राफ सारणी संख्या 3 के आंकड़ों पर आधारित है।

सारणी संख्या 2 में भारत और दक्षिणी अफ्रीकी देशों के प्रति व्यक्ति आय को प्रदर्शित किया गया है। प्रति व्यक्ति आय के सन्दर्भ में वर्ष 2001 तथा 2020 की तुलना करें तो दक्षिणी अफ्रीकी देशों की प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि भारत की तुलना में सापेक्ष रूप से कम तथा निरपेक्ष रूप से अधिक है। वर्ष 2001 में भारत की प्रति व्यक्ति आय 451.57 अमेरिकी डालर (वर्तमान कीमत पर) थी वहीं दक्षिणी अफ्रीकी देशों की कुल प्रति व्यक्ति आय 1964.50 अमेरिकी डालर (वर्तमान कीमत पर) थी। भारत की प्रति व्यक्ति आय की तुलना में दक्षिणी अफ्रीकी देशों की प्रति व्यक्ति आय लगभग 4 गुना अधिक थी, जबकि वर्ष 2020 में भारत की प्रति व्यक्ति आय 1900.91 अमेरिकी डालर (वर्तमान कीमत पर) और

दक्षिणी अफ्रीकी देशों की प्रति व्यक्ति आय 4057.85 अमेरिकी डालर (वर्तमान कीमत पर) रही अर्थात अब भारत की तुलना में दक्षिणी अफ्रीकी देशों की प्रतिव्यक्ति आय 2 गुनी हो गई है। सारणी से स्पष्ट है कि वर्ष 2001 की तुलना में वर्ष 2020 में भारत की प्रतिव्यक्ति आय में 320.91 प्रतिशत की वृद्धि हुई है वहीं दक्षिणी अफ्रीकी देशों में यह वृद्धि 109 प्रतिशत की रही है जो तुलनात्मक रूप से भारत की वृद्धि का एक तिहाई है।

सारणी क्रमांक 2 में भारत और दक्षिणी अफ्रीकी देशों की बेरोजगारी दर दिखाई गई है। भारत में बेरोजगारी दर दक्षिणी अफ्रीकी देशों की बेरोजगारी दर की तुलना में कम है। दक्षिणी अफ्रीकी देशों में बेरोजगारी दर वर्ष 2001 में लगभग 25 प्रतिशत थी, जो वर्ष 2020 में घटकर 22.89 प्रतिशत रह गई। भारत की बेरोजगारी दर वर्ष 2001 में 5.71 प्रतिशत थी, जो वर्ष 2020 में बढ़कर 7.11 प्रतिशत हो गई है। आंकड़ों से स्पष्ट है कि दक्षिणी अफ्रीकी देशों में बेरोजगारी एक प्रमुख समस्या है।

भारत और दक्षिणी अफ्रीकी देशों का व्यापारिक सम्बन्ध

ग्राफ में प्रदर्शित आंकड़ा सारणी क्रमांक 3 से लिया गया है जिसमे वाई- अक्ष पर व्यापार के मूल्य तथा एक्स-अक्ष पर वर्ष को प्रदर्शित किया गया है। वर्ष 2001 में भारत और दक्षिणी अफ्रीकी देशों का कुल व्यापार (आयात + निर्यात) 17,475.24 लाख अमेरिकी डालर था जो बढ़कर वर्ष 2019 में 1,17,947.39 लाख अमेरिकी डालर हो गया। यद्यपि 2020 में कोविड-19 के प्रभाव के कारण यह आंकड़ा 1,09,412.38 लाख अमेरिकी डालर रह गया है। वर्ष 2011 में भारत और दक्षिणी अफ्रीकी देशों का कुल व्यापार 1,39,765,41 लाख अमेरिकी डालर पहुँच गया था। यह वर्ष इसलिए महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि इस वर्ष के बाद दोनों देशों के व्यापर में पिछले वर्षों की तुलना में निरंतर कमी देखने को मिलती है। अफ्रीकन एक्सपोर्ट-इम्पोर्ट बैंक तथा एक्सपोर्ट-इम्पोर्ट बैंक ऑफ़ इंडिया द्वारा संयुक्त रूप से प्रकाशित एक रिपोर्ट (2018) के अनुसार भारत और अफ्रीकी देशों के मध्य व्यापार में संकुचन का कारण वैश्विक आर्थिक मंदी तथा वस्तुओं की कीमत में गिरावट थी (इंडिया एक्जिम बैंक,2018)। करीम ओ.आई. (2016) के अनुसार भारत और दक्षिणी अफ्रीकी देशों के व्यापार में कमी का मुख्य कारण घरेलू बाधाएँ थीं।

सारणी 4: भारत तथा दक्षिणी अफ्रीकी देशों के मध्य व्यापारिक सम्बन्ध

देश	वर्ष 2001	व्यापार घाटा/ आधिक्य (अमेरिकी डालर, लाख में)	वर्ष 2020	व्यापार घाटा/ आधिक्य (अमेरिकी डालर, लाख में)	सी.ए.जी.आर. (प्रतिशत) 2001 से 2020 तक

	निर्यात (अमेरिकी डालर, लाख में)	आयात (अमेरिकी डालर, लाख में)		निर्यात (अमेरिकी डालर, लाख में)	आयात (अमेरिकी डालर, लाख में)		निर्यात (अमेरिकी डालर, लाख में)	आयात (अमेरिकी डालर, लाख में)
दक्षिण अफ्रीका	3,266.89	14,034.87	-10,767.98	34,982.86	66,731.36	-31,748.50	12.59	8.11
बोत्सवाना	52.56	.01	52.55	1,493.46	4,690.13	-3,196.67	18.22	92.11
नामीबिया	101.37	1.93	99.44	467.99	323.64	144.35	7.95	29.19
लेसोथो	1.39	0.00	1.39	400.96	.75	400.21	32.74	14.50
एस्वातिनी	12.72	3.50	9.22	264.12	57.11	207.01	16.38	14.98
दक्षिणी अफ्रीकी देश	3,434.93	14,040.31	-10,605.38	37,609.39	71,802.99	-34,193.60	12.71	8.50

नोट : स्रोत https://www.trademap.org/ तथा आंकड़ों के आधार पर शोधार्थी द्वारा की गई गणना

वर्ष 2001 में भारत दक्षिणी अफ्रीकी देशों को 3,434.93 लाख अमेरिकी डालर का निर्यात करता था जो वर्ष 2020 में बढ़कर 37,609.39 लाख अमेरिकी डालर पहुँच गया। ग्राफ से स्पष्ट है कि वर्ष 2015 में यह निर्यात 60,87,7.39 लाख अमेरिकी डालर पहुँच गया था जो वर्तमान में वर्ष 2015 के तुलना में लगभग आधा रह गया। वर्ष 2001 से 2020 तक भारत का अफ्रीकी देशों के निर्यात की चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर (सी.ए.जी.आर.) 12.71 प्रतिशत रही है। भारत दक्षिणी अफ्रीकी देशों से वर्ष 2001 में 14,04,0.31 लाख अमेरिकी डालर का आयात करता था जो वर्ष 2020 में बढ़कर 71,802.99 लाख अमेरिकी डालर पहुँच गया है। ग्राफ से यह स्पष्ट है कि वर्ष 2011 में आयात 94,36,9.35 लाख अमेरिकी डालर पहुँच गया जो विगत वर्षो की तुलना में अधिकतम था किन्तु इस वर्ष के बाद आयत में निरंतर कमी देखने को मिलती है। विदेश मंत्रालय (भारत साकार) के अनुसार भारत का दक्षिण अफ्रीका से आयात में कमी का कारण सरकार द्वारा सोने के आयात पर प्रतिबन्ध लगाना था (विदेश मंत्रालय भारत सरकार, 2019)। अफ्रीकन एक्सपोर्ट-इम्पोर्ट बैंक तथा एक्सपोर्ट-इम्पोर्ट बैंक ऑफ़ इंडिया द्वारा संयुक्त रूप से प्रकाशित एक रिपोर्ट (2018) के अनुसार वर्ष 2017 में दक्षिणी अफ्रीकी देश पूरे अफ्रीका में भारत के आयात का दूसरा सबसे बड़ा स्रोत रहे हैं जबकि पहला स्थान पश्चिमी अफ्रीकी देशों का है (इंडिया एक्जिम बैंक, 2018)। वर्ष 2001 से 2020 में भारत का दक्षिणी अफ्रीकी देशों से आयात का चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर

(सी.ए.जी.आर.) 8.50 प्रतिशत रहा है। वर्ष 2016 में भारत और दक्षिणी अफ्रीकी देशों का कुल व्यापार 96,283.02 लाख अमेरिकी डालर तक नीचे चला गया था, फिर 2020 में यह बढ़कर 1,09,41,2.38 लाख अमेरिकी डालर पर पहुँच गया है। इस तरह भारत का आयात एवं निर्यात दोनों ही 2001 की तुलना में बढ़ा है, विशेषकर 2001 से लेकर 2010 में तीव्र वृद्धि हुई है। उसके बाद व्यापारिक सम्बन्धों में एक ठहराव सा आ गया है। इस प्रकार देखते हैं कि भारत और दक्षिणी अफ्रीकी देशों के साथ व्यापार में जो वृद्धि 2001 से 2010 में हुई (521 प्रतिशत वृद्धि) वह वर्ष 2010 से 2020 में 0.68 प्रतिशत वृद्धि के न्यूनतम स्तर पर स्थिर हो गई है। पिछले एक दशक में व्यापार के क्षेत्रीय स्वरुप में ढांचागत बदलाव आया है। वर्ष 2001 में निर्यात के सन्दर्भ में पूरे अफ्रीकी महाद्वीप से दक्षिणी अफ्रीकी देशों की भारत से हिस्सेदारी 60 प्रतिशत थी तथा पश्चिमी अफ्रीकी देशों की हिस्सेदारी 16 प्रतिशत थी जबकि वर्ष 2011 में पश्चिमी अफ्रीकी देशों की हिस्सेदारी 40 प्रतिशत तथा दक्षिणी अफ्रीकी देशों की हिस्सेदारी 24 प्रतिशत रह गई (चंद्रजीत बनेर्जी एंड पास्कल लेमी, 2013)। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उपर्युक्त वर्षों में दक्षिणी अफ्रीकी देशों की निर्यात हिस्सेदारी में कमी आई है जबकि पश्चिमी अफ्रीकी देशों की हिस्सेदारी बढ़ी है। हालाँकि अभी भी दक्षिणी अफ्रीकी देश पश्चिमी अफ्रीकी देशों की तुलना में भारत को ज्यादा निर्यात करते हैं।

भारत का दक्षिणी अफ्रीकी देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध

भारत और दक्षिणी अफ्रीकी देशों के व्यापार के बेहतर तुलनात्मक अध्ययन के लिए दक्षिणी अफ्रीकी देश के प्रत्येक सदस्य का भारत के साथ आयात और निर्यात का विश्लेषण करना उचित होगा। तालिका क्रमांक 4 में भारत तथा दक्षिणी अफ्रीकी देशों के सदस्यों के साथ आयात और निर्यात का आंकड़ा दर्शाया गया है। दक्षिण अफ्रीका के साथ भारत का व्यापार सबसे अधिक है। वर्ष 2001में भारत, दक्षिण अफ्रीका को 3,266.89 लाख अमेरिकी डालर का निर्यात तथा 14,034.87 लाख अमेरिकी डालर आयात करता था। इसी समय भारत का दक्षिण अफ्रीका के साथ व्यापारिक घाटा -10,767.98 लाख अमेरिकी डालर का था। जबकि वर्ष 2020 में भारत का दक्षिण अफ्रीका को निर्यात बढ़कर 34,982.86 लाख अमेरिकी डालर तथा आयात 66,731.36 लाख अमेरिकी डालर पहुँच गया। वर्ष 2020 में दक्षिण अफ्रीका के साथ व्यापारिक घाटा -31,748.50 लाख अमेरिकी डालर हो गया। वर्ष 2001 से 2020 तक के दो दशकों में आयात-निर्यात दोनों में वृद्धि हुई है। भारत का निर्यात चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर (सी.ए.जी.आर.) 12.59 प्रतिशत तथा आयात में चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर (सी.ए.जी.आर.) 8.11 प्रतिशत रहा है। इस प्रकार इन दो दशकों में भारत का निर्यात, आयात की तुलना में अधिक बढ़ा है। समय के साथ-साथ दक्षिण अफ्रीका के साथ भारत का व्यापारिक घाटा तुलनात्मक रूप से कम हुआ है। वर्ष 2001 में भारत का दक्षिण अफ्रीका के साथ व्यापारिक घाटा और कुल व्यापार का अनुपात (व्यापारिक घाटा / कुल व्यापार) 0.62 था जो 2020 में घटकर 0.31 रह गया। इस प्रकार भारत का दक्षिण अफ्रीका के साथ व्यापार में एक सकारात्मक विकास हुआ है। आब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन (ओ.आर. एफ .) के अनुसार भारत साउथ अफ्रीका के लिए निर्यात में पाँचवा स्थान तथा आयात में चौथा स्थान रखता है। गौरतलब है कि दक्षिण अफ्रीका का भारत से व्यापार अति महत्वपूर्ण है। एशिया महाद्वीप में भारत, दक्षिण अफ्रीका का दूसरा सबसे बड़ा व्यापारिक साझीदार है (मिश्रा, 2019)।

बोत्सवाना दक्षिणी अफ्रीकी के देशों में सबसे तेजी से विकास करने वाला देश बनकर उभरा है। आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2001 से 2020 तक बोत्सवाना के सकल घरेलू उत्पाद में चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि

(सी.ए.जी.आर.) 5.42 प्रतिशत की दर्ज की गई है। वर्ष 2001 में भारत बोत्सवाना को 52.56 लाख अमेरिकी डालर निर्यात तथा .01 लाख अमेरिकी डालर का आयात करता था। इसी समय भारत का बोत्सवाना के साथ व्यापारिक आधिक्य 52.55 लाख अमेरिकी डालर का था। वर्ष 2020 में बोत्सवाना को भारत 1,493.46 लाख अमेरिकी डालर का निर्यात तथा 4,690.13 लाख अमेरिकी डालर का आयात करता था। इसलिए अब वर्ष 2020 में बोत्सवाना के साथ भारत का व्यापारिक घाटा -3,196.67 लाख अमेरिकी डालर का हो गया है। बोत्सवाना के साथ भारत के निर्यात में 2001 से 2020 में चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर (सी.ए.जी.आर.) 18.2 प्रतिशत तथा आयात में यह चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर (सी.ए.जी.आर.) 92.4 प्रतिशत रह गई। आँकड़ों से स्पष्ट है कि दक्षिणी अफ्रीकी देशों में बोत्सवाना का भारत के साथ व्यापारिक सम्बंध तेजी से बढ़ते देखा जा सकता है।

नामीबिया दक्षिणी अफ्रीकी देशों में तीसरी बड़ी अर्थव्यवस्था है जिसका भारत के साथ व्यापारिक सम्बन्ध तेजी से बढ़ रहा है। वर्ष 2001 में भारत नामीबिया को 101.37 लाख अमेरिकी डालर का निर्यात तथा 1.93 लाख अमेरिकी डालर का आयात करता था जबकि वर्ष 2020 में यह आंकड़ा बढ़कर क्रमशः 467.99 लाख अमेरिकी डालर तथा 323.64 लाख अमेरिकी डालर हो गया। वर्ष 2001 तथा 2020 में नामीबिया के साथ भारत का व्यापारिक आधिक्य रहा है जो कि 2001 में 99.44 लाख अमेरिकी डालर तथा 2020 में बढ़कर 144.35 लाख अमेरिकी डालर हो गया है। वर्ष 2001 से 2020 तक निर्यात में चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर (सी.ए.जी.आर.) 7.95 प्रतिशत रही वहीं आयात में यह वृद्धि दर 21.11 प्रतिशत रही। भारत और नामीबिया ने व्यापार प्रोत्साहन के उद्देश्य से वर्ष 1995 में एक संयुक्त व्यापार समिति की स्थापना की। इस व्यापार समिति का तीसरा सत्र 7 सितंबर, 2016 को नई दिल्ली में आयोजित किया गया, साथ ही सितंबर 2016 में विंडहोक में एक भारत-नामीबिया चैंबर ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री (आई.एन. सी.सी.) की स्थापना की गई जिससे भारत तथा नामीबिया के व्यापारिक सम्बन्धों को मजबूती मिल सके (विदेश मंत्रालय भारत सरकार, 2017)।

वर्ष 2001 में भारत लेसोथो को 1.39 लाख अमेरिकी डालर का निर्यात करता था जबकि आयात शून्य था। वर्ष 2020 में निर्यात बढ़ाकर 400.96 लाख अमेरिकी डालर तथा 0.75 लाख अमेरिकी डालर का आयात करने लगा है। वर्ष 2001 से 2020 में निर्यात की चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर (सी.ए.जी.आर.) 37.74 प्रतिशत रही जबकि आयात में चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर (सी.ए.जी.आर.) 14.5 प्रतिशत थी। वर्ष 2001 तथा 2020 में लेसोथो के साथ भारत का व्यापार आधिक्य रहा, जहाँ वर्ष 2001 में 1.39 लाख अमेरिकी डालर का व्यापार आधिक्य था, वहीं यह आंकड़ा वर्ष 2020 में बढ़कर 400.21 लाख अमेरिकी डालर हो गया।

वर्ष 2001 एस्वातिनी भारत को 12.72 लाख अमेरिकी डालर का निर्यात तथा 3.50 लाख अमेरिकी डालर का आयात करता था। वर्ष 2020 में यह निर्यात बढ़कर 264.12 लाख अमेरिकी डालर तथा आयात 57.11 लाख अमेरिकी डालर हो गया। वर्ष 2001 से 2020 के मध्य निर्यात की चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर (सी.ए.जी.आर.) 6.38 प्रतिशत तथा आयात में चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर (सी.ए.जी.आर.) 14.18 प्रतिशत रही है। वर्ष 2001 से वर्ष 2020 तक एस्वातिनी के साथ भारत का व्यापार आधिक्य था जो वर्ष 2001 में 9.22 लाख अमेरिकी डालर तथा 2020 में बढ़कर 207.01 लाख अमेरिकी डालर हो गई।

दक्षिणी अफ्रीका के देशों के व्यापार के विश्लेषण से स्पष्ट है कि भारत का दक्षिणी अफ्रीकी देशों

के साथ व्यापारिक सम्बन्ध में दक्षिण अफ्रीका का योगदान सबसे अधिक है। बोत्सवाना तथा नामीबिया का भारत के साथ व्यापार में वृद्धि देखा दृष्टव्य है। लेसोथो तथा इस्ताविनी की अर्थव्यवस्था बहुत छोटी होने के कारण व्यापार सापेक्ष रूप से कम है, लेकिन व्यापार में सकारात्मक वृद्धि देखी जा सकती है जो भविष्य में भी बने रहने की सम्भावना है।

भारत और दक्षिणी अफ्रीकी देशों के मध्य प्रमुख पाँच वस्तुओं का आयात व निर्यात

सारणी क्रमांक 5 और 6 में भारत तथा दक्षिण अफ्रीका के प्रमुख पाँच वस्तुओं के आयात तथा निर्यात से सम्बंधित आंकड़ा प्रस्तुत किया गया है। यह अध्ययन भारत तथा दक्षिणी अफ्रीकी देशों के प्रमुख पाँच वस्तुओं की तुलना वर्ष 2001 तथा 2020 के आंकड़ों पर आधारित है। वस्तुओं के तुलनात्मक विश्लेषण के लिए एच. एस. कोड टू डिजिट (एच.एस-कोड टू डिजिट) वर्गीकरण लिया है।

सारणी 5: भारत का दक्षिणी अफ्रीकी देशों से प्रमुख पाँच वस्तुओं का आयात

क्रमांक	वस्तु कोड (एच.एस.-कोड टू डिजिट)	वस्तु का नाम	वस्तु का मूल्य (अमेरिकी डालर, लाख में) 2001	कुल आयात में हिस्सेदारी (प्रतिशत)	वस्तु कोड (एच.एस.-कोड टू डिजिट)	वस्तु का नाम	वस्तु का मूल्य (अमेरिकी डालर, लाख में) 2001	कुल आयात में हिस्सेदारी (प्रतिशत)
1	'71	प्राकृतिक धातु	9,72,5.07	69.27	'71	प्राकृतिक धातु	25,225.49	35.13
2	'27	प्राकृतिक ईंधन	1,19,2.92	8.50	'27	प्राकृतिक ईंधन	23,315.09	32.47
3	'28	अजैविक रसायन	99,9.76	7.12	'89	जहाज	9,460.95	13.18
4	'72	लोहा	43,1.98	3.08	'74	तांबा	3,395.02	4.73
5	'47	लकड़ी के पल्प	16,3.15	1.16	'26	अयस्क	3,008.44	4.19
	योग	सभी वस्तुएं	14,040.31	100	योग	सभी वस्तुएं	71,802.99	100

नोट : स्रोत https://www.trademap.org/ तथा आंकड़ों के आधार पर शोधार्थी द्वारा की गई गणना

सारणी क्रमांक 5 से स्पष्ट है कि वर्ष 2001 में भारत का दक्षिणी अफ्रीकी देशों से आयातित वस्तुओं में प्रमुख रूप से प्राकृतिक धातुओं (एच.एस-कोड -71) की हिस्सेदारी 69.27 प्रतिशत थी जो अन्य वस्तुओं की तुलना में सर्वाधिक थी। अन्य आयातित वस्तुओं में प्राकृतिक ईंधन (एच.एस-कोड -

27), अजैविक रसायन (एच.एस-कोड -27), लौह धातु (एच.एस-कोड -72) तथा लकड़ी के पल्प (एच.एस-कोड -47) आदि प्रमुख थे जिनकी हिस्सेदारी क्रमशः 8.50 प्रतिशत, 7.12 प्रतिशत, 3.08 प्रतिशत तथा 1.16 प्रतिशत थी। इसी प्रकार वर्ष 2020 में दक्षिणी अफ्रीकी देशों से आयातित वस्तुओं में भी प्राकृतिक धातु का स्थान प्रथम रहा है पर इसकी हिस्सेदारी घटकर 35.13 प्रतिशत रह गई। दूसरा प्रमुख आयातित वस्तु भी प्राकृतिक ईंधन ही है जो वर्ष 2001 में भी दूसरे स्थान पर था। वर्ष 2001 में प्राकृतिक ईंधन की हिस्सेदारी 8.50 प्रतिशत थी जो बढ़कर वर्ष 2020 में 32.47 प्रतिशत हो गई। दक्षिणी अफ्रीकी देशों से आयातित वस्तुओं में तीसरे स्थान पर जहाज (एच.एस-कोड -89) है जिसकी हिस्सेदारी 5 प्रतिशत है। वहीं चौथे तथा पाँचवें स्थान पर तांबा (एच.एस-कोड -74) तथा अयस्क (एच.एस-कोड -26) है जिसकी हिस्सेदारी क्रमशः 4.73 प्रतिशत तथा 4.19 प्रतिशत है। इस प्रकार भारत का दक्षिणी अफ्रीकी देशों से आयात के स्वरूप में महत्वपूर्ण बदलाव आया है। वर्ष 2001 में आयातित प्राकृतिक धातुओं की हिस्सेदारी 69.27 प्रतिशत थी जो वर्ष 2020 में घटकर 35.13 प्रतिशत रह गई है। यह 2001 की तुलना में लगभग आधी हो गई है। इसके अलावा प्राकृतिक ईंधन की हिस्सेदारी वर्ष 2001 में 8.50 प्रतिशत थी जो बढ़कर वर्ष 2020 में 32.47 प्रतिशत हो गई है जो वर्ष 2001 की तुलना में लगभग चार गुना है।

सारणी 6: दक्षिणी अफ्रीकी देशों को भारत का प्रमुख पाँच वस्तुओं का निर्यात

क्रमांक	वस्तु कोड (एच.एस.-कोड टू डिजिट)	वस्तु का नाम	वस्तु का मूल्य (अमेरिकी डालर, लाख में) 2001	कुल निर्यात में हिस्सेदारी (प्रतिशत)	वस्तु कोड (एच.एस.-कोड टू डिजिट)	वस्तु का नाम	वस्तु का मूल्य (अमेरिकी डालर लाख में)2020	कुल निर्यात में हिस्सेदारी (प्रतिशत)
1	'62	वस्त्र	336.49	9.80	'30	दवाई	7,956.44	21.16
2	'52	कपास	237.90	6.93	'87	वाहन	6,340.65	16.86
3	'10	अनाज	208.41	6.07	'27	प्राकृतिक ईंधन	5,793.15	15.40
4	'84	मशीनरी	177.66	5.17	'85	इलेक्ट्रिकल	2,187.33	5.82
5	'87	वाहन	168.09	4.89	'84	मशीनरी	1,651.67	4.39
	योग	सभी वस्तुएं	3,434.93	100.00	योग	सभी वस्तुएं	37,609.39	100.00

नोट : स्रोत https://www.trademap.org/ तथा आंकड़ों के आधार पर शोधार्थी द्वारा की गई गणना

सारणी क्रमांक 6 से स्पष्ट है कि भारत के निर्यात को देखें तो वर्ष 2001 में भारत से दक्षिणी अफ्रीकी देशों को निर्यातित वस्तुओं में प्रमुख स्थान वस्त्र (एच.एस-कोड -62) का था जिसकी हिस्स्सेदारी 9.80 प्रतिशत थी। इसके बाद दूसरा स्थान कपास (एच.एस-कोड -52) का था जिसकी हिस्सेदारी 6.53 प्रतिशत थी। तीसरी प्रमुख निर्यातित वस्तु अनाज (एच.एस-कोड -10) थी जिसका योगदान 6.07 प्रतिशत था। मशीनरी (एच.एस-कोड -84) तथा वाहन (एच.एस-कोड -87) की हिस्सेदारी क्रमश 5.17

प्रतिशत तथा 4.89 प्रतिशत थी।

वर्ष 2020 में भारत का दक्षिणी अफ्रीकी देशों को निर्यात के स्वरूप में बदलाव आया है। वर्ष 2020 में दक्षिणी अफ्रीकी देशों में निर्यात में अब प्रथम स्थान दवाई (एच.एस-कोड -30) का है जिसकी हिस्सेदारी 21.16 प्रतिशत है। दूसरी सबसे ज्यादा निर्यात होने वाली वस्तु वाहन (एच.एस-कोड -87) है जिसकी हिस्सेदारी 16.86 प्रतिशत है जो वर्ष 2001 में 4.89 प्रतिशत हिस्सेदारी के साथ पाँचवे स्थान पर था। तीसरा प्रमुख निर्यातित वस्तु प्राकृतिक ईंधन है जिसकी हिस्सेदारी 15.40 प्रतिशत है। चौथे तथा पाँचवें स्थान पर इलेक्ट्रिक (एच.एस-कोड -85) तथा इलेक्ट्रिकल मशीनरी (एच.एस-कोड -86) है जिसकी हिस्सेदारी क्रमश 5.82 प्रतिशत तथा 4.39 प्रतिशत है।

आंकड़ों से स्पष्ट है कि भारत का दक्षिणी अफ्रीकी देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध के स्वरूप में पिछले दो दशक में बड़ा बदलाव आया है। भारत को दक्षिणी अफ्रीकी देशों से आयात में आज भी मुख्य रूप से वही वस्तुएँ शामिल हैं जो वर्ष 2001 में शामिल थीं, यद्यपि आयातित वस्तुओं की हिस्सेदारी में बड़ा बदलाव आया है। इसके विपरीत भारत से निर्यात होने वाली वस्तुओं में परिवर्तन आया है। वर्ष 2001 में जहाँ भारत से वस्त्र ,कपास और अनाज जैसी कृषि वस्तुओं का निर्यात होता था वहीं अब वर्ष 2020 में दवाई, मशीनरी तथा वाहन आदि आधुनिक औद्योगिक वस्तुओं का निर्यात होने लगा है।

निष्कर्ष

विगत वर्षो में जिस तेजी से भारत तथा साकू देशों के मध्य व्यापार सम्बन्धों में वृद्धि हुई है यह क्षेत्र भारत के लिए महत्वपूर्ण हो गया है। दक्षिणी अफ्रीकी देशों के व्यापारिक सम्बन्ध से यह निष्कर्ष निकलता है कि वर्ष 2001 से 2020 के मध्य दोनों देशों के व्यापार में वृद्धि हुई है। भारत और दक्षिणी अफ्रीकी देशों में कुल व्यापार संतुलन दक्षिणी अफ्रीकी देशों के पक्ष में है। देशवार देखें तो भारत का व्यापारिक संतुलन केवल दो देशों (दक्षिण अफ्रीका और बोत्सवाना) के साथ घाटे में है जबकि अन्य सम्बंधित देशों के साथ व्यापारिक संतुलन भारत के पक्ष में है, अर्थात व्यापार आधिक्य है। चूँकि दक्षिण अफ्रीका, दक्षिणी अफ्रीकी देशों में सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है और दक्षिण अफ्रीका का भारत के साथ व्यापार घाटे में है, इसलिए दक्षिणी अफ्रीकी देशों के साथ भारत का कुल व्यापार संतुलन घाटे में है। भारत का दक्षिणी अफ्रीकी देशों के साथ व्यापार पिछले दो दशकों में बढ़ा है लेकिन जहाँ प्रथम दशक में तीव्र वृद्धि रही वहीं दूसरे दशक में वृद्धि दर अत्यधिक कम रही है। भारत दक्षिणी अफ्रीकी देशों से मुख्यतः खनिज संसाधन जैसे प्राकृतिक धातुओं, प्राकृतिक ईंधन, लोहा तथा खनिज वस्तु आदि आयात करता है। वर्ष 2001 से 2020 में आयातित वस्तुओं में यही प्राकृतिक संसाधन शामिल हैं, यद्यपि वर्ष 2001 की तुलना में वर्ष 2020 में वस्तुओं के आयात की हिस्सेदारी बदल गई है। भारत से दक्षिणी अफ्रीकी देशों को निर्यात में वर्ष 2001 की तुलना में 2020 में बड़ा बदलाव आया है। वर्ष 2001 में भारत से निर्यातित वस्तुओं में मुख्य रूप से कृषि सम्बंधित वस्तुएं जैसे वस्त्र, कपास, अनाज तथा मशीनरी इत्यादि शामिल थीं। वर्ष 2020 में दक्षिणी अफ्रीकी देशों को निर्यात होने वाली वस्तुओं में दवाई, वाहन, प्राकृतिक ईंधन, इलेक्ट्रिक वस्तु तथा मशीनरी जैसी औद्योगिक वस्तुएं शामिल हो गई हैं। दक्षिणी अफ्रीकी देशों से आयातित वस्तुओं में आज भी प्राकृतिक संसाधन शामिल हैं जो दक्षिणी अफ्रीकी देशों के प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भरता को इंगित करता है, वहीं भारत के निर्यात में कृषि वस्तुओं से औद्योगिक वस्तुओं में परिवर्तन भारत के औद्योगिक विकास को दर्शाता है। अध्यन से स्पष्ट है कि दक्षिणी अफ्रीकी देश समूहों में

से बोत्सवाना तथा नामीबिया की अर्थव्यवस्था में तीव्रता से वृद्धि हो रही है जो भारत के लिए व्यापार संबंधो में वृद्धि के लिए महत्वपूर्ण हो सकते हैं। हाल ही में भारत और साकू के मध्य अधिमान्य व्यापार करार (पी.टी.ए.) वार्ता का नेतृत्व नामीबिया के द्वारा किया गया है। यह पहल नामीबिया का दक्षिणी अफ्रीकी देशों में व्यापार प्रगतिशीलता को दर्शाता है। भारत और साकू के मध्य अधिमान्य व्यापार करार (पी.टी.ए.) सफल होने पर वर्ष 2011 के बाद आई व्यापार में स्थिरता ख़त्म होने और व्यापार में वृद्धि की सम्भावना है। अध्ययन से स्पष्ट है कि भारत और दक्षिणी अफ्रीकी देशों के व्यापार में वर्ष 2011 के बाद स्थिरता आई है जिसपर और अधिक शोध की आवश्यकता है।

सन्दर्भ सूची

ब्रगिना,इ.ए. (2018). *इंडिया-अफ्रीका ट्रेड एंड इन्वेस्टमेंट इन ट्वंटी फर्स्ट सेंचुरी*. आउटलाइन ऑफ़ ग्लोबल ट्रांसफॉर्मेशन, 83-97।

रिट्राइव फ्रॉम https://doi.org/10.23932/2542-0240-2018-11-5-182-199।

बनेर्जी चंद्रजीत एंड पास्कल लेमी. (2013). *इंडिया-अफ्रीका : साउथ-साउथ ट्रेड एंड इन्वेस्टमेंट फॉर डेवलपमेंट*. कॉन्फ़ेडरेशन ऑफ़ इंडिया इंडस्ट्री एंड डब्लु.टी .ओ. रिट्राइव फ्रॉम https://www.wto.org/english/tratop_e/devel_e/a4t_e/global_review13prog_e/india_africa_report.pdf

चौधरी, डी.आर. (2020). *इंडिया रिवाईव इनिशिएटिव फॉर प्रिफ्रेन्सिअल ट्रेड एग्रीमेंट विथ साउदर्न अफ्रीकन कस्टम यूनियन*. द इकोनोमिक टाइम्स।

रिट्राइव फ्रॉम https://economictimes.indiatimes.com/news/economy/foreign-trade/india-revives-initiative-for-preferential-trade-agreement-with-s-african-customs-union/articleshow/77050619.cms

हर्षे, आर. (2002). *रिकास्टिंग इंडो-अफ्रीकन डेवलपमेंट कोऑपरेशन*. इकनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली,4411-4120।

रिट्राइव फ्रॉम https://www.jstor.org/stable/4412691

इंडिया एक्जिम बैंक. (2018). *एन एनालिसिस ऑफ़ अफ्रीकन एंड इंडिया'स ट्रेड एंड इन्वेस्टमेंट, अफ्रीकन एक्सपोर्ट-बैंक एंड इंडिया एक्जिम बैंक द्वारा संयुक्त रूप से प्रकाशित*. रिट्राइव फ्रॉम https://www.eximbankindia.in/Assets/Dynamic/PDF/Publication-Resources/SpecialPublications/ Deepening-South-South-Collaboration_An-Analysis-of-Africa-and-Indias-Trade-and-Investment.pdf

वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय, भारत सरकार (2021). *इंडिया-सकु प्रिफ्रेन्सिअल ट्रेड एग्रीमेंट(पी.टी.ए.) निगोशिएसन*।

रिट्राइव फ्रॉम https://commerce.gov.in/international-trade-trade-agreements-indias-current-engagements-in-rtas/india-sacu-preferential-trade-agreement-pta-

negotiations/

करीम, ओ. आई. (2016). *द इफेक्ट ऑफ़ अफ्रीका-इंडिया ट्रेड एग्रीमेंट्स*. जर्नल ऑफ़ एशियान एंड अफ्रीका स्टडीज, 1-18।

रिट्राइव फ्रॉम https://doi.org/10.1177%2F0021909615627177

पी.एच.डी. चेम्बर ऑफ़ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री (2018). *इंडिया'स ट्रेड एग्रीमेंट : डायनेमिक्स एंड डाइग्नोस्टिक्स ऑफ़ ट्रेड प्रोस्पेक्टस.पी.एच डी. रिसर्च ब्यूरो , पी.एच.डी. चेम्बर ऑफ़ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री*। रिट्राइव फ्रॉम http://phdcci.in/image/data/Research Bureau-2014/Economic Developments/Economic-2018/March/Report on India.pdf

वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय, भारत सरकार (2017). *इंडिया – नामीबिया बाईलेटरल रिलेशन पॉलिटिकल(इशू दिसम्बर)*।

रिट्राइव फ्रॉम http://mea.gov.in/Portal/ForeignRelation/Bilateral_India-Namibia__till_December_.pdf

वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय, भारत सरकार (2019). *इंडिया-साउथ अफ्रीका रिलेशन (इशू जनवरी)*।

रिट्राइव फ्रॉम https://mea.gov.in/Portal/ForeignRelation/South_Africa_Sept2019-1.pdf

मिश्रा, ए. (2019). *इंडिया-साउथ अफ्रीका रिलेशनस: ए पेरेनियल बांड. आब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन*।

रिट्राइव फ्रॉम https://www.orfonline.org/expert-speak/india-south-africa-relations-a-perennial-bond-47557/

यूनाइटेड नेशन स्टैटिस्टिकल डिवीज़न (2022). *जियोग्राफिक रीजन*. रिट्राइव फ्रॉम https://unstats.un.org/unsd/methodology/m49/

ट्रेड डाटा. रिट्राइव फ्रॉम https://www.trademap.org, *इकोनोमिक इंडिकेटर रिट्राइव*. फ्रॉम https://databank.worldbank.org/source/world-development-indicators

21वीं सदी और आदिवासी महिला शिक्षा

डॉ. संजय यादव*

सारांश

इक्कीसवीं सदी परिवर्तन, प्रौद्योगिकी, विकास, समानता और सशक्तिकरण की सदी है | लैंगिक असमानता को विदा करने और महिलाओं को समानता एवं सम्मान का स्थान दिलाने का भी यह महत्वपूर्ण कालखंड है। यदि हम विगत 70 वर्षों से भी ज्यादा समय की अपनी विकास यात्रा पर प्रकाश डालें तो महिला समानता और सशक्तिकरण की दिशा में हमने बहुत प्रगति की है। पारम्परिक रूप से हालाँकि हमारे समाज में बहुत समय से महिलाओं को दोयम दर्जे का समझा जाता रहा है और इसके चलते उनके अवदान और परिवार, समाज और जीवन के अन्य क्षेत्रों में उनकी उपस्थिति को ज्यादा महत्त्व नहीं मिल पाया है। मानव जीवन का रथ एक पहिए से नहीं चल सकता। सम्यक, समुचित, सुव्यवस्थित गति के लिए दोनों पहियों का विशिष्ट महत्व है। परन्तु भारतीय सामाजिक परिदृश्य में उनकी स्थिति बहुत ही आरोह, अवरोह की रही है। एक तथ्य तो स्वतः सिद्ध है कि जिस युग में स्त्री शिक्षा का प्रसार जितना व्यापक रहा उस युग की स्त्री की स्थिति उतनी उच्च तथा महत्वपूर्ण रही है। अतः यह आवश्यक है कि शिक्षा में समग्रता को समाहित किया जाय। यह किसी वर्ग विशेष तक सीमित न रहे। समाज के सभी वर्गों को बिना किसी भेदभाव के निर्बाध रूप से शिक्षा प्राप्त हो। स्त्री शिक्षा उनके विकास और अंततः समाज के समग्र विकास का दरवाजा होती है। दुर्भाग्यवश स्त्री शिक्षा और उसमें भी आदिवासी समुदाय के स्त्रियों का शिक्षण परिदृश्य बहुत सकारात्मक नहीं है। हालाँकि देश में पिछले कुछ वर्षों में इस दिशा में काफी काम किया गया है और हम सकारात्मक बदलाव की ओर भी बढ़ रहे हैं। प्रस्तुत शोधपत्र में आदिवासी महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति, उसकी बाधाओं, परिवर्तन, सरकार के अवदान आदि की पिछले दो दशक के विशेष सन्दर्भ में गुणात्मक आधार पर मीमांसा प्रस्तुत की गई है।

बीज शब्द: महिला शिक्षा, आदिवासी महिला, इक्कीसवीं सदी, सशक्तिकरण, समानता

प्रस्तावना

भारत में वैदिक सभ्यता में स्त्री का समाज में उच्च स्थान था और उसकी स्थिति काफी संतोषजनक थी। इस समय वेदाध्ययन के अतिरिक्त स्त्रियों को राजनीति, युद्ध विद्या, संगीत, नृत्य, तथा ललित कलाओं की शिक्षा दी जाती थी। 200 ई०पू० तक स्त्री शिक्षा अपने चरमोत्कर्ष पर थी। यही कारण था कि स्त्री उत्कर्ष भी अपने चरम पर था। समाज मे जैसे-जैसे स्त्रियों की दशा दयनीय होती गयी उसी अनुपात में उनका शैक्षिक पतन भी होता गया तथा स्त्री चेतना भी दयनीय होती गयी (पचौरी, 2006)। संस्कृत में एक उक्ति प्रसिद्ध है "नास्ति विद्यासमं चासुर्नास्ति मातृ समोगुरु" अर्थात विद्या के समान कोई नेत्र नहीं और माता के समान कोई गुरु नहीं। यह तभी संभव है जब स्त्री शिक्षा का उन्नयन हो। भारत के महान शिक्षक बाल गंगाधर तिलक ने शिक्षा के प्रसार को आवश्यक बताया। उनका मानना था कि "राजनितिक

*सहायक प्राध्यापक, ट्राइबल स्टडीज, आर्ट, कल्चर एंड फोक लिटरेचर, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक।

जागरण तथा राष्ट्र की प्रगति के लिए शैक्षिक सुविधाओं का प्रसार आवश्यक है तथा स्त्री शिक्षा में निरंतर प्रगति और परिमार्जन की आवश्यकता है" (वर्मा, 1998, पृ. 239)। अपने प्रारम्भिक अवस्था में मानव इतना भेदभावपूर्ण जीवन व्यतीत नहीं करता था। उसकी बौद्धिक क्षमता का विकास ही उसे भेदभाव पूर्ण जीवन जीने के लिए विवश करता चला गया। प्रारम्भ में स्त्री-पुरुष समानता थी। श्रम विभाजन ने इस समानता को असमानता में बदल दिया।

मुगलकाल में भारतीय समाज में जनसाधारण वर्ग की स्त्रियों की दशा दयनीय थी। थोड़ी सी सम्मानजनक स्थिति उच्च वर्ग की महिलाओं को प्राप्त थी परन्तु उनकी संख्या बहुत कम थी। समाज ने जो अधिकार पुरुषों को दिए थे वह अधिकार महिलाओं के लिए आकाश कुसुम था। इस काल में महिलाएं केवल भोग की वस्तु बन कर रह गयी थीं। बादशाहों द्वारा बड़े-बड़े हरम बनाए गए थे जिसमें अत्यधिक संख्या में स्त्रियाँ रखी जाती थीं जो अपने नृत्य, गायन द्वारा बादशाहों का मनोरंजन करती थीं। इनका पारिश्रमिक बादशाह की खुशी के अनुपात में प्राप्त होता था। हरम में स्त्रियाँ केवल अपनी यौवनावस्था तक ही रहती थीं (सरकार, 1999)। इस काल में भ्रूण हत्या तथा पर्दा प्रथा अपने चरम पर थी (श्रीवास्तव, 1975)।

बौद्ध शिक्षा एवं दर्शन के प्रवर्तक महात्मा बुद्ध ने स्त्री को सांसारिक माया एवं मोह का कारण माना था। यही कारण था कि बौद्ध संघों में स्त्रियों का कोई स्थान न था। कालान्तर में महात्मा बुद्ध द्वारा अपनी विमाता को संघ में प्रवेश दिए जाने के बाद स्त्रियों के लिए भी बौद्ध विहार खुले तथा स्त्री शिक्षा का श्रीगणेश माना गया। स्त्री संघ के कठोर नियमों के साथ-साथ आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करती थी। इन विहारों में महिला शिक्षिकाएं होती थीं जिन्हें 'उपा इन्याया' अर्थात उपाध्याय कहा जाता था। अपने विषय में उच्चतम ज्ञान प्राप्त करने के लिए महिलाएं स्वतन्त्र होती थीं। इन विहारों ने अनेक विदुषी महिलाओं जैसे- शील भट्टारिका, प्रभु देवी, रानी जयनिका और संघमित्रा को जन्म दिया। इस काल में स्त्रियों में सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना का विकास हुआ (अग्रवाल , 2009)। महिलाओं के पुनरोत्थान का काल ब्रिटिश काल माना जाता है। ब्रिटिश शासन के दो सौ वर्षों की अवधि में स्त्रियों के जीवन में अनेक प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष सुधार हुए। औद्योगीकरण, शिक्षा का विस्तार, सामाजिक आन्दोलन व महिला संगठनों का उदय तथा सामाजिक विधानो ने स्त्रियों की दशा में व्यापक सुधार किए।

1947 में देश को स्वाधीनता मिली | स्वाधीनता प्राप्ति के बाद सरकार द्वारा महिलाओं की आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक और राजनीतिक स्थिति में सुधार तथा उन्हें विकास की मुख्यधारा से जोड़ने के लिए अनेक कल्याणकारी योजनाओं और विकासात्मक कार्यक्रमों का क्रियान्वयन किया गया। वर्तमान समय में महिलाओं की सामाजिक स्थिति में अनेक युगान्तकारी परिवर्तन हुए। परतन्त्रता, रूढ़िवादिता से मुक्त होकर भारतीय महिलाएं आज एक सम्मानजनक जीवन जी रही हैं। फिर भी यह विस्तार अभी सभी भौगोलिक क्षेत्रों में नहीं हो पाया है। सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी शैक्षिक संस्थानों की कमी है। जनजातीय क्षेत्रों में तो शैक्षिक जागरूकता की कमी है। यह अभाव और भी पराकाष्ठा पर है। शैक्षिक संसाधनों का नितान्त अभाव है।

प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति में आदिवासी समुदाय की विशिष्ट भूमिका रही है। यह समुदाय हमारी गौरवशाली परम्परा के अभिन्न अंग हैं तथा हमारी संस्कार, संस्कृति, पुरातन व्यवस्था और सभ्यता के वाहक हैं। हमारी महान परम्परा के मूल आज भी इसी जनजातीय समाज में पुष्पित, पल्लवित होते हैं और जीवन्त हैं। यह भारतीय संस्कृति के उच्च मूल्यों-विश्वास, ईमानदारी, सहिष्णुता, प्रेम, सम्मान

तथा नारी मर्यादा के सम्मान जैसे मूल्यों के वाहक हैं। साम्राज्यवादी सत्ता की अलगाववादी नीति तथा विषम सामाजिक परिस्थितियों के कारण इनका भौगोलिक अलगाव रहा। किन्तु वर्तमान परिवेश में संसाधनों का विकास तथा यातायात व्यवस्था में सुधार इन्हें मुख्यधारा के सम्पर्क में ला रहा है। संचार के संसाधन भी उन्हें मुख्य धारा में लाने में महती भूमिका निभा रहे हैं।

भारत विश्व के सबसे बड़े लोकतान्त्रिक देश के रूप में प्रतिष्ठित है। सबसे अधिक युवा तथा मतदाताओं वाला राष्ट्र भी है। यहाँ विश्व की सबसे अधिक जनजातीय महिलाएं रहती हैं। 1991 की जनगणना के अनुसार भारत में जनजातीय जनसंख्या लगभग 6.77 करोड़ थी जो 2011 की जनगणना में 10,42,81884 हो गयी | यह पूरी जनसंख्या के लगभग 8.6% है। उनकी आबादी 5 करोड़ के आसपास है जो गैर जनजातीय जनसंख्या में महिलाओं के प्रतिशत से अधिक है। यह इस बात का भी संकेत है कि यह सभ्य समाज में होने वाले कन्या भ्रूण हत्या जैसी सामाजिक बीमारी से दूर हैं।

भारत की साक्षरता दर 74.04 प्रतिशत है। राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय (वार्षिक रिपोर्ट 2020-21) के आंकड़ों पर आधारित एक रिपोर्ट के अनुसार 2019-20 में भारत की साक्षरता दर 77.7 प्रतिशत है। आदिवासी महिलाओं में यह तुलनात्मक रूप से कम है। भारत में 705 जनजातियों को सूचीबद्ध किया गया है। महिला सशक्तिकरण की बात प्राय: सुनने को मिलती है परन्तु आज जिन महिलाओं में सशक्तिकरण देख रहे हैं वह अधिकतर शहरी, साक्षर, उच्चवर्गीय और मध्यमवर्गीय महिलाएं हैं। भारत की अधिकांश जनसंख्या गाँवों में निवास करती है और लगभग 80% महिलाएं गाँवों में निवास करती हैं। इनमें से अधिकतर कृषि मजदूर या ईंट भट्ठों पर रोज काम करती हैं। इनका जीवन श्रमसाध्य है। यह जीवित रहने के लिए कठिन परिस्थितियों का सामना करती हैं। अगर इन्हें जागरूक बनाना है तो यह आवश्यक है कि इन्हें शिक्षित किया जाय। स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में अनेक समस्याएं दृष्टिगत होती हैं। 1990 मे यूनिसेफ ने "चिल्ड्रेन एण्ड वीमेन इन इंडिया' नाम से एक पुस्तक प्रकाशित की जिसमें स्त्री शिक्षा को बाधित करने वाले कारकों का उल्लेख किया। स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में समाज आज भी पूर्वाग्रह से ग्रसित है। एक आदर्श परम्परागत महिला उसे समझा जाता है जो निष्ठावान, पतिभक्त, और गृह कार्यों में दक्ष हो (उपाध्याय, 2009)।

उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र में यह विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है कि भारतीय समाज में स्त्री शिक्षा की क्या स्थिति है, विशेषकर जनजातीय समाज के स्त्रियों की। उनकी शिक्षा में क्या समस्याएं हैं? भारत सरकार तथा राज्य सरकार तथा स्वयंसेवी संगठनों द्वारा कौन सी योजनाएं चलायमान हैं तथा कितना फलीभूत हुई हैं ? इन महिलाओं का शैक्षिक उन्नयन कैसे सम्भव है ? तथा उनके उन्नयन के कारगर उपाय क्या हो सकते हैं ?

भारत में महिला साक्षरता

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात देश के सर्वांगीण विकास के लिए लोकतन्त्र, धर्मनिरपेक्षता तथा सामाजिक न्याय को मुख्य सिद्धान्त के रुप में अपनाया गया। संविधान के भाग तीन में स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व को अवलम्ब मानकर प्रत्येक व्यक्ति को समान मौलिक अधिकार प्रदान किया गया। संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 16, 17, 19, 23 तथा 36 के माध्यम से असमानता, भेदभाव, अस्पृश्यता, बलात

श्रम तथा दलितों की धार्मिक निर्योग्यताओं का अन्त कर दिया गया। महिलाओं, शूद्रों एवं अस्पृश्य व्यक्तियों के लिए शिक्षा का प्रावधान नहीं था जिसे अनुच्छेद 29 (1) के अन्तर्गत समाप्त करके सबके लिए शिक्षा का मार्ग खोला गया (जे. एन. पाण्डेय, पृ.149)। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात सामाजिक-आर्थिक गति को दिशा देने तथा महिलाओं की दशा बदलने के लिए महिला शिक्षा के महत्व को स्वीकार किया गया। भारत में साक्षरता दर में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है जिसे निम्नलिखित सारणी के माध्यम से देखा जा सकता है।

सारणी 1: भारत में दशकवार साक्षरता

साक्षरता दर में प्रगति			
वर्ष	व्यक्ति	पुरुष	स्त्री
1951	18.33	27.16	8.86
1961	28.30	40.40	15.35
1971	34.45	45.96	21.97
1981	43.57	56.38	29.76
1991	52.21	64.13	39.29
2001	64.84	75.26	53.67
2011	74.04	82.14	65.46
स्रोत - भारत की जनगणना 2011			

साक्षरता को राष्ट्र के विकास तथा मानव जीवन की गुणवता का अवलम्ब माना जाता है। उपरोक्त सारणी के अवलोकन से यह विदित है कि भारत की साक्षरता दर में सकारात्मक वृद्धि दर्ज हो रही है। 1951 में जहाँ भारत की कुल साक्षरता 18.33 प्रतिशत थी वह 2011 में बढ़कर 74.04 प्रतिशत हो गयी। वहीं महिला साक्षरता को देखा जाए तो जो साक्षरता दर 1951 में 8.86 प्रतिशत थी वह 2011 में 65.46 प्रतिशत हो गयी। अगर पुरुष साक्षरता को देखा जाय तो जनगणना 2011 के अनुसार 82.74 है जो महिला साक्षरता से 16.69 प्रतिशत अधिक है। इस अंतर के अनेक कारण हो सकते हैं पर मुख्य कारण के रूप में स्त्री-पुरुष शिक्षा में भेद को माना जा सकता है। यह सर्वविदित है कि जिन राष्ट्रों मे भेदपूर्ण शिक्षा रही, जहाँ सामाजिक कुप्रयास रहा, वहाँ विकास आज भी उतना नहीं हुआ जितना चाहिए। जहाँ स्त्री-पुरुष के सर्वांगीण विकास संभव हुए वहाँ भाषा भी समृद्ध हुई, साहित्य समृद्ध हुआ और राष्ट्र भी समृद्ध हुआ। अतः: सर्वांगीण विकास की अवस्था को प्राप्त करना है तो स्त्री-पुरुष साक्षरता के अन्तर को मिटाना होगा।

आदिवासी महिलाओं में शिक्षा की स्थिति

जनजातीय महिलाओं की साक्षरता दर को निम्नलिखित सारणी से अवलोकित किया जा सकता है-

सारणी 2: आदिवासी साक्षरता दर

आदिवासी साक्षरता दर			
वर्ष	व्यक्ति	पुरुष	स्त्री
1961	8.53	13.83	3.16
1971	11.30	17.63	4.85
1981	16.35	24.52	8.04
1991	29.60	40.65	18.19
2001	47.10	59.17	34.76
2011	59.00	68.50	49.40
स्रोत- भारत की जनगणना			

आदिवासी महिलाओं का शैक्षिक स्तर सन्तोषजनक नहीं है। उनका शैक्षिक स्तर उनकी सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति को प्रभावित तथा परिभाषित करता है। उपर्युक्त सारणी का अवलोकन करने से यह स्पष्ट है कि महिलाओं की साक्षरता दर में वृद्धि तो अवश्य हुई है परन्तु वह वृद्धि कच्छप गति से हुई है। जनगणना वर्ष 1961 में आदिवासी पुरुषों की साक्षरता दर 13.83 थी वहीं आदिवासी महिलाओं की साक्षरता दर मात्र 3:16 प्रतिशत थी। जनगणना वर्ष 1971 मे आदिवासी महिलाओं की साक्षरता दर में मात्र 1.69 प्रतिशत की वृद्धि हुई। दस वर्ष में मात्र 1 प्रतिशत की वृद्धि का होना नहीं होने के बराबर ही है। जनगणना वर्ष 1981 की अपेक्षा 1991 में सम्मान जनक वृद्धि हुई। अगर वर्ष 2011 की साक्षरता को देखा जाए तो यह पुरुषों की अपेक्षा 18 प्रतिशत कम है। आदिवासी महिलाओं की साक्षरता दर को प्रभावित करने वाले अनेक कारक हैं जिनमें यूनिसेफ तथा अन्य गैर सरकारी संगठनों द्वारा उल्लिखित बाधाओं को निम्नलिखित शीर्षकों के रूप में देखा जा सकता है।

1. सांस्कृतिक समस्या

सांस्कृतिक समस्या में स्त्री की समाज और परिवार में प्रस्थिति से भी जुड़ी समस्या आती है। पारम्परिक रूप से महिलाएं परिवार का दायित्व सम्हालती हैं अतः उनका दायरा सीमित कर दिया गया है। हालाँकि आदिवासी समाजों में महिलाओं को ज्यादा अधिकार प्राप्त हैं लेकिन शिक्षा को लेकर समाज का उदासीन दृष्टिकोण एक बड़ी बाधा है।

2. मनोवैज्ञानिक समस्या

भारतीय समाज में महिलाओं का एक बड़ा हिस्सा स्वयं उच्च शिक्षा लेने से संकोच करता है। उन्हें पूर्वाग्रह से दूर करने के लिए समाज में महिला संगठनों को आगे आना होगा। प्रौढ़ महिलाओं को शिक्षित कर अगली पीढ़ी के लिए जागृत करना होगा। क्योंकि एक पुरुष शिक्षित होता है तो वह अकेले शिक्षित रहता है, एक महिला दो परिवारों को शिक्षित करती है। कहा भी गया है कि-

अथ शिक्षा प्रवक्ष्यामः, मातृमान पितृमामाचार्यवान पुरुषो वेदः।
अर्थात जब माता पिता और गुरु तीन शिक्षक हों तभी मानव ज्ञानवान होगा।

3. आर्थिक समस्या

आर्थिक सीमितताओं के चलते बालिका शिक्षा अभी भी द्वितीयक है। गरीबी और संसाधनों की कमी के चलते महिलाओं की शिक्षा पर सबसे अधिक नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसके लिए बालिका शिक्षा को विशेष बढ़ावा और प्रोत्साहन देने की जरूरत है। जहाँ-जहाँ स्त्री शिक्षा को आर्थिक संबल प्रदान किया गया है वहां सकारात्मक परिणाम आए हैं।

4. अपव्यय और अवरोधन

1928 में हरतोग समिति का गठन किया गया और 1929 में इसने अपनी रिपोर्ट दी। समिति की जो रिपोर्ट आयी थी उसके अनुसार किसी भी कारणवश बालक या बालिका का एक ही कक्षा में एक साल से अधिक रह जाना अवरोधन के अन्तर्गत आता है। उसके लिए सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा मनोवैज्ञानिक कारक उत्तरदायी हो सकते हैं। निर्धनता, निरक्षरता, दूषित परम्परा, बालिका शिक्षा के प्रति संकुचित दृष्टिकोण, नीरस शैक्षिक वातावरण, दोषपूर्ण पाठ्यक्रम व परीक्षा प्रणाली, बाल विवाह आदि अपव्यय और अवरोधन की समस्या के लिए उत्तरदायी हैं।

स्कूल ड्राप आऊट की समस्या

जनजातीय क्षेत्रो में बच्चे अपनी शिक्षा पूरी किए बिना ही विद्यालय छोड़ देते हैं। वस्तुत: यह समस्या न केवल जनजातीय क्षेत्रो में है अपितु गैर जनजातीय क्षेत्रों में भी है। छात्र जब बिना परीक्षा दिए अथवा उस कक्षा का प्रमाण पत्र लिए जिस कक्षा में उसका प्रवेश रहता है, उसे छोड़ देता है तब यह समस्या 'ड्राप आउट' के अन्तर्गत आती है। यह समस्या आदिवासी क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर है। लोकसभा में एक प्रश्न के उत्तर में जो आंकड़े दिए गए हैं उसके अनुसार स्कूल ड्रॉप आउट के 2019-20 के आंकड़े निम्नवत हैं-

सारणी 3: भारत में स्कूल ड्रॉप आउट की दर (%)

लिंग	प्राथमिक (कक्षा 1-5)	उच्च प्राथमिक (कक्षा 6-8-)	माध्यमिक (कक्षा 9-10)
बालक	1.7	2.2	17.0
बालिका	1.2	3.0	15.1
कुल	1.5	2.6	16.1

स्रोत: लोकसभा प्रश्न

उपर्युक्त सारणी से आदिवासी बच्चों की ड्रापआउट की स्थिति का एक अवलोकन किया जा सकता है तथा निष्कर्ष तक पहुंचने का एक सार्थक प्रयास भी। ड्रापआउट की कई समस्या हो सकती हैं जिनमें आर्थिक, सामाजिक, स्वास्थ्य तथा विद्यालयों की स्थिति विशेष उल्लेखनीय है।

शिक्षा और सशक्तिकरण का अंत: सम्बन्ध

महिला सशक्तिकरण की सर्वप्रथम पहल 1985 महिला अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन नैरोबी में की गयी थी। सरकारी तन्त्रों के लिए यह आधुनिक शब्द है। महिला सशक्तिकरण से हमारा अभिप्राय महिलाओं की पुरुषों के बराबर वैधानिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में निर्णय लेने की स्वायत्तता से है। भेद-विभेद की समाप्ति हो। भारतीय व्यवस्था में महिला सशक्तिकरण के लिए अनेकानेक प्रयास किए गए हैं। कानून भी बना। महिला सशक्तिकरण का सबसे प्रभावी अवलम्ब महिलाओं में शिक्षा का प्रसार ही हो सकता है। उनकी शैक्षिक स्थिति ही उनकी सामाजिक-राजनीतिक तथा आर्थिक स्थिति का निर्धारण करती है।

सरकार के प्रयास

बालिका शिक्षा का प्रसार सरकार की योजनाओं का मुख्य विषय है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 जिसे 1992 में परिमार्जित एवं संशोधित किया गया, में बालिका शिक्षा के प्रसार पर विशेष ध्यान दिया गया था। नई शिक्षा नीति 2020 के प्रावधानों मे भी बालिका शिक्षा के विस्तार के विशेष उपबन्ध किए गए हैं। मानव संसाधन तथा विकास मन्त्रालय ने बालिका शिक्षा विस्तार की अनेक लाभकारी योजनाओं को कार्यान्वित किया है तथा उसे फलीभूत बनाने के लिए निरंतर प्रयासरत है। स्त्री शिक्षा के प्रचार-प्रसार तथा समास्याओं के निराकरण के लिए भारत सरकार द्वारा विभिन्न उपयोगी कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं जो इस प्रकार हैं :-

सर्व शिक्षा अभियान

सर्व शिक्षा अभियान भारत सरकार की दूरदर्शी योजना है। इसका लक्ष्य देश के प्राथमिक विद्यालयों के ढांचे को मजबूत बनाना है। यह योजना 2000-2001 में प्रारम्भ की गयी थी। इस योजना के लिए 'स्कूल चलें हम' कविता बनायी गयी थी। इस योजना के अनेक उद्देश्य हैं जैसे बालक-बालिका का अन्तर समाप्त करना, देश के हर गाँव में प्राथमिक स्कूल खोलना, मुफ्त शिक्षा प्रदान करना, निःशुल्क पाठ्य पुस्तकें, स्कूल ड्रेस वितरित करना, शिक्षकों का चयन करना, उन्हें लगातार प्रशिक्षण देना, पेय जल और प्रसाधन की व्यवस्था करना। प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण करना तथा लैंगिक व सामाजिक विषमता को समाप्त कर बालिका शिक्षा को प्रोत्साहित करना है।

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ योजना

यह योजना महिला और बाल विकास मन्त्रालय, स्वास्थ्य व परिवार कल्याण मन्त्रालय तथा मानव संसाधन विकास मन्त्रालय का एक संयुक्त प्रयास है। 22 जनवरी 2015 को पानीपत, हरियाणा से इसे शुरू किया गया था। इस योजना का उद्देश्य लिंगानुपात को कम करना, महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देना तथा लैंगिक असमानता को दूर करना है। यह एक सामाजिक अभियान है। इस योजना के अन्तर्गत 500 करोड़ रूपये की धनराशि बालिका शिक्षा के विकास के लिए आवंटित की गयी है। यह योजना भारत के सौ विशेष चिन्हित जनपदों में विशेष रूपसे उपबन्धित की जा रही है (पी.आई.बी. की रिपोर्ट, 2020)।

उड़ान [UDAAN]

सी.बी.एस.ई. द्वारा उड़ान योजना का शुभारम्भ किया गया है। देश के अच्छे तकनीकी संस्थानों में बालिकाओं की नामांकन दर कम होने के कारण यह योजना शुरु की गयी है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य ग्यारहवीं और 12वीं की बालिकाओं को इंजीनियरिंग तथा चिकित्सा शिक्षा में प्रवेश हेतु नि: शुल्क तैयारी कराना है (पी. आई.बी. की रिपोर्ट, 2020)।

सुकन्या समृद्धि योजना

यह भारत सरकार की एक दूरगामी तथा दूरदर्शी योजना है। इसे बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ योजना के अन्तर्गत क्रियान्वित किया गया है। यह एक निवेश योजना है जिसमें कन्या की आयु 12 वर्ष पूरा होने से पूर्व निवेश शुरू कर दिया जाता है। यह धनराशि 18 वर्ष पर पूरी होती है। इस धनराशि को बालिका की शिक्षा तथा उसके विवाह पर खर्च किया जा सकता है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य बेटियों का वर्तमान सफल बनाना तथा भविष्य उज्जवल करना है। यह योजना कन्या भ्रूण हत्या को रोकने मे भी सहायक सिद्ध होगी।

बालिका समृद्धि योजना

यह भारत सरकार की योजना है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य बालिकाओं की शिक्षा के लिए आर्थिक सहायता के रूप मे प्रोत्साहन राशि देना है। इसके अन्तर्गत गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले परिवारों की कन्याओं को छात्रवृत्ति दी जाती है। इस योजना का एक दूरगामी परिणाम यह होगा कि बालिकाओं के प्रति समाज की नकारात्मक सोच बदलेगी। यह योजना अभिभावकों को बालिका शिक्षा के लिए प्रोत्साहित करेगी (पी. आई. बी. की रिपोर्ट, 2020)।

विद्या लक्ष्मी योजना

महिला साक्षरता दर में वृद्धि करने के निमित इस योजना का शुभारम्भ किया गया है। यह सर्वविदित है कि आज के भौतिक युग मे धन की उपयोगिता सर्वाधिक है। अर्थाभाव मानव के सभी पक्षों को प्रभावित करता है। धन के अभाव में जो मेधावी छात्राएं अपनी शिक्षा पूरा नहीं कर पाती हैं उनके लिए यह योजना बहुत ही उपयोगी तथा सार्थक है। इस योजना के अन्तर्गत आर्थिक सहायता प्रदान कर महिला साक्षरता का प्रसार किया जा रहा है। महिला साक्षरता के विस्तार हेतु यह वर्तमान सरकार की एक सार्थक पहल है। इसका प्रतिफल भी सार्थक निकल रहा है।

इसके अतिरिक्त सरकार की अनेकों दूरगामी योजनाएं महिला साक्षरता में सकारात्मक वृद्धि हेतु क्रियान्वित हैं, जैसे एक लड़की के लिए सी.बी.एस.ई. मेरिट छात्रवृत्ति योजना, आदिवासी बालिकाओं के लिए छात्रावास योजना आदि उत्तम तथा सराहनीय पहल हैं। उच्च शिक्षा में पोस्टडाक्टोरल फेलोशिप की योजना है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा महिला साक्षरता में वृद्धि हेतु सात विश्वविद्यालयों को अनुदानित किया गया है। महिला साक्षरता दर में गुणात्मक सुधार के क्षेत्र में यह सार्थक, सफल और सकारात्मक प्रयास सिद्ध हो सकता है। इसके अतिरिक्त 535 महिला छात्रावास बनाने के लिए भी विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने धन आवंटित किया है जिसमें 39 छात्रावास विश्वविद्यालयों में तथा 496 महाविद्यालयों में निर्मित होंगे।

उपर्युक्त सैद्धान्तिक पक्ष से हटकर व्यावहारिक पक्ष पर विचार करने पर स्थिति दूसरी हो जाती है

। व्यावहारिक पक्ष बड़ा स्याह दिखता है। इतने प्रयासों के बाद भी महिलाओं की स्थिति में अपेक्षाजनक सुधार नहीं हो पाया है। एक आँकड़े के अनुसार प्रति 24 मिनट में यौन उत्पीड़न, प्रति 43 मिनट में अपहरण, प्रति 54 मिनट में बलात्कार, और प्रति एक सौ दो मिनट पर दहेज उत्पीड़न होता है। महिलाओं की खराब स्थिति के अनेक कारक हैं। आज नारी तृतीय विश्व बन गयी है जहाँ उसे सीमित सुविधाएं प्राप्त हैं, वहीं न्यूनतम पारिश्रमिक तथा शोषण और भेदभाव में निस्तर वृद्धि हुई है। अगर 2011 की जनगणना और कुछ सरकारी तथा गैरसरकारी आंकड़ों का अध्ययन किया जाय तो निम्नलिखित तथ्य सामने है :-

1. साक्षरता दर 65.5 प्रतिशत।
2. लिंगानुपात 1000-970
3. लगभग 70% लड़कियां 10वीं से पहले स्कूल छोड़ती हैं। जनजातीय क्षेत्रो में यह स्थिति और भयानक है।
4. महिला जनसंख्या का मात्र 1 प्रतिशत विश्वविद्यालयीय शिक्षा ग्रहण कर पाता है।
5. संसद में महिलाओं की भागीदारी 7.8 प्रतिशत से बढकर 14.36 प्रतिशत है (17 वीं लोकसभा में) जो विश्व रैंकिंग में भारत को 153वें स्थान पर खड़ा करता है।
6. प्रशासनिक सेवा में मात्र 12 प्रतिशत महिलाओं की भागीदारी है।

भविष्य की आवश्यकताएं एवं सुझाव:-

आदिवासी महिलाओं की शिक्षा में गुणात्मक उन्नयन के लिए सकारात्मक पहल की आवश्यकता है। सैद्धान्तिक पक्ष को व्यावहारिक बनाने की जरूरत है। नीति-निर्माण के साथ उसका सफल क्रियान्वयन भी आवश्यक है। बालिका शिक्षा को अनिवार्य करना इस दिशा मे सार्थक कदम हो सकता है। आदिवासी क्षेत्रों में महिला शिक्षा के प्रति जागरूकता अभियान चलाया जाना चाहिए। आदिवासी महिलाओं के शैक्षिक उन्नयन हेतु कुछ सकारात्मक सुझाव इस प्रकार हैं:

1. आदिवासी क्षेत्रों में आदिवासी बालिका विद्यालय की संख्या समुचित की जाय।
2. उच्च शिक्षा हेतु और शिक्षण संस्थानों की व्यवस्था हो।
3. महिला साक्षरता पर विशेष ध्यान देना होगा।
4. महिलाओं के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण बदलना होगा।
5. संविधान के भाग तीन में प्रदत्त मौलिक अधिकारों को ईमानदारी से कार्यान्वित किया जाय।
6. महिला वर्ग को भी मिलने वाली स्वतन्त्रता, सहानुभूति का सदुपयोग करने हेतु वचनबद्ध होना होगा।
7. प्रशिक्षित व्यक्ति अपने पड़ोस में दो महिला को साक्षर बनाने का प्रयास करें।
8. शिक्षित महिलाओं को रोजगार के अवसर दिए जायं जिससे शिक्षा के प्रति जागरूकता हो सके।

निष्कर्ष

आज का युग प्रतिस्पर्धा, कौशल विकास और समानता का युग है। महिलाएं हर क्षेत्र में आगे आ रही हैं और उनको मिलने वाला शैक्षणिक और आर्थिक आलंबन उन्हें सशक्त बनाकर समाज में सम्मान के साथ जीने का रास्ता दिखा रहा है। आदिवासी महिलाओं की स्थिति में भी परिवर्तन हो रहा है और उनके शैक्षणिक एवं आर्थिक स्तर में सकारात्मक बदलाव देखने को मिल रहे हैं। इसमें समाज और सरकार दोनों का योगदान है। लेकिन अभी भी लम्बा रास्ता तय करना है। उम्मीद है कि जल्द ही अन्तराल

पाटे जायेंगे और आदिवासी महिलाओं के सशक्तिकरण और सम्मान के साथ राष्ट्र का सम्मान भी बढ़ेगा।

सन्दर्भ सूची

पचौरी, गिरीश. (2006). *शिक्षा और भारतीय समाज*. इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस मेरठ, पृष्ठ 29।

वर्मा, वी.पी. (1998). *आधुनिक भारतीय राजनितिक चिंतन*. लक्ष्मीनारायन अग्रवाल एंड कम्पनी, आगरा पृ. 239।

सरकार, सुमित. (1999). *भारत का इतिहास*. पृ. 121।

श्रीवास्तव के.एल. एल. (1975). *मध्यकालीन भारतीय संस्कृति*. पृ. 44।

अग्रवाल जे .सी. (2009). *भारत में नारी शिक्षा प्रभात प्रकाशन*. पृ. 78।

उपाध्याय, पी. (2009) *भारतीय शिक्षा मे उदीयमान प्रवृत्तिया*. इलाहाबाद: शारदा पुस्तक भवन।

जनगणना 2011, https://censusindia.gov.in/index_hindi.html n.d. से उद्धृत।

वार्षिक रिपोर्ट (2020-21), सांख्यिकी एवं कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय https://mospi.gov.in/documents/213904/848928/Annual_Report_2020_21_Hindi.pdf/4aeaa799-7bb9-c9c7-8db7-b2cd846ce4b2?t=1613993560658 n.d. से उद्धृत।

http://164.100.24.220/loksabhaquestions/annex/176/AU2108.pdf n.d. से उद्धृत।

https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=1776873 n.d. से उद्धृत।

गोंड़ जनजाति में मोबाइल फोन के प्रयोग का अध्ययन

सन्नी कुमार गोंड़*
प्रो. मनीषा शर्मा**

सारांश

वर्तमान समय में मोबाइल फोन एक जरूरी उपकरण के रूप में उभरा है। शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में इसका उपयोग बहुतायत हो रहा है। इस कड़ी में यह देखना महत्वपूर्ण हो जाता है कि आदिवासी इस नई तकनीक का प्रयोग किन कार्यों के लिए कर रहे हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में गोंड़ जनजाति द्वारा मोबाइल फोन के प्रयोग का अध्ययन किया गया है। इसके लिए मध्य प्रदेश के आदिवासी बहुल जिला अनूपपुर से आकंड़ों का संग्रहण किया गया और पाया गया कि गोंड़ जनजाति के लोग मोबाइल फोन का प्रयोग बजाय कृषि संबंधी जानकारी और वित्तीय लेन-देन के आपसी बातचीत और मनोरंजन के लिए ज्यादा करते हैं।

मुख्य शब्द : अनुसूचित जनजाति, गोंड़, मोबाइल, इंटरनेट, सूचना प्रौद्योगिकी

भूमिका

दिसंबर 2019 तक भारत में 50 करोड़ से ज्यादा स्मार्टफोन प्रयोगकर्ता थे और सिसको की रिपोर्ट के मुताबिक 2023 तक भारत में इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या 90 करोड़ और मोबाइल उपयोगकर्ताओं की संख्या 96 करोड़ पहुंचने का अनुमान है (Cisco Annual Internet Report Highlights Tool, n.d.)। वर्तमान समय में मोबाइल फोन महत्वपूर्ण तकनीक के रूप में आम लोगों के जीवन का हिस्सा बन चुका है। सुबह उठने से लेकर रात को सोने तक मोबाइल किसी न किसी कार्य के लिए प्रयोग होता रहता है। भारत में मोबाइल फोन की शुरुआत 1995 में हुई जब तत्कालीन केंद्रीय संचार मंत्री सुखराम और पश्चिम बंगाल के तत्कालीन मुख्यमंत्री ज्योति बसु ने नोकिया के हैंडसेट से बातचीत की। भारतीय कंपनी बीके मोदी समूह और ऑस्ट्रेलिया की टेलस्ट्रा कंपनी ने इस फोन कॉल के लिए नेटवर्क की सुविधा प्रदान की। यह फोन कॉल दिल्ली के संचार भवन और तत्कालीन कलकत्ता के राइटर्स बिल्डिंग के बीच जुलाई 1995 में की गई थी (25 years of Mobility in India: The first mobile phone call was made on this day, 2020)। भारत में इंटरनेट की शुरुआत 1986 में हो गई थी लेकिन बीएसएनएल की मदद से आम नागरिक के लिए 15 अगस्त 1995 को इंटरनेट शुरू किया गया। तब से अब तक इंटरनेट ने एक बहुत लंबा सफर तय किया है। वर्तमान समय में लोग ज्यादातर अपने मोबाइल फोन में ही इंटरनेट का इस्तेमाल कर रहे हैं।

संविधान में आदिवासियों के लिए अनुसूचित जनजाति शब्द का इस्तेमाल हुआ है। इन जनजातियों को भारत के पहले निवासी के रूप में माना जाता है। मानव इतिहास में शुरुआती समुदाय के रूप में जनजातियों की पहचान की जाती है। इम्पिरिकल गैजेटियर ऑफ इंडिया के अनुसार जनजातीय

*शोधार्थी, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक।
* प्राध्यापक, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक।

परिवार का संचयन है जो समान नाम धारण करते, समान भाषा बोलते, समान क्षेत्र में रहने वाले होते हैं और अंतर्विवाही आमतौर पर नहीं होते, हालांकि मूल रूप में ऐसा हो सकता है।

(The Imperial Gazetteer of India- A Tribe is a collection of families bearing a common name, speaking a common dialect, occupying or professing to occupy a common territory and is not usually endogamous, though originally it might have been so.) (Husnain 1991)

भारतीय संविधान के अनुसार राष्ट्रपति राज्यपाल की सलाह से अनुसूचित जनजातियों को निर्दिष्ट कर सकता है। वैसे इसके लिए कोई विशिष्ट मानदंड निर्धारित नहीं किए गए हैं। कुछ स्थापित मान्यताओं के अनुसार इसका निर्धारण किया जाता है। यह सामान्य मानदंड 1931 की जनगणना की परिभाषाओं, प्रथम पिछड़ा वर्ग आयोग 1955 की रिपोर्टों, कालेलकर सलाहकार समिति और लोकुर समिति द्वारा तैयार की गई अनुसूचित जाति/जनजातियों की पुनःसंशोधित सूचियों के आधार पर तय किये गए थे। 2011 की जनगणना के मुताबिक भारत में 8.6 प्रतिशत यानी 10.45 करोड़ अनूसूचित जनजाति समुदाय के लोग हैं (Scheduled Tribe Population-Census 2011, n.d.)। भारत में सबसे ज्यादा भील जनजाति और उसके बाद गोंड़ जनजाति के लोग निवास करते हैं। मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ के कई जिलों में गोंड़ जनजाति बहुतायत में निवास करती है। मध्यप्रदेश के पूर्वी जिले, छत्तीसगढ़ और उड़ीसा का एक बड़ा हिस्सा पूर्व में गोंड़वाना क्षेत्र के अंतर्गत आते थे जो गोंड़ की जमीन के नाम से जाना जाता था। मध्य प्रदेश का अनूपपुर जिला भी गोंड़ जनजाति बहुल जिला है।

साहित्य समीक्षा

लाहिरी, तथा अन्य (2017) ने 'भारत के उत्तर-पूर्व हिमालयी क्षेत्र के गारो आदिवासी किसानों में मोबाइल फोन के उपयोग की क्षमता' का अध्ययन किया है। शोधकर्ता ने गारो आदिवासी किसानों द्वारा कृषि की जानकारी जुटाने में मोबाइल फोन के उपयोग का अध्ययन किया है। अपने अध्ययन में शोधकर्ताओं ने पाया कि गारो आदिवासी किसानों के बीच मोबाइल फोन का उपयोग बहुत ज्यादा है लेकिन वह कृषि संबंधी जानकारी हासिल करने के लिए इस तकनीक का इस्तेमाल संतोषजनक रूप से नहीं करते।

परमवीर और रश्मि (2019) ने अपने शोध पत्र 'झारखंड के आदिवासियों के बीच मोबाइल फोन के उपयोग का स्वरूप' में रांची के दो गांवों का अध्ययन किया है। अपने अध्ययन में शोधकर्ताओं ने पाया कि ज्यादातर आदिवासी संचार और मनोरंजन के उद्देश्य के लिए ही मोबाइल फोन का प्रयोग करते हैं। तीस प्रतिशत आदिवासी अपने मोबाइल पर इंटरनेट और सोशल नेटवर्किंग साइट का प्रयोग करते हैं।
दास और गुहा (2019) ने अपने शोध 'आदिवासी लोगों पर तकनीकी विकास का प्रभाव: पश्चिम बंगाल में झारग्राम जिले के चयनित आदिवासी गांव का वैयक्तिक अध्ययन' में इस बात पर ध्यान केंद्रित किया है कि आदवासी छात्र कौन से आईसीटी उपकरण उपयोग कर रहे हैं और उसका उपयोग वह कितने प्रभावी रूप से कर रहे हैं? शोधकर्ता ने पाया कि संथाल परिवार के बच्चों की जीवन शैली भूमिज व अन्य जनजातियों से उच्च है। वह कंप्यूटर और मोबाइल में ज्यादा दिलचस्पी रखते हैं। आदिवासी बच्चे उच्च कंप्यूटर कोर्स करने में दिलचस्पी रखते हैं लेकिन आर्थिक स्थिति कमजोर होने के कारण वह इस तकनीकी शिक्षा से अछूते रह जाते हैं।

वैद्य, पाठक और वैद्य (2016) ने अपने शोध में 'युवाओं में मोबाइल फोन का प्रयोग' का अध्ययन किया है। पुणे शहर के 18 से 25 साल के युवाओं पर किए गए अध्ययन में शोधकर्ताओं ने पाया कि 97 प्रतिशत युवा स्मार्ट फोन का इस्तेमाल करते हैं वहीं 97.54 प्रतिशत अपने मोबाइल में इंटरनेट का इस्तेमाल करते हैं। 50 प्रतिशत से ज्यादा बच्चे मोबाइल का इस्तेमाल सोशल नेटवर्किंग के लिए करते हैं वहीं 41.03 प्रतिशत युवा अपने मोबाइल पर 4-6 घंटे का समय व्यतीत करते हैं।

राल्फ और बाथरन (2016) ने अपने शोध 'तमिलनाडु के आदिवासियों में सूचना एवं संचार तकनीक का प्रयोग' में आदिवासियों द्वारा उपयोग किए जाने वाले सूचना प्रौद्योगिकी उपकरणों और इंटरनेट के उपयोग और इंटरनेट तक पहुंच की चुनौतियों का अध्ययन किया है। अपने अध्ययन में शोधकर्ता ने पाया कि केवल 13 प्रतिशत आदिवासी ही लैपटॉप या अपने मोबाइल फोन में इंटरनेट चलाते हैं। 20 प्रतिशत शिक्षा, 20 प्रतिशत सोशल नेटवर्किंग और केवल 11.1 प्रतिशत समाचार के लिए मोबाइल का प्रयोग करते हैं। केवल 20 प्रतिशत ही मोबाइल और इंटरनेट बैंकिंग इस्तेमाल करते हैं। तमिलनाडु के आदिवासियों में डिजिटल साक्षरता की कमी के कारण बहुत सी सरकारी योजनाओं की पहुंच आदिवासियों तक नहीं है और मोबाइल के माध्यम से समाचार प्राप्त करते हैं। 42.2 प्रतिशत आदिवासी स्मार्ट फोन का इस्तेमाल करते हैं।

शोध का उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्य निम्नांकित हैं-

- गोंड़ जनजाति में मोबाइल फोन और इंटरनेट की पहुंच का अध्ययन
- गोंड़ जनजाति द्वारा मोबाइल फोन से कृषि संबंधी जानकारी लेने का अध्ययन
- गोंड़ जनजाति द्वारा मोबाइल फोन द्वारा वित्तीय लेन-देन का अध्ययन

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध का क्षेत्र मध्यप्रदेश राज्य का अनूपपुर जिला है। अनूपपुर की कुल आबादी का 47.85 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति के लोग हैं। इनमें 88.58 प्रतिशत आदिवासी ग्रामीण इलाकों में रहते हैं। इस जिले में गोंड़ जनजाति की आबादी सर्वाधिक है। प्रस्तुत शोध के लिए अनूपपुर जिले के ग्रामीण इलाकों में रहने वाले गोंड़ जनजातियों से अनुसूची भरवाई गई है। इसके लिए सोद्देश्य निदर्शन या उद्देश्यपूर्ण निदर्शन पद्धति के माध्यम से 15 गांवों से 180 गोंड जनजातीय घरों को चुना गया है। सोद्देश्य निदर्शन पद्धति अपनाने के पीछे कारण था कि शोधार्थी को केवल गोंड़ जनजाति से ही अनुसूची भरवानी थी। इस कारण जिन गांवों में गोंड़ जनजाति के लोगों की बहुतायत थी उन्हीं गांवों में से 15 का चुनाव किया गया और इस पद्धति के जरिए ही गांवों में से गोंड़ जनजाति के घरों का चुनाव किया गया। संग्रहित आंकड़ों को प्रतिशत के आधार पर विश्लेषित किया गया है।

सारणी 1: घर का प्रकार

घर का प्रकार					
घर का प्रकार	झोपड़ी	कच्चा	पक्का	मिश्रित	कुल
संख्या	2	111	33	34	180
प्रतिशत	1.1	61.6	18.3	18.8	100

सारणी 2: व्यवसाय

व्यवसाय	कृषि	निजी नौकरी	सरकारी नौकरी	दैनिक वेतनभोगी	अन्य	कुल
संख्या	162	2	4	11	1	180
प्रतिशत	90	1.1	2.2	6.1	0.5	100

सारणी 3: घर में अधिकतम शिक्षा

शिक्षा	अनपढ़	पांचवीं	आठवीं	दसवीं	10+2	बीए	बीए से ऊपर	कुल
संख्या	20	24	28	54	23	23	8	180
प्रतिशत	11.1	13.3	15.5	30	12.7	12.7	4.4	100

उपरोक्त तालिका के अनुसार कुल 180 गोंड़ घरों में से 1.1 प्रतिशत झोपड़ी, 61.6 प्रतिशत कच्चे घर, 18.3 प्रतिशत पक्के मकान और 18.8 प्रतिशत मिश्रित प्रकार के घर में निवास करते हैं। वहीं ज्यादार गोंड़ जनजातियों की आजीविका कृषि पर आधारित है। 90 प्रतिशत घरों का मुख्य व्यवसाय कृषि है जबकि 1.1 प्रतिशत निजी नौकरी, 2.2 प्रतिशत सरकारी नौकरी, 6.1 प्रतिशत दैनिक वेतनभोगी और 0.5 प्रतिशत अन्य प्रकार के व्यवसाय करते हैं। मोबाइल के प्रयोग में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। घर में अधिकतम शिक्षा के आंकड़ों को देखें तो 11.1 प्रतिशत अनपढ़, 13.3 प्रतिशत पांचवीं, 15.5 प्रतिशत आठवीं, 30 प्रतिशत दसवीं, 12.7 प्रतिशत बारहवीं व बीए, 4.4 प्रतिशत बीए से ऊपर घर में अधिकतम शिक्षा है।

सारणी 4: घर में इस्तेमाल हो रहे मोबाइल फोन की संख्या

मोबाइल फोन की संख्या	0	1	2	3	तीन से ज्यादा	कुल घर	कुल मोबाइल
संख्या	45	82	40	11	2	180	203
प्रतिशत	25	45.5	22.2	6.1	1.1	100	

उपरोक्त तालिका के मुताबिक 180 घरों में से 45.5 प्रतिशत घरों में एक मोबाइल, 22.2 प्रतिशत घरों में दो मोबाइल, 6.1 प्रतिशत घरो में तीन मोबाइल, 1.1 प्रतिशत घरो में तीन से ज्यादा मोबाइल और 25 प्रतिशत घरों में किसी भी प्रकार के मोबाइल का प्रयोग नहीं किया जाता है। गोंड़ जनजाति के ज्यादातर घरों में एक ही मोबाइल फोन का प्रयोग किया जाता है और 75 प्रतिशत घरों में ही मोबाइल फोन का इस्तेमाल हो रहा है जबकि 25 प्रतिशत घरों में मोबाइल फोन नहीं हैं। कुल 135 गोंड़ घरों में 203 मोबाइल फोन इस्तेमाल हो रहे हैं।

सारणी 5:घर में इस्तेमाल हो रहे मोबाइल फोन का समय

साल	0-2	2-4	4-6	6 वर्ष से ज्यादा	कुल
संख्या	72	44	11	8	135
प्रतिशत	53.3	32.5	8.14	5.9	100

घर में कितने दिनों से मोबाइल फोन का इस्तेमाल हो रहा है इसके जवाब में 53.3 प्रतिशत लोगों ने कहा 0-2 वर्ष, 32.5 प्रतिशत 2-4 वर्ष, 8.14 प्रतिशत 4-6 वर्ष और केवल 5.9 प्रतिशत ही 6 वर्ष से ऊपर से मोबाइल फोन का इस्तेमाल कर रहे हैं। आंकड़े दर्शाते हैं कि ज्यादातर घरों में पीछले दो वर्षों से मोबाइल का इस्तेमाल हो रहा है।

सारणी 6: इंटरनेट का प्रयोग

	हां	नहीं	कुल
संख्या	73	62	135
प्रतिशत	54.07	45.9	100

कुल 180 घरों में से 135 घरों में मोबाइल फोन का इस्तेमाल होता है। इनमें 54 प्रतिशत घरों में इंटरनेट का इस्तेमाल होता है जबकि 45.9 प्रतिशत गोंड़ परिवारों में इंटरनेट का इस्तेमाल नहीं होता। मोबाइल में इंटरनेट इस्तेमाल करने और न करने वालों के बीच बहुत ज्यादा अंतर नहीं है।

सारणी 7: मोबाइल फोन के प्रयोग

	हमेशा	अक्सर	कभी-कभी	कुल
संख्या	69	62	4	135
प्रतिशत	51.1	45.9	2.9	100

गोंड़ जनजाति के लोग किस कार्य के लिए मोबाइल फोन का इस्तेमाल करते हैं? उपरोक्त तालिका में कुल 135 घरों में से 51.1 प्रतिशत घरों में निजी संचार के लिए हमेशा, 45.9 प्रतिशत घरों में अक्सर और केवल 2.9 प्रतिशत घरों में कभी-कभी मोबाइल फोन का इस्तेमाल आपसी बातचीत के लिए किया जाता है।

सारणी 8: मोबाइल फोन पर जानकारी खोजना

	हमेशा	अक्सर	कभी-कभी	बहुत कम	कभी नहीं	कुल
संख्या	2	16	21	21	75	135
प्रतिशत	1.4	11.8	15.5	15.5	55.5	100

वर्तमान समय में मोबाइल केवल बातचीत का साधन नहीं है बल्कि इंटरनेट के माध्यम से कई सूचनाओं तक पहुंच यह तकनीक सुनिश्चित करती है। उपरोक्त तालिका के अनुसार केवल 1.4 प्रतिशत हमेशा, 11.8 प्रतिशत अक्सर, 15.5 प्रतिशत कभी-कभी व बहुत कम और 55.5 प्रतिशत गोंड़ परिवार मोबाइल से कभी भी सूचना नहीं खोजते हैं। मोबाइल से किसी भी प्रकार की जानकारी न खोजने वालों की संख्या सबसे ज्यादा है। यहां यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि 135 घरों में 45.9 प्रतिशत घरों में इंटरनेट का इस्तेमाल नहीं होता तो वह जानकारी खोजने में अक्षम हैं। अर्थात जिनके पास इंटरनेट है उनमें

से केवल दस प्रतिशत के करीब अपने मोबाइल से किसी भी प्रकार की कोई जानकारी नहीं खोजते हैं।

सारणी 9: मुद्रा की लेनदेन

	अक्सर	कभी-कभी	बहुत कम	कभी नहीं	कुल
संख्या	1	5	5	124	135
प्रतिशत	0.7	3.7	3.7	91.8	100

पैसे के लेन-देन के लिए मोबाइल फोन के इस्तेमाल का चलन बहुत तेजी से बढ़ रहा है। लेकिन गोंड़ जनजाति के 135 घरों में से 125 यानी 91.8 प्रतिशत घरों में पैसे के लेन-देन के लिए कभी भी मोबाइल फोन का इस्तेमाल नहीं करते। केवल 3.7 प्रतिशत घरों में बहुत कम व कभी-कभी और 0.7 घरों में यानि केवल एक घर में अक्सर मोबाइल द्वारा पैसे का लेन-देन होता है। नोटबंदी के बाद से मोबाइल द्वारा पैसों के स्थानांतरण की दर काफी बढ़ गई है लेकिन गोंड़ जनजातियों में अभी भी 91.8 प्रतिशत घरों में मोबाइल द्वारा पैसे का लेन-देन नहीं होता। अगर इन आंकड़ों में से मोबाइल में इंटरनेट इस्तेमाल न करने वालों घरों की संख्या भी निकाल दी जाए तो एक बड़ा तबका मोबाइल में इंटरनेट चलाते हुए भी मोबाइल द्वारा पैसों का लेन-देन नहीं करता।

सारणी 10: लिखित संदेश भेजना

	हमेशा	अक्सर	कभी-कभी	बहुत कम	कभी नहीं	कुल
संख्या	2	14	77	13	29	135
प्रतिशत	1.4	10.3	57.03	9.6	31.4	100

उपरोक्त तालिका के अनुसार जिन 135 घरों में मोबाइल फोन का इस्तेमाल होता है उसमें से 57.03 प्रतिशत घरों में कभी-कभी मोबाइल से सन्देश भेजे जाते हैं जबकि 1.4 प्रतिशत हमेशा, 10.3 प्रतिशत अक्सर, 9.6 प्रतिशत बहुत कम और 31.4 प्रतिशत कभी भी मोबाइल से सन्देश नहीं भेजते। लिखित संदेश भेजने के लिए उपयोगकर्ता का पढ़ा-लिखा होना आवश्यक है। गोंड़ जनजातीय परिवारों में दसवीं या उससे कम पढ़े-लिखों की संख्या सबसे ज्यादा है इस कारण कभी-कभी लिखित संदेश भेजने वालों की संख्या सबसे ज्यादा है।

सारणी 11: मनोरंजन

	हमेशा	अक्सर	कभी-कभी	बहुत कम	कभी नहीं	कुल
संख्या	4	46	26	42	17	135
प्रतिशत	2.9	34.07	19.2	31.1	12.5	100

मोबाइल फोन मनोरंजन के साधन के रूप में भी उभरा है। 4 प्रतिशत गोंड़ जनजातीय घरों में मनोरंजन के लिए हमेशा, 34.07 प्रतिशत में अक्सर, 19.2 प्रतिशत में कभी-कभी, 31.1 प्रतिशत में बहुत कम मोबाइल फोन का इस्तेमाल किया जाता है वहीं 12.5 प्रतिशत में कभी भी मोबाइल मनोरंजन के लिए प्रयोग नहीं किया जाता है।

सारणी 12: कृषि संबंधी जानकारी

	कभी-कभी	बहुत कम	कभी नहीं	कुल
संख्या	2	10	123	135
प्रतिशत	1.4	7.4	91.1	100

कुल 135 घरों में से केवल 12 घरों ने ही मोबाइल के माध्यम से कृषि संबंधी जानकारी हासिल की है जबकि 123 घर यानी 91.1 प्रतिशत घरों ने कभी भी मोबाइल से कृषि संबंधी जानकारी प्राप्त नहीं की है। जानकारी हासिल करने वालों में 1.4 प्रतिशत ने कभी-कभी और 7.4 प्रतिशत ने बहुत कम मोबाइल से कृषि संबंधी जानकारी प्राप्त की है। ग्रामीण गोंड़ समाज कृषि सम्बंधी जनकारी के लिए अभी भी पारंपरिक तरीकों पर निर्भर है। यही कारण है कि मोबाइल में इंटरनेट चलाने वाले लोग भी मोबाइल से कृषि संबंधी जानकारी हासिल नहीं करते।

दुनिया के अग्रणी अंतर्राष्ट्रीय विकास अर्थशास्त्रियों में से एक जेफरी सैच्स ने 2008 में लिखा था कि मोबाइल फोन और वायरलेस इंटरनेट हमारे समय के आर्थिक विकास की सबसे परिवर्तनकारी तकनीक साबित होंगे (Sachs 2008)। सूचना एवं संचार तकनीक का प्रभाव आर्थिक विकास पर पड़ता है। इसके साथ ही आर्थिक स्तर का प्रभाव सूचना एवं संचार तकनीक तक पहुंच और प्रभाव पर भी पड़ता है। इन दोनों स्तरों पर ज्यादातर आदिवासी पीछे हैं।

अनूपपुर जिले में रहने वाले ज्यादातर अनुसूचित जनजातियों की जीविका कृषि और उससे संबंधित आय पर निर्भर है। गोंड़ जनजाति आर्थिक और शैक्षणिक रूप से बहुत सुदृढ़ नहीं है और इसका प्रभाव सूचना एवं संचार तकनीक तक उनकी पहुंच और प्रयोग पर पड़ता है। सूचना वर्तमान समय की सबसे बड़ी ताकत के रूप में उभरी है और डिजिटल समाज का मूल तत्व डिजिटल सूचना है। इन सूचनाओं तक जिस समाज या समूह की पहुंच होगी और जो इन सूचनाओं का सार्थक उपयोग करेगा वह अन्य लोगों से हर मामले में आगे रहेगा (Park, 2017)। ग्रामीण विकास में सूचना एवं संचार तकनीक की महत्वपूर्ण भूमिका है। आईसीटी उपकरणों का उपयोग सामाजिक नेटवर्क को मजबूत करने, सशक्तिकरण, भागीदारी, रोजगार और कौशल के माध्यम से स्थानीय स्तर पर उत्पादक प्रक्रियाओं को बढ़ावा देने के साथ-साथ सूक्ष्म उद्यम गतिविधियों के लिए मदद करता है (Kumar & Singh, 2012)। सूचना एवं संचार तकनीक आर्थिक वृद्धि को सकारात्मक रूप से प्रभावित करती है।

निष्कर्ष

गोंड़ जनजाति दुनिया के सबसे बड़े आदिवासी समूह में से एक है और इसका एक बहुत बड़ा हिस्सा मध्यप्रदेश में निवास करता है। तकनीक के साथ दो चीजे हैं, पहला तकनीक तक पहुंच और दूसरा उसका प्रयोग। गोंड़ जनजातियों में बहुत से परिवार हैं जिनके पास मोबाइल और इंटरनेट जैसी तकनीक नहीं है। जिन परिवारों तक सूचना एवं संचार तकनीक की पहुंच है उसका समुचित उपयोग करने के लिए अच्छी शिक्षा का होना अनिवार्य है। गोंड़ जनजाति में भी ज्यादा पढ़े-लिखे और डिजिटली साक्षर परिवार बहुत कम हैं। यही कारण है कि जिनके पास मोबाइल और इंटरनेट की सुविधा उपलब्ध है वह भी इस नई तकनीक का सार्थक उपयोग करने में असमर्थ हैं। जैसे-जैसे शिक्षा और डिजिटल साक्षरता में वृद्धि होगी

सूचना एवं संचार तकनीक का प्रयोग विकास के लिए ज्यादा हो सकेगा।

संदर्भ सूची

(n.d.). Retrieved Nov 25, 2021, from Cisco: https://www.cisco.com/c/dam/m/en_us/solutions/executive-perspectives/vni-forecast-highlights/mobile/pdf/India_Internet_Users.pdf

(2020, July 31). Retrieved March 24, 2021, from HT Tech: https://tech.hindustantimes.com/tech/news/25-years-of-mobility-in-india-the-first-mobile-phone-call-was-made-on-this-day-71596188645410.html

Husnain, N. (1991). Tribal India. Palak Prakashan Delhi.

Scheduled Tribe. (n.d.). Retrieved from Census 2011: https://www.census2011.co.in/scheduled-tribes.php

लाहिरी, बी., अनुराग, टी. एस., चौहान, जे. के., संगमा, ए. के., और संगमा, एस. एम. (2017). मोबाइल फोन यूज एफिकेसी ऑफ गारो ट्राइबल फार्मर इन नार्थ-ईस्टर्न हिमालयन रिजन ऑफ इंडिया. इंडियन रिसर्च जर्नल ऑफ एक्सटेंशन एजुकेशन. 1-8।

परमवीर, एस., और रश्मी, के. (2019). यूसेज पैटर्न ऑफ मोबाइल फोन एमंग ट्राइबल्स ऑफ झारखंड. मास कम्यूनिकेटर: इंटरनेशनल जर्नल ऑफ कम्यूनिकेशन स्टडी, 27-31।

दास, एम., और गुहा, डी. (2019). इम्पैक्ट ऑफ टेकनॉलॉजिकल डेवलपमेंट ऑन द ट्राइबल पीपुल: ए केस स्टडी ऑफ सेलेक्टेड ट्राइबल विलेज इन झारग्राम डिस्ट्रिक्ट इन वेस्ट बंगाल. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ नोवल रिसर्च एंड डेवलपमेंट, 73-82।

वैद्य, ए., पाठक, वी., और वैद्य, ए. (2016). *मोबाइल फोन यूसेज एमंग यूथ*. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ अप्लाइड रिसर्च एंड स्टडीज, 5(3)।

राल्फ, एच. जे., और बाथरन, आर. (2016). *आईसीटी यूसेज एमंग ट्राइबल्स इन तमिलनाडु*. द जर्नल ऑफ मीडिया स्टडीज, 774-777।

Sachs, J. 2008. "The Digital War on Poverty." The Guardian, August 21. Available at http://www.theguardian.com/commentisfree/2008/aug/21/digitalmedia. mobilephones -Park, S. (2017). Digital Capital. Palgrave Macmillan.

Kumar, A., & Singh, K. M. (2012). Role of icts in rural development with reference to changing climatic conditions. ICT for Agricultural Development under Changing Climate, 83-88.

शासकीय एवं अशासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत बालिकाओं की अध्ययन आदतों का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. बीना सिंह*

सारांश

बालिकाओं की अध्ययन आदत पर अध्ययन करने का कारण शिक्षा ग्रहण करने के प्रति उनकी अभिरुचियों का विश्लेषण करना एवं सार्थक निष्कर्ष की प्राप्ति है। समाज में अपनी पहचान बनाने के लिए शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक है। अध्ययन आदत, शिक्षा के क्षेत्र में विद्यार्थियों की सफलता एवं असफलता को प्रभावित करता है। शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों की इसमें क्या भूमिका है आदि सवालों का जवाब प्राप्त करने के लिए शोधकर्ता ने शासकीय एवं अशासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत 300 बिलासपुर जिले की बालिकाओं को न्यादर्श के रूप में लिया एवं जैदका (2015) की 'अध्ययन आदत मापनी' का प्रयोग कर आंकड़ों का एकत्रीकरण किया। सांख्यिकी विश्लेषण के अंतर्गत 't' टेस्ट का प्रयोग कर यह निष्कर्ष निकाला कि शासकीय विद्यालय में अध्ययनरत बालिकाओं से अशासकीय विद्यालय में अध्ययनरत बालिकाओं की अध्ययन आदत बेहतर है।

बीज शब्द: बालिका, अध्ययन आदत, तुलनात्मक, शासकीय, अशासकीय

परिचय

वर्तमान में नगरों में बालक और बालिका के अध्ययन में भेद-भाव नहीं किया जाता और बालिकाओं को अध्ययन हेतु उतना ही अभिप्रेरित किया जाता है जितना कि बालक को। घर का वातावरण यदि शांत और दुर्गुणों से मुक्त होता है अर्थात नशा वगैरह की आदत घर के सदस्यों में न हो, ऐसी स्थिति में यदि आर्थिक सम्पन्नता न भी हो तो सदस्यों में आपसी सामंजस्य एवं सूझ-बूझ से घर में सकारात्मक वातावरण का निर्माण होता है। घर के सदस्यों में आपसी प्रेम, स्नेह, सौहार्द, स्वस्थ विचार या सोच का विकास होता है। चन्ना ने अपने अध्ययन से प्राप्त किया कि जिस घर में पहली पीढ़ी की बालिका कुछ पढ़ी होती है, उसकी तीसरी पीढ़ी की बालिका स्नातक की डिग्री अवशय प्राप्त करती है। स्पष्ट है कि धीरे-धीरे उनमें अध्ययन आदत विकसित होती है। घर के अन्य सदस्यों को पढ़ते हुए देखने पर उनके बालक एवं बालिकाओं में भी यह आदत विकसित होती है। यद्यपि एक बालक की सफलता निश्चित रूप से उसकी क्षमता, बुद्धि एवं लगन पर निर्भर करती है किन्तु अध्ययन आदत या कड़ी मेहनत सफलता के पश्चात एक गुण के रूप मे विद्यार्थी के व्यक्तित्व में सम्मिलित हो जाती है। शिक्षक बालकों के अध्ययन आदत को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे सही निर्देशन तथा अभिप्रेरणा समय-समय पर प्रदान करते हैं जिससे विद्यार्थी अपने अंदर अध्ययन आदत के प्रति रूचि पैदा कर सके। यदि विद्यार्थियों में यह आदत विद्यालय के प्रारंभिक दिनों में विकसित किया जाए तो निश्चित रूप से बड़े होने पर विद्यार्थियों को ऊँची कक्षाओं में सफलता प्राप्त करने में मददगार साबित होती है। अध्ययन आदत विद्यार्थी के जीवन में

*सहायक प्राध्यापक, पं सुन्दरलाल शर्मा मुक्त विश्वविद्यालय, छत्तीसगढ़, बिलासपुर।

सफल या असफल होने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अध्ययन आदत से तात्पर्य है पुस्तकों का अध्ययन एवं अवलोकन शीघ्रता से, सही तरीके से एवं पूरे ध्यान के साथ स्वयं से किया जाए तथा अपने अध्ययन संबंधी कार्य को योजनापूर्ण तथा व्यवस्थित ढ़ंग से कम समय में पूर्ण कर सकें। अलूडे एवं ऑननेमहेमहेन (2001) ने अपने अध्ययन से बताया कि अच्छी अध्ययन आदत विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर सकारात्मक प्रभाव डालती है या उनकी शैक्षिक उपलब्धि को बढ़ा सकती है। सादिया (2005) ने भी अपने अध्ययन के द्वारा यह पाया कि प्रभावपूर्ण अध्ययन आदत विद्यार्थियों के अच्छे रिजल्ट प्राप्त करने में सहायक है।

अध्ययन का प्रयोजन

शोधकर्ता का निवास छत्तीसगढ़ के बिलासपुर में होने के कारण, आस-पास की बालिकाओं का विद्यालय एवं बालिका-बालक द्वारा विद्यालय के अवलोकन किया गया जिससे स्पष्ट हुआ कि बालिकाओं की संख्या इनमें पर्याप्त है। साथ ही बालिकायें अब अपनी शिक्षा एवं भविष्य को लेकर सजग हो रही हैं। निम्न आय और सामाजिक प्रस्थिति से आने वाली बालिकायें भविष्य में माता-पिता के कार्य या व्यवसाय को न चुनकर अपने लिए अन्य कार्य क्षेत्र चुनने का सपना देखती हैं। विद्यालय के शिक्षकगण का कहना है कि यह बालिकाएँ जो बहुत ही संसाधनविहीन घरों से आती हैं, वे विपरीत परिस्थितियों में रहते हुए भी अपनी शिक्षा पर ध्यान दे रहीं है और आगे उच्च शिक्षा में जाना चाहती हैं। इसके अतिरिक्त सम्पन्न घरों की बालिकाएँ आत्मविश्वास से पूर्ण हैं और अपनी शिक्षा एवं कैरियर के संबंध में उच्च आकांक्षा रखती हैं।

वास्तव में भारतीय परिवेश में आरंभ से ही बालिकाओं का दोयम दर्जा रहा है। प्रथम दर्जे पर बालकों की स्थिति रही है और उन्हें घर और बाहर दोनों स्थान पर प्राथमिकता मिलती आयी है। जिससे उनके विकास में तो कोई कमी नहीं है किन्तु दोयम दर्जे पर रहने वाली बालिका शिक्षा, विकास, पोषण सभी में कहीं न कहीं पीछे छूट गयी है। उदारवादी आधुनिक सोच या विचारधारा के कारण लोगों ने यह महसूस किया है कि अपने देश को विकसित देश का दर्जा नहीं मिलने का एक कारण यह भी रहा है कि हमने अपनी आधी आबादी के विकास के तरफ ध्यान नहीं दिया है। जबकि इस पर ध्यान देना आवश्यक इसलिए भी है कि बालिकाओं की शिक्षा केवल उन तक सीमित न रह कर कई पीढ़ियों तक सफर करती है।

उपर्युक्त परिदृश्य का अवलोकन कर शोधकर्ता के मन में यह प्रश्न उठा कि क्या शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के बालिकाओं के अध्ययन आदत में अंतर है या नहीं व इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने हेतु यह शोध कार्य आवश्यक प्रतीत होता है।

अध्ययन का उद्देश्य

शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों की बालिकाओं के अध्ययन आदत में अंतर का अध्ययन करना।

परिकल्पना

H1 शासकीय एवं अशासकीय विद्यालय की बालिकाओं के अध्ययन आदत में सार्थक अंतर पाया जाएगा।

परिसीमा

प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित परिसीमाएं निश्चित की गई हैं:-

- प्रस्तुत अध्ययन बिलासपुर जिले के उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं तक सीमित है।
- प्रस्तुत अध्ययन 11 वीं कक्षा की बालिकाओं तक सीमित है।
- प्रस्तुत अध्ययन 11 वीं कक्षा के बालिकाओं/छात्राओं के अध्ययन आदत, गृह वातावरण, अभिभावकों की आकांक्षा तथा शिक्षकों की आकांक्षा के अध्ययन तक सीमित है।

न्यादर्श के रूप में 300 बालिकाओं के चयन तक सीमित है।

संक्रियात्मक परिभाषा

अध्ययन आदत - प्रस्तुत अध्ययन में अध्ययन आदत का तात्पर्य रानी एवं जैदका द्वारा निर्मित 'अध्ययन आदत मापनी' से विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त कुल प्राप्तांकों से है।

संबंधित शोध अध्ययन

नागप्पा एवं वेंकटैया (1995) ने अपने अध्ययन में पाया कि बालिकाओं की अध्ययन आदत बालकों की अपेक्षा अच्छी हैं तथा विद्यालय प्रकार का प्रभाव भी अध्ययन आदत पर प्रदर्शित हुआ। गैर सरकारी विद्यालय की छात्राओं की अध्ययन आदत सरकारी विद्यालय के छात्राओं से अच्छी है। ठक्कर (2003) ने निष्कर्ष प्राप्त किया कि ग्रामीण विद्यार्थियों की अध्ययन आदत एवं उच्च तथा निम्न उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया जबकि नगरीय विद्यार्थियों में इनमें सार्थक अंतर नहीं पाया गया। सूद एवं सुजाता (2006) ने भी पाया कि बालक की अध्ययन आदत बालिकाओं की अपेक्षा खराब है या कम है। सिद्दीकी एवं फातिमा (2014) ने मुस्लिम तथा अन्य किशोरियों के शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन आदत एवं उपलब्धि प्रेरणा से संबंध पर अध्ययन किया और निष्कर्ष में पाया कि मुस्लिम एवं अन्य किशोरियों के शैक्षिक उपलब्धि एवं अध्ययन आदत में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। नदीम, अहमद तथा शबीर (2014) ने कश्मीरी तथा लद्दाखी बालिकाओं की अध्ययन आदत तथा शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन किया और निष्कर्ष में पाया कि कश्मीरी बालिकाओं की अध्ययन आदत लद्दाखी बालिकाओं की अध्ययन आदत से बेहतर है। आयोडेल एवं अदेबी (2013) ने अपने अध्ययन में पाया कि अध्ययन आदत, विद्यार्थी के अध्ययन करने का तरीका है। यदि वह क्रमबद्ध और सही है तो यह विद्यार्थी को सफलता दिलाती है, इसके विपरीत आदत विपरीत परिणाम प्रदर्शित करते हैं। बशीर एवं मट्टू (2012) ने अध्ययन में पाया कि अध्ययन आदत, अध्ययन की अच्छी योजना तैयार करना तथा उसको आत्मसात करने में विद्यार्थी को विषयों को समझने तथा परीक्षा को पास करने में मदद करता है। बाला (2016) ने माध्यमिक विद्यार्थियों के सामाजिक क्षमता, अध्ययन आदत तथा शैक्षिक उपलब्धि का गृह वातावरण एवं समूह दबाव में संबंध पर अध्ययन किया और पाया कि ¼ i½ बालक एवं बालक के शैक्षिक उपलब्धि में अंतर है, बालिका की शैक्षिक उपलब्धि बालक से बेहतर है। ¼ ii ½ गृह वातावरण का अध्ययन आदत पर बालिकाओं में सकारात्मक प्रभाव नहीं पाया गया जबकि बालकों में गृह वातावरण का अध्ययन आदत पर सकारात्मक प्रभाव पाया गया। ¼ iii ½ समूह दबाव का अध्ययन आदत पर प्रभाव बालक एवं

बालिका दोनों में पाया गया। तेलु एवं ओपटु (2013) के अनुसार अभिभावक द्वारा प्राप्त प्रेरणा का उनकी आय, शिक्षा, रहन-सहन का प्रभाव बालक/बालिकाओं के अध्ययन आदत पर पड़ता है। सियाही एवं मायो (2015) ने भारत के उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के अध्ययन आदत एवं शैक्षिक उपलब्धि में सह-सम्बन्ध पर अध्ययन किया और पाया कि दोनों में सकारात्मक संबंध है। शर्मा एवं व्यास (2016) ने विद्यालय जाने वाले विद्यार्थियों के अध्ययन आदत एवं शैक्षिक उपलब्धि के संबंध पर अध्ययन किया और पाया कि दोनों में सकारात्मक संबंध है। कुमार एवं सोही (2013) ने बालक एवं बालिका के अध्ययन आदत एवं उसका शैक्षिक उपलब्धि से संबंध पर अध्ययन किया जिसमें ¼ i½ बालक एवं बालिका के अध्ययन आदत में अंतर नहीं पाया गया। ¼ ii½ अध्ययन आदत एवं शैक्षिक उपलब्धि में सकारात्मक संबंध पाया गया।

जनसंख्या

बिलासपुर जिले के शासकीय एवं अशासकीय उच्चतर-माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत कुल बालिकायें।

न्यादर्श

शोधकर्ता द्वारा यादृच्छिक न्यादर्श विधि से कुल 300 बालिकाओं का चयन किया गया है। जिसका वितरण इस प्रकार है-

सारणी 1.1

क्र.	जिला	शासकीय उ.मा. विद्यालय की बालिकायें	अशासकीय उ.मा. विद्यालय की बालिकायें	कुल बालिकायें
1.	बिलासपुर	150	150	300

शोध प्रारूप

1. अध्ययन आदत

2 शालेय प्रकार- शासकीय एवं अशासकीय विद्यालय

उपकरण

प्रस्तुत शोध अध्ययन में बालिकाओं के अध्ययन आदत के मापन के लिए रानी एवं जैदका (2015) द्वारा निर्मित अध्ययन आदत मापनी का चयन किया गया है।

सांख्यिकीय विश्लेषण एवं निष्कर्ष

H1 शासकीय एवं अशासकीय विद्यालय की छात्राओं के अध्ययन आदत में सार्थक अंतर पाया जाएगा।

सारणी क्रमांक 1.1

सारणी 1.2

Independent Samples Test					
	t-test for Equality of Means				
	t	df	Sig. (2-tailed)	Mean	Std. Error
Study Habit Score	9.064	298	.000	11.367	1.254

सार्थकता स्तर 0.01

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि बालिकाओं के अध्ययन आदत का 't' मूल्य 9.064 है जो यह स्पष्ट कर रहा है कि शासकीय एवं अशासकीय विद्यालय की बालिकाओं की अध्ययन आदत में सार्थक अंतर पाया गया है अतएवं प्रथम परिकल्पना 0.01 सार्थकता स्तर पर सत्य सिद्ध होती है। इनके मध्यमानों तथा प्रमाणिक विचलन को निम्न सारणी एवं आरेख द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

सारणी 1.3 विद्यालय प्रकार एवं अध्ययन आदत स्कोर सारणी

	School Type	Statistic		
Study Habit	Government School Students	Mean	11110.85	
		95% Confidence Interval for Mean	Lower Bound	108.92
			Upper Bound	112.79
		Std. Deviation	12.010	
	Private School Students	Mean	122.22	
		95% Confidence Interval for Mean	Lower Bound	120.67
			Upper Bound	123.77
		Std. Deviation	9.555	

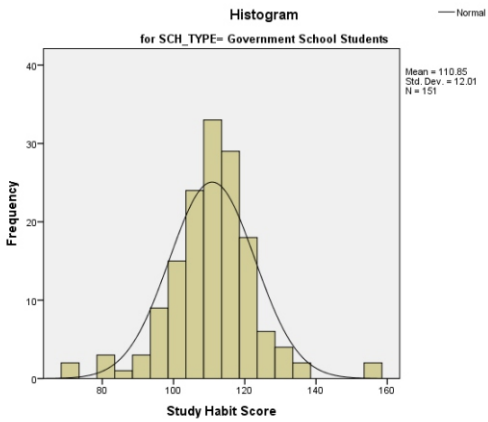

प्रस्तुत सारणी तथा आरेख के आधार पर यह स्पष्ट है कि शासकीय विद्यालय की बालिकाओं के अध्ययन आदत का मध्यमान 110.85 तथा प्रमाणिक विचलन 12.010 है। जबकि अशासकीय विद्यालय की बालिकाओं के अध्ययन आदत का मध्यमान 122.22 एवं प्रमाणिक विचलन 9.555 है।

अतएव शासकीय विद्यालय की बालिकाओं के अध्ययन आदत एवं अशासकीय विद्यालय की बालिकाओं के अध्ययन आदत में अंतर प्रदर्शित हो रहा है। इसका तात्पर्य है कि अशासकीय विद्यालय की अध्ययनरत छात्राएँ शासकीय विद्यालय की अध्ययनरत छात्राओं की अपेक्षा बेहतर अध्ययन आदत का प्रदर्शन कर रही हैं।

विवेचना एवं निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध कार्य में आंकड़ों के विश्लेषण से निम्नलिखित निष्कर्ष की प्राप्ति हुई है कि अशासकीय विद्यालय में अध्ययनरत छात्राओं की अध्ययन आदत शासकीय विद्यालय की छात्राओं के अध्ययन आदत से बेहतर पायी गयी है।

इसका कारण है कि वर्तमान समय में शासकीय विद्यालय में सामान्यतः आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग की छात्राएँ अध्ययन करती हैं जिनके माता-पिता स्वयं ही अशिक्षित या अल्प शिक्षित होते हैं। शिक्षा का प्रभाव बालिका के भावी जीवन पर क्या पड़ेगा ? इससे अनभिज्ञ वह वर्तमान को देखते हुए उनके छोटे भाई-बहनों की जिम्मेदारी उनके ऊपर डालना ज्यादा उचित समझते हैं। इसलिए वह उनकी शिक्षा पर ध्यान नहीं देते हैं। साथ ही शासकीय विद्यालयों में कही संसाधनों का अभाव है तो कहीं शिक्षकों का, किन्तु इसके विपरीत कुछ शासकीय विद्यालयों में दोनों की उपलब्धता है तो छात्राओं की अध्ययन में रूचि नहीं है या अपनी घरेलू परिस्थितियों के कारण वे अपनी अध्ययन आदतों को सही रूप से विकसित नहीं कर पायी हैं।

इसके विपरीत अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं के अभिभावक स्वयं भी शिक्षित रहते हैं जिससे वह शिक्षा का महत्व समझते हैं और अपने पुत्र के समान पुत्री को भी शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रेरित करते हैं। यही कारण है कि उनकी अध्ययन आदत बेहतर प्रदर्शित हो रही है। दिनेश (2003), नगप्पा एवं वेंकटेश (1995) ने भी अपने अध्ययन में पाया है कि अशासकीय विद्यालय के विद्यार्थियों की अध्ययन आदत शासकीय विद्यालय के विद्यार्थियों से अच्छी होती है।

संदर्भ सूची

अलूडे एवं ऑननेमहेमहेन (2001). इफ़ेक्ट ऑफ़ स्टडी हैबिट काउंसलिंग ऑन द अकादमिक परफॉरमेंस ऑफ़ सेकेंडरी स्कूल स्टूडेंट्स इन इंग्लिश लैंग्वेज. J. Edu. Res. Ext, 38 (3) : 17 – 26।

सादिया, बी. (2005). ए स्टडी ऑफ़ द फैक्टर्स अफेक्टिंग द परफॉरमेंस ऑफ़ द स्टूडेंट्स इन गवर्नमेंट सेकेंडरी स्कूल्स फॉर गर्ल्स इन रावलपिंडी सिटी. अप्रकाशित लघु शोध प्रबंध, एम.ए. इंग्लिश, फैकल्टी ऑफ़ एजुकेशन, इंटरनेशनल इस्लामिक यूनिवर्सिटी, इस्लामाबाद।

नागप्पा, पी.एस. & वेंकटैया, एन. (1995). ए स्टडी हैबिट ऑफ़ सेकेंडरी स्कूल स्टूडेंट्स ऑफ़ मैसूर सिटी. Buch, M,B. Sixth Survey of Education NCERT।

ठक्कर, पी.डी. (2003). स्टडी ऑफ़ अकादमिक अचीवमेंट, एडजस्टमेंट एंड स्टडी हैबिट्स ऑफ़ रूरल and अर्बन स्टूडेंट्स, पी-एच.डी. एजुकेशन, मुंबई विश्वविद्यालय।

सूद, सुजाता. (2006). अकादमिक परफॉरमेंस इन रिलेशन टू सेल्फ हैंडीकैपिंग, टेस्ट अनुइटी एंड स्टडी हैबिट्स ऑफ़ हाई स्कूल चिल्ड्रेन. Psy, Study, Vol. 51 (4), pp. 304।

सिद्दीकी, एम.ए. एवं फातिमा, तब्बसुम. (2014). स्टडी ऑफ़ अकादमिक अचीवमेंट इन रिलेशन टू स्टडी हैबिट्स एंड अचीवमेंट मोटिवेशन अमोंग मुस्लिम एंड नॉन-मुस्लिम एडोलैसैंट्स. PARIPE - Indian Journal of Research, 3 (4), 66 – 69।

नदीम, एन.ए. अहमद, जे., & अहमद, एस. (2014). स्टडी हैबिट्स एंड अकादमिक अचीवमेंट ऑफ़ कश्मीरी एंड लद्दाखी एडोलसेंट गर्ल्स: ए कम्पेरेटिव स्टडी. Turkish online journal of distance education, vol. 15 (2) 91-95।

आयोडेल, सी.एस., & अडेबियी, डी.आर. (2013). स्टडी हैबिट्स as इन्फ्लुएंस ऑफ़ अकादमिक परफॉरमेंस ऑफ़ स्टूडेंट नर्सेज ऑफ़ बैंक्वेट स्टेट यूनिवर्सिटी. International Journal of Nursing Science, 5 (2), 60-65।

बशीर, आइ. & मट्टू, एन. एच. (2012). ए स्टडी ऑफ़ स्टडी हैबिट्स and अकादमिक परफॉरमेंस अमोंग एडोलसेंट (14-19) इयर्स. international Journal of Social Science Tomorrow 1(5), 1-8।

बाला, एस. (2016). सोशल कॉम्पीटेंस, स्टडी हैबिट्स एंड अकादमिक अचीवमेंट ऑफ़ सेकेंडरी स्टूडेंट्स इन रिलेशन टू पीयर प्रेशर एंड home एनवायरनमेंट. शोध पप्रबंध, हिन्दू कॉलेज ऑफ़ एजुकेशन, सोनीपत।

तेलु, एच.इ.एस. & ओपुतु, इ.ए.एफ. (2013). इन्फ्लुएंस ऑफ़ होम ऑन स्टडी हैबिट्स ऑफ़ सेकेंडरी स्कूल स्टूडेंट्स इन कोलो-क्रीक डेवलपमेंट सेण्टर ऑफ़ बयेलसा स्टेट. Nigeria International Journal of Secondary Education, 2013; 1(5) : 39-44।

सियाही, इ.एस. & मेयो, जे.के. (2015). स्टडी ऑफ़ रिलेशनशिप बिटवीन स्टडी हैबिट्स एंड अकादमिक अचीवमेंट ऑफ़ स्टूडेंट्स: ए केस ऑफ़ स्पिसर हायर सेकेंडरी स्कूल, इंडिया. International Journal of Educational Administration and policy Studies, vol. 7(7) P.P. 134 – 141 .

शर्मा, जी. & व्यास, सी. (2016). ए रिव्यू ऑन स्टडी हैबिट्स ऑफ़ स्कूल गोइंग चिल्ड्रेन इन रिलेशन टू

देयर अकादमिक अचीवमेंट. International Jounal of Scientific Research in Scicnce and Technology, Sep to Oct, 2016 (2) 5: 116 – 171।

कुमार, एस. & सोही, ए. (2013). स्टडी हैबिट्स ऑफ़ टेंथ ग्रेड स्टूडेंट्स इन रिलेशन टू देयर अकादमिक अचीवमेंट. PARIPEX – Indian Journal of Research, 2 (12), 58 – 60।

दिनेश (2003). स्टडी हैबिट्स ऑफ़ साइंस, आर्ट्स एंड कॉमर्स स्टूडेंट्स एट डिफरेंट लेवेल्स ऑफ़ इंटेलीजेंस. एम.एड. लघु शोध प्रबंध, पंजाब यूनिवर्सिटी, चंडीगढ़।

Baland, D (1995) An investigation into study habits, reading interest, in attitude towards teaching and their bearing upon achievement, British journal of Educational Psychology.

स्वामी विवेकानन्द का समाजवादी दर्शन

डॉ. अम्बुजेश कुमार मिश्र*

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य "स्वामी विवेकानन्द का समाजवादी दर्शन" का विशद् विश्लेषण प्रस्तुत करना है। स्वामी विवेकानन्द अद्वैत वेदान्त के महान प्रतिपादक थे। वह ब्रह्मज्ञानी और जीवन्मुक्त महात्मा होने के बावजूद भी शक्ति की पूजा करते थे, उनका पूर्ण विश्वास था कि यही मातृशक्ति उनके जीवन को परिचालित कर रही हैं। विश्व उन्हें एक ऐसे व्यक्ति के रूप में जानता है जिसने अपनी प्रचण्ड इच्छाशक्ति को भारत के पुनरुद्धार के कार्य में लगा दिया था। उनकी प्रतिभा सर्वतोन्मुखी थी, उनका मन देश के जीवन में व्याप्त सामाजिक, आर्थिक तथा नैतिक बुराइयों को देखकर दुःखी हो जाता था। उन्होंने सन्यास एवं समाजसेवा दोनों का उपदेश दिया। विवेकानन्द ने भारत के सामाजिक तथा राजनीतिक पतन के कारणों का अन्वेषण किया और सामाजिक विषमताओं के उन्मूलन के उपाय बतलाये। एक सिद्धान्तकार के नाते उन्होंने एशियाई तथा यूरोपीय संस्कृतियों की आत्माओं के बीच विभेद किया। उन्होंने पीड़ित जनता को अभयम एकता तथा शक्ति का क्रांतिकारी सन्देश दिया। वह उन वर्गगत तथा जातिगत श्रेष्ठता के विचारों तथा अत्याचार का उन्मूलन करना चाहते थे जिन्होंने हिन्दू समाज को शिथिल स्तरबद्ध तथा विघटित कर दिया था। वह कुछ सीमा तक एक समाज सुधारक थे, किन्तु यह सत्य है कि वह अतीत से पूर्णतः संबन्ध विच्छेद करने के पक्ष में नहीं थे। फिर भी स्पष्ट है कि वह सामाजिक सहयोग तथा पारस्परिकता के समर्थक थे।

बीज शब्द: समाजवादी दर्शन, अद्वैत, तत्वशास्त्र, सामाजिक सहयोग, पारस्परिकता

परिचय

समाजवाद एक निरन्तर परिवर्तित तथा प्रगतिशील विचारधारा होने के कारण राजनीतिक चिन्तन के क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आज का युग समाजवाद का युग कहलाता है। समाजवादी विचारधारा केवल एक राजनीतिक दर्शन ही नहीं अपितु जीवन का एक माध्यम बन गयी है जिसके कारण व्यक्ति अपने को समाजवादी कहने में अपनी महत्ता समझता है। यह आधुनिक युग की एक विचारधारा, व्यवस्था, आन्दोलन, जीवन-दर्शन अथवा वह सभी कुछ है जिसका उद्देश्य समाज का पुनर्गठन इस प्रकार से करना है जिसमें व्यक्ति-व्यक्ति के मध्य जीवन के विविध क्षेत्रों में अधिकाधिक समानता विद्यमान रहे और मानव का किसी भी रूप में शोषण सम्भव न हो (त्रिपाठी, 2017)।

समाजवाद की व्यापक लोकप्रियता के बावजूद इसकी एक सर्वसम्मत परिभाषा उपलब्ध नहीं है। इसकी अत्यधिक लोकप्रियता ही इसकी अतिशय अस्पष्टता का हेतु बन गई है। सी.ई.एम. जोड के अनुसार, "अब समाजवाद ऐसे टोप के समान है जिसकी आकृति नष्ट हो गई है, क्योंकि हर कोई इसे धारण करता है (त्रिपाठी, 2012)। इस विचारधारा के अनेक स्वरूप विद्यमान हैं। अपनी प्रकृति व विशेषताओं में

*सहायक प्राध्यापक (अतिथि संकाय), राजनीति विज्ञान विभाग, जीवछ कालेज, मोतीपुर, मुजफ्फरपुर।

गम्भीर भिन्नताओं के बावजूद वह सभी जिस एक बात पर सहमत हैं वह है समानता। समाजवाद का केन्द्रीय विचार है-"एक समानता युक्त वर्ग विहिन समाज की स्थापना हो, जिसमें निम्न वर्ग उच्च वर्ग के शोषण का शिकार न बनें (चतुर्वेदी, & चतुर्वेदी, 2006)।

विवेकानन्द समाजवादी विचारकों में विशेषतः क्रोपॉटकिन से एक सीमा तक प्रभावित थे। विवेकानन्द ने "मैं समाजवादी हूँ" शीर्षक एक पुस्तक भी लिखी, किन्तु यह कहा जाता है कि वह आधुनिक समाजवादी विचारकों की सांचे एवं श्रेणी के समाजवादी नहीं थे, न तो उन्होंने समाजवाद से सम्बन्धित किसी विशिष्ट सिद्धान्त की रचना का प्रयास किया और न ही पूर्व में प्रचलित किसी विशिष्ट समाजवादी सिद्धान्त में आदर्श व्यवस्था की थी। उन्होंने लिखा था -"मैं समाजवादी हूँ इसलिये नहीं कि इसे पूर्णतया निर्दोष व्यवस्था मानता हूँ, बल्कि इसलिये कि रोटी न मिलने से आधी रोटी ही अच्छी है (Complete works of swami Vivekananda, 1939)। इस कष्टमय संसार में प्रत्येक व्यक्ति को कभी न कभी तो सुख प्राप्त होना चाहिए।

विवेकानन्द ने समाज को व्यक्ति से ऊपर स्थान दिया। वह मानव मात्र की समानता में विश्वास करते थे तथा श्रमिकों एवं निम्न वर्गों के प्रति उनके मन में गहरी सहानुभूति और संवेदना थी। वह वर्ग विशेष के विशेषाधिकार की आलोचना तथा अवसर की समानता की वकालत करते थे तथा किसी भी प्रकार के उत्पीड़न व शोषण की निन्दा करते थे। वह प्रथम भारतीय विचारक थे जिन्होंने भारतीय इतिहास की समाजशास्त्रीय दृष्टि से यथार्थवादी व्याख्या की तथा राजनीतिक उथल-पुथल के प्रलयकारी विप्लवों के मूल में सामाजिक संघर्षो का निरन्तर सूत्र ढूंढ निकाला (विवेकानंद, 1939)। उन्होंने भारतीय समाज की जो व्याख्या की वह स्वरूप में अंशतः मार्क्सवादी भी है परन्तु अपने ढंग का मार्क्सवादी है। उनके अनुसार प्राचीन भारत में राजशक्ति और ब्रह्म शक्ति के बीच संघर्ष चला करता था। बौद्ध धर्म क्षत्रियों का विद्रोह था। उसके कारण पुरोहितों की शक्ति का ह्रास और राजशक्ति का उत्कर्ष हुआ। कालान्तर में कुमारिल, शंकर और रामानुज ने पुराहितों के शक्ति के उत्कर्ष का प्रयत्न किया। उदरम्भरि ब्राह्मण पुरोहितों ने मध्ययुगीन राजपूती समान्तवाद से मेल करके अपनी शक्ति को कायम रखने की कोशिश भी की, किन्तु मुस्लिम शक्ति के प्रगति के कारण पुरोहित वर्ग के उत्कर्ष की सम्पूर्ण उम्मीदें ध्वस्त हो गयीं और वह ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत ही अपनी शक्ति के पुनरूत्थान का स्वप्न देख सकते थे। भारतीय इतिहास की यह समाजशास्त्रीय व्याख्या अंशतः मार्क्सवादी है और अंशतः विल्फ्रेडो परेटो के सिद्धान्त से मिलती-जुलती है। यह मार्क्सवादी इस अर्थ में है कि ब्राह्मण तथा क्षत्रिय निरन्तर जनता के शोषण में लगे रहे। पैरेटो की धारणा इस अर्थ में कि उन्होंने शोषक वर्गों के बीच संघर्ष की धारणा का प्रतिपादन किया। इसी प्रकार विवेकानन्द के अनुसार भारतीय इतिहास में दो सामाजिक प्रवृत्तियाँ रही हैं प्रथम, ब्राह्मण और क्षत्रियों में निरन्तर संघर्ष की प्रवृत्ति द्वितीय, धार्मिक क्रियाओं द्वारा ब्राह्मणों ने तथा तलवार के बल पर क्षत्रियों ने निरन्तर जनता का शोषण किया (वर्मा, 2015)।

विवेकानन्द ने भारत के सामाजिक एवं राजनैतिक पतन के कारणों का अन्वेषण किया और सामाजिक विषमताओं के उन्मूलन के उपाय बतलाये। विश्व उन्हें एक वेदान्ती के रूप में जानता है। भारत में उन्हें एक प्रचण्ड बौद्धिक तथा नैतिक पथ-प्रदर्शक के रूप में भी समझना चाहिए (दत्ता, 1954)। एक सिद्धान्तकार के रूप में उन्होंने एशियाई तथा यूरोपीय संस्कृतियों की आत्माओं के बीच भेद किया। एशिया के महान देशों ने ईश्वर के प्रभुत्व तथा उसके शाश्वत नियमों को अधिक महत्व दिया है। यूरोप ने यंत्रशास्त्र, वाणिज्य, नागरिक शास्त्र, अर्थशास्त्र तथा राजनैतिक सफलताओं का गुणगान किया है। उन्होंने कहा था

"यदि यूरोप जो कि भौतिक शक्ति की अभिव्यक्ति है अपनी स्थिति को परिवर्तित नहीं करता और आध्यात्मिक को अपने जीवन का आधार नहीं बनाता तो वह पचास वर्ष के भीतर ध्वस्त हो जायेगा (विवेकानंद, & निर्वेदानंद, 1946)। उनका कहना है कि एशिया की पुकार धर्म की है, यूरोप की पुकार विज्ञान की पुकार है।

विवेकानन्द को रहस्यमय चीजों की अच्छी मनोवैज्ञानिक जानकारी थी किन्तु इसके साथ वह देशभक्त भी थे और कष्ट पीड़ित जनता की दुर्दशा को देखकर अत्यधिक व्यथित होते थे। हृदय से वह विद्रोही थे, इसीलिये उन्होंने साहसपूर्वक यह घोषणा की कि जातिगत भेदभाव ब्राह्मणों के आविष्कार हैं। वह चाहते थे कि सभी को विकास का समान अवसर मिलना ही चाहिए। वह वर्गगत तथा जातिगत श्रेष्ठता के विचारों एवं अत्याचार का उन्मूलन करना चाहते थे। अतः उन्होंने वर्ण विभाजन को बुद्धिसंगत सिद्ध करने का प्रयत्न किया। जिस प्रकार हर व्यक्ति में सत्व, रजस और तमस में कोई न कोई गुण न्यूनाधिक मात्रा में विद्यमान रहता है उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति में उन गुणों में से कोई न कोई न्यूनाधिक मात्रा में पाया जाता है जिनसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र बनते हैं। किन्तु कभी-कभी उसमें इनमें से किसी एक गुण का विभिन्न अंशों में प्रधान्य रहता है, उसके अनुसार उसकी अभिव्यक्ति होती है। जाति का उन्मूलन आवश्यक नहीं है बल्कि उसे परिस्थितियों के अनुकूल बना लेना चाहिए (विवेकानंद, 1939)। परम्परागत व्यवस्थाओं में इतना जीवन है कि उनमें से दो सौ नवीन व्यवस्थाओं का सृजन किया जा सकता है। जाति व्यवस्था की उन्मूलन की कामना करना कोरी बकवास है। जाति अच्छी चीज है। जीवन की समस्याओं को हल करने का वही एकमात्र साधन है। मनुष्यों के लिये समूह बनाना स्वभाविक है, तुम उससे बच नहीं सकते। तुम जहाँ कहीं भी जाओगे वहीं तुम्हें जाति देखने को मिलेगी" (विवेकानंद, 1946)।

विवेकानन्द जी ने समाज का चार वर्णों में विभाजन आदर्श समाज व्यवस्था का द्योतक माना। यदि इन चार तत्वों का समन्वय हो जाये तो वह समाज के लिये आदर्श स्थिति होगी क्योंकि हर समाज के लिये ज्ञान (ब्राह्मण), रक्षा (क्षत्रिय) आर्थिक क्रियाकलाप (वैश्य) तथा समानता (शूद्र) निश्चित ही वांछनीय है। अतः उन्होंने जातीय / वर्गीय विशेषाधिकार के विरुद्ध आवाज उठाई।

समाज सुधारक के रूप में विवेकानन्द में दो प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं। जिस समय वह बहुत ही प्रबुद्ध और अनुप्रेरित होते उस समय वह जाति व्यवस्था के उन्मूलन की बात करते थे किन्तु अन्य अवसरों पर जबकि वह परम्परावादी श्रोताओं के समक्ष बोलते तो समाज के अवयवी विकास के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते थे। अतः स्पष्ट है कि अधिक उग्र होने के बावजूद वह सामाजिक सहयोग तथा पारस्परिकता के समर्थक थे। उन्होंने • व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा गरिमा के प्रति आस्था रखते हुए भी समुदाय के हितों के लिये व्यक्ति के त्याग व समर्पण की आकांक्षा रखने की बात की है तथा समाज को 'समग्र' एवं • व्यक्ति को उसके अंग के रूप में स्वीकार किया है। उन्होंने माना कि सामाजिक प्रगति तभी सम्भव है जबकि उसके घटक कुछ बलिदान करें, क्योंकि त्याग व बलिदान के अभाव में सृष्टि के कल्याण की कामना नहीं की जा सकती, व्यक्तियों द्वारा आत्मत्याग अनिवार्य है, इसी में इसकी मनुष्यता छिपी है। मानवीय कार्यों का अन्तिम लक्ष्य सामूहिक सुख होना चाहिए न कि व्यक्तिगत सुख।

विवेकानन्द का मत था कि प्रत्येक व्यक्ति में ईश्वर का अंश विद्यमान है अतः कोई छोटा या बड़ा नहीं हो सकता -"सभी प्राणी ब्रह्म स्वरूप हैं, प्रत्येक आत्मा मानो मेघ से ढंका हुआ सूर्य, यदि उनमें अन्तर है तो बस इतना कि कहीं पर मेघ का आवरण घना है तो कहीं पर पतला।" उन्होंने यह भी सन्देश दिया कि दरिद्रों की सेवा को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए। तुमने पढ़ा है, "मातृदेवी मनु पितृ देवो भव" मैं

कहता हूँ -"दरिद्र देवो भवः, मूर्ख देवो भवः।" अतः अमीर-गरीब के भेद को ठुकराकर दलितों एवं दरिद्रों को सीने से लगाने का सन्देश दिया। उनके मन में इनके प्रति गहन पीड़ा एवं संवदेना थी अतः वह आजीवन इनकी दशा में सुधार तथा उत्थान के लिये समर्पित रहे। उन्होंने इनके उत्थान को ही धर्म की सार्थकता का मापदण्ड माना तथा कहा -"जो धर्म, जो ईश्वर विधवाओं के आँसू नहीं पोंछ सकता, अनाथों को रोटी का टुकड़ा नहीं दे सकता, उस धर्म एवं ईश्वर में मैं विश्वास नहीं करता।" क्योंकि धर्म यही सिखाता है कि प्रत्येक प्राणी स्वयं तुम्हारी आत्मा का अनेकों रूपों में विकास है।

विवेकानन्द को दो अर्थों में समाजवादी कहा जा सकता है प्रथम, इसलिये कि उनमें यह समझने की ऐतिहासिक दृष्टि थी कि भारतीय इतिहास में दो उच्च जातियों - ब्राह्मण तथा क्षत्रियों का प्रभुत्व रहा है। प्राचीन भारत में ब्राह्मण तथा क्षत्रियों का प्रभुत्व रहा है। प्राचीन भारत में ब्राह्मण धर्म सत्ता एवं क्षत्रिय राज सत्ता के प्रतीक रहे। इन दोनों सत्ताओं ने परस्पर सहयोग एवं समर्थन द्वारा मिलकर दलित एवं अन्य वर्गों का शोषण भी किया। क्षत्रियों ने गरीब जनता का आर्थिक तथा राजनीतिक शोषण किया और ब्राह्मणों ने उसे नवीन तथा जटिल क्रियाकलाप और अनुष्ठानों के बंधन में जकड़ कर रखा। विवेकानन्द ने इस धर्मगत और जातिगत उत्पीड़न एवं शोषण की निन्दा की और इसे समाप्त करने के लिये भारतीय जनता का आह्वान किया। आत्मा एवं ब्रह्म में आस्था रखने के कारण मनुष्यों के बीच सामाजिक बन्धनों को अस्वीकार किया तथा कहा कि वास्तविक आध्यात्मिक आत्माओं के बीच किसी प्रकार की श्रेष्ठता और ऊँच-नीच की दीवार खड़ी करना पाप है। ‘‘हमारा राष्ट्र झोंपड़ियों में बसता है। राष्ट्र का गौरव महलों से सुरक्षित नहीं रह सकता। झोंपड़ियों की दशा भी सुधारनी होगी। यदि गरीबों और शूद्रों को दीन-हीन रखा गया तो देश और समाज का कोई कल्याण नहीं हो सकता।" द्वितीय, इसलिये कि उन्होंने देश के सभी निवासियों के लिये समान अवसर' के सिद्धान्त का समर्थन किया। उन्होंने लिखा कि - "यदि प्रकृति में असमानता है तो भी सबके लिये समान अवसर होना चाहिए अथवा यदि कुछ को अधिक और कुछ को कम अवसर दिया जाय तो दुर्बलों को सबलों से अधिक अवसर दिया जाना चाहिए, क्योंकि जिसको प्रकृति ने जन्म से सूक्ष्म बुद्धि नहीं दी है उसे अधिक सहायता दी जानी चाहिए।" यह सिद्धान्त हमें लोकतांत्रिक समाजवाद के विभिन्न सम्प्रदायों में प्रतिपादित अवसर की समानता की धारणाओं का स्मरण दिलाता है।

विवेकानन्द को जनसाधारण की शक्ति में असीम विश्वास था। वह इस बात को समझ चुके थे कि जनता में जागृति का संचार किये बिना समाज में फैली हुई असमानता एवं अमीरों द्वारा गरीबों के शोषण को समाप्त करना सम्भव नहीं होगा। उन्होंने निष्ठुर पूँजीपतियों एवं शासक समुदाय को जन सामान्य की प्रचण्ड शक्ति का बोध कराते हुए चेतावनी दी कि "जब जन साधारण जागेगा तो वह तुम्हारे किये हुए दमन को समझ जायेगा और उसकी एक फूँक तुमको पूरी तरह उड़ा देगी।" उनको यह विश्वास था कि नये भारत का निर्माण मजदूरों और मेहनतकश जनता की सक्रिय भागीदारी द्वारा ही किया जा सकता है।

परन्तु विवेकानन्द पश्चिम के समाजवाद तथा अराजकतावाद के आदर्शों की कमजोरियों को समझते थे। वह समाजवाद के लक्ष्य को प्राप्त करने को तैयार नहीं थे। मार्क्स की व्यवस्था के औद्योगिकी तथा अर्थतन्त्र जो कि सामाजिक व्यवस्था का निचला ढाँचा है, राजनीति के ऊपरी ढाँचे की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण है। एक अर्थ में उन्हें राजनीतिक परिस्थितियों का निर्णायक माना जाता है (वर्मा, 1995)। मार्क्स पूँजी के महत्व को भली-भाँति समझता था किन्तु विवेकानन्द सन्यासी थे और उनका लक्ष्य काम और कंचन पर विजय प्राप्त करना था अतः उन्होंने पूँजी को महत्व नहीं दिया। किन्तु पश्चिम से लौटने के पश्चात् वह सामाजिक संगठन के महत्व को समझने लगे और कहा करते थे कि यदि मैं तीस करोड़

रूपया एकत्र कर सकूँ तो भारतीय जनता का उद्धार किया जा सकता है। भौतिकवादी पश्चिम के अनुभवों ने इस निर्विकल्प समाधि के साधक के समक्ष भी भुखमरी और दरिद्रता को जीतने की माँग के महत्व को स्पष्ट कर दिया। उन्होंने यहाँ तक लिखा कि - "मुझे उस ईश्वर में विश्वास नहीं है जो मुझे यहाँ रोटी नहीं दे सकता और स्वर्ग में शाश्वत आनन्द देता है, मुझे भारत को उठाना है, गरीबों को भोजन देना है, शिक्षा का प्रसार एंव पोपलीला का तथा सामाजिक अत्याचार का नाश करना है, प्रत्येक को अधिक रोटी एवं अधिक अवसर प्राप्त हो" (विवेकानंद, 1939)।

मार्क्स कहता है कि पूँजीवादी समाज में पूँजीपति (बुर्जुआ) और मजदूर (श्रमिक या सर्वहारा) जैसे दो वर्गों का निर्माण करते हैं" (जौहरी, 2019)। मार्क्स विशेष रूप में सर्वहारा वर्ग के साथ सम्बन्ध स्थापित करते हुए आने वाली सामाजिक क्रांति की सफलता के लिये सर्वहारा के संगठित दल की आवश्यकता पर बल देता है। उसके दर्शन में घृणा, ईर्ष्या व तिरस्कार की प्रधानता मिलती है क्योंकि पूँजीवाद को वर्ग संघर्ष जैसे हिंसात्मक साधनों से नष्ट करना चाहता है। वह कहता है कि अब तक के सभी समाजों का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास रहा है (आशीर्वादम, & मिश्र, 2000)। वह मनुष्य की मनोवृत्तिमूलक और सांस्कृतिक समस्याओं को ढूंढने का प्रयत्न नहीं करता। इसके विपरीत विवेकानन्द भारत के सामाजिक उद्धार के लिये ध्येयनिष्ठ त्यागी कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करना चाहते थे। विवेकानन्द के वेदान्ती समाजवाद' तथा मार्क्सवाद में आधारभूत अन्तर यह है कि यद्यपि विवेकानन्द ने समाज के सुधार पर बल दिया, किन्तु उनका इस बात पर और भी अधिक बल था कि मनुष्य की आत्मा वसुधातल से आरोहण कर स्वर्णिम देवत्व को प्राप्त कर ले। विवेकानन्द के समाजवादी दर्शन का मूल आध्यात्मिकता है तथा उसमें चरित्र की शुद्धता और भ्रातृत्व पर अत्यधिक बल दिया गया है। इस प्रकार वह न्याय प्रेम तथा सार्वभौम करूणा के शाश्वत सन्देश का ही पुनः प्रतिपादन है। विगत दो विश्व युद्धों के परिणामस्वरूप मानव को यह आभास होता जा रहा है कि भौतिकवादी समाजवाद, प्राकृतिक आचारनीति तथा संशयवादी तत्वशास्त्र निरर्थक हैं। विवेकानन्द के सामाजिक निष्कर्ष अनेकों सन्तों और ऋषियों के शाश्वत आध्यात्मिक अनुभवों पर आधारित हैं। उन्होंने अवयवी विकास, राष्ट्रीय उन्नति तथा मानसिक और आध्यात्मिक स्वतंत्रता पर बल दिया। उन्होंने कहा मेरा विश्वास है कि इस समय समन्वय प्रतिपादक व्यापक सामाजिक और राजनीतिक दर्शन की आवश्यकता है (वर्मा, 1954)।

विवेकानन्द यथार्थवादी विचारक थे। यद्यपि उन्होंने जीवन का बड़ा भाग दार्शनिक अन्वेषण में लगाया था और इसके द्वारा अर्जित ज्ञान चिन्तन और आध्यात्मिक अनुभूति का वह सर्वत्र प्रसार करना चाहते थे। वह पूर्व की आध्यात्मिक और सांस्कृतिक कुशलता के समर्थक थे, तो पश्चिमी ज्ञानिकता, उनात्मक कुशलता व समाज सेवा की भावना के प्रशंसक थे और उन्होंने इन दोनों बातों का समिश्रण प्रस्तुत किया, जिसने आधुनिक भारत के समाज सुधारकों और राजनीतिक नेताओं को प्रभावित किया। उन्होंने जाति व्यवस्था में आ चुकी वर्तमान विकृतियों की अनियन्त्रित शब्दों की निन्दा की और ब्राह्मणों एवं पुराहितों को सामाजिक विषमता एवं उत्पीड़न के लिये उत्तरदायी ठहराया, किन्तु जाति-व्यवस्था एवं वर्ण-व्यवस्था के मूल रूप की प्रशंसा की। उसके निर्माण के आधार को तार्किक व उपयोगी सिद्ध किया व उसी मूल, जाति व वर्ण व्यवस्था को पुनः अपनाने की इच्छा दर्शायी।

• भारतीय समाज की दुर्दशा को देखते हुए अस्पृश्यता जो समाज के एक बड़े वर्ग को हीन भावना से ग्रसित कर समाज के लिये अनुपयोगी बना देती है, रूढ़िवादिता व कूपमंडूकता जो समाज को प्रगति की नवीन

दिशाओं में जाने से रोकती है और दूसरे के अनुभवों का लाभ उठाने से वंचित करती है, पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण की भावना जिसने व्यक्तियों को शक्तिहीन बना दिया, उच्चवर्गीय विशेषाधिकार व उनकी दमनकारी भावनाएँ जिन्होंने बहुसंख्यक जनता का इतना तिरस्कार व शोषण किया कि उनमें शारीरिक व मानसिक दुर्बलताओं के साथ-साथ हीन भावना उत्पन्न हो गयी। विवेकानन्द ने बाल-विवाह, भिक्षावृत्ति दरिद्रों व दलितों की उपेक्षा को भी सामाजिक प्रगति में बाधक बताया। उन्होंने अपने कार्यों व व्यवहार के द्वारा यथासम्भव इसे दूर करने का प्रयास भी किया। उन्होंने समाज के पतन के इन कारणों को दूर करने के लिये शिक्षा को सर्वाधिक उपयोगी कारक माना और कहा कि यदि प्रत्येक व्यक्ति शिक्षित हो जाये तो वह समस्त बुराईयों को समझने व उन्हें दूर करने का सामर्थ्य स्वयं ही प्राप्त कर लेगा। उन्होंने कूपमंडूकता की वृत्ति का त्याग करके खुली आँखों से दुनिया को देखने को कहा जिससे कि दूसरी सामाजिक व्यवस्थाओं से कुछ सीखा जा सके। सामाजिक विषमता को दूर करने के लिये उन्होंने जाति व्यवस्था एवं वर्ण-व्यवस्था को अपने मौलिक रूप में पुनः स्थापित करने की इच्छा प्रकट की। नारी दशा में सुधार हुए बिना समाज की दशा में सुधार नहीं हो सकता ऐसा वह मानते थे। उनका यह भी मानना था कि समाज के उत्थान के लिये आवश्यक है कि व्यक्ति अधिकारों के साथ-साथ कर्तव्यों पर भी बल दें और उनका पालन करें। विवेकानन्द ने यह आशा प्रकट की कि यदि व्यक्ति सत्य, प्रेम, सहानुभूति, धैर्य, कृतज्ञताज्ञापन और समाज सेवा के नैतिक मूल्यों को अपना लें तो समाज अवश्य ही प्रगति के सोपानों को सफलतापूर्वक प्राप्त कर लेगा।

निष्कर्ष

कहा जा सकता है कि विवेकानन्द ने अपने वेदान्ती समाजवाद में समाज-सुधार की जो परिकल्पना प्रस्तुत की वह वर्तमान परिदृश्य में भी निश्चित ही सभी शासन व्यवस्थाओं में सामाजिक न्याय की प्राप्ति का आधार है। यह सत्य है कि भौतिक जगत की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। पूँजीवादी शोषण का अन्त होना चाहिए। आर्थिक समानता के समाज का आदर्श बनाया जाना चाहिए। किन्तु आर्थिक सुरक्षा की प्राप्ति के उपरान्त विश्व की संस्कृति और उसकी आत्मा से अधिक पूर्ण विकास के लिये तथा मानव सम्बन्धों को अधिक समुचित रूप से नैतिक नींव पर स्थापित करने के लिये हमें वेदान्त की उन शिक्षाओं से प्रेरणा लेनी पड़ेगी जिनके आधुनिक प्रतिपादक स्वामी विवेकानन्द थे।

संदर्भ सूची

त्रिपाठी, श्रीप्रकाश मणि. (2017). *राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त*, दिल्ली: विक्टोरियस पब्लिसर्ज (इण्डिया) दिल्ली 2017. पृ. 225.

त्रिपाठी, श्रीप्रकाश मणि. (प2012). *प्रमुख राजनीतिक संकल्पनाएँ एवं विचारधाराएँ*, नई दिल्ली: राज पब्लिकेशन्स. पृ. 409.

चतुर्वेदी, मधुकर श्याम एवं चतुर्वेदी, इनाक्षी (2006). *भारतीय राजनीतिक विचारक*, जयपुर: कालेज बुक डिपो. पृ. 124.

The Complete Works of Swami Vivekananda (1939). जिल्द-4, अल्मोड़ा: अद्वैत आश्रम. 327-30, 395, 313.

The Complete Works of Swami Vivekananda (1939). जिल्द-6, अल्मोड़ा: अद्वैत आश्रम. पृ0 389.

वर्मा, विश्वनाथ प्रसाद (2015). *आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन*, आगरा: लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, पृ. 204.

Datta, Bhupendra Nath. (1954). *Swami Vivekananda Patriot-Prophet*, कैलकटा: नबभारत पब्लिशर्स. पृ. 335.

Vivekananda, Nirvedananda (1946). *Swami Vivekananda on India and her problems*, Almora: Advaita Ashrama. p.39, 129 (जिल्द 5).

Vivekananda, (1946). *India and Her Problems*, अल्मोड़ा: अद्वैत आश्रम, अल्मोड़ा. चतुर्थ संस्करण. पृ. 77-78 तथा 80.

वर्मा, वी०पी० (1995). *Critique of Marxian Sociology. The Calcutta Review*, मार्च – जून.

जौहरी, जे०सी० (2019). *राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त*. आगरा: एस०बी०पी०डी० पब्लिकेशन. पृ. 90.

आशीर्वादम्, एडी., मिश्र, कृष्णकान्त. (2000). *राजनीति विज्ञान*. नई दिल्ली: एस चन्द एण्ड कम्पनी लि०. पृ. 757.

Verma, Vishvanath Prasad. (1954). *Gandhi and Marx*. The Indian Journal of Political Science, June, 1954 and 'Marxism and Vedanta', the Vishvabharti Quarterly, 1954

पं. दीनदयाल उपाध्याय और अटल बिहारी वाजपेयी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. महेश कुमार सिंह*

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में पं. दीनदयाल उपाध्याय और अटल बिहारी वाजपेयी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि इस पुण्य धरा के लोकजीवन को नित नूतन दृष्टि एवं स्थिति प्रदत्त करने और युगान्तकारी ईश्वरीय गतिविधियों को पूर्णता प्रदान करने के लिए युगपुरुषों का आविर्भाव सतत होता रहा है जिन्होंने विषम परिस्थितियों में होने के बाद भी अपने विस्मयकारी विशिष्ट गुणों द्वारा ऐसे कार्यों को अन्तिम स्वरूप प्रदान करते हुए स्वयं अदृश्यता को प्राप्त हो गए जिसे सामान्यजन द्वारा अभिव्यक्त करना असम्भव सा प्रतीत होता है। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारतीय मनीषा के वैचारिक क्षितिज पर कुछ जाज्वल्यमान नक्षत्रों का आविर्भाव हुआ जिनके दिव्यतम एवं अलौकिक प्रकाश पुञ्ज से भारतीय धरा उपकृत, चमत्कृत एवं प्रकाशित हुई। उस समय विविधतापूर्ण व्यक्तित्व से परिपूर्ण व्यक्तियों का अवतरण हुआ जिनमें कतिपय ऐसे व्यक्तित्व हुए जो पश्चिमी दुनिया से प्रज्ञावान होकर वहाँ की भोगपूर्ण संस्कृति के प्रति आकर्षित होकर उत्सुकतापूर्वक कार्य किए। वहीं दूसरी तरफ कुछ ऐसे भी दिव्य आत्माओं का आविर्भाव हुआ जो पाश्चात्य वैभवपूर्ण भोगवादी संस्कृति से लेशमात्र प्रभावित हुए बिना भारतीय सनातन संस्कृति को दिव्यतम स्वरूप प्रदान करने हेतु उत्सुक हुए थे, जो पूर्णतः विश्वस्त थे कि स्वीधनता के अभाव के कारण भारतीय मनीषा को पूर्णतः विकसित नहीं होने दिया गया, वरन उसको विनष्ट करने की कुत्सित चेष्टा की गई।

आजीवन साधुता को प्रतिष्ठित करने हेतु संकल्पित साधुता से राजनीति के संचालनकर्ता एवं सिद्धान्तप्रदाता, विषम परिस्थितियों में भी दिव्यतम जीवनमूल्यों के संस्थापक श्रेष्ठ मानवीय गुणों के उद्घाटक एवं प्रसारक, गौरवपूर्ण भारतीय सनातन चिंतन परम्परा के सतत प्रवाहक, अखण्ड राष्ट्रवाद के आराधक बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न, महामनीषी ऋषितुल्य युगपुरुष एकात्म मानववाद के प्रणेता महामानव अधुनातन भारत के निर्माता, शिल्पी, जाज्वल्यमान् नक्षत्र पं. दीनदयाल उपाध्याय तथा भारत माता के सच्चे सपूत, पथ-प्रदर्शक, जनसंघ के संस्थापक सदस्य, पं. दीनदयाल उपाध्याय के उत्तराधिकारी, कवि हृदय, जन्मतः एवं कर्मतः कवि, ओजस्वी वक्ता, बहुमखी प्रतिभा के धनी, श्रेष्ठतम चिंतक, विचारक एवं लेखक, दयालु एवं भावुक श्रेष्ठ पत्रकार, भारतीय राजनीति के जाज्वल्यमान नक्षत्र, भारतीय जनता पार्टी के अध्यक्ष, शीर्षस्थ एवं वरिष्ठ नेता, लोकसभा प्रतिपक्ष के नेता, पूर्व विदेशमंत्री, पूर्व प्रधानमंत्री भारतरत्न अटल बिहारी वाजपेयी का अन्यतम स्थान है।

बीज शब्द : अलौकिक, जाज्वल्यमान, विस्मयकारी वैविध्यपूर्णता, अवतरण, वैभवपूर्ण

---

*शोधकर्ता, उत्तरी मोहद्दीपुर, मंतसेरी।

परिचय

भारत माता के श्री चरणों में जिन हुतात्माओं ने स्वविचार, स्वकर्म एवं स्वआचरण सहित स्वजीवन के सारपूर्णता का उपहार प्रदान किया उनमें माँ भारती के सच्चे सपूत द्वय पं. दीनदयाल उपाध्याय एवं अटल बिहारी वाजपेयी को अत्यन्त सम्माननीय और गौरवपूर्ण रूप में स्मरण किया जाता है। भारतीय सनातन संस्कृति के ध्वजवाहक द्वय भारतीयता, राष्ट्रीयता, मानवता, सहृदयता एवं उदारता के प्रतिमान, माँ भारती के अक्षर वैभव की वास्तविक पहचान एवं अखण्ड भारत के गौरवपूर्ण स्थिति के प्रबल आकांक्षी थे (जैन, 2017)।

आश्विन कृष्ण त्रयोदशी संवत् 1973 विक्रमी तद्नुसार 25 सितम्बर 1916 ई. को राजस्थान प्रांत के जयपुर-अजमेर रेलवे स्टेशन लाइन पर स्थित 'धनकिया' गांव में नाना चुन्नीलाल शुक्ल के यहाँ पं. दीनयाल उपाध्याय का जन्म हुआ था जो धनकिया रेलवे स्टेशन के स्टेशन मास्टर थे। बालक दीनदयाल के जन्म के समय इनकी माता अपने पिता के पास ही रह रही थीं, जहाँ इनका पालन-पोषण किया गया (ठेंगड़ी, 2014)। उनके पिता का नाम भगवती प्रसाद उपाध्याय तथा माता का नाम रामप्यारी था। इनके पिता उत्तर प्रदेश में जलेसर रोड पर स्थित रेलवे स्टेशन के स्टेशन मास्टर थे। इनका पैतृक गांव नंगला चन्द्रभान आगरा-मथुरा मार्ग पर अवस्थित था, जहाँ इन्हें रहने का संयोग कभी भी प्राप्त न हो सका। जबकि अटल बिहारी वाजपेयी का जन्म 25 दिसम्बर 1924 को मध्यप्रदेश के ग्वालियर जिले के शिंदे की छावनी वाले घर में उस वक्त हुआ जब पास के गिरिजाघरों में ईसामसीह के जन्मोत्सव पर घण्टों के स्वर एवं तोपों के गोलों की आवाज सम्पूर्ण परिवेश में गुञ्जायमान हो रही थी। ऐसी अनुभूति हो रही थी कि मानों बालक अटल के शुभागमन पर ये तोपें सलामी दे रही हों (शर्मा, 1997)। यद्यपि अटल जी के पितामह पं. श्यामलाल वाजपेयी उत्तर प्रदेश के आगरा जिले में स्थित गांव बटेश्वर' के निवासी थे। अतीत काल से ही बटेश्वर अपनी धार्मिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक धरोहर बटेश्वर महादेव मन्दिर हेतु ख्यातिलब्ध रहा है। ऐसा माना जाता है कि अतीत काल में इसी गांव बटेश्वर में 'वाजपेय यज्ञ' हुआ था जिससे घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में श्रेष्ठ बीस बिस्वा वाले वाजपेयी ब्राह्मण रहे हैं। इसी वाजपेय वंश में पं. काशी प्रसाद वाजपेयी का जन्म हुआ जो अपने सम्पूर्ण क्षेत्र में विज्ञता, मर्मज्ञता एवं विद्वता हेतु विख्यात थे। पं. काशी प्रसाद वाजपेयी अटल जी के प्रपितामह थे जिनकी दो सन्तानें - एक पुत्र एवं एक पुत्री थी। अपनी पुत्री के विवाह के कुछ समयोपरांत ही वह बैकुण्ठ धाम सिधार गये। उनके पुत्र पं. श्यामलाल वाजपेयी की उस समय अल्पायु अवस्था थी। अपने पिता की भाँति वह भी शिक्षाग्रहण करने हेतु बाबा विश्वनाथ की नगरी वाराणसी चले गए। वहाँ गुरुकुल में रहकर उन्होंने संस्कृत साहित्य का इतना गहन अध्ययन किया कि उन्हें बहुतायत से ग्रन्थ ही कण्ठस्थ हो गए (पोखरियाल, 2019)। अटल जी के पितामह पं. श्यामलाल वाजपेयी एक दूरदर्शी व्यक्ति थे। उनका स्वयं का जीवन तो पैतृक गांव बटेश्वर में गुजरा, किन्तु अपने सुपुत्र पं. कृष्ण बिहारी वाजपेयी को ग्वालियर में बसने हेतु परामर्श प्रदान किए। उन्होंने ऐसा इसलिए किया कि उन दिनों बटेश्वर गांव में आजीविका हेतु सुदृढ़ साधनों की उपलब्धता नहीं थी। अटल बिहारी वाजपेयी पं. कृष्ण बिहारी वाजपेयी और श्रीमती कृष्णा देवी की चौथी पुत्र संतान थे।

मृत्यु का प्रत्यक्षतः साक्षात्कार जीवित जनों में वैराग्य की आकांक्षा को उत्पन्न करती है। पं. दीनदयाल उपाध्याय को बाल्यावस्था से ही स्नेहिल स्वजनों की मृत्यु का प्रत्यक्ष साक्षात्कार हुआ। सर्वप्रथम पिता, माता, नाना, मामी, सहोदर अनुज, नानी, ममेरी बहन की मृत्यु के प्रत्यक्षतः साक्षात्कार ने दीनदयाल जी को अनुभवी बना दिया, उनकी चेतना इन मौतों से न तो कुम्हलाई, वरन् इससे तरूण

दीनदयाल धीर और गम्भीर बन गए। स्नेही जनों की मृत्यु ने उनके शिशु, बाल, किशोर एवं युवा मन पर जो निरन्तर कुठाराघात किए उनके चिर प्रशंसित वैराग्य जीवन में नियति नटी के इस क्रूर निदर्शन में कितना हाथ रहा, यह ज्ञात नहीं है। (शर्मा, 2015)।

पं. दीनदयाल उपाध्याय का सम्पूर्ण जीवन यायावरी का रहा। अपने आरम्भिक जीवन के मात्र ढाई वर्ष ही अपने पितृगृह पर रहने का उन्हें सौभाग्य प्राप्त हो सका, तदुपरांत उनके प्रवासी जीवन का आगाज हुआ। दीनदयाल जी आजीवन इसके बाद कभी भी पितृगृह पर वापस रहने हेतु नहीं आए। पारिवारिक कलह के बाद ही इनके पिता भगवती प्रसाद उपाध्याय ने इन्हें नाना चुन्नीलाल के पास धनकिया भेज दिया था। दीनदयाल जी की नौ वर्ष की आयु पूरी होने के बावजूद उनकी पढ़ाई की कोई व्यवस्था उपलब्ध न होने के कारण इस हेतु उन्हें गंगानगर मामा राधारमण शुक्ल के पास भेज दिया गया। उन्होंने गंगानगर में मामा के पास ही कक्षा चार तक की पढ़ाई पूर्ण की। अग्रेतर कक्षा की व्यवस्था यहाँ उपलब्ध न होने के कारण उन्हें कोटा जाना पड़ा, जहाँ सेल्फ सपोर्टिंग हाऊस' में तीन वर्ष तक रहकर उन्होंने पढ़ाई की। इसके बाद उन्हें कोटा से राजगढ़ (जिला-अलवर) आना पड़ा, जहाँ उनके मामा के चचेरे भाई नारायण शुक्ल स्टेशन मास्टर थे। उनके पास उन्होंने दो वर्ष तक रहकर पढ़ाई की। दो वर्ष बाद 1934 में चचेरे मामा नारायण शुक्ल का स्थानान्तरण सीकर हो गया, जहाँ एक वर्ष रहकर दीनदयाल जी हाईस्कूल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किए। वहाँ से इण्टरमीडिएट की शिक्षा हेतु पिलानी गए, जहाँ दो वर्ष रहकर 1936 में इण्टरमीडिएट की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किए। दीनदयाल जी उच्च शिक्षा हेतु कानपुर गए जहाँ स्नातक की उपाधि प्रथम श्रेणी में प्राप्त किए। परास्नातक की उपाधि हेतु वह आगरा जाकर राजा की मण्डी में किराए के मकान में दो वर्ष तक रहे। 1941 में 25 वर्ष की अवस्था में बी.टी. करने हेतु प्रयाग गए जहाँ सार्वजनिक जीवन में उनका प्रवेश हुआ और उन्होंने अपने अखण्ड प्रवासी जीवन का श्रीगणेश किया। (शर्मा, 2004)।

यद्यपि पं. दीनदयाल उपाध्याय अपने 25 वर्ष की आयु तक राजस्थान एवं उत्तर प्रदेश के लगभग ग्यारह स्थानों पर अल्पवास किए। वास्तव में स्वगृह, उसकी सुविधाएँ एवं वहाँ का स्थायी जीवन ही सम्भवतः लोगों में मोह उत्पन्न करता है (शर्मा, 1996)। उनका बाल्यकाल इस तरह की परिस्थितियों के मध्य गुजरा कि इस भाँति के मोहपाश की लेशमात्र भी गुंजाइश नहीं थी। उनके सार्वजनिक जीवन में आकर आजीवन अनिकेत एवं यायावरी जीवन के मानस रचना में निःसन्देह बाल्यकाल का ही अनिकेती जीवन सहयोगी रहा। अतएव मानव जीवन के प्रति वह बहुत ही संवदेनशील थे, जिस कारण नये-नये स्थान के अपरिचित लोगों से मिलकर उनमें पारिवारिकता की भावना जागृत करना उनका ध्येय रहा।

अटल जी के परिवार का विशुद्ध भारतीय ब्राह्मण वातावरण उनके रग-रग में बाल्यावस्था से ही रचा-बसा था। इनका परिवार संघ के प्रति विशिष्ट रूप से कर्तव्यनिष्ठ था जिसके कारण अटल जी का विशेष झुकाव संघ की तरफ हुआ। अटल जी बचपन से ही अध्ययन हेतु विशेष उत्सुक रहे। उनका कथन था कि "मेरे पितामह संस्कृत के विख्यात विद्वान थे। गांव वाले छोटे से घर में संस्कृत की सैकड़ों पुस्तकें थीं। गांव में भ्रमण कर मेरे पितामह श्रीमद्भागवत की कथा कह कर परिवार का भरण-पोषण करते थे। पिता जी को साहित्य के प्रति प्रेम पितामह से ही प्राप्त हुआ जो हिन्दी के श्रेष्ठतम कवियों में से एक थे। साहित्य के प्रति प्रेम से आच्छादित परिवार से ही मुझमें साहित्य के प्रति प्रेम, स्नेह, समपर्ण के बीज स्वतः ही उद्भुत हुए। बचपन से ही वह पितामह की पोथियाँ लेकर पढ़ा करते थे।" (शर्मा, 1996)।

अटल जब अपने बालपन में 5 वर्ष की अवस्था को प्राप्त किए तो उन्हें प्राथमिक कक्षाध्ययन हेतु

पाठशाला भेजा गया। पाठशाला शिक्षा के उपरांत मिडिल कक्षाध्ययन उन्होंने गोरखी विद्यालय ग्वालियर से प्राप्त किया। तदुपरांत विक्टोरिया कॉलिजिएट से हाईस्कूल एवं इण्टरमीडिएट की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। स्नातक अध्ययन में वह विक्टोरिया कॉलेज (वर्तमान में शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई महाविद्यालय) से हिन्दी साहित्य, संस्कृत साहित्य, अंग्रेजी साहित्य एवं सामान्य अंग्रेजी विषय से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। अटल जी राजनीति विज्ञान से एम.ए. एवं कानून की पढ़ाई हेतु उत्सुक थे। विक्टोरिया कालेज ग्वालियर में ऐसी व्यवस्था न होने के कारण इस हेतु उन्हें आगरा विश्वविद्यालय अन्तर्गत डी.ए.वी. कालेज कानपुर जाना पड़ा। परास्नातक अध्ययन हेतु जब ये शिक्षा के प्रमुख केन्द्र कानपुर आए तब इनके पिता पं. कृष्ण बिहारी वाजपेयी अपनी राजकीय सेवा से सेवानिवृत्त हो गए थे किन्तु अग्रेतर अध्ययन जारी रखने हेतु परास्नातक अध्ययन में राजनीति विज्ञान विषय में अटल जी के साथ प्रवेश लिया। पिता-पुत्र एक साथ छात्रावास में रहकर परास्नातक की पढ़ाई किए जिसमें अटल जी प्रथम श्रेणी प्राप्त करने में सफलता प्राप्त किए। (पोखरियाल, 2019)।

परास्नातक राजनीति विज्ञान से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने के उपरांत कानून की पढ़ाई हेतु एल.एल.बी. में प्रवेश लिया किन्तु उसे अन्तिम वर्ष में पूर्ण नहीं किया। उन्होंने एल.एल.बी. करने से बेहतर लखनऊ विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. करना समझा क्योंकि उन दिनों एम.ए. प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण छात्रों के मध्य भारतीय प्रशासनिक सेवा की तैयारी या शोध कार्य करना अधिक प्रचलित था। यद्यपि अटल जी सरकारी नौकरी की अपेक्षा एक अध्यापक बनने के आकांक्षी थे किन्तु संयोगात् उनका यह स्वप्न पूर्ण न हो सका क्योंकि देश की आजादी के उपरान्त उनकी व्यावसायिक एवं शैक्षणिक योजना में बदलाव परिलक्षित हुआ।

वस्तुतः पं. दीनदयाल उपाध्याय ने अपने आदर्शों को मौलिकता प्रदान करने हेतु मा. भाऊसाहब देवरस के प्रेरणोपरान्त भविष्यगत भयावह झंझावातों से सम्पूर्ण देश को सजग करने हेतु 1947 में राष्ट्रधर्म प्रकाशन की नींव डाली। जिसमें सम्पादन कार्य का उत्तरदायित्व अटल बिहारी वाजपेयी एवं राजीव लोचन अग्निहोत्री को सौंपा गया। गहन विचार मन्थनोपरान्त शुभ श्रावणी पूर्णिमा अर्थात् रक्षाबन्धन के दिन सम्वत् 2004, 31 अगस्त सन् 1947 को राष्ट्रधर्म मासिक पत्रिका का प्रथम दिव्यतम् अंक प्रकाशित हुआ। राजनीतिक एवं साहित्यिक क्षेत्र में यह बहुचर्चित पत्रिका हुई जिसके फलस्वरूप राष्ट्रधर्म प्रकाशन द्वारा अनेक पत्र-पत्रिकाएँ यथा- 'पाञ्चजन्य' साप्ताहिक, दैनिक 'स्वदेश' और दैनिक तरुण भारत' प्रकाशित किये गये।

पं. दीनदयाल जी की लेखनी द्वारा राष्ट्रीयता से परिपूर्ण लेख जनमानस को सदैव अभिसिंचित करते रहे। उनकी लेखनी के प्रवाह को अवरुद्ध करने हेतु जब सत्ता पक्ष द्वारा 'पाञ्चजन्य' प्रतिबन्धित किया गया तो क्षणभर भी समय नष्ट किए बिना उन्होंने 'हिमालय' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। जब उसे भी प्रतिबन्धित किया गया तो 'राष्ट्रभक्त' पत्र का प्रकाशन किया। अतएव सत्ता पक्ष के अनेकानेक कुचेष्टापूर्ण आघातों के बाद भी उनकी लेखनी सतत् गतिशील बनी रही। उन्होंने दो अति विशिष्ट पुस्तकों 'चन्द्रगुप्त' एवं 'जगदगुरू शंकराचार्य का लेखन कार्य विशिष्ट शैली में पूर्ण किया जो पाठकों में ख्यातिलब्ध हुई। उनके द्वारा लिखित लेख सामयिक महत्व एवं भविष्य के संकेतक होते थे जिन्हें समयानुकूल दृष्टिगत किया गया होता तो सम्भवतः जम्मू-कश्मीर की इतनी भयावह दुर्दशा नहीं हुई होती। उन्होंने ममता, समता एवं बन्धुता की भावना को अधिष्ठित करने वाला वाङ्मय के सारस्वरूप एकात्म मानववाद की रचना कर न केवल

भारतीय जीवन दर्शन को पूर्णता प्रदान की वरन् सम्पूर्ण मानवता को नवरसायन से अभिसिंचित किया। वह केवल एक मौलिक चिंतक, श्रेष्ठ पत्रकार, प्रखर वक्ता ही नहीं थे, ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें समस्त विषयों का गूढ़तम ज्ञान था। सामान्य जन को अतिकलिष्ट विषयों को भी सहजतापूर्वक समझाने की उनकी विशिष्ट सम्भाषण शैली से ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे समस्त विषयों के वह जन्मजात मर्मज्ञ हों।

लड्डुओं के प्रमुख नगर सण्डीला में कुछ मास निवास के बाद अटल जी को लखनऊ में राष्ट्रधर्म का प्रथम सम्पादक के रूप में पं. दीनदयाल उपाध्याय द्वारा नियुक्त किया गया। अटल जी के अथक परिश्रम एवं कुशल सम्पादन में 'राष्ट्रधर्म' ने राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त की। राष्ट्रधर्म को साहित्यकारों के मध्य अपनी छवि बनाने में अधिक समय नहीं लगा। जहाँ एक ओर इसके प्रशंसकों की संख्या बढ़ रही थी, वहीं दूसरी ओर वामपंथियों के समक्ष अवरोधक सिद्ध हुआ। अटल जी निष्कप ज्योति की भाँति निर्भयतापूर्वक वामपंथी विचारों का सामना करते हुए सण्डीला की साहित्यिक संगोष्ठियों के शीघ्र ही नायक बन गए। उनके सम्पादकीय की श्रेष्ठ एवं ख्यातिलब्ध रचनाकारों द्वारा भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी जिससे प्रभावित होकर दीनदयाल जी ने अटल जी को पाञ्चजन्य का भी सम्पादक बना दिया। इसके प्रथम अंक की चतुर्दिक प्रशंसा हुई। उस समय महात्मा गाँधी की हत्या का दोषी मानकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर अचानक पाबन्दी के साथ राष्ट्रधर्म एवं पाञ्जञ्जन्य दोनों को प्रतिबन्धित करते हुए उसके कार्यालय को सील और कर्मचारियों को बन्दी बना लिया गया किन्तु अटल जी वहाँ से बच निकलने में सफल रहे। इसके बाद उन्होंने दैनिक पत्र 'स्वदेश', 'चेतना' साप्ताहिक एवं वीर अर्जुन पत्र का सम्पादन किया। वीर अर्जुन' उनके पत्रकार जीवन का अन्तिम सम्पादन कार्य रहा। (अस्थाना, & दीक्षित, 1997)।

अतएव अटल बिहारी वाजपेयी की ख्यातिलब्धता एक प्रखर राष्ट्रवादी चिंतक एवं सम्पादक के रूप में सम्पूर्ण भारतवर्ष में चतुर्दिक परिव्याप्त हो गई। उन्होंने अपना सर्वस्व हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्तान के लिए समर्पित कर दिया। अटल बिहारी वाजपेयी की वाग्मिता एवं लेखन कौशल को दृष्टि में रखकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने उन्हें पत्रकारिता के कार्य में संलग्न किया। भारतीय मनीषा के मर्मज्ञ, राष्ट्रीयता के संरक्षक पूज्यनीय डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी को एक कर्मठ, निष्ठावान एवं भारतीयता से ओत-प्रोत व्यक्ति की आवश्यकता थी जिसके समस्त गुणों एवं सम्भावनाओं की परख उन्होंने तरूण अटल में दृष्टिगत कर उन्हें अपना निजी सचिव का उत्तरदायित्व प्रदान किया। इस प्रकार वह स्वयं को सौभाग्यशाली समझकर उनके साथ उनकी बिम्ब की भाँति रहने लगे।

डॉ. मुकर्जी की जनसभाओं का आयोजन तरूण अटल द्वारा ही किया जाता था। उनकी जनसभाओं में तरूण अटल के ओजपूर्ण व्याख्यानों के रसपान हेतु जनसैलाब उमड़ पड़ता था, जिसमें तरूण अटल जी को भी जनता को सम्बोधित करने का अवसर मिल जाता था। तरूण अटल जी की व्याख्यात्मक शैली डॉ. मुकर्जी को अत्यन्त प्रिय और आकर्षणयुक्त प्रतीत होती थी जब तरूण अटल जी विनोदपूर्ण शैली में अपना एक हाथ उठाकर कोई भी चुटीला व्यंग्य करते थे। उनके इस इस प्रकार के व्यंग्यात्मकता से सभास्थल जनता की करतल ध्वनियों से गुञ्जायमान हो जाता था। इस प्रकार उनका कद केन्द्रीय स्तर पर शनैः शनैः बढ़ता चला गया और जनसंघ के संस्थापक सदस्य होने के कारण उनके कन्धों पर संगठन का गुरूतर उत्तरदायित्व बढ़ता ही चला गया। "(त्रिपाठी, 2015)।

वस्तुतः पं. दीनदयाल जी का 'अन्त्योदय' उनकी महान रचनात्मकता थी जिसके द्वारा समाज के दीन-हीन, मलिन लोगों की उन्होंने आराधना की। दरिद्र नारायण को अपना आराध्य मानकर उनकी सेवा-सुश्रुषा

करना ही उन्होंने अपना पाथेय माना। इनका दारिद्रय दूर करना हम सबका सच्चा मानव धर्म हैं जिसका पालन स्वयं हमारे आराध्य मर्यादा पुरुषोत्तम प्रभु श्रीराम, भगवान वासुदेव श्रीकृष्ण के साथ-साथ महामानव महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गाँधी एवं पं. दीनदयाल उपाध्याय जी ने किया। अतएव नारायण कभी शबरी की कुटिया में जूठे बेर खाने हेतु दस्तक देता है तो कभी विदुर के घर साग खाने हेतु आ धमकता है। महलों के ऐश्वर्य में उसका मन कहाँ रमा है, वह तो झुग्गी-झोपड़ियों का ही वासी है। (अग्निहोत्री, & शुक्ल, 2014)।

पं. दीनदयाल उपाध्याय स्वयं के कर्म-श्रम साधना के बल पर जीवन की समस्त समस्याओं का समाधान समयानुकूल करते चले गए। चाहे वह अध्ययन-अध्यापन कार्य, लेखन कार्य, संगठन कार्य, सम्पादन कार्य और कम्पोजिंग से वितरण तक का कार्य हो उसमें उनका श्रेष्ठतम् का प्रदर्शन रहा है। संगठन में कार्यकर्ता से शिखरस्थ पद प्राप्त करना उनकी श्रम- साधना ही थी। अपने प्रतिभा एवं श्रम-साधना पर अवलम्बित होकर उन्होंने जनसंघ रूपी नन्हें पौधे को कुसुमित, पल्लवित एवं फलित कर विशाल वृक्ष का स्वरूप प्रदान करते हुए देश में द्वितीय क्रम के दल की गरिमा से सुशोभित किया। उन्होंने न केवल जनसंघ को राजनीतिक कलेवर प्रदान किया वरन् विश्व को एकात्म मानववाद' का दिव्यतम् दर्शन प्रदान कर स्वयं मंत्रद्रष्टा एवं ऋषितुल्य स्वरूप में ख्यातिलब्ध हुए। राजनीति की विषाक्तता को उन्होंने श्रम-साधना द्वारा शुद्ध शाश्वत, निर्मल एवं पवित्र स्वरूप प्रदान करते हुए नैतिकता तथा मूल्य आधारित राजनीति पर अग्रसर होने का आह्वान किया। उनकी दृष्टि में "राजनीति के लिए राष्ट्रीयता नहीं है, बल्कि राष्ट्रीयता के पोषण हेतु राजनीति होनी चाहिए। (गोयनका)।

यद्यपि पं. दीनदयाल उपाध्याय का मात्र एक ही ध्येय रहा - राष्ट्र को राजनीतिक दृष्टि से सशक्त बनाना, सामाजिक दृष्टि से उन्नत करना एवं आर्थिक दृष्टि से समृद्ध बनाना। जनसंघ को डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी ने यदि शरीर प्रदान किया तो दीनदयाल जी अर्जुन की भूमिका में रहे। दीनदयाल जी की प्रतिभा को देखकर डॉ. मुखर्जी ने कहा था कि "यदि मुझे दीनदयाल जैसे दो व्यक्ति मिल जायं, तो मैं भारतीय राजनीति की दिशा और दशा दोनों बदल दूंगा (चंद, 2018)। अतएव जनसंघ की शक्ति एवं उसके कार्यकर्ता तथा महामंत्री के नाते दीनदयाल जी का ही नेतृत्व था। हालाँकि दिसम्बर 1967 में जनसंघ के अध्यक्ष बलराज मधोक ने अध्यक्ष पद का कार्यभार पं. दीनदयाल उपाध्याय को सुपुर्द किया, दीनदयाल जी ने अध्यक्ष बनने पर आभार प्रकट करते हुए कहा कि "दल के अध्यक्ष तो बदलते ही रहते हैं, किन्तु उसकी नीतियाँ, सिद्धान्त और लक्ष्य कभी नहीं बदलते। सामूहिक कार्य पद्धति के बल पर जनसंघ की प्रगति हुई है। जनसंघ किसी नेता के नाम पर नहीं बल्कि सामूहिक नेतृत्व के अधिष्ठान पर ही आगे बढ़ा है, यही उसकी अभिवृद्धि का प्रतीक है (उपाध्याय, 2014)। जनसंघ के इतिहास में वर्ष 1967 सर्वोत्कृष्ट रहा। एक तरफ पं. दीनदयाल उपाध्याय जैसा कर्मठ अध्यक्ष मिला तो दूसरी तरफ जनता का ध्यान जनसंघ की तरफ आकृष्ट हुआ। इस युगपुरुष के अध्यक्ष पद पर आरूढ़ होने के उपरांत उत्तरापथ के विजयश्री के साथ दक्षिणापथ की ओर अपने पवित्र संदेश को प्रसारित करने हेतु केरल के कालीकट में जनसंघ का चौदहवाँ अधिवेशन किया गया। यह अधिवेशन पं. दीनदयाल उपाध्याय के अध्यक्ष बनने का साक्षी बना जिसमें शामिल होने के लिए कार्यकर्ता देश के कोने-कोने से विह्वल, व्याकुल, आतुर, हर्षित एवं प्रमुदित होकर कालीकट पहुँचने को उत्सुक थे। जिसमें केरल की नम्बूदरीपाद सरकार ने अनेक तरह से अवरोध उत्पन्न किए, किन्तु इस प्रलयंकारी जनसैलाब को रोकने में विफल रही। कालीकट की सड़के फूल-मालाओं एवं केसरिया रंग से अभिसंचित हो उठीं तथा भारत माता के जयकारों और हुंकारों से समूचा वातावरण गुञ्जायमान हो गया। इस

अधिवेशन में दीनदयाल जी का अध्यक्षीय उद्बोधन अप्रत्याशित एवं अभूतपूर्व था जिसमें राष्ट्रहित से सम्बन्धित किसी भी ज्वलन्त समस्या के समाधान का मार्ग प्रशस्त किया गया। ऐतिहासिक कालीकट अधिवेशन के बारे में समाचार पत्र 'मातृभूमि ने लिखा कि, "ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानों तीन दिन के लिए गंगा ने अपना मार्ग परिवर्तित कर केरल से होकर बहना प्रारम्भ कर दिया है। (उपाध्याय, 2014)।

अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में समकालीन मुद्दों की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि "हमने किसी सम्प्रदाय या वर्ग का नहीं वरन् सम्पूर्ण राष्ट्र की सेवा हेतु संकल्प लिया है। सभी देशवासी हमारे बन्धु-बांधव हैं। जब तक हम इन समस्त बन्धुओं में भ्रातृत्व की भावना का संचार कर भारत माता के सच्चे सपूत होने का गौरव नहीं दिला देते तब तक हम शांतचित्त नहीं बैठेंगे। हम भारत माता को सच्चे अर्थों में सुजलां-सुफलां बना कर ही रहेंगे। दक्षिण में हिन्दमहासागर से लेकर उत्तर में हिमालय से परिवेष्ठित परिक्षेत्र में जब तक एकरसता कर्मठता, समानता, सम्पन्नता, ज्ञानवता, सुख एवं शांति की सप्तजाह्नवी नहीं ला पाते, हमारा भगीरथ तप सफल नहीं होगा। हमारे इस प्रयत्न में त्रीदेव भी सहायक होंगे। विजयश्री का विश्वास है, तपस्या का निश्चय लेकर चलें, विजय श्री हमारा वरण करेंगी।" (चंद, 2018)।

वस्तुतः भारतीय राजनीति के शीर्षस्थ नक्षत्र, पद्म विभूषण से अलंकृत, यथा नाम तथा गुण को सार्थकता प्रदान करने वाले अटल जी ख्यातिलब्ध राष्ट्रीय नेता, पत्रकार, मुखर एवं प्रखर वक्ता, वाकपटु कविहृदय अपने बहुआयामी व्यक्तित्व को निरन्तर प्रतिबम्बित करते रहे हैं। राजनीतिक जनसम्पर्क की श्रेष्ठता से सम्पन्न अटल जी सबका साथ, सबका विकास और सबका विश्वास के हिमायती थे। संसदीय गरिमा एवं व्यवस्था को सुदृढ़ करने में उनका उल्लेखनीय योगदान रहा है। चाहे वह सांसद के रूप में हो, विदेश मंत्री के रूप में हो अथवा विपक्ष के नेता के रूप में हो, उनके शब्द राष्ट्रवाद के प्रति निरन्तर प्रतिबद्ध रहे हैं। अटल जी के लिए राजनीति, राजनीतिक दल एवं सार्वजनिक पद स्वयं के स्वार्थ की पूर्ति हेतु न होकर सामान्य जन की इच्छाओं की पूर्ति हेतु एक सशक्त माध्यम रहे हैं। संसद में अटल जी के चार दशकों में उनकी विनोदपूर्ण एवं ओजपूर्ण शैली परिलक्षित हुई। उसकी भूतपूर्व राष्ट्रपति के.आर. नारायण ने भूरि-भूरि प्रशंसा की। (चंद, 2018)।

यद्यपि अटल जी सदन में प्रतिपक्ष के नेता स्वरूप अनेक वर्ष चुटीले व्यग्यवाणों एवं सटीक टिप्पणियों से परिपूर्ण रहे। उनकी वाककला के लोग कायल रहे, चाहे स्वदेश में हो या परदेश में वह भारतीय राजनीतिक क्षितिज पर जाज्वल्यमान् नक्षत्र की भाँति निरन्तर देदीप्तिमान रहे। संतजनों के प्रति श्रद्धानवत, विद्वतजन के प्रति आदरभाव, बालकों के प्रति वात्सल्य उनके बहुआयामी व्यक्तित्व को ही परिलक्षित करता है। उनका व्यक्तित्व वसुन्धरा की भाँति धीर-गम्भीर सागर की भाँति गहरा और आकाश की भाँति विराट था। उनका आचरण शुद्ध उद्देश्यपरक तथा ओजपूर्ण वाणी से अपना विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदर्शित करता था। अटल जी त्याग एवं सादगी की प्रतिमूर्ति स्वरूप परिलक्षित होते हैं जिनके आस-पास भी पूर्वाग्रह भटक नहीं सका। जीवन के उद्देश्य और सुख-दुःख में भी वह भव्य, सशक्त एवं समृद्ध भारत के स्वप्न को साकार करते रहे। उनके सकारात्मक दृष्टिकोण और स्पष्टवादिता ने ही उन्हें एक विशिष्ट इन्सान के रूप में परिणत कर ख्याति प्रदान किया। प्रकृति प्रेम में आकण्ठ डूबे कविहृदय अटल जी की आत्मीय शैली उनकी छवि को अत्यधिक निखार देती है।

वस्तुतः एक राजनेता के रूप में अटल जी ने भारतीय राजनीति का लम्बा सफर तय किया जिसमें विपक्ष के नेता से लेकर विदेशमंत्री और पहले गैर-कांग्रेसी प्रधानमंत्री का पद धारण। अटल जी देश

के पहले ऐसे नेता थे जो लम्बे राजनीतिक अनुभव के बाद देश के वास्तविक प्रमुख का पद धारण करते हुए अपने अनुभूतियों से देश, सरकार एवं सामान्य जनमानस को नूतन दशा तथा दिशा प्रदान किए। अतएव अपने प्रधानमंत्रित्व काल में अटल जी ने जो कार्य सम्पन्न कर उपलब्धियाँ अर्जित कीं, वह उनकी कथनी और करनी में समरूपता के रूप में परिलक्षित होता है। भारतीय राजनीति को अटल जी ने गठबन्धन की राजनीति, समन्वय की राजनीति, सामंजस्य की राजनीति एवं परस्पर राष्ट्रहित की राजनीति से अभिसंचित किया" (घटाटे, 1996)। बहुआयामी प्रतिभा सम्पन्न अटल जी प्रधानमंत्री जैसे प्रभावशाली शीर्ष पद पर पहुँचकर लोकप्रिय होकर 2004 तक भारतीय राजनीति क्षितिज पर एक जाज्वल्यमान् नक्षत्र की भाँति प्रकाशित होते रहे।

हालांकि एक विशद् मानव मूल्य की संकल्पना के संवाहक अटल जी "वसुधैव कुटुम्बकम् (महोपनिषद) के भी पोषक रहे। जिसकी परिधि में व्यक्ति से लेकर अनंत जगत् तक शामिल है अर्थात् व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र, अर्नाष्ट सम्पूर्ण जगत् समाविष्ट है। उनमें वैयक्तिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, राजनीतिक मूल्य, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य, नैतिक मूल्य, धार्मिक मूल्य और प्रगतिशील मूल्य निहित हैं जिसे सारस्वरूप मानवीय मूल्य के रूप में भी समादृत किया जा सकता है। जिसके प्रबल आकांक्षी अटल जी रहे। अटल जी की दृष्टि में इस मूल्य को आत्मसात् किए बिना मानवता अधूरी है, मानव अधूरा है, उसका धर्म एवं संस्कृति अधूरी है। इसके अभाव में राष्ट्र, विश्व अधूरा ही नहीं पंगु की भाँति परिलक्षित होगा। यह मानव के साथ-साथ समाज एंव राष्ट्र के लिए भी अपरिहार्य है। यदि हमें विश्व के साथ श्रेष्ठ, सशक्त, समृद्ध एवं भव्य भारत के स्वप्न को साकार करना है तो हमें विश्वबन्धुत्व की भावना को आत्मसात् करना ही होगा। यद्यपि भारतीय संस्कृति की अनुपम छवि अटल जी के सोच-विचार में, खान-पान में, भाषा-भाव में, चाल-ढाल में, रहन-सहन में, बोली-वाणी में, पहनावे-ओढ़ावे में निरंतर परिलक्षित होती रही है। वह एक दूरद्रष्टा ही नहीं वरन् अजातशत्रु नेता थे। वह अपने जीवन का कण-कण एवं क्षण-क्षण भारत माता के चरणों में सेवार्पित करते हुए अपने अन्तःकरण से राष्ट्रभक्ति की स्निग्धता में निरन्तर निमज्जित रहे। वह शब्दों के जादूगर ही नहीं अभिव्यक्ति के बाजीगर भी थे जिससे उनके धुरविरोधी भी उनपर अपना सर्वस्व न्योछावर हेतु तत्पर रहते थे। वह भारतीय जनमानस के हृदय सम्राट थे। वह अपने दल के नेता ही नहीं वरन् लोकनेता, जननेता, सर्वमान्य नेता एवं लोकमान्य नेता भी थे। सरलता के साथ उनकी दृढ़ता, उदारता के साथ अटल राष्ट्रभक्ति उनके रोम-रोम में समादृत था। वह असम्भवों में सम्भव तथा शांति के पुजारी ही नहीं क्रांति के अग्रदूत भी रहे। व्यक्तिगत स्वतंत्रता के समर्थक ही नहीं सामाजिक समरसता के प्रबल पोषक भी रहे। वज्र के सदृश्य कठोर एवं कुसुम के सदृश्य सुकोमल वह भारतीय संस्कृति के प्रतीकात्मक संरक्षक भी रहे। (शर्मा, 2017)।

निष्कर्ष

अतएव यह कहना कदापि गलत नहीं होगा कि अटल जी का समग्र व्यक्तित्व एवं कृतित्व पूनम की चाँदनी की भाँति मनमोहक रहा है। वैविध्यपूर्ण राजनीतिक दलों के नेता जिस आत्मीयता के साथ संवाद करते हैं, वैसी मनोवैज्ञानिकता विशिष्ट रूप से उल्लेखनीय है। अटल जी निरन्तर चुम्बकीय व्यक्तित्व सम्पन्नता के साथ ही रस के स्थायी भाव का संचार करते हुए उत्साह को प्रवाहित करते रहे तथा अपनी स्वच्छ, निर्मल, शाश्वत और निष्ठाप्रधान वैचारिकता के साथ ही उपमेय में उपमान हो गए। ठीक उसी भाँति पं. दीनदयाल उपाध्याय के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को सारस्वरूप कहा जा सकता है कि वह केवल भौतिक

चिंतक ही नहीं वरन् मानव अतीत के संदेशवाहक थे। उन्होंने मानव जीवन के समस्त पहलुओं एवं विषयों का गहनतम् अनुशीलन करते हुए जो भी विचार प्रदान किए वह मानव जीवन की समस्त समस्याओं के समाधान में समार्थ्यवान थे। उन्होंने प्राचीनता एवं नवीनता, विज्ञान एवं दर्शन और आध्यात्म एवं भौतिकता के मध्य मौलिक रूप से समन्वय स्थापित करते हुए जो सिद्धान्त प्रतिपादित किए वह जीवन को शाश्वत रूप में सुखी बनाने हेतु मात्र रोटी की ही नहीं, उसके साथ आध्यात्म की भी अपरिहार्यता को प्रमाणित करता है। उनके द्वारा अपने अल्पकालीन जीवन में भी हिन्दू संस्कृति की विशिष्टता के अनुरूप शाश्वत अधुनातन बीज मंत्र प्रदान कर सम्पूर्ण मानवता हेतु चिरन्तन सुख का मार्ग प्रशस्त किया गया। अतएव यह कहा जा सकता है कि पं. दीनदयाल उपाध्याय जी एक अत्यन्त सामान्य व्यक्ति प्रतीत होते हुए भी समस्त प्रकार से मौलिक कल्पनाओं को सृजित करने वाले, स्वयं के शब्दों को सार्थकता प्रदान करने वाले, अथक् अनवरत कार्य करने की क्षमता सम्पन्न तथा युग की निर्मलता को शाश्वत रूप प्रदान करने वाले एक असाधारण युगपुरुष थे।

संदर्भ सूची

जैन, चन्द्रकुमार. (2017). *एकात्म संस्कृति-साधक*, मानवतावादी दार्शनिक पं. दीनदयाल उपाध्याय के विचारों को मूर्तरूप देती उत्तर प्रदेश सरकार, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश. पृ. 83.

ठेंगड़ी, दत्तोपंत (2014). *पं. दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन*, खण्ड-1, तत्व जिज्ञासा. नई दिल्ली: सुरुचि प्रकाशन. पृ. 3.

शर्मा, चन्द्रिका प्रसाद. (1997). *कवि राजनेता अटल बिहारी वाजपेयी*. नई दिल्ली: किताबघर, पृ. 30.

पोखरियाल, रमेश (2019). *युगपुरुष भारतरत्न अटल जी*. नई दिल्ली: डायमण्ड बुक्स, पृ. 19, 21.

शर्मा, महेश चन्द्र. (2015). *पं. दीनदयाल उपाध्याय कृतित्व एवं विचार*. नई दिल्ली: प्रभात पेपर बैक्स. पृ. 17.

शर्मा, महेश चन्द्र (2004). *पं. दीनदयाल उपाध्याय*, नई दिल्ली: प्रकाशन विभाग, सूचना प्रसारण मंत्रालय. पृ. 4-5.

शर्मा, चन्द्रिका प्रसाद. (1996). *कुछ लेख कुछ भाषण अटल बिहारी वाजपेयी*, नई दिल्ली: किताबघर. पृ. 244.

अस्थाना एवं दीक्षित (सं.) (1997). *सुविकसित पुष्प अटल बिहारी वाजपेयी के श्रेष्ठतम भाषण*. लखनऊ: लोकहित प्रकाशन. पृ. 7.

त्रिपाठी, प्रयाग नारायण. (2015). *महात्मा गाँधी और पं. दीनदयाल उपाध्याय के जीवन दर्शन में साम्य*, लखनऊ: लोकहित प्रकाशन. पृ. 28.

अग्निहोत्री, रमाशंकर, & शुक्ल, भानुप्रताप. (2014). *पं. दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्र जीवन की दिशा*. लखनऊ: लोकहित प्रकाशन. पृ. 40.

गोयनका, कमल किशोर (सं.). *पं. दीनदयाल उपाध्याय व्यक्ति दर्शन*, नई दिल्ली: दीनदयाल शोध संस्थान, पृ. 23.

चन्द्र, सुरेश. (2018). *सर्वप्रिय अटल जी*. नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन. पृ. 53, 184.

दीनदयाल उपाध्याय पोलिटिकल डायरी (2014). नई दिल्ली: सुरूचि प्रकाशन. पृ. 5.

पं. दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्र चिंतन (2014). लखनऊ: लोकहित प्रकाशन. पृ. 26.

घटाटे, ना.भा. (1996). *अटल बिहारी वाजपेयी गठबन्धन की राजनीति*. नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन. पृ. 242-243.

महोपनिषद् - 4 (अध्याय) / 71 (श्लोक)

शर्मा, चन्द्रिका प्रसाद. (2017). *अटल बिहारी वाजपेयी शक्ति से शांति तक*. नई दिल्ली: किताबघर प्रकाशन. पृ. 267-268.

राष्ट्रीय शिक्षा नीति व विधि शिक्षा

डॉ. प्रियरंजन कुमार*

सारांश

शिक्षा संपूर्ण मानव क्षमता को प्राप्त करने, न्याय पूर्ण समाज के विकास तथा राष्ट्रीय विकास को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। किसी भी देश का भविष्य उस देश की शिक्षा व्यवस्था पर निर्भर करता है। अभी हमारे देश में 34 साल पहले बनी शिक्षा नीति लागू थी। इस बीच देश, दुनिया और समाज का पूरा ताना-बाना बदल गया, उद्योगों की संरचना बदल गई, जीवन व्यवहार बदल गया, सबकी जरूरतें बदल गईं। इन तमाम बदलावों के अनुरूप शिक्षा व्यवस्था में भी सुधार की जरूरत थी। प्राचीन व सनातन भारतीय ज्ञान और विचार की समृद्ध परंपरा के आलोक में तैयार राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020; ज्ञान, प्रज्ञा और सत्य की खोज जो कि भारतीय विचार, परंपरा और दर्शन में सबसे ऊंचा लक्ष्य माने गए हैं, के आदर्शों का समावेश करती है। नई शिक्षा नीति का मसौदा भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन के प्रमुख के कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता में विशेषज्ञों ने तैयार किया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एक बहुत ही महत्वाकांक्षी दस्तावेज है जिसका उद्देश्य शिक्षा पद्धति में महत्वपूर्ण बदलाव है। यह शोध पत्र राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की आवश्यकता व विधि शिक्षा पर इसके प्रभाव के साथ-साथ इसके विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालने का एक प्रयास है।

बीज शब्द: विधि शिक्षा, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, बार काउंसिल ऑफ़ इंडिया, सार्वभौमिक उच्च शिक्षा, भारतीय विधिज्ञ परिषद

परिचय

वैज्ञानिक उन्नति, राष्ट्रीय एकीकरण, सांस्कृतिक संरक्षण और आर्थिक विकास तब तक संभव नहीं है जब तक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक सार्वभौमिक पहुंच सुनिश्चित न हो। इस संदर्भ में निरंतर प्रयास अति आवश्यक है। सार्वभौमिक उच्च स्तरीय शिक्षा वह उचित माध्यम है जिससे देश की समृद्ध प्रतिभा और संसाधनों का सर्वोत्तम विकास और संवर्धन व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व की भलाई के लिए किया जा सकता है। किसी भी देश का भविष्य उस देश की शिक्षा व्यवस्था पर निर्भर करता है। आने वाले समय में भारत विश्व का सबसे युवा जनसंख्या वाला राष्ट्र होगा। यदि यह युवा गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करेंगे तो अवश्य ही भारत का भविष्य उज्जवल होगा। अतः इन युवाओं को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के अवसर प्रदान करना भारत सरकार की प्राथमिकता होनी चाहिए। इसी प्राथमिकता के बोधवश नई शिक्षा नीति पर विचार-मंथन उपरांत धरातल पर उतारने का कार्य भारत सरकार ने किया है वह इस बात का परिचायक है कि भारत का भविष्य उज्जवल होगा। ज्ञान के परिदृश्य में पूरा विश्व तेजी से परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। विज्ञान और तकनीक के विकास से विश्व भर में अकुशल कामगारों का दायरा सिकुड़ता जा रहा है तथा

*सह-आचार्य, विधि विभाग, तेजपुर विश्वविद्यालय, असम।

कामगारों की जगह मशीनें लेती जा रही हैं। दूसरी तरफ डाटा साइंस, कंप्यूटर साइंस और गणित के क्षेत्रों में कुशल कार्मिकों की आवश्यकता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। समयानुसार परिवर्तन संसार का नियम है। इसी नियमानुसार जलवायु परिवर्तन, बढ़ते प्रदूषण, घटते प्राकृतिक संसाधनों की वजह से भोजन, पानी, ऊर्जा इत्यादि मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करना संभव नहीं होगा यदि हम नए रास्ते नहीं खोज पाए। यह तभी संभव है जब हमारे पास जीव विज्ञान, रसायन विज्ञान, भौतिक विज्ञान, कृषि, जलवायु विज्ञान और समाज विज्ञान आदि क्षेत्रों में कुशल कार्मिक होंगे।

जिस प्रकार कोविड-19 के दौरान भारतवर्ष ही नहीं अपितु पूरे विश्व में इस महामारी से निपटने के लिए नए-नए रास्ते खोजे गए तथा कुछ हद तक महामारी से निपटना संभव हो पाया। यदि विश्व भर में कुशल चिकित्सक, वैज्ञानिक और सुदृढ़ व विकसित वैज्ञानिक ढांचा न होता तो हालात भगवान भरोसे होते। उसी तरह से आज समय की मांग है कि शिक्षण प्रक्रिया ऐसी हो जो भविष्य की समस्याओं को सुलझाने के लिए कुशल व्यक्तित्व का निर्माण करे। इसलिए वर्षो से चली आ रही अंग्रेजों द्वारा अपने स्वार्थ के लिए बनाई गई शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन अनिवार्य है।

शिक्षा व्यवस्था में बदलाव की आवश्यकता

भारत एक विकसित देश बनने की ओर अग्रसर है तथा विश्व की बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में से एक है। अतः कुशल कामगारों की मांग अवश्यंभावी है। वैश्विक पारिस्थितिकी व रोजगार में आ रहे तीव्र परिवर्तनों की वजह से यह जरूरी हो गया है कि बच्चों को जो सिखाया जाए, वह तो वह सीखें ही परंतु निरंतर सीखते रहने की कला भी जरूर सीखें। इसलिए शिक्षा में इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है कि बच्चे समस्या समाधान और तार्किक एवं रचनात्मक रूप से सोचना सीखें। यह तभी संभव है जब शिक्षण प्रक्रिया जिज्ञासा, अनुभव, संवाद और खोजपरक हो। शिक्षा विद्यार्थियों के समग्र विकास पर केंद्रित हो। शिक्षा से चरित्र का निर्माण हो, नैतिकता, तार्किकता, करुणा और संवेदनशीलता विकसित हो तथा विद्यार्थी रोजगार के लिए भी सक्षम बने। आज के परिदृश्य में यदि हम देखें तो देश, दुनिया और समाज का पूरा ताना-बाना बदल गया, उद्योगों की संरचना बदल गई, जीवन व्यवहार बदल गया, सबकी जरूरतें बदल गईं। जाहिर है इन तमाम बदलावों के अनुरूप शिक्षा व्यवस्था में भी सुधार की आवश्यकता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020

स्वतंत्र भारत की तीसरी राष्ट्रीय शिक्षा नीति (राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020) लगभग 34 वर्ष के बाद शिक्षा पद्धति में परिवर्तन का माध्यम बनने जा रही है। इससे पहले प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी के कार्यकाल में 1986 में नई शिक्षा नीति को लागू किया गया था जिसमें 1992 में कुछ संशोधन किए गये थे। इस हिसाब से 34 साल बाद देश में नई शिक्षा नीति लागू हो रही है। 'यह 21 वीं सदी की पहली शिक्षा नीति है और यह 34 साल पुरानी राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनपीई) की जगह लेगी' (उपाध्याय, 2021, पृ. 21)। प्राचीन व सनातन भारतीय ज्ञान और विचार की समृद्ध परंपरा के आलोक में तैयार राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ज्ञान, प्रज्ञा और सत्य की खोज जो कि भारतीय विचार परंपरा और दर्शन में सबसे ऊंचे लक्ष्य माने गए है, को केंद्रित करती है। भारत के राष्ट्रपति महामहिम रामनाथ कोविंद के अनुसार 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति का उद्देश्य समावेशी और उत्कृष्टता के दोहरे उद्देश्यों को प्राप्त करके 21वीं सदी की जरूरतों को पूरा करने की

दिशा में शिक्षा प्रणाली को पुनर्जीवित करना है। यह सभी को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करके एक समतामूलक और जीवंत ज्ञानवान समाज विकसित करने का दृष्टिकोण निर्धारित करती है।' (पीआइबी.जीओवी, 2020)।

प्राचीन भारत में शिक्षा का लक्ष्य सांसारिक जीवन अथवा पाठशाला/गुरुकुल के बाद के जीवन की तैयारी के रूप में ज्ञान अर्जन नहीं अपितु पूर्ण आत्मज्ञान और मुक्ति के रूप में माना गया था। तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला और बलभी जैसे प्राचीन भारतीय संस्थान जो न केवल भारतवर्ष में अपितु संपूर्ण विश्व में प्रसिद्ध थे। उन संस्थानों ने अध्ययन के विभिन्न क्षेत्रों में शिक्षण और शोध के ऊंचे प्रतिमान स्थापित किए और विभिन्न पृष्ठभूमि और देशों से आने वाले विद्यार्थियों और विद्वानों को समान रूप से लाभान्वित किया था। इसी शिक्षा व्यवस्था ने चरक, सुश्रुत, आर्यभट्ट, वराहमिहिर, भास्कराचार्य, ब्रह्मगुप्त, चाणक्य, माधव दत्ता, पाणिनि, पतंजलि, नागार्जुन जैसे विद्वानों को जन्म दिया। इन विद्वानों ने वैश्विक स्तर पर ज्ञान के विविध क्षेत्रों जैसे गणित, खगोल विज्ञान, धातु विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान और शल्य चिकित्सा, भवन निर्माण, नौकायान निर्माण, दिशाज्ञान, योग, ललित कला, शतरंज इत्यादि में प्रामाणिक रूप से मौलिक योगदान दिए। भारतीय संस्कृति और दर्शन का विश्व में बड़ा प्रभाव रहा है। वैश्विक महत्व की इस समृद्ध विरासत को आने वाली पीढ़ियों के लिए न सिर्फ सहेज कर संरक्षित रखने की आवश्यकता है बल्कि हमारी शिक्षा व्यवस्था द्वारा उस पर शोध कार्य भी होने चाहिए, उसे और समृद्ध किया जाना चाहिए और नए-नए उपयोग किए जाने चाहिए। इसी कड़ी में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एक बुनियादी बदलाव के साधन के रूप में कार्य करने वाली है। 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने भारतीय उच्च शिक्षा प्रणाली के लिए एक नई कल्पना को साकार किया है। इसने एक प्रेरणादायक दृष्टि पैदा की है जो भारत में विश्व स्तर के विश्वविद्यालयों और उच्च शिक्षा संस्थानों (एचईआई) के निर्माण और पोषण की क्षमता रखती है' (राजकुमार, 2020)।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अंतर्गत विभिन्न बदलाव

विद्यालय स्तर पर बदलाव - राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अंतर्गत मौजूदा 10+2+3 पद्धति को बदला गया है। इसे 5+3+3+4 में बदला गया है। 5 साल का फाउंडेशनल एजुकेशन, 3 साल प्रिपरेटरी, 3 साल मिडल और 4 साल सेकंडरी लेवल पर स्कूलिंग कराई जाएगी। बच्चे 6 साल की उम्र से पहली कक्षा की पढ़ाई शुरू करेंगे। 6 से 16 साल की उम्र में कक्षा 1 से 10 वीं की पढ़ाई होगी। 16 से 18 साल की उम्र में 11वीं-12वीं की पढ़ाई होगी। छात्र को सभी विषयों में दो स्तर के विकल्प दिए जाएंगे। जैसे सीबीएसई ने इस बार 10 वीं में गणित में दो लेवल का विकल्प दिया था-बेसिक और स्टैंडर्ड। अब गणित से शुरू कर इस तरह का विकल्प सभी विषयों में मिलेगा। छात्र अपनी इच्छानुसार कोई एक विकल्प चुनकर उसकी पढ़ाई कर सकेंगे। स्कूलों में बच्चों को कम से कम 5 वीं कक्षा तक उनकी गृह भाषा, मातृ भाषा और क्षेत्रीय भाषा में निर्देश दिए जाएंगे। हालांकि 8 वीं और उससे आगे की कक्षाओं के लिए भी इसे अपनाया जा सकता है। बोर्ड परीक्षाओं को थोड़ा सरल बनाया जाएगा। परीक्षा ऐसी होगी जिससे कोर दक्षता की परख की जा सके। उद्देश्य और व्यक्तिपरक और सब्जेक्टव प्रतिरूप पर ये परीक्षाएं साल में दो बार प्रस्तावित की जाएंगी। इनमें से किसी एक का चुनाव छात्र कर सकेंगे। परफॉर्मेंस असेसमेंट, रिव्यू एंड एनालिसिस ऑफ नॉलेज फॉर होलिस्टिक डेवलपमेंट (PARAKH) की स्थापना की जाएगी, जो बोर्ड

परीक्षाओं के लिए मानक निर्धारण निकाय का काम करेगी। छात्रों के लिए साल में 10 दिन बैगलेस (bag less days) होंगे। इन 10 दिनों में उन्हें बैग में किताबों का बोझ लेकर विद्यालय जाने की जरूरत नहीं। इस दौरान उन्हें इनफॉर्मल इंटर्नशिप कराई जाएगी।

महाविद्यालय स्तर पर हुए बदलाव

कॉलेजों में एडमिशन के लिए सैट की तरह एंट्रेंस टेस्ट लिए जाएंगे। यह परीक्षा राष्ट्रीय परीक्षण संस्था (नेशनल टेस्टिंग एजेंसी) कराएगी। देश के विभिन्न कॉलेजों में एडमिशन के लिए राष्ट्रीय परीक्षण संस्था द्वारा एक कॉमन एंट्रेंस एग्जाम साल में दो बार लिए जाएंगे। बैचलर उपाधि चार साल की हो जाएगी। हालांकि 3 साल का भी विकल्प रहेगा। जो छात्र बीच में कोर्स छोड़ेंगे, उन्हें भी क्रेडिट ट्रांसफर और एक ब्रेक के बाद अपनी उपाधि पूरी करने का मौका मिलेगा। 12वीं के बाद कॉलेज स्तर पर चार विकल्प होंगे। चार साल के बैचलर कोर्स में पहला साल पूरा करने पर सर्टिफिकेट, दो साल पर एडवांस डिप्लोमा, तीन साल पर बैचलर उपाधि और चार साल पर रिसर्च के साथ बैचलर उपाधि कोर्स पूरा कर सकते हैं। यानि मल्टीपल एंट्री और एग्जिट का विकल्प मिलेगा। अगले 15 साल में कॉलेजों को उपाधि देने की स्वायत्ता प्रदान कर दी जाएगी। कॉलेजों के लिए विश्वविद्यालय से मान्यता की जरूरत नहीं होगी। मानद विश्वविद्यालय का दर्जा भी खत्म किया जाएगा। उच्च शिक्षा के लिए निजी संस्थानों में फीस कैप लगाने का प्रस्ताव रखा गया है। यानि अधिकतम फीस तय की जाएगी। विश्व के सर्वोच्च 100 विश्वविद्यालयों में से कुछ को भारत आने का प्रोत्साहन दिया जाएगा। शीर्ष भारतीय संस्थानों को वैश्विक बनाने का प्रयास होगा। 2040 तक सभी उच्च शिक्षण संस्थानों को बहु-विषयक बनाया जाएगा। पाली, प्राकृत, पर्सियन के लिए विश्वविद्यालय कैंपसों में ही राष्ट्रीय संस्थान स्थापित किए जाएंगे। स्नातकोत्तर उपाधि कोर्स के बाद पीएचडी से पहले एमफिल कोर्स नहीं होगा। एमफिल खत्म कर दी गई है। पीएचडी में सीधे प्रवेश संभव होगा। स्नातकोत्तर शिक्षा के पश्चात पीएचडी में प्रवेश की व्यवस्था नई शिक्षा नीति में प्रस्तावित की गई है। स्वतंत्र नियामक आयोग गठित किया जाएगा तथा दूसरी नियामक संस्थाएं खत्म कर दी जाएंगी। (राष्ट्रीय शिक्षा नीति दस्तावेज, 2020)।

नई शिक्षा नीति एवं विधि शिक्षा

विधि शिक्षा का देश, समाज और व्यक्ति के लिए उपयोगी होना जरूरी है। विधि शिक्षा के संदर्भ में हाल ही में घोषित राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (एनईपी) में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि भारत में विधि शिक्षा को विश्व स्तर पर प्रतिस्पर्धी होने, सर्वोत्तम पद्धतियों को अपनाने और न्याय की व्यापक पहुंच और समय पर वितरण के लिए नई तकनीकों को अपनाने की आवश्यकता है। साथ ही, इसे न्याय के संवैधानिक मूल्यों - सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक के साथ सूचित और प्रकाशित किया जाना चाहिए और लोकतंत्र, कानून के शासन और मानवाधिकारों के माध्यम से राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की दिशा में निर्देशित किया जाना चाहिए। एनईपी 2020 दस्तावेज आगे कहता है कि विधि अध्ययन के पाठ्यक्रम में सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों के साथ-साथ साक्ष्य-आधारित तरीके से, विधि सोच का इतिहास, न्याय के सिद्धांत, न्यायशास्त्र का अभ्यास, और अन्य संबंधित सामग्री उचित और पर्याप्त रूप से प्रतिबिंबित होनी चाहिए। (बोस, एन.डी.)।

भारत में विधि शिक्षा में भारतीय विधिज्ञ परिषद, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद (एन.ए.ए.सी) जैसे बहु नियामक प्राधिकरण हैं, जिसमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने उच्च शिक्षा की नियामक प्रणाली को बदलने और जवाबदेही के साथ कुछ निकायों के भीतर शक्ति के संकेन्द्रण को दूर करने पर जोर दिया है। भारतीय उच्च शिक्षा आयोग (एच.ई.सी.आई.) के तहत चार ऊर्ध्वाधर विशिष्ट, स्वतंत्र और अधिकार प्राप्त निकायों की स्थापना पर जोर दिया गया है जो विनियमन, मान्यता, वित्त पोषण और शैक्षणिक मानकों को स्थापित करने के विशिष्ट कार्य को सुनिश्चित करेंगे। राष्ट्रीय उच्च शिक्षा नियामक परिषद का संचालन (एन.एच.ई.आर.सी.) चिकित्सा और विधि शिक्षा को विनियमित नहीं करता है जिसका अर्थ है कि मौजूदा भारतीय विधिज्ञ परिषद विधि शिक्षा के लिए नियामक निकाय के रूप में मान्यता प्राप्त है (वर्गीज एवं अन्य, 2019)। बार काउंसिल को किसी भी विश्वविद्यालय का उचित और पर्याप्त रूप से निरीक्षण करने तथा कानून में अपनी डिग्री को मान्यता देने का अधिकार है। (बीसीआई: निरीक्षण मैनुअल, 2010)।

एच.ई.सी.आई. का दूसरा वर्टिकल 'मेटा एक्रेडिटिंग बॉडी' होगा जिसे नेशनल एक्रिडिटेशन काउंसिल (एन.ए.सी.) कहा जाता है जो एन.ए.सी. द्वारा पर्यवेक्षित और पर्यवेक्षण के रूप में स्वतंत्र मान्यता प्राप्त संस्थान द्वारा बुनियादी मानदंडों, सार्वजनिक स्व-प्रकटीकरण, सुशासन और परिणाम के आधार पर विधि संस्थान की मान्यता भी करेगा। विधि संस्था को एन.ए.सी. से स्पष्ट रूप से बाहर नहीं रखा गया था जैसा कि एन.एच.ई.आर.सी में किया गया था। तीसरा वर्टिकल उच्च शिक्षा अनुदान परिषद (एचईएफसी) होगा जो उच्च शिक्षा के वित्त पोषण सहित विधि शिक्षा के आधार पर विधि संस्था द्वारा तैयार की गई संस्थागत विकास योजना और उनके कार्यान्वयन पर हुई प्रगति पर आधारित होगा। चौथा वर्टिकल सामान्य शिक्षा परिषद होगा जो राष्ट्रीय उच्च शिक्षा योग्यता ढांचा (एनएचईक्यूएफ) तैयार करेगा, जिसमें भारतीय विधिज्ञ परिषद को पेशेवर मानक सेटिंग निकायों के रूप में कार्य करने के लिए पेशेवर परिषद के रूप में नामित नहीं किया गया है, जिसका अर्थ है कि विधि और चिकित्सा पेशा जीईसी के उत्तरदायित्व के दायरे से बाहर है। मानकों को निर्धारित करने के लिए पूरी तरह से भारतीय विधिज्ञ परिषद को अधिकृत किया गया है। (राष्ट्रीय शिक्षा नीति दस्तावेज, 2020)।

यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने समग्र उच्च शिक्षा प्रणाली के अभिन्न अंग के रूप में विधि शिक्षा सहित व्यावसायिक शिक्षा पर जोर दिया है और विधि विश्वविद्यालयों को वैश्विक प्रतिस्पर्धा वाले बहु-विषयक शैक्षणिक संस्थान बनने का लक्ष्य रखना चाहिए। विज्ञान और प्रौद्योगिकी में प्रगति और इसकी उपयोगिता को विधि शिक्षा का हिस्सा बनाया जाना चाहिए। इस संबंध में यह महत्वपूर्ण है कि सुप्रीम कोर्ट विधि अनुवाद सॉफ्टवेयर (एसयूवीएएस), एक ए.आ.ई डिवाइस का उपयोग सुप्रीम कोर्ट के फैसलों को स्थानीय भाषाओं में व्याख्या करने के लिए किया जा रहा है। शीर्ष अदालत ने दैनिक आदेशों और फैसलों की 9 भारतीय भाषाओं में व्याख्या करना शुरू कर दिया है जो असमिया, बंगाली, हिंदी, कन्नड़, मराठी, उड़िया, तमिल, तेलुगु और उर्दू हैं। (भारत का सर्वोच्च न्यायालय, प्रेस विज्ञप्ति, 2019) (सिंह, 2020)।

विधि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो न्याय के संवैधानिक लक्ष्य को प्राप्त करे। विलियम एडवर्ड ग्लैडस्टोन ने कहा था कि न्याय में देरी न्याय से वंचित करना है। (मिश्रा, 2021)। विधि संस्था की यह जिम्मेदारी है कि वह उचित समय के साथ पाठ्यक्रम तैयार करे और जिम्मेदारी की भावना प्रदान करे जिससे

कानून स्नातकों को मामलों के समय पर निपटान में एक वकील या न्यायाधीश के रूप में हाथ मिलाना चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने न्याय के संवैधानिक मूल्यों पर भी जोर दिया, जिन्हें भारतीय संविधान की प्रस्तावना में सामाजिक न्याय, आर्थिक न्याय और राजनीतिक न्याय के रूप में वर्णित किया गया है। विधि शिक्षा को भी लोकतंत्र, कानून के शासन और मानवाधिकारों के माध्यम से राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की दिशा में निर्देशित किया जाना चाहिए। (राष्ट्रीय शिक्षा नीति दस्तावेज, 2020)।

विधि शिक्षा के पाठ्यक्रम में सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ के साथ-साथ साक्ष्य आधारित तरीके, विधि सोच का इतिहास, न्याय का सिद्धांत, न्यायशास्त्र का व्यावहारिक पहलू और अन्य संबंधित सामग्री को उचित और पर्याप्त रूप से प्रतिबिंबित करना चाहिए। यहां यह उल्लेख करना उचित है कि भारत में कानूनी शिक्षा में मानक स्थापित करने के लिए तथा नियम बनाने के लिए बार काउंसिल ऑफ इंडिया को अधिवक्ता अधिनियम की धारा 49 के तहत अधिकार प्राप्त है (अधिवक्ता अधिनियम, 1961)। बार काउंसिल ऑफ़ इंडिया ने पहले ही कानून विषय जैसे न्यायशास्त्र, संविधान, विधि इतिहास, अदालत की स्थापना का इतिहास, विधि पेशा और सबसे महत्वपूर्ण रूप से नैदानिक शिक्षा पर चार पेपर शामिल करने के दिशानिर्देश प्रदान किए हैं (बीसीआई: कानूनी शिक्षा के नियम, 2008)। उन छात्रों के लिए एक इलेक्ट्रॉनिक लॉग बुक बनाने की आवश्यकता है जिन्होंने नैदानिक विधि शिक्षा में भाग लिया है और जिन्होंने अदालती कार्यवाही में भाग लेने के लिए अदालत कक्ष का दौरा किया है और लोक अदालत, विधि सहायता क्लिनिक, विधि सहायता जागरूकता कार्यक्रम या विधि सलाह में सक्रिय रूप से भाग लेते हुए अपनी शिक्षा का प्रदर्शन किया है। नैदानिक शिक्षा पाठ्यक्रम को आगे बढ़ाने के लिए सभी विधि संस्थानों में अधिवक्ताओं का पैनल होना चाहिए जिसमें कानून शिक्षक कॉर्डिनेटर के रूप में हों। (मेनन, 2012)।

यहां यह उल्लेख करना उचित है कि भारतीय विधिज्ञ परिषद ने भारत में विधि शिक्षा को बढ़ावा देने और समन्वय करने के लिए विधि शिक्षा 2019 के नियम तैयार किए हैं। यह नियम 2008 की विधि शिक्षा के नियमों को प्रतिस्थापित करेगा। विधि शिक्षा 2019 के नियम के तहत भारतीय विधिज्ञ परिषद को कानून की उपाधि, स्नातकोत्तर उपाधि, एम.फिल, पीएचडी उपाधि और पोस्ट डॉक्टरेट की उपाधि सहित विधि शिक्षा के मानक निर्धारित करने का अधिकार है। भारतीय विधिज्ञ परिषद विधि संस्था को मंजूरी देने और मान्यता प्रदान करने के लिए भी अधिकृत है (बार काउंसिल ऑफ इंडिया नियम, 2019)। विधि शिक्षा के नियम की संवैधानिकता भारत के सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचाराधीन है।

एक नीति निर्धारक दस्तावेज होने के नाते एनईपी के पास विधि शिक्षा के निरंतर मांग वाले क्षेत्र में संभावित विकास को हासिल करने के लिए अत्यधिक सकारात्मक इनपुट हैं। जैसा कि अपेक्षित था, हालांकि, कानूनी और चिकित्सा शिक्षा को विनियमन में उनकी स्वायत्तता दी गई है, लेकिन यह भी सच है कि ये संस्थान अलग-थलग होकर काम नहीं कर सकते। यदि विधि शिक्षा 'चौथे वर्टिकल' में एकीकृत नहीं होती है या सामान्य शिक्षा परिषद ने जैसा कि भारत के उच्च शिक्षा आयोग (एचईसीआई) के तहत कार्य करने का प्रस्ताव रखा है, तो लॉ स्कूल और विश्वविद्यालय सरकार से मिलने वाले अनुदान से वंचित रह सकते हैं। लॉ स्कूलों के लिए यह भी महत्वपूर्ण है कि वह एनईपी के तहत बनाई जाने वाली संस्था के समान ही मान्यता प्राप्त निकाय बनाएं। (भट्ट, & गिरीश, 2020)।

निष्कर्ष

नई नीति में जितने व्यापक स्तर पर बदलाव की घोषणा की गई है उसे देखते हुए कम से कम एक बात विश्वासपूर्वक कही जा सकती है कि सरकार ने बदलावों को लेकर किसी भी तरह की हिचक नहीं दिखाई है। मातृभाषा में शिक्षा की शुरुआत एक सराहनीय कदम है। शुरुआती उम्र में मातृभाषा में पढ़ाई बच्चों के सहज व तेज मानसिक विकास में सहायक होती है। दूसरी बात यह कि अंग्रेजी मीडियम स्कूलों का जो क्रेज इस बीच बना है, उसने बच्चों के बीच खाई चौड़ी कर समाज को कई स्तरों पर नुकसान पहुंचाया है। मातृभाषा में शुरुआती पढ़ाई का प्रचलन इस खाई को थोड़ा-बहुत भी पाटती है तो सबके लिए अच्छा होगा। इसी तरह कॉलेज स्तर पर भी अंडरग्रैजुएट कोर्स को तीन या चार साल का और एमए को एक साल का करने से लेकर मल्टिपल एग्जिट की व्यवस्था करने तक ऐसे अनेक कदम उठाए गए हैं जो भारतीय शिक्षा व्यवस्था के लिए बाकी दुनिया से तालमेल बनाते हुए चलना आसान बनाएंगे।

प्रारंभ से ही विधि शिक्षा में अंग्रेजी का बोलबाला रहा है जिस कारण हिंदी में कानून की जानकारी रखने वालों को अत्यधिक प्राथमिकता नहीं दी जाती। भारत में उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय की भाषा अंग्रेजी निर्धारित की गई है। अतः अंग्रेजी में बहस करने वालों को प्राथमिकता दी जाती है परंतु यह जरूरी नहीं है कि जो अच्छी अंग्रेजी बोलता हो वह कानून भी अच्छा जानता हो। हिंदी में भी न्यायालय के समक्ष अपना पक्ष रखा जा सकता है। भाषा तो केवल अपने विचारों को व्यक्त करने का माध्यम है, अपनी बात को दूसरों तक पहुंचाने का माध्यम है। विधि शिक्षा में अंग्रेजी का यह बोलबाला भारत की जनता को कानून की पहुंच व समझ से दूर रखता है। ज्यादा से ज्यादा लोगों तक कानून की जानकारी पहुंचे इसके लिए विधि शिक्षा को हिंदी में भी पढ़ाया जाना चाहिए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में कुछ ऐसी घोषणाएं भी कर दी गई हैं जो पहली नजर में रस्मी लगती हैं और जिनके अमल में आने को लेकर संदेह स्वाभाविक है। उदाहरण के लिए इसमें शिक्षा पर जीडीपी का छह फीसदी खर्च करने की बात है जो आजादी के बाद से ही दोहराई जाती रही है। इस सपने को उच्च शिक्षा में प्राइवेट सेक्टर के सहयोग से ही पूरा किया जा सकता है। लिहाजा सरकार को इस नीति में उन मांगों को जोड़ना चाहिए जो उच्च शिक्षा संस्थान काफी समय से कर रहे हैं। बहरहाल, व्यापक बदलाव की उम्मीद जगाती नई शिक्षा नीति अमल की कसौटियों पर कितना खरा उतरती है, यह देखने के लिए थोड़ा इंतजार तो करना ही होगा।

संदर्भ सूची

उपाध्याय, अंजना (2021). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में समान और समावेशी शिक्षा. भारत में शिक्षा-नीति की दशा एवं दिशा। खरे, डी.एम. वर्मा, डी.बी. (सं.)। श्री विनायक प्रकाशन। ए

पीआइबी (2020, 19, सितम्बर).

https://pib.gov.in/PressReleaseIframePage.aspx?PRID=1656652 से उद्धृत।

राज कुमार, C. (2020). भारत के विश्वविद्यालय कैसे बनें आत्मनिर्भर.

राष्ट्रीय शिक्षा नीति दस्तावेज (एन.डी.). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय,

भारत सरकार
https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_final_HINDI_0.pdf से उद्धृत।

बोस, एस., के. (एन.डी.). चेंजेज इन लीगल एजुकेशन आफ्टर न्यू एजुकेशन पालिसी 2020. https://manavrachna.edu.in/blog/changes-in-legal-education-after-new-education-policy-2020/ से उद्धृत।

वर्गीज, एन., सभरवाल, वी. निधि एस., मलिश, सी.एम. (2019). भारत में उच्च शिक्षा में समानता और समावेश, सीपीएचआरई रिसर्च पेपर्स 12, एनआईईपीए (2019). http://cprhe.niepa.ac.in/equity-and-inclusion-highereducation-india से उद्धृत |

बार काउंसिल ऑफ इंडिया निरीक्षण मैनुअल 2010, अनुसूची II http://www.barcouncilofindia.org/wp-content/uploads/2010/06/Inspection-Manual2010.pdf से उद्धृत।

भारत का सर्वोच्च न्यायालय, प्रेस विज्ञप्ति,(2019, 25 नवंबर) https://main.sci.gov.in/pdf/Press/press%20release%20for%20law%20day%20celebratoin.pdf से उद्धृत |

अजमेर सिंह,(2020, 5 मई). सुप्रीम कोर्ट ने अपनी सभी 17 बेंचों को पेपरलेस बनाने के लिए सॉफ्टवेयर विकसित किया है. इकोनॉमिक टाइम्स। https://economictimes.indiatimes.com/news/politics-and-nation/supreme-court-develops-software-to-make-all-its-17-benches-paperless/articleshow/75989143.cms?utm_source=contentofinterest&utm_medium=text&utm_campaign=cppst से उद्धृत |

मिश्रा, समृद्धि अमृता (2021, 5 मई). जस्टिस डिलेड इज जस्टिस डेनिड, लीगल सर्विसेज ऑफ इंडिया ई-जर्नल https://www.legalserviceindia.com/legal/article-3313-justice-delayed-is-justice-denied.html#:~:text=William%20Edward%20Gladstone%20(the%20former,there%20was%20lack%20of%20justice से उद्धृत।

अधिवक्ता अधिनियम, 1961, धारा 49
http://www.barcouncilofindia.org/wp-content/uploads/2010/05/Advocates-Act1961.pdf से उद्धृत।

बार काउंसिल ऑफ इंडिया, कानूनी शिक्षा के नियम 2008, भाग-IV,
http://www.barcouncilofindia.org/wp-content/uploads/2010/05/BCIRulesPartIV.pdf से उद्धृत।

मेनन, एन.आर. माधव (2012). द ट्रांसफॉर्मेशन ऑफ इंडियन लीगल एजुकेशन - ए ब्लू पेपर, हार्वर्ड लॉ स्कूल प्रोग्राम ऑन द लीगल प्रोफेशन https://clp.law.harvard.edu/assets/Menon_Blue_Paper.pdf से उद्धृत।

बार काउंसिल ऑफ इंडिया, कानूनी शिक्षा के नियम 2019, http://www.barcouncilofindia.org/wp-content/uploads/2019/11/Draft-Rules-of-Legal-Education-2019-1.pdf से उद्धृत।

भट्ट, एस, & गिरीश, जी. (2020, 30 अक्टूबर). लीगल एजुकेशन एंड न्यू एजुकेशन पालिसी 2020. https://nlspub.ac.in/legal-education-and-national-education-policy-2020/ से उद्धृत।

मेकल मीमांसा

(ISSN-0974-0118)

मेकल मीमांसा: एक परिचय

सन 2009 में आरंभ मेकल मीमांसा इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक, मध्य प्रदेश द्वारा प्रकाशित डबल ब्लाइंड पीअर रिव्यूड शोध पत्रिका है| राष्ट्रभाषा हिंदी में प्रकाशित अर्धवार्षिक शोधपत्रिका हेतु ज्ञान-विज्ञान के सभी क्षेत्रों से मौलिक शोध प्रकाशन हेतु आमंत्रित किया जाता है| शोध पत्रिका का उद्देश्य शोधार्थियों, नीति नियामकों, एवं वाणिज्यिक क्षेत्रों के ज्ञानवर्धन तथा संवर्धन हेतु उपयोगी नवोन्मेषी, मौलिक और नूतन शोध को सामने लाना है | प्रकाशन में उच्च मानकों को बनाए रखने हेतु पत्रिका के लिए एक निर्धारित, वस्तुनिष्ठ ब्लाइंड पीअर रीव्यू पद्धति से शोध पत्रों का चयन किया जाता है |

पत्रिका का उद्देश्य एवं क्षेत्र-

मेकल मीमांसा शोध पत्रिका का मूल उद्देश्य राष्ट्रभाषा हिंदी में गुणवत्तायुक्त मौलिक शोध को सामने लाना है | पत्रिका सैद्धांतिक, अनुप्रयुक्त एवं नीति निर्धारण आदि सभी क्षेत्रों में होने वाले अनुसन्धान को प्रकाशित करने का कार्य करती है | पत्रिका का विशेष आग्रह आदिवासी विकास, संस्कृति एवं जीवन पद्धति आदि से जुड़े स्तरीय, वस्तुनिष्ठ एवं वैज्ञानिक शोध के प्रकाशन के प्रति है |

पत्रिका की सदस्यता हेतु सहयोग राशि

क्रम संख्या	श्रेणी	अवधि	सहयोग राशि रुपयों में
1	संस्थागत सदस्यता हेतु	अर्धवार्षिक	300.00
		वार्षिक	550.00
		आजीवन	5000.00
2	व्यक्तिगत सदस्यता हेतु	अर्धवार्षिक	250.00
		वार्षिक	475.00
		आजीवन	4500.00
3	आन्तरिक व्यक्तिगत सदस्यता एवं शोधार्थियों हेतु	अर्धवार्षिक	200.00
		वार्षिक	350.00
		आजीवन	3250.00

सहयोग राशि का भुगतान ऑनलाइन/बैंक ट्रान्सफर के माध्यम से स्वीकार किया जाता है | बैंक डिटेल हेतु सम्पादकीय टीम से संपर्क किया जा सकता है |

मेकल मीमांसा के आगामी अंको हेतु शोध पत्र आमंत्रित किए जाते हैं | शोध पत्र मौलिक, वस्तुनिष्ठ एवं ज्ञान के क्षेत्र और समाज तथा संस्कृति के संवर्धन में योगदान करने में सक्षम हों | मौलिकता प्रमाणपत्र एवं अन्यत्र प्रकाशन हेतु नहीं भेजे जाने सम्बंधी घोषणा के साथ शोध पत्र mekalmimansa@igntu.ac.in पर ई-मेल किए जा सकते हैं | विस्तृत निर्देश हेतु हमारी वेबसाइट देखें |

http://www.igntu.ac.in/mekalmimansa.aspx

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय
अमरकंटक (म.प्र.)

मेकल मीमांसा

अंतर-अनुशासनात्मक डबल ब्लाइंड पीयर रिव्यूड यूजीसी केयर सूचीबद्ध अर्धवार्षिक शोध पत्रिका

http://www.igntu.ac.in/mekalmimansa.aspx